द्रव्य सहायक

श्रीमान् फतेलालजी पन्नालालजी मालू जैन पारमार्थिक संस्था,
खीचन (जिला--जोधपुर, राजस्थान)

प्राप्ति स्थान—

१. श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ
सैलाना (मध्य-प्रदेश)

शाखा—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ

२. " २३४ नागदेवी स्ट्रीट बम्बई नं० ३

३. " सराफा बाजार जोधपुर (राजस्थान)

४. " सदर बाजार रायपुर (मध्य-प्रदेश)

स्वल्प मूल्य ५-००

प्रथमावृत्ति ८००

वीर संवत् २४९१
विक्रम संवत् २०२१
ईस्वी सन् १९६४

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस, सैलाना (म. प्र.)

पुण्य स्मृति में



रेगिस्तान के एक कोने में बसा हुआ हमारा छोटासा 'खीचन' गांव, भारत के हजारों गांवों की तरह उपेक्षणीय एव अनाकर्षक है। वहा अपने ही जिले के लोगो के आकर्षण का कोई आधार नही है। किन्तु खीचन निवासियों के पुण्य का उदय हुआ। स्वनामधन्य पूज्यश्री १००८ श्री ज्ञानचन्द्रजी म. की सम्प्रदाय के आदर्श संयमी स्व पूज्यश्री रत्नचन्द्रजी महाराज सा., तपस्वीराज श्री सिरेमलजी म० सा. और समाज के अद्वितीय बहुश्रुत, निर्मलमति, गूढ़तम तत्त्वों के सरल व्याख्याता, गीतार्थ पडित-रत्न श्री समर्थमलजी महाराज आदि संतो के विराजने से यह गांव भारतभर के धर्मप्रिय बन्धुओ के लिए आकर्षक बन गया। दूर दूर से दर्शनार्थी आने लगे। पूज्यश्री रत्नचन्द्रजी म० की लम्बी बिमारी, और उनके स्वर्गवास के बाद तपस्वीराज की बिमारी के कारण लगभग ३४ वर्ष तक 'खीचन' तीर्थधाम बना रहा। इस अवसर मे खीचन संघ को ज्ञान, ध्यान, धर्मोपदेश और साधर्मी बन्धुओ की सेवा का लाभ मिलता रहा।

इन महापुरुषो के पवित्र उपदेशों से प्रभावित होकर श्रीमान् खुशालचंदजी, श्रीप्रकाशचंदजी, श्री उत्तमचंदजी, श्रीरत्नचंदजी और पंडित प्रवर श्री घेवरचंद्रजी बाँठिया वीरपुत्र, न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धात शास्त्री की तथा श्रीमती गंगाबाई बाफना, श्रीमती लक्ष्मीदेवी बाठिया और कुमारी स्नेहलता की निर्ग्रंथ प्रव्रज्या का उत्तम सुयोग प्राप्त हुआ।

भगवती सूत्र का सम्पादन भी पं० श्री घेवरचन्द्रजी बाँठिया वीरपुत्र ने खीचन मे रहकर किया। इन सब उत्तम शुभ प्रसंगो की स्मृति मे भगवती सूत्र का यह प्रथम भाग, श्रुतज्ञान के रसिकों के लाभार्थ प्रकाशित कराया जा रहा है। आशा है कि इससे समाज को यथेष्ट लाभ होगा।

संघ सेवक

किसनलाल पृथ्वीराज गणेशमल मालू

श्री फतेलाल पन्नालाल मालू जैन पारमार्थिक संस्था खीचन की

सा० मालू
र से आर्थिक
और दूसरे भाग
हम एक एक भाग
रहे हैं। संघ की



निवेदन



श्रीभगवतीसूत्र के प्रथम भाग को जैन समाज के संमुख प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता होती है। सघ, सम्यग्ज्ञान के प्रचार में अपने निर्बल चरण द्वारा शनै शनै आगे बढ़ रहा है। अब तक संघ की ओर से आगम साहित्य में से निम्न सूत्रो का प्रकाशन हो चुका है,–

१ श्रीसूयगड़ांगसूत्र, २ श्रीअंतगड़सूत्र, ३ श्रीउववाईसूत्र, ४ श्रीदशवैकालिकसूत्र, ५ श्रीनन्दीसूत्र, ६ श्रीसुखविपाकसूत्र, ७ श्रीउत्तराध्ययनसूत्र, ८ श्रीसामायिकसूत्र, ९ श्रीप्रतिक्रमणसूत्र और १० श्रीभगवतीसूत्र का प्रथम भाग।

इसके अतिरिक्त 'मोक्षमार्ग' नामक ग्रंथ का प्रकाशन भी संघ की विशिष्ट भेट है। इस ग्रंथ मे आगमों का सार भर दिया गया है। गागर में सागर की भांति यह अनमोल ग्रथ है। "अनागत की झाँकी" अपरनाम 'स्त्री प्रधान धर्म,' निर्ग्रंथ परम्परा की रक्षा का एक अनूठा प्रयास है। त्यागी सुश्रावक श्रीमान् मोतीलालजी सा. मांडोत द्वारा संग्रहित तथा प्रकाशित 'आत्म साधना सग्रह' भी संघ से प्रचारित हुई है। यह भी सर्व साधारण धर्मबन्धुओं के लिए विशेष उपयोगी है। इसके सिवाय "सिद्धस्तुति" का प्रकाशन भी संघ की ओर से हुआ है।

संघ के प्रकाशन सर्वोपयोगी सिद्ध हुए हैं। कुछ पुस्तको की तो दो दो आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी है और होनेवाली है।

इस समय 'जैन स्वाध्यायमाला' का मुद्रण होरहा है और भगवतीसूत्र भाग २ का मुद्रण भी प्रारंभ होनेवाला है।

इस प्रथम भाग के प्रकाशन में श्रीमान् सेठ किशनलालजी पृथ्वीराजजी सा० मालू ने, श्री फतेलालजी पन्नालालजी मालू जैन पारमार्थिक सस्था खीचन की ओर से आर्थिक सहयोग दिया है। इसीसे इसका मूल्य लागत से भी कम रखा गया है। और दूसरे भाग [प्रक]ाशन मे अन्य धर्मप्राण बन्धुओ का सहयोग भी प्राप्त हो चुका है। हम एक एक भाग [स]ाथ एक एक अन्य सूत्र भी प्रकाशित करते रहने का विचार कर रहे हैं। संघ की



ओर से अब जो आचारांग सूत्रकृतांगादि प्रकाशित होंगे, वे मूलपाठ, शब्दार्थ, भावार्थ और आवश्यक विवेचन युक्त होंगे। ऐसे उत्तम प्रकाशन में जिनवाणी के रसिक उदारमना महानुभावों को उदारतापूर्वक सहयोग देकर निर्ग्रंथ प्रवचन के प्रचार का लाभ लेना चाहिए। ऐसा सुअवसर बारबार नही आता।

सघकी ओर से धार्मिक पाठशालाएँ खुलवाकर जैन बालकों में धार्मिक संस्कार भरने का प्रयत्न भी होता है। और उन पाठशालाओं को आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

श्रीमान् पं० घेवरचन्द्रजी बाँठिया वीरपुत्र तथा श्रीमती लक्ष्मीदेवी बाँठिया स्थापित--स्वधर्मी सहायता फण्ड तथा दीक्षार्थी सहायता फण्ड भी चालू है।

इस प्रकार संघ की ओर से समाज के लिए हितकारी प्रवृत्तियाँ चल रही है। इन उत्तम प्रवृत्तियो में योग देकर बढाना और धर्मवृक्ष को हरा भरा फलद्रूप बनाना, समाज के उदारमना दानवीर महानुभावों का कर्त्तव्य है। समाज की सहायता से ही यह सघ विशेष सेवा कर सकेगा।

अध्यक्ष–मानकलाल पोरवाड़ एडवोकेट, धार
उपाध्यक्ष–शरबतचंद भंडारी
" संपतराज धाड़ीवाल
प्रधान मन्त्री–रतनलाल डोशी
मन्त्री–बाबुलाल सराफ
" जशवंतलाल शाह



प्रस्तावना

जैन वाङमय में भगवतीसूत्र का स्थान महत्वपूर्ण है। अंग साहित्य में आचारांग का [illegible] सर्व प्रथम है। यह सर्व-सवर की आराधना की दृष्टि से है, किंतु तत्वज्ञान एवं गंभीर [illegible] की दृष्टि से भगवतीसूत्र और प्रज्ञापनासूत्र अपना विशेष स्थान रखते है। इनमें भी प्रज्ञापना सूत्र मात्र द्रव्यानुयोग का ही प्रतिपादक है, किंतु भगवतीसूत्र तो चारो अनुयोग [illegible] धारण करनेवाला है। इसमें विविध विषयों का प्रतिपादन हुआ है। हम जब भगवतीसूत्र का अध्ययन करते हैं, तो स्पष्ट दिखाई देता है कि पहले इसकी सामग्री बहुत विशाल थी। इस सूत्रराज में ऐसी भी सामग्री विद्यमान थी जो अब उपलब्ध नही है और बहुतसा भाग [illegible]कुचित करके वहां प्रज्ञापना आदि सूत्रों का निर्देश किया गया है। इस सूत्र में इतनी सामग्री है कि जिससे यह पांचवां अंग, अन्य किसी भी अंग और उपांग से विशाल है और अपने मे सर्वाधिक वस्तु लिये हुए है। इसका प्रारंभ ही "चलमाणे चलिए" रूप एक विशिष्ठ आत्म शुद्धिकर तत्त्व से हुआ है। कहा जाता है कि भगवतीसूत्र में ३६००० प्रश्नोत्तर है। इस सूत्रराज का एक नाम 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' भी है। इसमें सभी ज्ञेय पदार्थों के विषय में अपेक्षापूर्वक कथन किया गया है। इसको 'जयकुंजर'–देवाधिष्टित विजयवंत गजराज, की उपमा से टीकाकार ने सुशोभित किया है। जैनधर्म को विशेषरूप से समझने एवं तत्वज्ञान का तलस्पर्शी अध्ययन करने के लिए भगवतीसूत्र एक विशाल श्रुतभण्डार है। ज्यों ज्यों इसका स्वाध्याय, चिन्तन एवं परिशीलन किया जाय, त्यों त्यों नये नये अमूल्य रत्न मिलते रहते हैं।

भगवतीसूत्र के प्रकाशन की योजना संस्कृति रक्षक संघ की एक विशिष्ट योजना है। इसके अनुवाद का काम समाज के अनुभवी विद्वान् श्रीयुत पंडित घेवरचंद्रजी बांठिया वीरपुत्र (वर्त्तमान में श्रीवीरपुत्रजी महाराज) न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धांतशास्त्री ने किया। आपने शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन से सम्पन्न करके ऐसा सरल बना दिया है कि जिससे समझने में सरलता हो। श्रीअभयदेवसूरिजी की टीका की सहायता से विवेचन लिखा गया है। पंडितजी ने इस सम्पादन को बहुश्रुत पडितरत्न श्रमणश्रेष्ठ मुनिराज श्रीसमर्थमलजी महाराज साहब को सनवाड़ और वालेसर के चातुर्मास में सुनाया। मुनिराजश्री ने जहां अर्थ [illegible] विषमता प्रतीत हुई, वहाँ संशोधन करवाया। ये संशोधन वास्तव में आवश्यक और

उचित थे। इनसे सैद्धांतिक मतभेद दूर होकर वास्तविकता स्पष्ट होती है। जैसे–

(१) श. १ उ. १ के आत्मारंभादि विषय में टीकाकार, प्रमत्त-संयती में कृष्ण, नील और कापोत लेश्या नही मानते है, किंतु यह मान्यता सिद्धांत के अनुकूल नहीं होने से टिप्पण में (पृ ९१) इसका खुलासा करके प्रमत्तसंयत मे छहों लेश्या का सद्भाव बतलाया है। प्रमाण में भगवती सूत्र श. ८ उ. २ का निर्देश किया है। वहां कृष्ण लेश्यावाले जीवों में, सइन्द्रिय जीवों की तरह चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से बताया है। कृष्ण लेश्यावाले जिन जीवो में मन:पर्यवज्ञान पर्यन्त तीन या चार ज्ञान होंगे, वे संयती ही होंगे। क्योकि मन:पर्यवज्ञान संयत में ही होता है।

प्रज्ञापनासूत्र पद १७ उ. ३ का मूलपाठ भी यही बतलाता है। यथा–

"कण्हलेसे णं भंते ! जीवे कइसु नाणेसु होज्जा ? गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा नाणेसु होज्जा। दोसु होमाणे आभिणिबोहिय-सुयनाणे होज्जा, तिसु होमाणे आभिणिबोहिय-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा अहवा तिसु होमाणे आभिणिबोहिय-सुयनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा, चउसु होमाणे आभिणिबोहिय-सुय-ओहि-मणपज्जवनाणेसु होज्जा। एवं जाव पम्हलेसे।"

इसमें भी कृष्णादि लेश्या में मन.पर्यवज्ञान स्वीकार किया है, जो संयती में ही होता है।

(२) श. १ उ. २ में आयु के वेदन सम्बन्धी उत्तर ६८ में टीकाकारश्री ने वृद्धों की धारणा का उल्लेख करते हुए श्री कृष्णवासुदेव का उदाहरण देकर बताया कि–'पहले उन्होंने सातवी पृथ्वी का आयुष्य बाँधा था, किंतु बाद में तीसरी का बाँधा'। इस कथन को पृ ११४ मे सिद्धांत से विपरीत बताकर लिखा है कि–यह बात स्वयं टीकाकारश्री के अपने पूर्व विधान से ही विपरीत जाती है। टीकाकार ने प्रथम उद्देशक मे असंवृत अनगार के सम्बन्ध मे 'आउय वज्जाओ' शब्द (उत्तर ५७) पर टीका करते हुए लिखा है कि–'आयुकर्म एक भव मे एक बार ही बँधता है'। अतएव एक भव में दो बार आयु का बन्ध बताना उचित नही है। इस विषय मे इस पुस्तक के पृ. ११३ के अंतिम पेरे मे दिया हुआ विवेचन निर्विवाद एवं सूत्राशय के अनुरूप है। सभी ससारी जीवों के ऐसा ही होता है।

(३) श. १ उ. २ मे तिर्यंचो का उपपात उत्कृष्ट सहस्रार कल्प मे बताया, वहां टीकाकार श्री, देशविरत तिर्यंच को ही इसका अधिकारी बतलाते है। इस विषय में पृ. १५७ के टिप्पण मे बताया कि बिना देश विरति के भी संज्ञीतिर्यंच, सहस्रार तक जा सकता है

इस विषय में भ. श. २४ उ. २० और उ. २४ का हवाला दिया है।

(४) श. १ उ. ५ में पृथ्वीकाया के विषय में टीकाकार ने सास्वादन सम्यक्त्व का निर्देश किया, किंतु पृ. २५२ में इस बात को सिद्धांत के विरुद्ध प्रमाणित की गई है।

इस प्रकार इस संस्करण में बहुश्रुत मुनिराजश्री के संशोधन से विशेषता आगई है।

टीकाकार आचार्यश्री अभयदेवसूरिजी में कितनी सरलता एवं निरभिमानता थीं, यह उनके निम्न उद्‌गारो से जानी जा सकती है। उन्होने प्रथम शतक की टीका पूर्ण करते हुए लिखा है कि–

"इति गुरुगमभंगैः सागरस्याऽहमस्य स्फुटमुपचितजाड्यः पञ्चमांगस्य सद्यः।
प्रथमशतपदार्थावर्तगर्तं व्यतीतो विवरणवरपोतौ प्राप्य सद्धीवराणाम्" ॥

अर्थात–भगवतीसूत्र सागर के समान गंभीर है एवं इसका प्रथम शतक सागर की खाड़ी के समान है और इसमें वर्णित पदार्थ समुद्र में भंवर के समान है। मेरी बुद्धि में बहुत बड़ी जड़ता है। मेरे लिए इससे पार होना कठिन है। मुझमें ऐसी शक्ति कहां है कि मैं इससे पार पा सकूं। फिर भी गुरुगम और पूर्वाचार्यो के विवरण (चूर्णि और अवचूरि) रूपी नौका का अवलंबन लेकर मैंने यह प्रयास किया है।

उपरोक्त उद्‌गारों में आचार्यश्री की सरलता एवं निरभिमानता प्रकट होती है।

टीकाकार के सामने उलझने भी बहुत थीं। उन्होने अपनी कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए स्थानांग सूत्र की टीका के अंत मे लिखा है कि–

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगतः।
सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे ॥१॥
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः।
सूत्राणामतिगाम्भीर्यान्मतभेदाच्च कुत्रचित् ॥२॥
क्षूणानि संभवन्तीह, केवलं सुविवेकिभिः।
सिद्धांतानुगतो योऽर्थः, सोऽस्माद् ग्राह्यो न चेतरः ॥३॥
शोध्यं चैतज्जिने भक्तैर्मामवद्‌भिर्दयापरैः।
संसारकारणाद् घोरादपसिद्धान्तदेशनात् ॥४॥ आदि

अर्थात्–सत्सम्प्रदाय (परम्परा) की हीनता से, सत्तर्क के वियोग से, सभी स्वपर शास्त्रों का अवलोकन नही होने एवं स्मृति में नही रहने से, वाचना की अनेकता से, पुस्तकों

में अशुद्धियाँ होने से, सूत्रों के अति गंभीर होने से और मतभेद होने के कारण इस टीका में त्रुटियो का रहजाना संभव है। इसलिए विवेकवान् पुरुषों से निवेदन है कि वे इस सूत्र के उसी अर्थ को माने जो सिद्धांत के अनुरूप हो। सिद्धांत विरुद्ध अर्थ को नही माने। दया में तत्पर ऐसे जिनेश्वर के भक्त पुरुष, संसार के घोर कारणभूत ऐसे अपसिद्धांत-उत्सूत्र प्ररूपणा से रक्षा करते हुए इस व्याख्या की शुद्धि करें। आदि

वास्तव में सूत्रकार की अपेक्षा समझकर विवेचन करना सरल नहीं है। यदि सूत्रकार की अपेक्षा छोड़कर मात्र शब्दों पर हीं आधार रखकर व्याख्या की जाय, तो अनर्थ होने की संभावना है। गीतार्थ परम्परा नही रहने से भी अर्थ मे विषमता आ सकती है। गुरु-परम्परा अर्थात् पुरानी धारना भी सिद्धांत की अपेक्षा समझने में सहायक होती है। वास्तव में अर्थ और व्याख्या वही निर्दोष होती है जो मूल के आशय के विपरीत नहीं जावे। वर्त्तमान में मूल एवं निर्ग्रंथ प्रवचन के आशय की उपेक्षा करके लोकानुसारी अर्थ करने की रुचि विशेष दिखाई देती है। यह चिंता का विषय है। बहुश्रुत मुनिराजश्री वही अर्थ बतलाते हैं जो मूल कि आशय और सिद्धांत के अन्य स्थलों पर आये हुए प्रसंगों के अनुकूल हो।

भगवतीसूत्र का अनुक्रम से आद्योपान्त अध्ययन करके विशेष लाभ लेना तो अत्युत्तम है ही। किंतु इतना उद्योग सभी जिज्ञासु नहीं कर सकते। ऐसे साधारण बन्धुओं को नीचे लिखे कुछ विशिष्ट स्थलों को अवश्य ही देखना चाहिए और उन भावों को हृदय में उतारकर लाभान्वित होना चाहिये। यदि वे पहले इतना करके अपनी रुचि बढाकर फिर प्रारंभ से अध्ययन करेंगे, तो उनकी प्रज्ञा में निर्मलता की वृद्धि होगी और वे आगे गति करते जावेंगे।

उपादेयश्च संवरः

इस सूत्र के पृ. ९४ में प्रश्न ५६ व ५७ के उत्तर में गणधर महाराज के प्रश्न करने पर भ. महावीर देव ने स्पष्ट फरमाया है कि जो मनुष्य, साधु कहाकर भी असंवृत है-आश्रव का सेवन करता है, वह मुक्त तो नही होता, किन्तु कर्मबन्धन बढ़ाकर संसार परिभ्रमण बढ़ा लेता है। इससे समझना चाहिये कि जबतक मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद आदि आश्रव मौजूद है, तबतक संसार परिभ्रमण चालू ही रहता है, भले ही वेश साधु का हो।

इसके बाद सूत्र ५८ व ५९ पृ. ९८ में स्पष्ट कहा है कि संवरवान् अनगार ही मुक्त होते हैं।

तात्पर्य यह है कि आश्रव संसार मार्ग है और संवर मोक्षमार्ग है। आश्रव त्यागने योग्य है और संवर आदरने योग्य है। हम सभी यथा शक्ति संवर का सेवन करें और संवरवान् का आदर सत्कार करें, इसीमें हमारा आत्महित है। यह आत्म कल्याण का राज मार्ग है। त्रिकाल सत्य है।

कांक्षामोहनीय कर्म

प्रथम शतक का तीसरा उद्देशक 'कांक्षा-मोहनीय कर्म' के विषय को स्पष्ट करता है। कांक्षामोहनीय कर्म, मिथ्यात्व में ले जाता है। जिनधर्म से गिराकर अधर्म में धकेलता है। जीव में दर्शन-मोहनीय के उदय से शंका कांक्षादि उत्पन्न होते हैं। यदि शंका का समाधान हो जाय, तब तो ठीक ही है, अन्यथा सूत्र ११६ मे बताये माफिक-**"तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं"**-वही सत्य और सन्देह रहित है जो जिनेश्वर भगवान् ने निरूपण किया है, इस प्रकार सोचकर आत्मा को मिथ्यात्व में गिरने से बचाना ही श्रेयस्कर है। आत्मार्थियों के लिए यह भाव, आत्मा में दृढ़ीभूत करना अत्यावश्यक है। इसीसे पतन रुकता है और आत्मा मिथ्यात्व से बची रहती है।

आत्मकृत कर्म

श. १ उ. ६ सूत्र २०६ से बताया है कि अपने कर्मो का कर्त्ता जीव खुद ही है। आत्मा स्वय ही कर्मबन्ध करती है, दूसरी कोई भी शक्ति, जीव को कर्म के बन्धन में नहीं बांध सकती। ईश्वरवादी सुख दु.ख का सर्जक ईश्वर को मानते हैं, यह बात उक्त सिद्धांत से खंडित हो जाती है। एकान्त निश्चयवादी, आत्मा को कर्म का कर्त्ता नहीं मानते, किंतु उनकी एकान्त प्ररूपणा भी ठीक नही है। शुद्धस्वरूप-परमपारिणामिक भाव की अपेक्षा आत्मा शुद्ध एवं निर्विकार है। वह पाप या पुण्य की कोई भी क्रिया नही करती। किंतु जहां तक परम पारिणामिक भाव प्रकट नही हो और अनादि सपर्यवसित औदयिक भाव रहे, तबतक वह अशुद्ध दशा मे है। जीव, स्वयं क्रिया करता है। सुख दु.ख का अनुभव करता है। उसे भूख प्यास और रोगादि की वेदना होती है। भोजन और पानी मिलने पर तृप्ति का अनुभव करता है। रोग होने पर दुःख का, आपत्ति आने पर भय का और इष्ट वियोग होने पर शोक का अनुभव करता है। स्वयं एकान्त निश्चयवादी भी शारीरिक कष्ट और शोक से बचने



के लिए वाहन का उपयोग करते हैं। रोग होने पर औषधी लेते है, खाते पीते और सोते हैं। "मुझे लघु-शंका और बड़ी-शका की बाधा हुई है"-यह सोचकर स्थंडिल जाते हैं। विष या क्लोरोफार्म के प्रभाव से बेहोश हो जाते हैं और आग में या तेजाब में उंगली देने से डरते है। इस प्रकार उदयभाव का प्रभाव स्पष्ट ही उन खुद पर होता है। इस प्रत्यक्ष बात को भुलाकर एकान्तवाद को ही पकड़े रहना मिथ्यात्व है। यह बात इस सूत्र से सिद्ध हो रही है।

जीव पुद्गल सम्बन्ध

सूत्र २२६ से यह बात विशेषरूप से स्पष्ट होगई कि जीव पुद्गल से सम्बन्धित है। ये दोनों स्वतन्त्र द्रव्य होते हुए भी विभावदशा के चलते परस्पर जुड़े हुए हैं। संयोग वियोग शब्द का व्यवहार भी इसी संयोग सम्बन्ध के कारण होता है। जो लोग, जीव पुद्गल की परस्पर आबद्ध ऐसी भूतकालीन अवस्था जानते हुए और वर्त्तमान में आँखो से देखते हुए भी एकान्तवाद के गृहीत पक्ष के कारण नहीं मानते, वे कदाग्रही हैं। चार गति, चौबीस दण्डक, जीवयोनिये, जन्म मरण आदि विविधताएँ जीव और पुद्गल के सयोग सम्बन्ध से ही होती है। यदि यह संयोग सम्बन्ध नही हो, तो जीव, केवल सिद्ध रूप ही हो और पुद्गल केवल परमाणु रूप ही हो।

इस सूत्र से एकान्तवाद का निरसन हो जाता है।

आधाकर्म भोगने का फल

श. १ उ. ६ सूत्र ३०३ से आधाकर्म आहार भोगनेवाले साधु को आत्मधर्म से निरपेक्ष एव षट्काय जीवों का हिंसक बताया है और सूत्र ३०५ से निर्दोष आहार भोगने वाले को आत्मधर्मी और षट्काय जीवो का रक्षक बताया है। यह विधान साधु के लिए है, किंतु आधाकर्म आहार का दाता भी पापकर्म से नही बचता। उसके लिए भ. श. ५ उ. ६ में लिखा है कि-श्रमणनिर्ग्रंथो को सदोष आहार देनेवाला अल्प आयु का बन्ध करता है-जिससे बालपन अथवा युवावस्था मे ही मरना पड़े। और निर्दोष एवं पथ्यकर आहार देनेवाला शुभ-दीर्घायु प्राप्त करता है। वह अपने कर्मों की निर्जरा करता है (श. ८ उ. ६)

यह बात हम उपासकों को विशेष रूप से समझने और ध्यान मे रखने की है।

आर्य स्कन्दक का धर्मवाद

श. २ उ. १ पृ. ३६० से आर्य स्कन्दक का धर्मवाद और उसके परिणाम को बताने वाला अधिकार प्रारंभ हुआ है। परिव्राजकाचार्य स्कन्दक को पिंगल नामके निर्ग्रंथ ने कुछ प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों का उत्तर श्री स्कन्दकजी के पास नहीं था। उनके लिए वे प्रश्न नये ही थे। श्री स्कन्दकजी विद्वान् थे। वे वेद विशारद एवं वैदिक धर्म के प्रवर्त्तक थे। उनका हृदय सरल और गुण ग्राहक था। उन्हे उत्तर नही आया, तो वे मौन रहगए। किंतु अंटसंट उत्तर देकर प्रश्नकार को टाला या दबाया नही। वे सत्य उत्तर देना चाहते थे। जिस विषय में उनकी जानकारी एवं विश्वास हो, वे वही उत्तर देना चाहते थे। उनके हृदय में सत्य के लिए स्थान था, पक्ष के लिए नही। वे सत्य समझने के लिए भ. महावीर की शरण में आने से भी नही हिचकिचाये। उनके सामने पक्ष-प्रतिष्ठा बाधक नहीं बनी। भ. महावीर से समाधान पाकर उनकी आत्मा की दिशा ही बदल गई और वे सच्चे साधक बनकर आत्म कल्याण में जुटगए। पिंगल निर्ग्रंथ का वाद, श्रीस्कन्दकजी के लिए उद्धारक बनगया। कषाय भावना से रहित वाद, हितकारक होता है और कषाय भावना से प्रेरित वाद, अहितकर होता है, वितण्डावाद होता है वहां। ऐसे वाद में सत्य की परवाह नहीं होती। पक्ष का भूत ही उसके सिर पर सवार रहता है। आर्य स्कन्दकजी का यह चरित्र वितंडावाद से बचाने की प्रेरणा देता है।

तुंगिका के श्रावक

श. २ उ. ५ में तुंगिका नगरी के श्रमणोपासकों का वर्णन हम उपासकों के लिए मनन करने और शिक्षा लेने योग्य है। उनकी भौतिक ऋद्धि की ओर नहीं ललचा कर उनकी धर्मश्रद्धा, धार्मिक दृढ़ता और निर्ग्रंथ प्रवचन में अनुरागता की ओर ध्यान देना चाहिए। उनकी आत्मा में धर्म प्रेम इतना समागया था कि कोई देव दानव भी उन्हें विचलित नही कर सकता था। वे आनन्द कामदेव और अरहन्नक जैसे सुश्रावक थे। उन्होंने संयम और तप के फल के विषय मे प्रश्न किये। प्रश्न महत्वपूर्ण थे। उनके उत्तर भी महत्वपूर्ण और समझने योग्य हैं। संयम का फल अनास्रव-सवर और तप का फल निर्जरा है। संयम और तप, बन्धन कारक नही होते। सयम से बन्ध की रोक होती है और तप बन्धन काटता है। किंतु संयम पालते हुए और तप करते हुए देवायु का बन्ध क्यों होता है? यह प्रश्न तत्त्व

के रहस्य को स्पष्ट करता है। उत्तर में विविधता होते हुए भी बाधकता नही है। पूर्वतप आदि चार उत्तर, संक्षेप में सरागता और सकर्मिता में गर्भित होजाते हैं और विशेष संक्षेप करने पर सरागता, सकर्मिता में तथा सकर्मिता, सरागता में मिलकर एक ही उत्तर बन जाता है। प्रत्येक उत्तर अपने मे अन्य तीन उत्तरों को भी गौणरूप से लिये हुए है। इन्हीं के कारण आयु का बन्ध, गति और जन्म आदि होते हैं।

भगवती सूत्र, ज्ञान का विशाल भंडार है। इसका स्वाध्याय भी गंभीरता से करना चाहिये। समझ में नहीं आवे, उस बात को अनुभवी महात्माओं से समझनी चाहिए और कुतर्क से सदैव बचकर रहना चाहिए।

इस संस्करण के सम्पादन मे पं. बेचरदासजी दोशी द्वारा सम्पादित श्रीभगवतीसूत्र प्रथमखंड तथा आगमोदय समिति वाली प्रति का सहारा लिया गया है। प्रूफ संशोधन में पहले की तरह इस बार भी विशेष त्रुटियाँ रही, जिसका शुद्धिपत्र दिया जारहा है।

श्रीयुत पं. घेवरचंदजी बाँठियां ने, उदारमना श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी मालू के सहयोग से भगवतीसूत्र का सम्पादन किया और बहुश्रुत मुनिश्रेष्ठ श्रीसमर्थमलजी महाराज को सुनाकर संशोधन करवाया। इसके लिये समाज आपका व श्रीमान् सेठ किसनलालजी पृथ्वीराजजी मालू खीचन निवासी का आभारी रहेगा।

—रतनलाल डोशी, सैलाना



शुद्धिपत्र



प्रूफ शुद्धि में ध्यान रखते हुए भी अशुद्धियां रह गई है। कई अशुद्धियां तो कर्मचारियो की असावधानी से सुधारते समय कही का कहीं टाइप लगा देने से और कुछ निकले हुए टाइप को अनुपयोग से लगा देने के कारण हुई है और कई मेरे दृष्टि-दोष से। इसलिए शुद्धिपत्र दिया जा रहा है। इसमें मूलपाठ, शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन, यों चार भाग क्रमशः किये गये है। पंक्तियों की गणना विभागानुसार पृथक् पृथक् की गई है। जैसे–पृ. ४४ में 'उव्वटति' शब्द अनुक्रम से १६ वी पंक्ति का है, किंतु इस गणना में मूलपाठ जहां से प्रारंभ हुआ वही से गणना प्रारंभ की गई, जिससे १० वीं पंक्ति हुई। इसी प्रकार सभी में समझना चाहिए।

मूल पाठ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	१०	उव्वट्टति	उव्वट्टंति
५८	१७	मिज्जयत्ताए	मिज्जियत्ताए
५९	१	असुरकुमाराभिलावे	असुरकुमाराभिलावेण
६३	३ व ७	णागकुमाराणं	णागकुमारा णं
६७	१३	फासाइंति	फासाइंति जाव
७३	१०	पक्खेवाहारे।	पक्खेवाहारे य।
७३	१५	अफासाइज्जमाणाणं	अफासाइज्जमाणाणं य
८८	४	एवं जाव असुरकुमारा वि	०
९९	४	दीहमद्धगं	दीहमद्धं
१०३	२	गोयमा।	गोयमा !
१२७	३	परिववण्णेयव्वाओ	परिवण्णेयव्वाओ
१३४	१	तहा–	तहा जाव–
१३५	२	तिरिक्खि	तिरिक्ख
१४६	२	णेइय	णेरइय

१५३	१३	तेरिच्छियाणंस हस्सारे	तेरिच्छियाणं सहस्सारे
१५९	७	क्ख-देवाउयं	क्ख-मणु-देवाउयं
१६३	६	दंडो	दंडओ
१६४	२	रेसु	रेंसु
१६६	२	गोयमा	गोयमा !
१६०	८	वितिकिच्छिया	वितिगिच्छिया
१६०	११	पवेदंति	पवेइयं
२०५	६	अवीरिए-	अवीरिय-
२१०	२	मणूस्स	मणुसस्स
२११	७	उवक्कामियाए	उवक्कमियाए
२१६	३	अतं	अंतं
२१६	७	भंते	भंते !
२२४	३	थमिमय-ग्गीणं	थणियमग्गीणं
२२६	३	विमाणावासा	विमाणावाससयसहस्सा
२२६	८	चत्तालीस	चत्तालीसा
२२६	६	तिण्णी	तिण्णि
२२८	६	समयाहिया, जहण्णिया	समयाहिया जहण्णिया
२३७	२	निरायावासंसि	निरयावासंसि
२४२	११	नियाम	नियमा
२४३	४	सागरोवउत्ता	सागारोवउत्ता
२७७	२	मतार मपोरसियंसि	मतारमपोरसियंसि
३११	५	उववजइ	उववज्जइ
३१२	१७	उवज्जइ	उववज्जइ
३१६	१०	वच्चइ	वुच्चइ
३२०	८	विद्धसण	विद्धंसण
३२७	७	अवीरिया	अवीरिया वि
३३८	१	गयरुलहुया	गरुयलहुया
३४२	६	परभवियाउया	परभवियाउयं
३४६	२	णमंसित्ता	वंदित्ता णमंसित्ता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४६	११	पत्तियाही	पत्तियाहि
३६२	१०	बि	वि
३७२	५	करियाओ	किरियाओ
३७७	३	चरमचंचा	चमरचंचा
३८२	७	उद्दाइति	उद्दाइ
३८२	७	उद्दाइति	उद्दाइ
३९५	३	वितिगच्छिए	वितिगिच्छिए
३९६	११	कुडियं	कुंडियं
३९६	१४	गण्हित्ता	गेण्हित्ता
३९९	४	गात्ते	गोत्ते
४०३	८	उवसोभेभाणं	उवसोभेमाणं
४११	८	दीहमद्धे	दीहमद्धं
४१६	६	तेणेवे	तेणेव
४३२	८	पच्चमं	पंचमं
४३९	५	एयारूवेणं	एयारूवेणं ओरालेणं
४४०	३	कोमलुम्मिसिय	कोमलुम्मिलिय
४४०	१३	संपहेइ	संपेहेइ
४४३	३	जणेव	जेणेव
४४६	९	महावीरे	महावीरे तेणेव
४४८	४	महावीरं	महावीरे
४६०	५	पुरसिवेयं	पुरिसवेयं
४७०	१२	कबंल	कंबल

— शब्दार्थ —

६	४	णायं	णामं
३५	१७	आत्प्र-मदेशों	आत्म-प्रदेशों
४०	५	अनाहरित	अनाहारित



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६	१६	पाणत्ते	पण्णत्ते
६०	२	आणंत	अणंत
७४	४	जीव	जीवो
८२	६	अहारो	आहारो
८५	१४	पमत्तासंजया	पमत्तसंजया
८५	२०	अत्मारम्भी	आत्मारंभी
६६	८	गांढ	गाढ
१४७	१	अदिष्ट	आदिष्ट
१८३	३	श्पचात्	पश्चात्
२०८	१	उवक्कमेज्जा	अवक्कमेज्जा
२११	१	अवेईअत्ता	अवेइत्ता
२५६	३	अत्थभंते	अत्थमंते
२६६	१	माउओदं	माउओयं
३०५	५	तीव	तीव्र
३०६	४	विनिधात	विनिघात
४०३	२	ओराण	ओरालं
४११	३	तद्भूवमरणे	तब्भवमरणे
४१८	५	वित्त	पित्त

—भावार्थ—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	१	निर्जीण	निर्जीर्ण
८२	६	मुहूत्त	मुहूर्त्त
८६	१३	परारम्भी	परारंभी
१३८	३	वाले	०
१३६	३	मयाप्रत्यया	मायाप्रत्यया
१४३	८	अप्रत्त	अप्रमत्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७४	२२।२३	अन्नगमनीय	अन्नगम्रनीय
२१५	३	रहित शाश्वत पुद्‍गल परिमाण	पुद्‍गल अनन्त (परिमाण रहित और शाश्वत
२१८	१२	होते–हैं	होते हैं–
२१९	१	हों‌ते	होते
२२६	६	कितने विमानावास	कितने लाख विमानावास
२२७	२	विमनावास	विमानावास
२२७	४	ग्याह	ग्यारह
२३०	२४	मनोपयुक्त	मानोपयुक्त
२३९	१३	बसने	बसनेवाले
२४०	११	हाँ गौतम !	हे गौतम !
२४४	१८	भगनन् !	भगवन् !
२६७	१२	ऍकेन्द्रियों	एकेन्द्रियों
२८८	१०	जीव वे	जीव के
३१९	३	पुष	पुरुष
३३९	३	कर्मण	कार्मण
३५५	१०	अहारादि	आहारादि
३८७	७	३१३	१३
३९१	४	कृतगंला	कृतंगला
४०२	२	धर्माचार्य	मेरे धर्माचार्य
४०४	२	अन्यन्त	अत्यन्त
४७२	२	आयुष्यष्यमन्	आयुष्यमन्
४९०	१२	अनपयोग	अनुपयोग

—विवेचन—

१६	१०	नारच	नाराच
१६	२९	प्रभद	प्रभेद



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१४	दृढतमा	दृढतमा
२५	१७	प्रथक्	पृथक्
२७	१	निर्जीर्यमाण	निर्जीर्यमाण
२७	१ व ४	निर्जीर्ण	निर्जीर्ण
३६	११	वायुकया	वायुकाया
४३	२७	ऐसा	एसा
१०८	५	दुध	दूध
१२६	३	अप्रत्त्याख्यानिकी	अप्रत्याख्यानिकी
१२९	८	बराबार का	बारबार
१२९	१९	स्वासोच्छ्वास	श्वासोच्छ्वास
१३१	१०	यायत्	यावत्
१५०	२८	तकते	सकते
१५२	१४	नरयिक	नैरयिक
१५५	२७	सर्वाथसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
१५६	१	के उपघात का हो	का उपघात हो
१५६	२२	कान्दर्पित	कान्दर्पिक
१५८	५	होते भी	होते हुए भी
१५८	११	वही	नहीं
१६७	१०	जीस	जिस
१७१	१२	यह के है	यह है
१७१	१८	सपन्नता	समापन्नता
१९९	९	विषेश	विशेष
१९९	१६	होते है	होता है
१९९	२०	करना ।	करना
२०७	५	उतते	उतने
२१४	५	देखा ने है	ने देखा है
२२०	६	गृणस्थान	गुणस्थान
२२०	२३	वे होते हैं, ही	होते हैं वे ही

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२१	१३	दतर्शनधर	दर्शनधर
२२७	४	असंख्य	असंख्य लाख
२३६	८	नारकों	नरकों
२३६	१४	बाराबर	बराबर
२३७	१	अवगाहगा	अवगाहना
२४६	१२	निग्रहगति	विग्रहगति
२६३	८	'आलोक'	'अलोक'
२६८	१३	अदत्तान	अदत्तादान
२८०	८	अधेय	आधेय
२९५	२	भगवन्	भगवान्
२९५	१३ । १६	सिधी	सीधी
३६९	१०	उच्चरण	उच्चारण.
३७६	१४	यक	तक
३८१	२१	स्वभाविक	स्वाभाविक
३९४	१	परिव्राज	परिव्राजक
४०५	१	पतेत	पपेत
४३५	६	तयस्या	तपस्या
४३६	१०	से कम से	से कम
४९४	१६	सवण	सवणे
५००	४	छोड़े हैं	छोड़े जाते हैं
५१०	२१	मुझ	मुझे



विषयानुक्रमणिका–

शतक–१

विषय	पृष्ठ

उद्देशक ५

उद्देशक ६

उद्देशक ७

उद्देशक ८

उद्देशक ६

उद्देशक १०

शतक २



नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

गणधर भगवान् सुधर्मस्वामि प्रणीत

श्री भगवती सूत्र

मंगलाचरण

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। णमो बंभीए लिवीए। णमो सुयस्स।

शब्दार्थ-णमो अरहंताणं-अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो, णमो सिद्धाणं-सिद्ध भगवान् को नमस्कार हो, णमो आयरियाणं-आचार्य महाराज को नमस्कार हो, णमो उवज्झायाणं-उपाध्यायजी महाराज को नमस्कार हो, णमो लोए सव्वसाहूणं-लोक में सब साधुजी महाराज को नमस्कार हो, णमो बंभीए लिवीए-ब्राह्मी लिपि को नमस्कार हो, णमो सुयस्स-श्रुत को नमस्कार हो।

भावार्थ-अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो, सिद्ध भगवान् को नमस्कार हो, आचार्यजी महाराज को नमस्कार हो, उपाध्यायजी महाराज को नमस्कार हो, लोक में सब साधुजी महाराज को नमस्कार हो। ब्राह्मी लिपि को नमस्कार हो। श्रुत को नमस्कार हो।

विवेचन–जो इन्द्रों द्वारा रचित अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्य रूप पूजा, वन्दन, नमस्कार एवं सत्कार के योग्य हैं और जो सिद्धिगमन के योग्य हैं, उनको अर्हंत् कहते हैं।

✓ 'अरहन्त' शब्द का रूपान्तर और पाठान्तर ये शब्द हैं–अरहोऽन्त, अरथान्त, अरहन्त, अरिहन्त, अरूहन्त।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने के कारण जिनसे कोई भेद छिपा हुआ नही है, जिनके ज्ञान के लिए पर्वत गुफा आदि कोई भी बाधक–रुकावट करने वाले नहीं हैं, उन्हे 'अरहोऽन्त' कहते हैं।

जिनके किसी भी प्रकार का परिग्रह रूप रथ नही है तथा वृद्धावस्थादि अन्त नही है, उन्हें 'अरथान्त' कहते हैं।

वीतराग हो जाने के कारण जिनकी किसी भी पदार्थ में किञ्चिन्मात्र भी आसक्ति नहीं है, उनको 'अरहन्त' कहते है।

कर्म रूपी अरि–शत्रुओं का हनन–विनाश करने वालों को 'अरिहन्त +' कहते है।

कर्म रूपी बीज के क्षीण हो जाने से जिनकी फिर उत्पत्ति अर्थात् जन्म नही होता, उनको 'अरूहन्त ×' कहते हैं। इनको मेरा नमस्कार हो।

सिद्धा[1]–परम विशुद्ध शुक्लध्यान रूपी अग्नि से जिन्होंने समस्त कर्मो को भस्मीभूत कर दिया है, जो पुनरागमन रहित ऐसी निर्वृत्तिपुरी (मुक्ति) में पहुंच गये हैं, जिनके समस्त कार्य सम्पन्न हो जाने से जो कृतकृत्य हो चुके हैं, जो मंगल रूप हैं, अविनाशी हैं, ऐसे सिद्ध भगवान् को नमस्कार हो।

+ अट्ठविहं पि य कम्मं, अरिभूयं होइ सयलजीवाणं।
तं कम्ममरिं हन्ता, अरिहंता तेण वुच्चंति॥

अर्थ–आठ प्रकार के कर्म सभी जीवों के लिए शत्रु रूप हैं। उन कर्मशत्रुओं का जो विनाश करते हैं। उनको 'अरिहन्त' कहते हैं।

× दग्धे बीजे यथात्यन्तं, प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुरः॥

अर्थ–जिस प्रकार बीज के सर्वथा जल जाने पर अंकुर पैदा नही होता है, उसी प्रकार कर्म रूपी बीज के जल जाने पर भव रूपी अंकुर पैदा नही होता है, अर्थात् जन्मान्तर नही होता है।

[1] ध्मातं सितं येन पुराण कर्म, यो वा गतो निर्वृत्तिसौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमंगलो मे॥

आचार्य×—सूत्र और अर्थ के ज्ञाता, गच्छ के नायक, गच्छ के लिए आधारभूत, उत्तम लक्षणों वाले, गण के ताप से विमुक्त अर्थात् गण की सारण वारण और धारण-रूप व्यवस्था की चिन्ता से न घबराने वाले, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तप आचार और वीर्याचार, इन पांच प्रकार के आचार का दृढता से पालन करने वाले और पालन कराने वाले आचार्य होते हैं। ऐसे आचार्य महाराज को नमस्कार हो।

उपाध्याय †—जिनके समीप रह कर जैनागमों का अध्ययन किया जाय, जिनकी सहायता से जैनागमों का स्मरण किया जाय, जिनकी सेवा मे रहने से श्रुतज्ञान का लाभ हो, सद्गुरु परम्परा से प्राप्त जिन वचनों का अध्ययन करवा कर जो भव्य जीवों को विनय में प्रवृत्ति कराते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं। ऐसे उपाध्यायजी महाराज को नमस्कार हो।

साधु ‡—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के द्वारा मोक्ष को साधने वाले तथा सब प्राणियों में समभाव रखने वाले साधु कहलाते है। उन सब साधुजी महाराज को नमस्कार हो।

यहाँ 'सर्व' शब्द से सामायिक आदि पांच चारित्रों में से किसी भी चारित्र का पालन करने वाले, भरतादि किसी भी क्षेत्र में विदयमान, तिर्च्छा लोकादि किसी भी लोक में विदयमान और स्त्रीलिंगादि तथा स्वलिंगादि किसी भी लिंग में विदयमान, भाव चारित्र सम्पन्न, छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी साधु साध्वियों का ग्रहण किया गया है, जो जिनाज्ञा अनुसार ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करने वाले हैं।

'णमो लोए सव्वसाहूणं'—मे जो 'सव्व-सर्व' शब्द ग्रहण किया गया है वह पहले के चार पदों के साथ अर्थात् अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय, इन चारों पदो के साथ भी लगा लेना चाहिए।

× सुतत्थविऊ लक्खणजुत्तो, गच्छस्स मेढिभूओ य।
गणतत्तिविप्पमुक्को, अत्थं वाएइ आयरिओ॥
पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पभासंता।
आयारं दंसंता, आयरिया तेण वुच्चंति॥

† बारसंगो जिणक्खाओ, सज्झाओ कहिओ बुहे।
तं उवइसंति जम्हा, उवज्झाया तेण वुच्चंति॥

‡ निव्वाणसाहए जोए, जम्हा साहेंति साहुणो।
समा य सव्वभूएसु, तम्हा ते भाव साहुणो॥

उपरोक्त पांच पदों को 'पंच परमेष्ठी' कहते हैं। ●

शंका–'यथाप्राधान्य' न्याय के अनुसार सब से पहले 'सिद्ध भगवान्' को नमस्कार करना चाहिए। इसके बाद क्रमशः अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधुजी को नमस्कार करना चाहिए। क्योंकि सिद्ध भगवान् के आठों कर्म क्षय हो चुके है। अतएव वे कृतकृत्य है। अरिहन्त भगवान् के अभी चार अघाती कर्म शेष हैं। फिर उन्हें पहले नमस्कार कैसे किया गया ?

समाधान–यद्यपि अरिहन्त भगवान् की अपेक्षा सिद्ध भगवान् प्रधान है, तथापि अरिहन्त भगवान् के उपदेश से सिद्ध भगवान् की पहचान होती है, तथा तीर्थङ्कर भगवान् तीर्थ (साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका रूप चार तीर्थ) के प्रवर्तक होने से अत्यन्त उपकारी हैं। इसलिए सिद्ध भगवान् से पहले अरिहन्त भगवान् को नमस्कार किया गया है।

शंका–यदि आसन्न उपकारी को प्रथम नमस्कार किया जाना चाहिए, तब तो सर्व प्रथम आचार्य को नमस्कार करना चाहिए, क्योंकि किसी समय अरिहन्तों की पहचान भी आचार्य द्वारा कराई जाती है। इसलिए आचार्य अत्यन्त आसन्न उपकारी हैं।

समाधान–अरिहन्त भगवान् के द्वारा उपदिष्ट आगमों द्वारा ही आचार्य उपदेश देते है। स्वतन्त्र उपदेश द्वारा अर्थ ज्ञापन की शक्ति आचार्य में नहीं है। अतः वास्तविक रूप से अरिहन्त भगवान् ही अर्थों के ज्ञापक हैं। आचार्य तो अरिहन्त भगवान् की सभा के सभासद (सभ्य) हैं। इसलिए सर्व प्रथम अरिहन्त भगवान् को ही नमस्कार करना उचित है।

ब्राह्मी लिपि–भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) द्वारा अपनी पुत्री ब्राह्मी को दिया हुआ लिपि का बोध–'ब्राह्मी लिपि' कहलाता है। ब्राह्मी लिपि को नमस्कार करने का अर्थ है–इस लिपि का बोध देने वाले भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार करना। इस लिपि के द्वारा श्रुत को लिपिबद्ध करके चिरकाल तक स्थायी रखा जा सकता है। विस्मृति से बचाया जा सकता है और स्वपर हित साधा जा सकता है।

श्रुत को नमस्कार–श्रुत शब्द का अर्थ यहाँ द्वादशांगी रूप अर्हत् प्रवचन है। क्योंकि यह श्रुतज्ञान ही ऐसा है जो व्यवहार में आता है। दिया लिया जाता है और लिपिबद्ध †

● टिप्पण–कुछ लोग 'अरिहन्त' आदि पदो का विपरीत अर्थ करते हैं, अर्थात् सावद्य प्रवृत्ति करने वालो का समावेश इन पदो मे करते हैं, परन्तु वह अर्थ जैनागमो के अनुकूल नही है। अतः जो अर्थ ऊपर विवेचन मे दिया गया है वही ठीक है।

† ऐसा प्रतीत होता है कि वीर संवत् ६८० में जब देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण द्वारा सूत्र लिपिबद्ध

किया जाता है। जिनधर्म अनादि काल से चला आ रहा है। उसमें श्रुतज्ञान का योग ही विशेष रूप से उपकारी रहा है। इसीलिए यहाँ पञ्च परमेष्ठी के साथ साथ जिनवाणी रूप श्रुतज्ञान को अर्थात् श्रुतज्ञान के धारक मुनियों को भी नमस्कार किया गया है। श्रुतज्ञान की आराधना की परम्परा निर्बाध रूप से चलती रहे, यह भावना इसके मूल में रही हुई है।

प्रथम शतक–उद्देशक परिचय

रायगिह चलण दुक्खे, कंखपओसे य पगइ पुढवीओ।
जावंते णेरइए, बाले गुरुए य चलणाओ ॥

शब्दार्थ–रायगिह चलण–राजगृह नगर में चलन, दुक्खे–दुःख। कंखपओसे–कांक्षा-प्रदोष। पगइ–प्रकृति। पुढवीओ–पृथ्वियाँ। जावंते–यावन्तः–जितने। णेरइए–नैरयिक। बाले–बाल। गुरुए–गुरुक। य–और चलणाओ–चलनादि।

भावार्थ–इस संग्रह गाथा में प्रथम शतक में आये हुए विषयों की सूची दी गई है। प्रथम शतक में दस उद्देशक हैं। प्रत्येक उद्देशक का प्रारम्भ उपरोक्त गाथा में कहे हुए शब्दों से हुआ है। अर्थात् प्रथम उद्देशक का प्रारम्भ 'चलमाणे चलिए' से हुआ है। दूसरे उद्देशक में 'दुःख' विषयक प्रश्न है। इसी प्रकार आगे के उद्देशकों मे क्रमशः कांक्षामोहनीयादि विषयक पृच्छा की गई है।

किये गये उस समय यह आदिमंगल रूप मंगलाचरण जुड़ गया हो। अतः उसका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार भावलिपि ही होना चाहिए, क्योंकि गणधर भगवान् स्वयं श्रुतकेवली थे। अतः उन्हे श्रुत को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता थी ? दूसरी बात यह है कि श्रुत प्रवर्तन मे उन्होंने लिपि का सहारा लिया ही नही था, फिर उन्हे लिपि और लिपिदाता को नमस्कार करने की आवश्यकता ही क्या थी ?

कितनीक प्रतियो मे 'णमो सुयस्स' यह पद नही है। संग्रह गाथा को देखते हुए भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि भगवती सूत्र का प्रारम्भ 'राजगृह नगर' इस पद से हुआ है, जैसा कि संग्रह गाथा में कहा गया है-'रायगिहे चलण दुक्खे' इत्यादि। तथा आगे कहा है–'तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था' इत्यादि।

प्रथम उद्देशक

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था, वण्णओ। तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए णामं चेइए होत्था। सेणिए राया, चिल्लणा देवी ॥४॥

शब्दार्थ--तेणं कालेणं--उस काल तेणं समएण--उस समय मे रायगिहे णामं--राजगृह नाम का णयरे--नगर होत्था--था। वण्णओ--उसका वर्णन कर देना चाहिए। तस्स णं †--उस रायगिहस्स णयरस्स--राजगृह नगर के बहिया--बाहर उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए--उत्तर पूर्व के दिशा भाग मे अर्थात् ईशान कोण मे गुणसिलए--गुणशिलक णायं--नाम का चेइए--चैत्य--व्यन्तरायतन होत्था--था। सेणिए राया--श्रेणिक राजा था। चिल्लणा देवी--चेलना नाम की रानी थी।

भावार्थ--उस काल अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में, उस समय अर्थात् जिस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते थे उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था। वह नगर + धन धान्यादि समृद्धि से समृद्ध था। उसके ईशान कोण में 'गुणशिलक' नामक चैत्य था अर्थात् व्यन्तर जाति के देव का स्थान था।

शंका--राजगृह नगर तो अभी भी विदयमान है, फिर उसके लिए 'था' ऐसा भूतकालिक प्रयोग क्यो किया ?

✓ समाधान--राजगृह नगर का वर्णन करने वाले ग्रन्थ में जिस विभूति एव समृद्धि का वर्णन किया गया है, उन विभूतियों एवं समृद्धियों से युक्त तो वह उसी समय था, परतु

† 'णं' यह अव्यय है, वाक्यालङ्कार मे आता है। 'ण' का स्वतन्त्र अर्थ कुछ नही है, केवल वाक्य की शोभा बढाने के लिए प्रयुक्त होता है।

+ उववाई सूत्र मे चम्पा नगरी का जैसा वर्णन किया गया है वैसा ही वर्णन 'राजगृह' नगर का जानना चाहिए।

जिस समय में सुधर्मा स्वामी वाचना दे रहे थे उस समय में वह वैसा नही था। यह अव-सर्पिणी काल होने के कारण नगर के कितनेक उत्तम पदार्थों की हानि हो जाने से, राजगृह नगर जैसा भगवान् महावीर स्वामी के समय में था, वैसा उस समय नही था। इस अपेक्षा से 'राजगृह नगर था'-ऐसा भूतकालिक प्रयोग किया गया है।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे सहसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुंडरीए पुरिसवर-गंधहत्थी लोगुत्तमे लोगणाहे लोगहिए लोगपईवे लोगपज्जोयगरे अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए बोहिदए धम्मदए धम्मदेसए धम्मणायगे धम्मसारही धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी अप्पडिहयवरणाण-दंसणधरे वियट्टछउमे जिणे जाणए बुद्धे बोहए मुत्ते मोयए सव्वण्णू सव्वदरिसी सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमप्पुणरावित्तियं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामे जाव समोसरणं ॥५॥ परिसा णिग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया ॥६॥

शब्दार्थ-तेण कालेणं-उस काल तेणं समएणं-उस समय समणे-श्रमण भगवं-भग-वान् महावीरे-महावीर आइगरे-आदिकर-श्रुत की आदि करने वाले, तित्थयरे-तीर्थङ्कर -प्रवचन तथा चतुर्विध संघ रूप तीर्थ को करने वाले, सहसंबुद्धे-सहसंबुद्ध-स्वयं तत्त्वों के ज्ञाता, पुरिसुत्तमे-पुरुषो मे उत्तम पुरिससीहे-पुरुषसिंह-पुरुषो मे सिंह के समान, पुरिस-वरपुंडरीए-पुरुषवर पुण्डरीक-पुरुषो मे उत्तम कमल समान, पुरिसवरगंधहत्थी-पुरुषवर-गन्धहस्ती-पुरुषों में उत्तम गन्धहस्ती के समान, लोगुत्तमे-लोकोत्तम, लोगणाहे-लोकनाथ, लोगहिए-लोकहितकर, लोगपईवे-लोक प्रदीप-लोक में दीपक के समान, लोगपज्जोयगरे -लोकप्रद्योतकर-लोक मे प्रद्योत करने वाले अभयदए-अभयदाता, चक्खुदए-चक्षुदाता -ज्ञान रूप नेत्रो के देने वाले, मग्गदए-मार्गदाता-मोक्ष रूप मार्ग के देने वाले, सरणदए -शरणदाता-बाधारहितस्थान अर्थात् निर्वाण के देने वाले, बोहिदए-बोधिदाता-समकित

के देने वाले, धम्मदए-धर्मदाता, धम्मदेसए-धर्मदेशक-धर्मोपदेश के देने वाले, धम्म नायगे -धर्मनायक, धम्मसारही-धर्म सारथि-धर्म रूप रथ के सारथि, धम्मवर चाउरंतचक्कवट्टी -धर्मवर चातुरन्तचक्रवर्ती-धर्म के विषय में उत्तम चातुरन्त चक्रवर्ती के समान, अप्पडिहय-वरणाण-दंसणधरे-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधर-अप्रतिहत उत्तम ज्ञान और दर्शन के धारण करने वाले, वियट्टछउमे-छद्मस्थपने से निवृत्त जिणे-जिन-रागद्वेष के जीतने वाले, जाणए -ज्ञायक-सकल तत्त्वों के जानने वाले, बुद्धे-बुद्ध, बोहए-बोधक-तत्त्वो का बोध कराने वाले, मुत्ते-मुक्त-बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थि से मुक्त, मोयए-मोचक-ग्रन्थि से मुक्त कराने वाले, सव्वण्णू-सर्वज्ञ, सव्वदरिसी-सर्वदर्शी, इन गुणो से युक्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, सिवं-शिव अयलं-अचल अरुअं-अरुज-रोग रहित, अणंतं-अनन्त अक्खयं-अक्षय अव्वाबाहं -अव्याबाध-बाधा-पीड़ा रहित, अप्पुणरावित्तियं-पुनरावृत्ति रहित सिद्धिगइनामधेयं -सिद्धिगति नामक ठाणं-स्थान को संपाविउकामे-प्राप्त करने की इच्छा वाले, विचरते थे। जाव समोसरणं-यावत् समवसरण तक का वर्णन जान लेना चाहिए। परिसा-परिषद् णिग्गया-वन्दन और धर्मश्रवण के लिए निकली। धम्मो कहिओ-भगवान् ने धर्म कहा। परिसा पडिगया-परिषद् वापिस चली गई।

भावार्थ-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। वे भगवान् कैसे थे? इसके लिए कहा है-वे आदिकर, तीर्थङ्कर, स्वयं संबुद्ध, पुरुषोत्तम पुरुषसिंह, पुरुषवर पुण्डरीक, पुरुषवर गन्धहस्ती, लोकोत्तम, लोक नाथ, लोकहितकर, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, धर्मोपदेशक, धर्मनायक, धर्मसारथि धर्मवर-चातुरन्त-चक्रवर्ती, अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारक, छद्मस्थता से निवृत्त, जिन, ज्ञायक, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी थे। वे शिव, अचल, रोग रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, पुनरागमन रहित, सिद्धि गति को प्राप्त करने की इच्छा वाले थे। वे राजगृह नगर के गुणशिलक उद्यान में पधारे। नगर निवासी जनसमुदाय भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिए और धर्मश्रवण के लिए निकला। भगवान् ने धर्म कथा कही। धर्मश्रवण कर वह जनसमुदाय वापिस चला गया।

विवेचन-भगवान् महावीर स्वामी के लिए जो विशेषण दिये गये है उनमें सर्व प्रथम 'श्रमण' विशेषण दिया गया है। 'श्रमु तपसि खेदे च' इस तप और खेद अर्थ वाली

'श्रमु' धातु से 'श्रमण' शब्द बना है 'श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः' जिसका अर्थ यह होता है कि-जो तपस्या करे और जगज्जीवो के खेद को जाने वह 'श्रमण' कहलाता है। किन्तु सावद्य प्रवृत्ति करने वाला और सावद्य प्रवृत्ति का उपदेश देने वाला 'श्रमण' नहीं है।

अथवा-'समणे' शब्द की संस्कृत छाया 'समनः' भी होती है। जिसका अर्थ यह है कि-जिसका मन शुभ हो, जो समस्त प्राणियों पर समभाव रखे उसे 'समन' कहते है। जो ऐश्वर्यादि युक्त हो अर्थात् पूज्य हो उसे भगवान् कहते हैं।

राग द्वेषादि आन्तरिक शत्रु दुर्जेय हैं। उनका निराकरण करने से जो महान् वीर-पराक्रमी है, वह महावीर कहलाता है। भगवान् का यह गुणनिष्पन्न * नाम देवों द्वारा दिया गया था। आचारादि श्रुतधर्म के प्रणेता होने के कारण भगवान् 'आदिकर' हैं, जिसके द्वारा संसार समुद्र तिरा जाय उसे 'तीर्थ' कहते है, ऐसे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, इस चतुर्विध संघ रूप भाव तीर्थ के कर्त्ता होने से वे 'तीर्थङ्कर' हैं। किसी के उपदेश के बिना ही वे स्वयमेव हेय ज्ञेय उपादेय रूप बोध को प्राप्त होते है, अतः वे सहसंबुद्ध या स्वयंसंबुद्ध होते हैं। समस्त पुरुषों में वे रूपादि अतिशयों से सर्वोत्तम होते हैं, इसलिए वे पुरुषोत्तम हैं। जिस प्रकार लोक मे सिंह उत्कृष्ट शौर्य सम्पन्न माना जाता है, उसी प्रकार-शूरवीरता की अपेक्षा भगवान् पुरुषो में सिंह के समान हैं। जैसे कमलो में सफेद, हजार पांखुड़ी वाला पुण्डरीक कमल प्रधान होता है, वैसे ही भगवान् पुरुषों में पुण्डरीक कमल समान प्रधान होते हैं। भगवान् पूर्णरूप से मल रहित तथा समस्त शुभ भावों से युक्त होने के कारण कमल की तरह श्वेत है. अतएव वे पुरुषवर पुण्डरीक हैं। जैसे गन्धहस्ती की गन्ध से सब हाथी दूर भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिस जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विहार करते है, वहाँ वहाँ ईति (धान्य आदि को हानि पहुँचाने वाले चूहों आदि जीवों की अधिकता), परचक्र (दूसरे राजा का भय), दुर्भिक्ष (दुष्काल), डमर (लूट पाट) आदि उपद्रव और मिरगी आदि रोग शान्त हो जाते है, अतएव भगवान् 'पुरुषवर गन्ध हस्ती' हैं। इस प्रकार 'पुरुषसिंह, पुरुषवर पुण्डरीक और पुरुषवर गन्धहस्ती, इन तीन उपमाओं से भगवान् पुरुषों में उत्तम (पुरुषोत्तम) है। भगवान् लोकनाथ हैं अर्थात् संज्ञी भव्य जीव रूप लोक के नाथ †

---

* जैसा कि कल्पसूत्र में कहा गया है-"अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं, खंतिखमे, पडिमाणं पालए धीइम अरइरइसहे, दविए, वीरियसपण्णे देवेहिं से णाम कए समणे भगव महावीरे"।

† 'योग क्षेमकृन्नाथ., अप्राप्तस्य प्राप्तिर्योगः, प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः।" जो योगक्षेम करता है, उसे 'नाथ' कहते हैं। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति होना योग कहलाता है और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना क्षेम

है। भगवान् लोक प्रदीप है। अर्थात् तिर्यञ्च, नर और अमर रूप विशिष्ट लोक के आन्तरिक अन्धकार को दूर कर प्रकृष्ट प्रकाश के करने वाले होने से वे प्रदीप के समान हैं। भगवान् 'लोक प्रद्योतकर' है अर्थात् जैसे सूर्य समस्त पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार भगवान् सकल वस्तु समूह रूप लोकालोक को केवलज्ञान रूप प्रकाश से प्रकाशित करने वाले हैं, अतएव वे 'लोकप्रद्योतकर' हैं। भगवान् 'अभयदय' हैं, अर्थात् जो जीव भगवान् को परीषह उपसर्ग देकर उनके प्राणो का विनाश करने में उद्यत होते हैं ऐसे जीवों को भी भगवान् अपनी तरफ से कुछ भी भय नही देते है, बल्कि उन्हें अभयदान देते है, अतः भगवान् अभयदय (अभय दाता) है। अथवा अनुकम्पा को 'अभया' कहते है। ससार के समस्त प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले होने से भगवान् 'अभयदय' हैं। भगवान् 'चक्षुदंय' है अर्थात् शुभाशुभ पदार्थो के विभाग को दिखलाने वाला श्रुतज्ञान ही वास्तविक चक्षु ‡ है। ऐसे श्रुतज्ञान रूपी चक्षु के देने वाले होने से भगवान् चक्षुदंय (चक्षुदाता) हैं। भगवान् 'मार्गदय' है। जैसे जंगल में जाते हुए मनुष्यों का धन चोर लूट ले और उनकी आंखों पर पट्टी बांध दे, जिससे मार्ग न दिखने से वे महादुखी होते है। उनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर कोई दयालु पुरुष उनकी आंखों पर की पट्टी खोल कर उन्हें इष्ट मार्ग बता दे, तो वह जिस प्रकार लोक में उपकारी गिना जाता है, उसी प्रकार रागादि शत्रुओ द्वारा जिनका धर्म रूपी धन लूटा गया है और कुवासनाओ से जिनके नेत्र ढके गये है, ऐसे जीवों के नेत्रों पर से कुवासना रूपी पट्टी को हटा कर एवं श्रुतज्ञान रूपी चक्षु देकर निर्वाण रूप इष्ट मार्ग को बताने वाले भगवान् हैं, अतएव मोक्षमार्गदाता होने के कारण वे महान् उपकारी है। भगवान् 'शरणदय' है अर्थात् नाना प्रकार के दु.खों से सन्तप्त प्राणियो को निरुपद्रव स्थान-मोक्ष में पहुंचाने वाले होने के कारण भगवान् वास्तविक 'शरणदाता' हैं। भगवान् बोधि अर्थात् सम्यक्त्व के दाता है। भगवान् 'धर्मदाता' है अर्थात् दुर्गति मे पड़ते हुए जीव को धारण कर सद्गति मे पहुंचाने वाले श्रुत चारित्र रूपी धर्म के दाता है। भगवान्

कहलाता है। तीर्थङ्कर भगवान् संज्ञी भव्य जीवो को अप्राप्त सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कराते हैं और प्राप्त सम्यग्दर्शनादि की परिपालना (रक्षा) कराते है। अत. वे योगक्षेमकारी होने से 'लोकनाथ' है।

‡ चक्षुष्मन्तस्त एवेह, ये श्रुतज्ञानचक्षुषा।
सम्यक् सदैव पश्यन्ति, भावान् हेयेतरान् नराः॥

अर्थ-वे ही पुरुप वास्तविक आख वाले कहलाते है जो श्रुतज्ञान रूपी आख से हेय उपादेयादि पदार्थों को सदा भलि प्रकार देखते हैं।

का शरणदातापना, बोधिदातापना और धर्मदातापना, धर्मदेशना द्वारा ही होता है, अतः यह विशेषण दिया गया है कि भगवान् 'धर्मदेशक' है अर्थात् वे श्रुत चारित्र रूपी धर्म का उपदेश देने वाले है। भगवान् 'धर्मनायक' है अर्थात् धर्म के नेता है। भगवान् 'धर्मसारथि' हैं अर्थात् धर्म रूप रथ के प्रवर्तक होने से सारथि के समान हैं। जिस प्रकार सारथि रथ की और रथ में बैठने वाले की तथा रथ को खींचने वाले घोड़े की रक्षा करता है, उसी प्रकार भगवान् चारित्र धर्म रूपी रथ के अगभूत संयम, आत्मा और प्रवचन की रक्षा का उपदेश देने वाले होने से 'धर्म-सारथि' हैं। भगवान् 'धर्मवर चातुरन्तचक्रवर्ती' हैं। तीन तरफ समुद्र और चौथी तरफ हिमवान् पर्वत, ये चार भरत क्षेत्र रूपी पृथ्वी के अन्त हैं। इन चार अन्त वाली पृथ्वी का जो स्वामी होता है, वह 'चातुरन्त चक्रवर्ती' कहलाता है। वर-श्रेष्ठ चातुरन्त चक्रवर्ती जो हो, वह 'वरचातुरन्त चक्रवर्ती' है। जैसे वरचातुरन्त चक्रवर्ती अन्य राजाओं की अपेक्षा अतिशय सम्पन्न और विशेष प्रभावशाली होता है। इसी प्रकार भगवान् तथा-कथित अन्य बुद्ध, कपिल आदि धर्मनेताओ की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, अतिशय सम्पन्न एवं प्रभाव-शाली हैं। अथवा दान, शील, तप, भाव द्वारा नरकादि चार गति का अन्त करने वाले एवं राग द्वेषादि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने वाले धर्मचक्र से प्रवृत्ति करने का जिनका स्वभाव है उन्हे 'धर्मवर चातुरन्त चक्रवर्ती' कहते हैं। अतः भगवान् 'धर्मवर चातुरन्त चक्रवर्ती' हैं।

उपर्युक्त सारे विशेषण निर्मल एवं श्रेष्ठ ज्ञान के होने पर ही घटित हो सकते हैं। अत भगवान् का ज्ञान कैसा निर्मल है यह बताने के लिए कहा गया है-'अप्रतिहत वरज्ञान-दर्शन धर' । भगवान् का ज्ञान भीत पर्वत आदि से व्यवहित (पीछे रहे हुए) पदार्थों को जानने वाला, विसंवाद रहित और क्षायिक होने से श्रेष्ठ है। विशेष बोध और सामान्य बोध रूपी केवल ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले होने से भगवान् 'अप्रतिहतवर ज्ञान दर्शन के धारक है। भगवान् छद्मस्थपने से सर्वथा निवृत्त हो चुके हैं। राग द्वेष रूप आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण भगवान् 'जिन' है। वे छद्मस्थ जीवों को राग द्वेष जीतने का उपाय बतलाते हैं, अतः वे 'ज्ञायक' हैं। वे 'बुद्ध' हैं अर्थात् जीवादि तत्त्वों के जानने वाले हैं। वे 'बोधक' है अर्थात् दूसरे प्राणियों को वे जीवादि तत्त्वों का बोध कराते हैं वे 'मुक्त' हैं अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह रूप ग्रन्थि-बन्धन से रहित है। वे 'मोचक' है अर्थात् दूसरे प्राणियों को परिग्रह रूप ग्रन्थिबन्धन से मुक्त कराने वाले है। समस्त वस्तुओं को विशेष रूप से और सामान्य रूप से जानने वाले होने से भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी है।

देहमुक्त होने के पश्चात् जिस स्थान पर जाकर भगवान् विराजमान होते है, वह स्थान कैसा है ? यह बात बताने के लिए सूत्रकार उस स्थान के विशेषण देते है–सब प्रकार की बाधाओं से रहित होने के कारण वह स्थान 'शिव' है। वहां स्वाभाविक और प्रयोगजन्य किसी भी प्रकार का हलन चलन न होने के कारण वह स्थान 'अचल' है। रोग के कारणभूत एवं आधारभूत शरीर और मन का वहां अभाव होने से वह स्थान 'अरुज' अर्थात् रोग रहित है। अनन्त पदार्थ विषयक ज्ञान स्वरूप होने से वह 'अनन्त' है। अन्त रहित होने के कारण वह 'अक्षय' है। सर्व प्रकार की बाधा पीड़ा रहित होने के कारण 'अव्याबाध' है। कर्मों का सर्वथा क्षय करके वहां जाने वाले जीव फिर ससार में नही आते है इसलिए वह स्थान 'अपुनरावृत्ति' वाला है। ऐसे उत्तम नाम वाले 'सिद्धि गति' स्थान में जाने वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर 'गुण-शिलक' उद्यान मे पधारे।

शंका–मूलपाठ में 'संपाविउकामे' शब्द आया है जिसकी संस्कृत छाया होती है –'संप्राप्तु कामः' अर्थात् मोक्ष जाने की इच्छा वाले।

यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भगवान् तो राग द्वेष रहित 'वीतरागी' होते हैं, तो उन्हें 'इच्छा' कैसे हो सकती है ?

समाधान–यहां पर जो 'काम' शब्द आया है वह 'औपचारिक' है। किसी जीवादि पदार्थ में तदनुकूल क्रिया देख कर उस बात का कथन करना 'उपचार' कहलाता है। जैसे तीर्थङ्कर भगवान् में दूसरे पुरुषों की अपेक्षा सिंहादि की तरह अतिशय शौर्यादि होने के कारण उन्हें 'पुरुष सिंह' कहा गया है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् की समस्त क्रियाएं मोक्ष के अनुकूल हैं एवं उन्हे मोक्ष में पहुंचाने वाली हैं, इसलिए यहाँ 'काम' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ यह है कि भगवान् मोक्ष में जाने वाले है। भगवान् में किसी प्रकार की इच्छा और अभिलाषा नही होती। जैसा कि कहा है–

"मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिसत्तमः"

अर्थात्–मुनियो मे उत्तम तीर्थङ्कर भगवान् और अन्य केवली संसार और मोक्ष दोनों मे निःस्पृह (अभिलाषा रहित) होते है।

'जाव समोसरण' शब्द से भगवान् के शरीर का शिखनख (शिखा–चोटी से लेकर पैर के नखो तक के सारे) वर्णन से लेकर समवसरण तक का वर्णन जैसा उववाई (औप-पातिक) सूत्र मे किया गया है वैसा ही सारा वर्णन यहाँ जान लेना चाहिए।

जब भगवान् के पधारने की खबर राजगृह नगर निवासियों को मिली तब राजा, राजकुमार, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि तथा सामान्य जनता सभी भगवान् को वन्दनार्थ गई।

भगवान् ने श्रेणिक राजा, चेलना देवी आदि उस महामानव मेदिनी के समक्ष सर्व भाषानुगामिनी वाणी के द्वारा धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर एवं हृदय में धारण कर जनता अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट होती हुई वापिस अपने स्थान पर चली गई।

इन्द्रभूतिजी की महानता

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमसगुत्ते णं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणयपुलयनिहसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से चोद्दसपुव्वी चउणाणोवगए सव्वक्खरसण्णिवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ-तेणं कालेणं-उस काल तेणं समएणं-उस समय में समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जेट्ठे-ज्येष्ठ-सब से बड़े अंतेवासी-शिष्य इंदभूई णामं अणगारे-इन्द्रभूति नाम के अनगार थे। गोयमसगुत्ते-उनका गौतम गोत्र था। सत्तुस्सेहे-उनका शरीर सात हाथ ऊंचा था। समचउरंससंठाणसंठिए-समचतुरस्र संस्थान था। वज्जरिसहणारायसंघयणे-वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन था। कणयपुलयणिहसपम्हगोरे-कसौटी पर खीची हुई सोने की रेखा के समान तथा कमल की केशर के समान

गौर वर्ण वाले थे। उग्गतवे-उग्र तपस्वी दित्ततवे-दिप्त तपस्वी तत्ततवे-तप्त तपस्वी महातवे-महा तपस्वी ओराले-उदार घोरे-घोर घोरगुणे-घोर गुण वाले घोरतवस्सी-घोर तपस्वी घोरबंभचेरवासी-घोर ब्रह्मचर्यवासी उच्छूढसरीरे-शरीर संस्कार के त्यागी संखित्तविउल तेयलेस्से-दूरगामी होने से विपुल ऐसी तेजो लेश्या को शरीर में संक्षिप्त करके रखने वाले चोद्दसपुव्वी-चौदह पूर्वों के ज्ञाता, चउणाणोवगए-चार ज्ञान को प्राप्त सव्वक्खरसण्णिवाई-सर्वाक्षरसन्निपाती थे। वे समणस्स भगवओ महावीरस्स-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अदूरसामंते-न अति दूर न अतिसमीप उड्ढंजाणू-ऊर्ध्वजानु अहोसिरे-अध शिर-नीचे की तरफ मस्तक झुकाये हुए झाणकोट्ठोवगए-ध्यान रूप कोष्ठक में प्रविष्ट संजमेणं-संयम से और तवसा-तप से अप्पाणं-अपनी आत्मा को भावेमाणे-भावित करते हुए विहरइ-विचरते थे।

भावार्थ- उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अर्थात् सब से बड़े प्रथम शिष्य इन्द्रभूति अनगार थे। उनका गोत्र गौतम था। उनका शरीर सात हाथ ऊंचा था। उनका संस्थान समचतुरस्र-समचौरस था। उनका संहनन-वज्र ऋषभ-नाराच था। कसौटी पर खींची हुई सोने की रेखा के समान तथा कमल की केशर के समान वे गौर वर्ण थे। वे उग्र तपस्वी दिप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, कर्मशत्रुओं के लिए घोर, घोर गुण वाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले, अतएव शरीर-संस्कार के त्यागी थे। दूर दूर तक फैलनेवाली विपुल तेजोलेश्या को उन्होंने अपने शरीर में संक्षिप्त कर रखी थी। वे चौदह पूर्व के ज्ञाता थे। मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय, इन चार ज्ञान के धारक थे और सर्वाक्षर सन्निपाती थे। वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, उर्ध्वजानु और अधः शिर होकर अर्थात् दोनों घुटनों को खड़े करके एवं शिर को कुछ नीचे की तरफ झुकाकर ध्यान रूपी कोष्ठक में प्रविष्ट हो कर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

विवेचन-इन्द्रभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम शिष्य थे, अतएव वे सब शिष्यों में बडे थे। इसलिए उन्हे 'ज्येष्ठ अन्तेवासी' कहा गया है। उनका गोत्र निन्दित नही था अपितु बहुत उत्तम था। अतएव कहा गया है कि 'गोयमसगुत्ते'। अर्थात् उनका

'गौतम' गोत्र था। उस समय के मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई प्रायः सात हाथ की होती थी। अतएव उनका शरीर भी सात हाथ ऊंचा था। उनका संस्थान 'समचतुरस्र'+ था।

इन्द्रभूति अनगार मजबूत एवं दृढ़ वज्रऋषभनाराच संहनन वाले थे। उनके शरीर का वर्ण कसौटी पर खीची हुई रेखा के समान एवं पिघले हुए सोने की बिन्दु के समान गौर था।

यह इन्द्रभूति अनगार के शरीर का वर्णन हुआ। उनके आन्तरिक आत्मगुणों का वर्णन करते हुए शास्त्रकार ने 'उग्गतवे दित्ततवे' आदि विशेषण दिये हैं। जिनका अर्थ यह है-साधारण मनुष्य जिस तप का चिन्तन करने मे भी असमर्थ होता है, वैसे तप का आचरण करने से वे 'उग्र तपस्वी' थे। कर्मरूपी गहन वन को जलाकर भस्म करने में समर्थ होने के कारण जाज्वल्यमान अग्नि के समान दीप्त थे। धर्मध्यानादि युक्त तप के करने वाले होने से वे 'दीप्त तपस्वी' थे। कर्मों को सन्तप्त करने के कारण वे 'तप्त तपस्वी' थे। उनके तप मे किसी भी प्रकार की सांसारिक इच्छारूपी दोष न होने से वे 'महातपस्वी' थे। अल्प शक्ति वाले पार्श्वस्थ पुरुष जिस तप का नाम सुनते ही कांप उठते है ऐसे भयङ्कर तप को करने के कारण वे 'ओराल' अर्थात् भीम थे, अथवा वे उदार यानी प्रधान थे। घोर परीषह एवं उपसर्ग आने पर भी वे अडोल रहते थे, इसलिए वे घोर थे। अथवा वे घोर अर्थात् शरीर निरपेक्ष थे। अन्य पुरुषों द्वारा जिन गुणों का आचरण होना कठिन था ऐसे मूलगुणादि युक्त होने से 'घोर गुणी' थे। घोर तपस्या करने के कारण वे 'घोर तपस्वी' थे। अल्प शक्ति वाले प्राणियो के द्वारा जिसका आचरण होना कठिन है ऐसे दुश्चर ब्रह्मचर्य के पालक होने से वे 'घोर ब्रह्मचर्यवासी' थे। शरीर का संस्कार छोड़ देने के कारण एव शरीर के प्रति सर्वथा निर्ममत्व होने के कारण शरीर को त्यक्तवत् कर रखा था, इसलिए वे 'उच्छूढशरीर-उज्झित शरीर' थे। जो तेजोलेश्या (तेजो ज्वाला) तप द्वारा

+ प्रश्न-समचतुरस्र सस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर-अवयव रचना रूप शरीर की आकृति को 'सस्थान' कहते हैं। सम अर्थात् नाभि से ऊपर और नीचे पुरुष के सम्पूर्ण लक्षणो सहित बराबर अवयव हो, ऐसे उत्तम सस्थान को समचतुरस्र सस्थान कहते है। अथवा शरीर-शास्त्र मे कहे अनुसार चारो तरफ से जिसमे शरीर के अवयव बराबर हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं अथवा पर्यङ्कासन से बैठे हुए पुरुष के दोनो घुटनो के बीच का अन्तर, आसन और ललाट के ऊपरी भाग का अन्तर, दाहिने कन्धे मे बाएँ घुटने का अन्तर और बाएँ कन्धे मे दाहिने घुटने का अन्तर, ये चारो अन्तर बराबर हो उसे समचतुरस्र सस्थान कहते हैं।

एवं लब्धि विशेष द्वारा उत्पन्न हुई थी, जो कि अनेक योजन प्रमाण क्षेत्र में रहे हुए पदार्थों को भस्म करने में समर्थ होने से विपुल थी। ऐसी विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में लीन होने से संक्षिप्त कर रखी थी। चौदह × पूर्वो की रचना करने के कारण वे चौदह पूर्वधारी थे अर्थात् वे उन्हीं के द्वारा रचे हुए थे। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन.पर्यय ज्ञान, इन चार ज्ञान के धारक थे। वे सर्वाक्षरसन्निपाती थे अर्थात् समस्त अक्षरों के संयोगो से बनने वाले समस्त पदों को एवं समस्त ज्ञेय पदार्थों को जानने वाले थे।

प्रश्न-वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर-जिससे शरीर के पुद्गल मजबूत किये जायें उसको अर्थात् कीलिकादि रूप हड्डियों की रचना विशेष को संहनन कहते हैं। जिस संहनन में दो हड्डियों के मर्कट बन्ध पर पट्टा बंधा हो और ऊपर से वज्र की कील ठोकी हुई हो ऐसे दृढ़ संहनन को 'वज्र-ऋषभ-नाराच' संहनन कहते हैं।

× तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थङ्कर भगवान् जिस अर्थ का गणधरो को पहले पहल उपदेश देते हैं अथवा गणधर पहले पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप मे गूंथते हैं, उन्हें पूर्व कहा जाता है। पूर्व चौदह ये हैं-

(१) उत्पादपूर्व-इस पूर्व मे सभी द्रव्य और सभी पर्यायो के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है। उत्पाद पूर्व मे एक करोड़ पद हैं।

(२) अग्रायणीयपूर्व-इसमे सभी द्रव्य, सभी पर्याय और सभी जीवो के परिमाण का वर्णन है। इसमे ९६ लाख पद हैं।

(३) वीर्यप्रवाद पूर्व-इसमे सकर्मक और अकर्मक जीवों के तथा अजीवों के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है। इसमें सत्तर लाख पद हैं।

(४) अस्तिनास्ति प्रवाद-संसार में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएं विद्यमान हैं तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान हैं, उन सबका वर्णन अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व मे है। इसमे साठ लाख पद हैं।

(५) ज्ञान प्रवाद पूर्व-इसमे मतिज्ञान आदि ज्ञान के पांच भेदो का वर्णन है। इसमे एक कम एक करोड़ पद हैं।

(६) सत्य प्रवाद पूर्व-इसमें सत्य एवं संयम का भेद निरूपण पूर्वक विस्तृत वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह पद हैं।

(७) आत्म प्रवाद पूर्व-इसमे अनेक नयों और मतों की अपेक्षा आत्मा का प्रतिपादन किया गया है। इसमे छब्बीस करोड़ पद हैं।

(८) कर्म प्रवाद पूर्व-इसमे आठ कर्मों का निरूपण प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इसमें एक करोड अस्सी लाख पद हैं।

(९) प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व-इसमे प्रत्याख्यानो का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन है। इसमे चौरासी लाख पद हैं।

इन्द्रभूति अनगार ऐसे उत्तम गुणों के धारक थे। वे ऊर्ध्व जानु (दोनों घुटनों को ऊँचा रखकर) और अध.शिर (शिर को किञ्चित् नीचे की तरफ झुकाये हुए) तथा ध्यान कोष्ठोपगत (जिस प्रकार कोठे में डाला हुआ धान्य इधर उधर नही विखरता है, उसी प्रकार धर्मध्यान और शुक्लध्यान के द्वारा जिनकी अन्तःकरण वृत्ति और इन्द्रियाँ इधर उधर विचलित नही होती थी) होकर संवर रूप संयम और अनशनादि तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

गौतम स्वामी की जिज्ञासा

तएणं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोऊहल्ले

---

(१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व-इसमें विविध प्रकार की विद्या तथा सिद्धियो का वर्णन है। इसमे एक करोड़ दस लाख पद हैं।

(११) अवन्ध्य पूर्व-इसमे ज्ञान, तप, सयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फल वाले अवन्ध्य अर्थात् निष्फल न जाने वाले कार्यों का वर्णन है। इसमे छव्वीस करोड़ पद हैं।

(१२) प्राणायुप्रवाद पूर्व-इसमे दस प्राण और आयु आदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है। इसमे एक करोड छप्पन लाख पद हैं।

(१३) क्रिया विशाल पूर्व-इसमे कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओं का तथा संयम मे उपकारक क्रियाओ का वर्णन है। इसमे नौ करोड़ पद हैं।

(१४) लोकविन्दुसार पूर्व-जैसे बिन्दु अक्षर के मस्तक पर होती है, उसी प्रकार श्रुतज्ञान रूप लोक मे सर्वाक्षरसन्निपात परिनिष्ठित होने से जो सर्वोत्तम शिरोभूत है, वह लोक विन्दुसार है। इसमें साढे वारह करोड पद हैं।

पूर्वों के अध्याय विशेषो को वस्तु कहते हैं और वस्तुओं के अवान्तर अध्यायो को चूलिकावस्तु कहते है ?

उत्पाद पूर्व मे दस वस्तु और चार चूलिकावस्तु हैं। अग्रायणीय पूर्व मे चौदह वस्तु और वारह चूलिकावस्तु हैं। वीर्यप्रवाद पूर्व मे आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु हैं। अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व में अठारह वस्तु और दस चूलिकावस्तु हैं। ज्ञानप्रवाद पूर्व मे वारह वस्तु हैं। सत्यप्रवाद पूर्व में दो वस्तु हैं। आत्मप्रवाद पूर्व मे सोलह वस्तु हैं। कर्मप्रवाद पूर्व मे तीस वस्तु हैं। प्रत्याख्यान पूर्व में वीस वस्तु है। विद्यानुप्रवाद पूर्व मे पन्द्रह वस्तु हैं। अवन्ध्यपूर्व मे वारह वस्तु हैं। प्राणायु पूर्व मे तेरह वस्तु है। क्रियाविशाल पूर्व मे तीन वस्तु हैं। लोकविन्दुसार पूर्व मे पच्चीस वस्तु हैं। चौथे से आगे के पूर्वो में चूलिकावस्तु नही है। (नन्दी सूत्र तथा समवायांग सूत्र)

उप्पण्णसड्ढे उप्पण्णसंसए उप्पण्णकोऊहल्ले संजायसड्ढे संजाय-संसए संजायकोऊहल्ले समुप्पण्णसड्ढे समुप्पण्णसंसए समुप्पण्ण-कोऊहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठाए उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता णच्चा-सण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलि-उडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी ।

शब्दार्थ–तएणं–तब जायसड्ढे–जातश्रद्ध–पैदा हुई श्रद्धा वाले जायसंसए–जात-संशय जायकोऊहल्ले–जात कुतूहल उप्पण्णसड्ढे–उत्पन्न श्रद्धावाले उप्पण्णसंसए–उत्पन्न संशय वाले उप्पण्णकोऊहल्ले–उत्पन्न कुतूहल वाले संजायसड्ढे–संजात श्रद्धा वाले संजायसंसए–सजात संशय वाले संजायकोऊहल्ले–संजात कुतूहलवाले समुप्पण्णसड्ढे–समुत्पन्न श्रद्धावाले समुप्पण्णसंसए–समुत्पन्न संशय वाले समुप्पण्णकोऊहल्ले–समुत्पन्न कुतूहल वाले से–वे भगवं गोयमे–भगवान् गौतम स्वामी उट्ठाए उट्ठेइ–उत्थान द्वारा खड़े हुए उट्ठाए उट्ठित्ता–उत्थान द्वारा खड़े होकर जेणेव–जहाँ पर समणे भगवं महावीरे–श्रमण भगवान् महावीर स्वामी है तेणेव–वहाँ पर उवागच्छइ–आये उवागच्छित्ता–आकर समणं भगवं महावीरं–श्रमण भग-वान् महावीर स्वामी को तिक्खुत्तो–तीन बार आयाहिणपयाहिणं–दक्षिण की तरफ से प्रदक्षिणा की और वंदइ णमंसइ–वंदना नमस्कार किया वंदित्ता णमंसित्ता–वदना नमस्कार करके णच्चासण्णे–बहुत नजदीक नही और णाइदूरे–बहुत दूर भी नही किन्तु यथोचित स्थान पर रहकर सुस्सूसमाणे–शुश्रूषा करते हुए भगवान् के वचनों को सुनने की इच्छा करते हुए णमंसमाणे–नमस्कार करते हुए अभिमुहे–भगवान् के सन्मुख विणएणं–विनयपूर्वक पंजलिउडे–दोनों हाथ जोड़ कर पज्जुवासमाणे–पर्युपासना करते हुए एवं–इस प्रकार वयासी–बोले ।

भावार्थ–जिनको श्रद्धा, संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ है ऐसे गौतम स्वामी अपने स्थान से उठ कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आए

और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया। भगवान् के न अति नजदीक न अति दूर किन्तु यथोचित स्थान पर रह कर भगवान् के सन्मुख विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोले।

विवेचन—मूल पाठ में 'जायसड्ढे जायसंसए' आदि बारह पद है। जिनका अर्थ इस प्रकार है—'जायसड्ढे' अर्थात्—गौतम स्वामी को श्रद्धा—अर्थ तत्त्व जानने की इच्छा पैदा हुई। 'जायसंसए' उन्हे संशय पैदा हुआ कि भगवान् ने 'चलमाणे चलिए' अर्थात् 'चलते हुए को चलित—चला हुआ' कहा है तो वर्तमान कालिक प्रयोग भूतकालिक कैसे कहा गया है? इसका मैं निर्णय करूँ। इस प्रकार निर्णय करने की बुद्धि रूप संशय पैदा हुआ। 'जायकोऊहल्ले' उन्हे कुतूहल उत्पन्न हुआ कि भगवान् इसका समाधान किस प्रकार फरमावेंगे?

'उप्पण्णसड्ढे उप्पण्णससए उप्पण्णकोऊहल्ले' ये तीन पद पहले के तीन पदों के साथ हेतुहेतुमद्भाव—कार्यकारण भाव बतलाने के लिए दिये गये हैं। उन्हे श्रद्धा, सशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ इसी कारण से उनकी श्रद्धा, संशय और कुतूहल में प्रवृत्ति हुई। उत्पत्ति के बिना प्रवृत्ति नही हो सकती है। इसलिए 'उप्पण्णसड्ढे' आदि तीन पद कारण हैं और 'जायसड्ढे' आदि ये तीन पद इनके कार्य हैं।

'संजायसड्ढे, समुप्पण्णसड्ढे' आदि छह पदों में पूर्वोक्त छह पदों की अपेक्षा 'सम्' उपसर्ग अधिक लगा है। यहाँ 'सम्' उपसर्ग का अर्थ 'प्रकर्षता' है। जिसका अर्थ यह हुआ कि उन्हे प्रकर्ष रूप से—विशेष रूप से श्रद्धा संशय और कुतूहल पैदा हुए उत्पन्न हुए।

किन्ही आचार्यो ने इन बारह पदो की व्याख्या इस प्रकार की है—'जायसड्ढे जायसंसए जायकोऊहल्ले' ये तीन पद अवग्रह† की अपेक्षा है। इसी प्रकार आगे के तीन तीन पद ईहा, अवाय और धारणा की अपेक्षा से हैं।

---

†(१) अवग्रह—'विषयविषयिसन्निपातानन्तरसमुद्भूत सत्तामात्रगोचरदर्शनाज्जातमाद्यमवान्तर सामान्याकारविशिष्टवस्तुग्रहणमवग्रह.'।

अर्थात्—विषय (पदार्थ) और विषयी (चक्षु आदि) का यथोचित देश मे सम्बन्ध होने पर सत्ता मात्र को जानने वाला दर्शन उत्पन्न होता है। इसके अनन्तर सबसे पहले मनुष्यत्व आदि अवान्तर सामान्य से युक्त वस्तु को जानने वाला ज्ञान अवग्रह कहलाता है।

(२) ईहा—'अवगृहीतार्थ विशेषाकाक्षणमीहा'।

अर्थ—अवग्रह से जाने हुए पदार्थ मे विशेष जानने की इच्छा को 'ईहा' कहते है। 'यह मनुष्य है' ऐसा अवग्रह ज्ञान से जान पाया था। इससे भी अधिक 'यह दक्षिणी है या पूर्वी', इस प्रकार विशेष को जानने की इच्छा होना 'ईहा' ज्ञान कहलाता है। ईहा ज्ञान 'यह दक्षिणी होना चाहिए' यहाँ तक पहुँच जाता है।

किन्हीं आचार्यों का मत है कि 'जायसड्ढे जायसंसए' आदि बारह ही पद एकार्थक हैं किन्तु विवक्षित अर्थ की प्रकर्षता बतलाने के लिए इन पदों का प्रयोग किया है। शास्त्रकार स्तुति परायण होने के कारण इन पदों का बारम्बार प्रयोग होने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है।†

इन विशेषणों से युक्त गौतम स्वामी अपने स्थान से उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और भगवान् की दाहिनी तरफ से तीन बार प्रदक्षिणा‡ (चारों तरफ घूमना) करके भगवान् को वन्दना[1] नमस्कार[2] किया। वन्दना नमस्कार करके भगवान् की अवग्रह[3] भूमि को छोड़कर, न अति समीप और न अति दूर रहकर भगवान् के वचनों को सुनने की इच्छा से भगवान् के सम्मुख विनयपूर्वक+ दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले।

(३) अवाय–'ईहितविशेषनिर्णयोऽवायः'। अर्थ–ईहा द्वारा जाने हुए पदार्थ में विशेष का निर्णय हो जाना 'अवाय' है। 'यह मनुष्य दक्षिणी होना चाहिए', इतना ज्ञान ईहा द्वारा हो चुका था। उसमें विशेष का निश्चय होजाना 'अवाय' है। जैसे –'यह मनुष्य दक्षिणी ही है'।

(४) धारणा–'सएव दृढतमावस्थापन्नो धारणा'। अर्थ–अवाय ज्ञान जब अत्यन्त दृढ़ होजाता है तब वही अवाय 'धारणा' कहलाता है। धारणा का अर्थ संस्कार है। हृदयपटल पर यह ज्ञान इस प्रकार अङ्कित हो जाता है कि कालान्तर में भी वह जागृत हो सकता है। इसी ज्ञान से 'स्मरण' होता है।

†जैसा कि कहा है–'वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवंस्तथा निन्दन्, यत्पदमसकृद् ब्रूते तत् पुनरुक्तं न दोषाय'। अर्थात्–हर्ष, भय आदि से आक्षिप्त (अस्वस्थ) मन वाला होकर बोलता हुआ तथा स्तुति करता हुआ और निन्दा करता हुआ पुरुष, समान अर्थ वाले पदों को यदि अनेक बार बोल देता है, तो भी वह पुनरुक्ति दोष का भागी नहीं होता है।

‡प्राचीन धारणा में वन्दक की दाहिनी तरफ से प्रदक्षिणा करने की धारणा है और टीका में वंदनीय की दाहिनी तरफ से प्रदक्षिणा करना लिखा है।

[1]–'वन्दइ' का अर्थ है–वचनों द्वारा स्तुति करता है। [2]–'णमंसइ' का अर्थ है–काया द्वारा प्रणाम करता है।

[3]–अवग्रह भूमि'–गुरु महाराज के चारों तरफ शरीर प्रमाण (साढ़े तीन हाथ प्रमाण) भूमि अवग्रह भूमि कहलाती है। गुरु महाराज की आज्ञा बिना शिष्य को उसमें प्रवेश नहीं करना चाहिए।

+गुरु महाराज के पास धर्म श्रवण किस प्रकार करना चाहिए ? इसके लिए कहा है–

णिद्दा-विगहा परिवज्जिएहिं, गुत्तेहिं पंजलिउडेहिं।
भत्तिबहुमाणपुव्वं, उवउत्तेहिं सुणेयव्वं॥

अर्थ–निद्रा और विकथा का त्याग करके, मन, वचन, काया को गुप्त (नियन्त्रित) रख कर, अञ्जलिपुट करके अर्थात् दोनों हाथ जोड़ कर ललाट पर स्थापित करके भक्ति और बहुमान पूर्वक उपयुक्त (दत्तचित्त) होकर गुरु महाराज के पास श्रवण करना चाहिए।

प्रथम उद्देशक प्रारम्भ

श्री गौतम स्वामीजी महाराज भगवान् महावीर स्वामी से पूछते है-

१ प्रश्न--से णूणं भंते ! चलमाणे चलिए ? उदीरिज्जमाणे उदीरिए ? वेइज्जमाणे वेइए ? पहिज्जमाणे पहीणे ? छिज्जमाणे छिण्णे ? भिज्जमाणे भिण्णे ! डज्झमाणे दड्ढे ? मिज्जमाणे मडे ? णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे ?

१ उत्तर--हंता, गोयमा ! चलमाणे चलिए, जाव णिज्ज-रिज्जमाणे णिज्जिण्णे ।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! चलमाणे चलिए-क्या चलते हुए को चला कहा जा सकता है ? इसी तरह, उदीरिज्जमाणे-जिसकी उदीरणा की जा रही है वह, उदीरिए-उदीरित, वेइज्जमाणे-वेदा जाता हुआ, वेइए-वेदित, पहिज्जमाणे-प्रहीयमान-गिरता हुआ, पहीणे-गिरा, छिज्जमाणे-छिदता हुआ, छिण्णे-छिदा, भिज्जमाणे-भिदता हुआ, भिण्णे-भिदा, डज्झमाणे-जलता हुआ, दड्ढे-जला, मिज्जमाणे-मरता हुआ मडे-मरा, णिज्जरिज्जमाणे -निर्जरता हुआ, णिज्जिण्णे-निर्जरा । क्या इस तरह कहा जा सकता है ?

हंता-हां, गोयमा-गौतम ! चलमाणे-चलता हुआ, चलिए-चला, जाव-यावत्, णिज्ज-रिज्जमाणे-निर्जरता हुआ, णिज्जिण्णे-निर्जरा । इस प्रकार कहा जा सकता है ।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन् ! जो चल रहा है वह चला, जो उदीरा जा रहा है वह उदीरा गया, जो वेदा जा रहा है वह वेदा गया, जो गिर रहा है वह गिरा, जो छिद रहा है वह छिदा, जो भिद रहा है वह भिदा, जो जल रहा है वह जला, जो मर रहा है वह मरा और जो निर्जरा रहा है वह निर्जरा, क्या इस प्रकार कहा जा सकता है ?

उत्तर-हां, गौतम ! जो चल रहा है वह चला यावत् जो निर्जर रहा है वह निर्जरा, इस प्रकार कहा जा सकता है ।

विवेचन-आरम्भ में 'से णूणं' ये दो शब्द है। 'से' का अर्थ 'अथ' है जो वाक्य का प्रारम्भ करने के लिए आता है। 'णूणं' (नूनं) शब्द का अर्थ 'निश्चय' है। 'भंते'† शब्द का अर्थ 'भगवन्' है। यह गुरु महाराज के आमन्त्रण का सूचक है। अतः 'भंते' इस आमन्त्रण से गौतमस्वामी ने अपने गुरु भगवान् महावीर स्वामी को सम्बोधित करके 'चलमाणे चलिए' आदि नौ प्रश्न किये है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि गौतमस्वामी ने सब से पहले 'चलमाणे चलिए' यही प्रश्न क्यो किया ? कोई दूसरा प्रश्न पहले क्यों नही किया ?

इसका समाधान यह है कि-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। इन सब मे 'मोक्ष' पुरुषार्थ ही सर्व प्रधान है। इस मोक्ष रूपी साध्य के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये अव्यभिचारी (निश्चित) साधन हैं। अर्थात् मोक्ष रूपी साध्य इन्ही साधनों से प्राप्त हो सकता है, दूसरे साधनों से नही। तथा सम्यग्दर्शनादि साधनों से मोक्ष रूपी साध्य की ही प्राप्ति होती है, अन्य की नही। इस प्रकार के अव्यभिचारी साध्य साधनों वाले शास्त्र मे ही विवेकी पुरुषो की प्रवृत्ति होती है। मोक्ष का विपक्ष (मोक्ष विरुद्ध पक्ष) 'बन्ध' है। आत्मा के साथ कर्मों का एकमेक होजाना बन्ध है। जैसे दूध और पानी आपस में मिलकर एकमेक हो जाते हैं उसी प्रकार कर्म-प्रदेशो का आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक हो जाना बन्ध है। बन्ध से छुटकारा पाना-बन्ध का सर्वथा

---

† 'भंते' शब्द की संस्कृत छाया 'भदन्त, भजन्त, भान्त, भ्राजन्त, भ्रान्त, भयान्त, भवान्त भगवत्' होती है। जिनका क्रमशः सक्षिप्त अर्थ यह है-भदन्त-कल्याणकारी, सुखकारी। भजन्त-सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का सेवन करने वाले। भान्त-तपादि गुणो की दीप्ति से चमकने वाले। भ्राजन्त-तपादि गुणो की दीप्ति से युक्त। भ्रान्त-मिथ्यात्वादि बन्धनो से रहित। भयान्त-सासारिक भय-त्रास से रहित। भवान्त-नरकादि समस्त भवो का अन्त करने वाले। भगवत्-ऐश्वर्यादि सम्पन्न। 'भग' शब्द से 'वतु' प्रत्यय लग कर 'भगवत्' शब्द बना है। शास्त्रो मे 'भग' शब्द के ये अर्थ दिये हैं-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतींगना ॥

अर्थात्-सम्पूर्ण ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री, धर्म और प्रयत्न, ये छह 'भग' शब्द के अर्थ है। तीर्थंकर देव चौतीस अतिशय रूपी बाहरी ऐश्वर्य से और केवलज्ञान, केवलदर्शन रूपी आन्तरिक अतिशय रूपी ऐश्वर्य से, इस प्रकार समग्र एश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण 'भगवान्' कहे जाते है।

'भंते' शब्द का अर्थ 'भगवन्' यह जैनागमो मे प्रचलित है। अत यहाँ 'भगवन्' शब्द का ही प्रयोग किया जायगा। 'भदन्त' आदि शब्द बौद्धादि साहित्य मे प्रचलित हैं।

क्षय होजाना 'मोक्ष' है। इसलिए मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्मों के बन्धन को काटना अनिवार्य है। उन कर्मों के क्षय के लिए 'चलमाणे चलिए' यह क्रम बतलाया गया है। तात्पर्य यह है कि गौतम स्वामी ने यहां जो 'चलमाणे चलिए' से लगाकर 'णिज्जरिज्जमाणे णिज्जरिए' तक नौ प्रश्न किये हैं, उनमें कर्म-बन्ध के नाश का क्रम बतलाया गया है। यह क्रम 'चलमाणे' से आरम्भ होता है और 'णिज्जरिए' तक रहता है। इस अन्तिम क्रम के पश्चात् कर्मबन्ध नहीं रहता। कर्मबन्ध के नाश होने में पहला क्रम 'चलमाणे चलिए' ही है। इसी कारण से यह प्रश्न सबसे पहले किया गया है।

(१) कर्मों के अबाधा काल की स्थिति पूर्ण होने पर कर्म अपना फल देने के लिए उदयावलिका मे आते हैं। इस प्रकार कर्म का फल देने के लिए सामने आना 'चलित' कहलाता है।

कर्मों का चलनकाल उदयावलिका है। उसमें असंख्यात समय होते है। उन असंख्यात समय की आदि भी है, मध्य भी है और अन्त भी है। कर्म पुद्गल अनन्त हैं और उनके उदयावलिका मे आने का क्रम है। इस प्रकार क्रम से चलते चलते कर्म पुद्गलो को उदयावलिका में आने मे असंख्यात समय लग जाते है। इसलिए पहले समय में कर्म पुद्गलों का जो दल चला है उसे 'चला' कहना चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि जो कर्मपुद्गल 'चल रहे हैं' वे वर्त्तमान काल में है, उन्हे 'चले' ऐसा भूतकाल मे कैसे कहा जा सकता है ?

इस शङ्का का समाधान यह है कि–जैसे कपड़ा बुनने के लिए पहला एक तन्तु (तार) डाला गया, इससे 'कपड़ा बुना' ऐसा लोक व्यवहार मे कहा जाता है। यह व्यवहार निराधार नहीं है, क्योंकि वस्त्र को बुनना–वस्त्र की उत्पत्ति एक क्रिया है। सो यदि पहला तार डालने रूपी क्रिया निरर्थक मानी जायगी, तो अन्तिम तार डालने तक की क्रिया भी निरर्थक हो जायगी। वैसी दशा में 'कपड़े की उत्पत्ति' ही नहीं बन सकेगी। किन्तु यह बात प्रत्यक्ष से विरुद्ध है। अन्तिम तन्तु में जो शक्ति है वही शक्ति प्रथम तन्तु में भी है। इसलिए जैसे अन्तिम तन्तु से कपड़े को 'बना हुआ' माना जाता है उसी प्रकार प्रथम तन्तु से भी कपड़े को बना हुआ मानना पड़ेगा, क्योंकि वह अन्तिम भी प्रथम आदि की अपेक्षा मे ही है। इसलिए यदि प्रथम आदि तन्तु से कपड़े को बुना हुआ नहीं माना जायगा तो अन्तिम तन्तु से भी कपड़ा बुना हुआ नहीं माना जा सकेगा। वैसी दशा मे लोक व्यवहार भी बाधित हो जायगा।

जैसे वस्त्र के विषय में तन्तु के लिए कहा गया है वैसा ही 'समय' की अपेक्षा भी जान लेना चाहिए। समय के भी स्थूलरूप से तीन विभाग किये जा सकते हैं-प्रारंभकाल, मध्यकाल और अन्तिमकाल। जैसे प्रारंभकाल में एक तन्तु डालने से कपड़ा उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार मध्यकाल में और अन्तिम काल में भी उत्पन्न हुआ है।

तात्पर्य यह है कि जैसे एक तन्तु डालने से वस्त्र की उत्पत्ति मानना युक्तिसंगत है, उसी प्रकार कर्मों की उदयावलिका असंख्यात समय की होने से पहले समय में जो कर्म दलिक उदयावलिका में आने के लिए चले हैं, उनकी अपेक्षा उन्हें चला कहा जाता है। यदि ऐसा न माना जायगा तो जो कर्म दलिक उदयावलिका में आने के लिए चले हैं उनकी 'चलनक्रिया' निरर्थक हो जायगी और यदि प्रथम समय में कर्मों का चलना नहीं माना जायगा, तो फिर दूसरे तीसरे आदि समयों में भी उनका चलना नहीं माना जा सकेगा। क्योंकि पहले समय में और पिछले समय में कोई अन्तर नहीं है। जैसे पहले समय में कुछ ही कर्मदलिक चलते हैं, सब नहीं, उसी प्रकार अन्तिम समय में भी कुछ ही कर्मदलिक चलते हैं, सब नहीं। क्योंकि बहुत से कर्मदलिक तो पहले ही चल चुके है और जो थोड़े से बाकी बचे हैं वे ही अन्तिम समय में चलते हैं। इस प्रकार सब समय समान हैं, किसी में कोई विशेषता नहीं हैं। अतः प्रथम समय में यदि 'कर्मचले' ऐसा न माना जाय, तो फिर किसी भी समय में उनका चलना न माना जा सकेगा। इसलिए जिस प्रकार अन्तिम समय में 'कर्मचले' ऐसा माना जाता है, उसी प्रकार प्रथम समय में भी 'कर्मचले' ऐसा मानना चाहिए।

कर्मों की स्थिति परिमित है, चाहे वह अन्तर्मुहूर्त की हो या सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की हो, लेकिन है परिमित ही। परिमित स्थिति वाले कर्म यदि उदय में नहीं आवेंगे, तो उनका परिमितपना मिट जायगा और सारी व्यवस्था भंग हो जायगी। कर्म स्थिति की मर्यादा है और उस मर्यादा के अनुसार कर्म उदयावलिका में आते ही हैं। उदयावलिका में आने के लिए सभी कर्म एक साथ नहीं चलते है। प्रत्येक समय में उनका कुछ अंश ही चलता है। प्रथम समय में जो कर्मांश चला है यदि उसकी अपेक्षा कर्म को 'चला' न माना जायगा तो प्रथम समय की क्रिया और वह समय व्यर्थ हो जायगा। अतः 'चलमान' कर्म को 'चलित' मानना ही उचित है। जो कर्मदल प्रारम्भ में उदयावलिका के लिए 'चला' है, वह बाद में फिर नहीं चलता है। अतएव 'इस समय यह कर्मांश चला है और इस समय यह कर्मांश चला है' ऐसा मानने से ही कर्मों के चलने का क्रम रह सकता

है। इसलिए प्रथम समय मे जो कर्मदल'चला है, उसकी अपेक्षा'चला'मानना युक्ति संगत है।

(२) 'जो उदीरा जा रहा है' वह 'उदीर्ण' हुआ, ऐसा कहना चाहिए ।

कर्म दो प्रकार से उदय मे आते हैं। कोई कर्म अपने अबाधा काल की स्थिति पूर्ण होने पर स्वभावतः उदय में आता है और कोई कर्म 'उदीरणा' के द्वारा उदय मे लाया जाता है। कालान्तर में उदय मे आने योग्य कर्म को जीव अपने अध्यवसाय विशेष से स्थिति का परिपाक होने से पूर्व ही उदयावलिका मे खीच लाता है। इस प्रकार नियत समय से पहले ही प्रयत्न विशेष से किसी कर्म को उदयावलिका मे खीच लाना 'उदीरणा' है। कर्म की उदीरणा मे भी असंख्यात समय लगता है, 'परन्तु जब पहले समय में उदीरणा होने लगी, तो 'उदीर्ण हुआ' कहना चाहिए। जैसे कि-'चलमाणे चलिए' में युक्तिपूर्वक सिद्ध किया जा चुका है।

(३)'जो वेदा जा रहा है वह वेदा गया'। ऐसा मानना चाहिए। कर्मों का अनुभव करने को 'वेदन' कहते है। वेदन दो प्रकार से होता है-अबाधा काल की स्थिति पूर्ण होने पर उदय मे आये हुए कर्म को वेदना और उदीरणा द्वारा खीच कर उदय में लाये हुए कर्म को वेदना। 'वेदन' भी असंख्यात समय का होता है। प्रथम समय में वेदे जाते हुए कर्म को 'वेदा गया' कहना चाहिए और इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। युक्ति पूर्ववत् है।

(४)'जो गिरता है वह गिरा' ऐसा मानना चाहिए। आत्म प्रदेशो के साथ सम्बद्ध हुए कर्मो को हटाना अर्थात् आत्म प्रदेशों से पृथक् करना 'प्रहाण' कहलाता है। आत्म प्रदेशों से कर्मों को दूर करने में भी असख्य समय लगते है। परन्तु पहले समय में जो कर्म हटे हैं-गिरे है-उनके लिए 'गिरा' यह कहना चाहिए और इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए । युक्ति पूर्ववत् है।

(५)'जो छेदा जा रहा है वह छिदा' ऐसा कहना चाहिए। कर्म की दीर्घकाल की स्थिति को अल्पकाल की स्थिति में कर लेना 'छेदन' कहलाता है। यद्यपि कर्म वही है किन्तु उसकी स्थिति को कम कर लेना 'छेदन' है। यह छेदन 'अपवर्तना करण' के द्वारा होता है। इसमें भी असंख्यात समय लगते है किन्तु प्रथम समय में जो स्थितिछेद हो रहा है उसे 'छिदा' ऐसा कहना चाहिए और इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। युक्ति पूर्ववत् है।

(६)'जो भेदा जा रहा है वह भेदा गया' ऐसा कहना चाहिए। शुभ कर्म या अशुभ कर्म के तीव्र रस को अपवर्तना करण द्वारा मन्दरस करना और मन्दरस को उद्वर्तना करण

द्वारा तीव्ररस करना 'भेदन' कहलाता है। कर्म भेदन की इस क्रिया में भी असंख्यात समय लगते है। प्रथम समय में जो भिद्यमान हो रहा है उसे 'भेदा गया' कहना चाहिए।

(७) 'जो जलता है वह जला' ऐसा कहना चाहिए। कर्म रूपी काष्ठ को ध्यान रूपी अग्नि से जलाकर नष्ट करना 'दग्ध' कर देना कहलाता है। जैसे अग्नि से जलकर लकड़ी राख रूप में परिणत हो जाती है उसी प्रकार आत्मा के साथ जो कर्म परमाणु लगे हुए हैं उन्हे ध्यान रूपी अग्नि से जलाकर फिर पुद्गल रूप वना देना अर्थात् उन्हें अकर्म रूप में पहुँचा देना 'दग्ध' करना कहा जाता है।

ध्यान रूपी अग्नि से भस्म किये हुए कर्म फिर भोगने नही पड़ते। ध्यान रूप अग्नि से भस्म किये हुए कर्म, कर्म ही नही रहते, किन्तु अकर्म रूप पुद्गल बन जाते है।

ध्यान रूपी अग्नि से कर्म को अकर्म रूप मे परिणत करने में (दग्ध करने मे) अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। इतने ही समय में ध्यान के प्रभाव से कर्म भस्म हो जाते है। इस अन्तर्मुहूर्त काल मे भी असंख्यात समय होते हैं। इन असख्यात समयों मे से पहले समय में जब कर्म दग्ध होने लगते है, तब उन्हें 'दग्ध हुए' कहना चाहिए।

(८) 'जो मर रहा है वह मरा' ऐसा कहना चाहिए। आयु कर्म से रहित हो जाना 'मरण' कहलाता है। मरने का अर्थ आत्मा का नाश हो जाना नही है। आत्मा आयु कर्म के साथ रह कर चेष्टा करता है। जब आत्मा आयु कर्म से रहित हो जाती है, आयु कर्म उसके साथ नही रहता है, तब चेष्टा वन्द हो जाती है और आत्मा की मुक्ति हो जाती है। इस प्रकार आयुकर्म के पुद्गलों का नाश हो जाना 'मरण' है। यद्यपि आयुकर्म के पुद्गलों का नाश असख्यात समय में होता है, फिर भी उन असंख्यात समयों मे से प्रथम समय में भी मरा कहा जा सकता है। शास्त्र का कथन है कि प्रत्येक प्राणी का 'आवीचिक +' मरण हो रहा है। 'आवीचिक मरण' के द्वारा प्रत्येक प्राणी प्रति समय मृत्यु को प्राप्त होता जाता है। इस प्रकार यद्यपि मरने में असख्यात समय लगते है, तथापि जो मरने लगा है उसे 'मरा' कहना चाहिए।

+ वीचि का अर्थ तरग है, उसके समान जो मरण हो अर्थात् जैसे समुद्र मे एक तरग के वाद दूसरी तरंग अविलम्ब आया करती है उसी तरह एक एक क्षण मे आयुष्य का नाश हुआ करता है, उसे 'आवीचिक' मरण कहते हैं। जैसे किसी जीव ने अगले जन्म की ५० वर्ष की आयु बांधी। जब वह वर्तमान शरीर को छोडकर अगला भव धारण करने के लिए जाता है तभी से उसकी ५० वर्ष की आयु मे से प्रति क्षण आयु घटती जाती है। इस प्रकार प्रतिक्षण होने वाले मरण को 'आवीचिक' मरण कहते है।

(६) 'जो निजीर्यमाण होने लगा है उसको निजीर्ण हुआ' कहना चाहिए। कर्मो का आत्मा से अपुनर्भाव रूप से पृथक् हो जाना 'निर्जरा' है। यह 'निर्जरा' शब्द का सामान्य अर्थ है, किन्तु यहाँ 'निर्जरा' का अर्थ मोक्ष प्राप्ति रूप है। मोक्ष प्राप्त करने वाले महापुरुष कर्मो की निर्जरा करते है, उनके निजीर्ण कर्म फिर कभी उनके कर्म रूप से उत्पन्न नही होते। उन्हे फिर कभी कर्मो को भोगना नही पड़ता। इस प्रकार कर्मो का आत्यन्तिक क्षीण होना यहां पर 'निर्जरा' कही गई है।

निर्जरा भी असंख्यात समयो में होती है। किन्तु जब कर्म निर्जीर्ण होने लगा, उसे 'निर्जीर्ण हुआ' ऐसा कहना चाहिए।

पहले कपड़े का दृष्टान्त देकर यह बतलाया गया है कि 'जो कार्य हो रहा है उसे हुआ' कहा जा सकता है। इसी युक्ति से 'चलमाणे चलिए' से लगा कर 'णिज्जरिज्जमाणे णिज्जरिए' तक नौ प्रश्नों के उत्तर मे 'होती हुई क्रिया को हुआ' कहा गया है।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से ये प्रश्न किये। इस पर यह तर्क किया जा सकता है कि-गौतम स्वामी तो स्वयं द्वादशांगी के रचने वाले हैं। यह भगवती सूत्र भी द्वादशांगी के अन्तर्गत है, फिर उन्होने इसके प्रारम्भ मे ये प्रश्न कैसे किये? क्योंकि उन्हे सम्पूर्ण श्रुत का विषय ज्ञात था। वे संशयातीत थे, वे सर्वाक्षर-सन्निपाती थे। अतएव वे सर्वज्ञ तुल्य थे। जैसाकि कहा है-

"संखाइए उ भवे, साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा।
ण य णं अणाइसेसी, वियाणइ एस छउमत्थो॥"

अर्थ-दूसरे के पूछने पर ऐसा छद्मस्थ संख्यातीत भवों को कह सकता है, क्योकि वह अनतिशेषी नही है अर्थात् अतिशय ज्ञानवान् होता है। इसलिए वह जानता है।

इस शका का समाधान यह है कि गौतम स्वामी के जितने गुण वर्णन किये, वे सब उनमे विद्यमान है, वे सम्पूर्ण शास्त्रो के ज्ञाता भी हैं और सशयातीत भी है तथापि वे छद्मस्थ है। छद्मस्थ होने के कारण उनके ज्ञान मे कुछ कमी रहती है। वह छद्मस्थ ही कैसा जिसके ज्ञान में कुछ कमी न हो? अत. छद्मस्थ के लिए कुछ भी अनाभोग-अपूर्णता न रहे, ऐसी बात नही हो सकती। जैसाकि कहा है-

"नहि नामाऽनाभोगः, छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति।
यस्माद् ज्ञानावरणं, ज्ञानावरणप्रकृति कर्म॥"

अर्थ-'किसी भी छद्मस्थ को किसी प्रकार का अनाभोग (अपूर्णता) न हो', यह

बात नही हो सकती अर्थात् उनमें कुछ न कुछ अनाभोग (अपूर्णता) रहता ही है। क्योंकि ज्ञान को ढकने का स्वभाव वाला ज्ञानावरण कर्म उनके मौजूद है। जितने अश मे उसने ज्ञान को ढक रखा है उतने अंश में उसमें अपूर्णता रहती है। इसलिए गौतम स्वामी ने ये प्रश्न किये तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

अथवा-कदाचित् गौतम स्वामी इन प्रश्नो का उत्तर जानते भी हों तथापि अपने ज्ञान में अविसवाद लाने के लिए, निश्चयता लाने के लिए तथा अपने द्वारा जाने हुए विषय पर भी भगवान् द्वारा अधिक प्रकाश डलवाने के लिए गौतम स्वामी ने ये प्रश्न किये हैं।

अथवा-अनजान लोगों को बोध कराने के लिए तथा शिष्यो को अपने वचन में प्रतीति कराने के लिए अथवा सूत्र रचना के कल्प समादन के लिए गौतम स्वामी ने ये प्रश्न किये हैं। क्योंकि सूत्र रचना का क्रम गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तर से ही होता है।

उपर्युक्त कारणो मे से किसी भी कारण से प्रेरित होकर गौतम स्वामी ने ये प्रश्न पूछे है।

गौतम स्वामी के इन प्रश्नों के उत्तर में भगवान् ने 'हंता' शब्द का प्रयोग किया है। 'हंता' शब्द का अर्थ आमन्त्रण अर्थात् सबोधन करना है। और स्वीकार रूप 'हाँ' अर्थ भी है।

पाठ का संकोच करने के लिए 'जाव-यावत्' शब्द का प्रयोग होता है। 'चलमाणे चलिए' यह प्रश्न का प्रथम पद कह कर 'णिज्जरिज्जमाणे णिज्जरिए' यह अन्तिम पद कहा गया है। इनके बीच के सब पदों का ग्रहण 'जाव-यावत्' शब्द से हुआ है। 'जाव' शब्द का अर्थ है 'से लगा कर' अर्थात् 'वहाँ से लेकर वहाँ तक'। यह 'जाव-यावत्' शब्द का अर्थ है।

२ प्रश्न--एए णं भंते! णव पया किं एगट्ठा णाणाघोसा? णाणावंजणा? उदाहु णाणट्ठा? णाणाघोसा? णाणावंजणा?

२ उत्तर--गोयमा! चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए, वेइज्जमाणे वेइए, पहिज्जमाणे पहीणे, एए णं चत्तारि पया एगट्ठा, णाणाघोसा, णाणावंजणा, उप्पण्णपक्खस्स। छिज्ज-माणे छिण्णे, भिज्जमाणे भिण्णे, दड्ढमाणे दड्ढे, मिज्जमाणे मडे,

णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे, एए णं पंच पया णाणट्ठा, णाणाघोसा णाणावंजणा, विगयपक्खस्स ।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! एए-ये, णव-नौ, पया-पद, किं-क्या, एगट्ठा-एक अर्थ वाले हैं ? णाणाघोसा-नानाघोष वाले है ? णाणावंजणा-नाना व्यञ्जन वाले हैं ? उदाहु-अथवा, णाणट्ठा-नाना अर्थ वाले है ? णाणाघोसा-नाना घोष वाले है ? णाणा-वंजणा-नाना व्यञ्जन वाले है ?

गोयमा-हे गौतम ! चलमाणे चलिए-चलमान चलित, उदीरिज्जमाणे उदीरिए -उदीर्यमाण उदीरित, वेइज्जमाणे वेइए-वेद्यमान वेदित, पहिज्जमाणे पहीणे-प्रहीयमाण प्रहीण, एए णं *-ये, चत्तारि-चार, पया-पद, उप्पण्णपक्खस्स-उत्पन्न पक्ष की अपेक्षा से, एगट्ठा-एकार्थक हैं, णाणाघोसा-नाना घोष वाले हैं, णाणावंजणा-नाना व्यञ्जन वाले हैं । छिज्जमाणे छिण्णे-छिद्यमान छिन्न, भिज्जमाणे भिण्णे-भिद्यमान भिन्न, डज्झमाणे डड्ढे -दह्यमान दग्ध, मिज्जमाणे मडे-म्रियमाण मृत, णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे-निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण, एए-ये, पंच-पांच, पया-पद, विगयपक्खस्स-विगत पक्ष की अपेक्षा, णाणट्ठा-नाना अर्थ वाले, णाणाघोसा-नाना घोषवाले और णाणावंजणा-नाना व्यञ्जन वाले हैं ।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन् ! ये नौ पद क्या एक अर्थ वाले, नाना प्रकार के घोष वाले और नाना प्रकार के व्यञ्जन वाले हैं ? अथवा नाना अर्थ वाले, नानाघोष वाले और विविध प्रकार के व्यञ्जन वाले है ?

उत्तर-हे गौतम ! चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीयमाण प्रहीण, ये चार पद उत्पन्न पक्ष की अपेक्षा से एकार्थक हैं, नाना घोष वाले हैं.और नाना व्यञ्जन वाले हैं ।

छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण, ये पांच पद विगत पक्ष की अपेक्षा नाना अर्थ वाले, नाना घोषवाले और नाना व्यञ्जन वाले हैं ।

विवेचन-पहले 'चलमाणे चलिए' इत्यादि नौ पद कहे गये हैं, उनके विषय में अब गौतम स्वामी का पूछना यह है कि इन पदों मे घोष और व्यञ्जन तो अलग अलग हैं, किंतु

* 'णं' यह अव्यय है और वाक्यालङ्कार मे आता है । इसका स्वतन्त्र अलग कोई अर्थ नही है ।

क्या इनका अर्थ भी भिन्न भिन्न है, या एक ही है, अर्थात् ये पद एकार्थक हैं, या भिन्नार्थक ?

एकार्थक पद दो प्रकार के होते हैं-प्रथम तो एक ही विषय को प्रतिपादन करने वाले शब्द एकार्थक कहलाते हैं। दूसरा-जिन पदों का अर्थ (तात्पर्य) एक हो वे भी एकार्थक कहलाते हैं।

घोष तीन प्रकार के होते है-उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। जो उच्च स्वर से बोला जाय उसे उदात्त कहते हैं। जो नीचे स्वर से बोला जाय उसे अनुदात्त कहते हैं। जो न तो विशेष ऊँचे स्वर से बोला जाय और न विशेष नीचे स्वर से बोला जाय, किन्तु मध्यम स्वर से बोला जाय उसे स्वरित कहते हैं।

शास्त्रकार ने एकार्थक और नानार्थक की एक चौभंगी बतलाई है। वह इस प्रकार है-

(१) समानार्थक समान व्यञ्जन।
(२) समानार्थक भिन्न व्यञ्जन।
(३) भिन्नार्थक समान व्यञ्जन।
(४) भिन्नार्थक भिन्न व्यञ्जन।

कई पद समान अर्थ वाले और समान व्यञ्जन (अक्षर) वाले एवं समान घोष वाले होते हैं। जैसे क्षीर, क्षीर। इन दोनो पदों का अर्थ 'दूध' है और दोनो पदों में अक्षरों की भी समानता है। अतः यह 'समानार्थक समान व्यञ्जन' नामक पहला भंग है।

कई पद समान अर्थ वाले और भिन्न व्यञ्जन वाले होते है। जैसे-क्षीर, पयः। इन दोनों पदों का अर्थ 'दूध' है, किन्तु इनके व्यञ्जन (अक्षर) भिन्न भिन्न हैं। अतएव घोष भी भिन्न भिन्न है। यह दूसरा भग हुआ।

कई पद ऐसे होते हैं कि उनका अर्थ तो भिन्न भिन्न होता है, किन्तु व्यञ्जन समान होते है। जैसे अर्क-क्षीर (आक का दूध) और गोक्षीर (गाय का दूध)। इन पदो में क्षीर शब्द समान व्यञ्जन वाला है, किन्तु उसका अर्थ भिन्न भिन्न है। अतः यह तीसरा भंग हुआ।

कई पद ऐसे होते हैं कि जिनका अर्थ भी भिन्न होता है और व्यञ्जन भी भिन्न होता है। घट (घड़ा) पट (कपड़ा) लकुट (लकड़ी) आदि। इन शब्दों का अर्थ भी भिन्न है और व्यञ्जन भी भिन्न हैं। यह चौथा भग हुआ।

गौतम स्वामी ने प्रश्न करते हुए यहाँ चौभगी के दूसरे और चौथे भंग को ग्रहण किया है। पहले और तीसरे भग का इन नौ पदों मे समावेश नही होता है, क्योंकि इन नौ

पदों के व्यञ्जन भिन्न भिन्न हैं, यह स्पष्ट दिखाई देता है ।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने फरमाया है कि 'चलमाणे चलिए' आदि चार पद उत्पन्न पक्ष की अपेक्षा एकार्थक है, एवं नाना वर्ण वाले व नानाघोष वाले है। आगे के पांच पद भिन्नार्थक, भिन्न घोष और भिन्न व्यञ्जन वाले हैं ।

'चलमाणे चलिए' आदि चार पदों का अर्थ उत्पाद पर्याय की अपेक्षा एक है, क्योंकि क्रमयुक्त होते हुए भी ये चारो एक सरीखे काल वाले होते हैं। एक ही अन्तर्मुहूर्त में चलन क्रिया, उदीरणा क्रिया, वेदनाक्रिया और प्रहीण क्रिया भी हो जाती है । इन चारों की स्थिति एक ही अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार तुल्य काल की अपेक्षा से भी ये चार पद एकार्थक है । अथवा ये चारों पद एक ही कार्य को उत्पन्न करते है, अर्थात् केवलज्ञान को प्रकट करते है । इसलिए एक कार्य के कर्त्ता होने से वे एकार्थक कहे जाते हैं ।

इन नौ पदों मे कर्म का विचार किया गया है और कर्म का नाश होने पर दो फल उत्पन्न होते हैं-पहला केवलज्ञान और दूसरा मोक्ष प्राप्ति । पहले के चार पद मिलकर केवलज्ञान को उत्पन्न करते हैं । ये चारों पद आत्मप्रदेशों से कर्मों को हटा देते है। कर्मो के हट जाने से-क्षय हो जाने से केवलज्ञान प्रकट होता है । केवलज्ञान की उत्पत्ति पक्ष को लेकर ही इन चारों पदों को एकार्थक वतलाया गया है । इनमे पहला पद 'चलमाणे चलिए' है । वह केवलज्ञान की प्राप्ति में यह काम करता है कि इससे कर्म उदय में आने के लिए चलित होते है । कर्म का उदय दो प्रकार से होता है-स्थिति परिपाक से और उदीरणा से । स्थिति परिपाक होने पर कर्म जो अपना फल देता है वह उदय कहलाता है । और अध्यवसाय विशेष से या तपस्या आदि क्रियाओं के द्वारा जो कर्म-स्थिति परिपाक से पहले ही उदय में लाये जाते हैं, उसे उदीरणा कहते हैं । दोनो ही जगह उदय तो समान ही है, किन्तु एक जगह स्थिति का परिपाक होता है और दूसरी जगह नहीं । उपरोक्त दोनों प्रकार से उदय मे आये हुए कर्मो के अनुभव को 'वेदन' कहते है । जिस कर्म के फल का अनुभव हो गया वह कर्म नष्ट हो जाता है, अर्थात् आत्मप्रदेशों से पृथक् हो जाता है । इसे कर्म का 'प्रहीण' होना कहते हैं ।

इस प्रकार ये चारों पद कर्मो को आत्मप्रदेशों से हटा देते हैं, तब केवलज्ञान प्रकट होता है । केवलज्ञान के इस उत्पन्न पक्ष को ग्रहण करके ही इन चारों पदों को एकार्थक कहा है ।

किन्ही आचार्यो का अभिप्राय इस प्रकार है कि ये चारो पद स्थिति वन्ध आदि विशे-

षता से रहित होने से अर्थात् सामान्य कर्म के आश्रित होने से एकार्थक हैं और केवलज्ञान की उत्पत्ति के साधक हैं। एक अन्तर्मुहूर्त में ही ये केवलज्ञान की उत्पत्ति के लिए व्यापार करते है। अतएव इन्हें एकार्थक कहा गया है।

इन पहले के चार पदों को एकार्थक कह देने से पिछले पांच पद अनेकार्थ (नानार्थ) हैं, यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है। फिर भी अल्पबुद्धि वालो को भी तत्त्व अच्छी तरह समझ में आजाय इस अपेक्षा से पिछले पांच पद अनेकार्थ है, यह बात अलग कही गई है।

'छिज्जमाणे छिण्णे' आदि पांच पद विगत पक्ष की अपेक्षा से अनेकार्थक है। 'छिज्जमाणे छिण्णे' यह पद कर्मों की स्थिति की अपेक्षा से है। केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाने के बाद तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली, जब अयोगी केवली होने वाले होते हैं अर्थात् मन, वचन, काया के योगों को रोक कर अयोगी अवस्था मे पहुचने के उन्मुख होते हैं, तब वेदनीय कर्म, नामकर्म और गोत्रकर्म की जो प्रकृति शेष रहती है उसकी लम्बे काल की स्थिति को अपवर्तन करण द्वारा अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बना डालते है अर्थात् लम्बी स्थिति को छोटी कर लेते हैं। यह कर्मो का 'छेदन' करना कहलाता है। कर्मों की स्थिति को कम करने के साथ ही वे कर्मो के रस को भी कम कर डालते हैं। कर्मों के रस को कम करना 'भेदन' कहलाता है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली स्थितिघात के साथ रस-घात भी करते हैं।

यद्यपि कर्म-स्थिति और कर्म-रस का नाश एक ही साथ होता है, तथापि स्थिति के खण्ड अलग हैं और रस के खण्ड अलग हैं। स्थिति के खण्डों से रस के खण्ड अनन्तगुणा है। इस कारण 'छिज्जमाण' और 'भिज्जमाण' पदों का अर्थ अलग अलग है। 'छिज्जमाण' यह पद स्थिति खण्ड की अपेक्षा है और 'भिज्जमाण' यह पद रसखण्ड की अपेक्षा है। तीसरा पद 'डज्झमाणे दड्ढे' है। यह प्रदेशबन्ध की अपेक्षा से है। कर्म के प्रदेशों का घात होना कर्म का दाह कहलाता है। अनन्तानन्त कर्म प्रदेशों को अकर्म रूप मे परिणत कर देना कर्म का 'दाह' करना कहलाता है।

प्रदेशो का अर्थ है 'कर्म का दल'। पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण काल जितने परि-माण वाली और असंख्यात समय युक्त गुणश्रेणी की रचना द्वारा कर्म प्रदेश का क्षय किया जाता है। यद्यपि यह गुणश्रेणी पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण काल के बराबर काल वाली है, किन्तु इतने से काल में ही असंख्यात समय हो जाते हैं। तेरहवें गुणस्थान से इस गुण-श्रेणी की रचना होती है। इस गुणश्रेणी द्वारा पूर्व रचित और प्रथम समय से प्रारम्भ

करके यावत् अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय क्रम से असंख्यात गुणवृद्ध कर्म पुद्गलों के दहन को 'दाह' कहते हैं। यह 'दाह' शैलेशी अवस्था में होने वाले शुक्ल-ध्यान के चतुर्थ पाद (चौथा पाया) समुच्छिन्न-क्रिया-अप्रतिपाती नामक ध्यानाग्नि द्वारा होता है।

पहले समय मे जितने कर्म पुद्गल दग्ध होते है उससे असंख्यातगुणा दूसरे समय में दग्ध होते हैं। इस प्रकार तीसरे समय में दूसरे समय की अपेक्षा असंख्यातगुणा कर्मो को दग्ध किया जाता है। इस प्रकार दग्ध करने का क्रम बढता जाता है। इसका कारण यह है कि ज्यों ज्यों कर्म पुद्गल दग्ध होते जाते है त्यो त्यों ध्यानाग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित होती जाती है और वह अधिकाधिक कर्म पुद्गलो को दग्ध करती है।

इस प्रकार भिद्यमान और दह्यमान पदो का अर्थ अलग अलग है।

चौथा पद है 'मिज्जमाणे मडे'। इस पद से आयुकर्म के क्षय का निरूपण किया गया है। यद्यपि प्रत्येक ससारी प्राणी जन्म मरण करता है तथापि यहाँ पर वह अन्तिम मरण लिया गया है जो मोक्ष प्राप्त करने से पहले होता है। पहले बधे हुए आयु कर्म का क्षय हो जाय और नया आयुकर्म न बधे, यही मोक्ष का कारण है। 'आयुकर्म के पुद्गलो का क्षय करना मरण है,' इस अपेक्षा से इस पद का अर्थ अन्य पदों से भिन्न है।

पांचवा पद है 'णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे' अपने समस्त कर्मों को अकर्म रूप में परिणत कर देना ही यहाँ 'निर्जरा' शब्द का अर्थ लिया गया है। यह स्थिति संसारी जीव ने कभी प्राप्त नही की है। उसने कभी कुछ कर्मपुद्गलो की निर्जरा की और कभी कुछ की, परन्तु समस्त कर्मों की निर्जरा कभी नही की। इसलिए यह स्थिति आत्मा के लिए अपूर्व है। अतएव इस पद का अर्थ अन्य पदों से भिन्न है। इस प्रकार अन्त के ये पांचो पद भिन्न भिन्न अर्थ वाले हैं।

'चलमाणे चलिए' आदि चार पदों से केवलज्ञान की उत्पत्ति रूप एक ही कार्य होता है। अत. वे एकार्थक कहे गये है। 'छिज्जमाणे छिण्णे' आदि अन्त के पांच पद 'विगत पक्ष' की अपेक्षा से भिन्न अर्थ वाले कहे गये हैं। 'विगत' का अर्थ है 'विनाश'। वस्तु की एक पर्याय का नाश होकर दूसरी पर्याय का उत्पन्न होना 'विनाश' है अर्थात् एक अवस्था से दूसरी अवस्था होना 'विनाश' कहलाता है। एकान्त नाश किसी भी वस्तु का नही हो सकता। इस प्रकार वस्तु विनाश की अपेक्षा से पाच पदो को भिन्नार्थक माना गया है।

प्रश्न यह था कि इस शास्त्र के प्रारम्भ मे 'चलमाणे चलिए' इत्यादि प्रश्न क्यों किये गये ? इस प्रश्न का उत्तर इस व्याख्या से हो गया कि केवलज्ञान की उत्पत्ति और

समस्त कर्मों के क्षय रूप मोक्ष का क्रम बतलाने के लिए इन नौ पदों की चर्चा की गई है। केवलज्ञान और मोक्ष दोनों ही परम मांगलिक हैं। अतः प्रारम्भ में इनकी चर्चा करना संगत ही है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने भी स्वरचित सम्मति तर्क ग्रंथ में इन नौ पदों के इसी अर्थ की पुष्टि की है।

किसी आचार्य का अभिप्राय है कि ये नौ पद सिर्फ कर्म के विषय में ही सीमित नहीं हैं अपितु ये वस्तु मात्र के लिए लागू होते हैं। पहले के चार पद उत्पत्ति के सूचक हैं और अन्त के पांच पद विनाश के सूचक हैं। इन्हें प्रत्येक विषय पर घटाया जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु उत्पाद और विनाश से युक्त है।

नारक जीवों की स्थिति आदि का वर्णन--

३ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! केवइयंकालं ठिई पण्णत्ता ?

३ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं,उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

४ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा ? पाणमंति वा ? ऊससंति वा ? णीससंति वा ?

४ उत्तर-जहा ऊसासपए।

५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ? आहारट्ठी ?

५ उत्तर-जहा पण्णवणाए पढमए आहारुद्देसए तहा भाणियव्वं।

गाहा-

ठिई उस्सासाऽऽहारे किं वाऽऽहारेंति सव्वओ वा वि।
कइभागं सव्वाणि व, कीस व भुज्जो परिणमंति ?

शब्दार्थ-**भंते**-हे भगवन् ! **णेरइयाणं**-नैरयिकों की, **ठिई**-स्थिति, **केवइयंकालं**-कितने काल की, **पण्णत्ता**-कही गई है अर्थात् उनका आयुष्य कितना होता है ?

गोयमा-हे गौतम ! **जहण्णेणं**-जघन्य से, **दस वाससहस्साइं**-दस हजार वर्ष की और, **उक्कोसेणं**-उत्कृष्ट, **तेत्तीसं**-तेतीस, **सागरोवमाइं**-सागरोपम की, **ठिई**-स्थिति, **पण्णत्ता**-कही गई है।

भंते-हे भगवन् ! **णेरइया**-नैरयिक, **केवइकालस्स**-कितने काल में, **आणमंति** श्वास लेते हैं ? और कितने काल में, **पाणमंति**-श्वास छोड़ते है अर्थात् कितने काल मे **ऊससंति**-उच्छ्वास लेते है और कितने काल मे, **णीससंति**-निःश्वास छोड़ते हैं ?

हे गौतम ! **जहा ऊसासपए**-जिस प्रकार उच्छ्वास पद मे कहा है वैसा जान लेना चाहिए।

भंते-हे भगवन् ! क्या, **णेरइया**-नैरयिक, **आहारट्ठी**-आहारार्थी-आहार के अभिलाषी होते है ?

हे गौतम ! **जहा**-जिस प्रकार, **पण्णवणाए**-प्रज्ञापना सूत्र के, **पढमए आहारुद्देसए**-आहार पद के प्रथम उद्देशक में कहा है, **तहा**-उसी तरह से, **भाणियव्वं**-कह देना चाहिए।

गाथा का शब्दार्थ इस प्रकार है-**ठिई**-नैरयिको की स्थिति, **उस्सास**-उच्छ्वास, **आहारे**-आहार विषयक कथन, **किं वा**-क्या, **आहारेंति**-वे आहार करते है ? **सव्वओ वा वि**-क्या वे सर्व आत्म-प्रदेशो से आहार करते है ? **कइभागं**-कौनसे भाग का आहार करते है ? **व**-अथवा **सव्वाणि**-सब आहारक द्रव्यो का आहार करते है ? और, **कीस**-आहारक द्रव्यों को किस रूप मे, **भुज्जो**-बारम्बार, **परिणमंति**-परिणमाते हैं ?

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उत्तर- हे गौतम ! जघन्य से दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक कितने काल में श्वास लेते हैं और कितने काल में श्वास छोड़ते हैं ? कितने काल में उच्छ्वास लेते है और कितने काल में निःश्वास छोड़ते हैं।

उत्तर-हे गौतम ! पन्नवणा सूत्र के उच्छ्वास पद के अनुसार समझना चाहिए।

प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव आहारार्थी हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! पन्नवणा सूत्र के अट्ठाईसवें आहार पद के पहले उद्देशे की तरह जानना चाहिए ।

गाथा का अर्थ-नैरयिक जीवों की स्थिति, उच्छ्वासों तथा आहार संबन्धी कथन करना चाहिए। नैरयिक क्या आहार करते हैं ? क्या वे समस्त प्रदेशों से आहार करते है ? वे कितने भाग का आहार करते हैं ? क्या वे समस्त आहारक द्रव्यों का आहार करते है ? और वे आहार के द्रव्यों को किस रूप में परिणमाते है ?

विवेचन-संसार में अनन्तानन्त प्राणी हैं । जगत्‌जीवो को उन सबका स्वरूप समझाने के लिए उनका वर्गीकरण (विभाग) करना आवश्यक है। वर्गीकरण किये बिना संसारी जीवों को उन सब का स्वरूप समझ में आना कठिन है । वर्गीकरण करने से उनका स्वरूप सुगमता से समझ में आ सकता है। इसलिए शास्त्रकारों ने संसार के समस्त प्राणियों का चौवीस विभागों में वर्गीकरण किया है । इन चौवीस विभागों को चोवीस दण्डक कहते हैं। वे इस प्रकार है-

नेरइया असुराई पुढवाई बेइंदियादओ चेव ।
पंचिदिय तिरिय नरा, वितर जोइसिय वेमाणी ॥

अर्थ-सात नरकों का एक दण्डक, असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्‌कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार, इन दस भवनपतियों के दस दण्डक, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकया और वनस्पतिकाय, इन पाच स्थावर के पांच दण्डक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, इन तीन विकलेन्द्रियो के तीन दण्डक, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक, वाणव्यन्तर देवो का एक दण्डक, ज्योतिषी देवों का एक दण्डक और वैमानिक देवों का एक दण्डक । क्रमशः ये चौवीस दण्डक है ।

इन चौवीस दण्डको मे से पहले प्रथम दण्डक नैरयिक× जीवों के विषय में कथन

× निरय-निर्-निर्गत, अय. इष्टफलरूप कर्म यस्मात् स निरय. । निरये भव. नैरयिक ।

अर्थ-नैरयिक शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ यह है कि जिनके पास से अच्छे फल देने वाले शुभ कर्म चले गये है, जो शुभ-कर्मों से रहित है ऐसे स्थान को 'निरय' कहते हैं। 'निरय' मे पैदा होने वाला 'नैरयिक' कहलाता है ।

किया जाता है। श्री गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया है कि हे भगवन् ! नरक योनि के जीवों की स्थिति† कितनी है ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने फरमाया कि-स्थिति दो प्रकार की होती है-जघन्य और उत्कृष्ट। कम से कम को जघन्य कहते है और अधिक से अधिक को उत्कृष्ट कहते है। जहाँ जघन्य और उत्कृष्ट होता है वहाँ मध्यम तो होता ही है यह तो स्वत. सिद्ध है।

जो जीव अशुभ कर्म बांधकर नरक योनि में जाते है, वे वहाँ कम से कम दस हजार वर्ष तक अवश्य रहते हैं। कोई भी नैरयिक जीव दस हजार वर्ष से पहले नरक से लौटकर नही आ सकता। इसी प्रकार जीव नरक मे अधिक से अधिक तेतीस सागरोपम+ तक रहता है। कोई भी जीव तेतीस सागरोपम से अधिक समय तक नरक मे नही रह सकता है।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी ने यह प्रश्न किया है कि-हे भगवन् ! क्या नरक के जीव श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? भगवान् ने इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' मे दिया है। तब गौतम स्वामी ने पूछा कि-नरक के जीव कितने समय में श्वासोच्छ्वास लेते है? इसका उत्तर यह

† स्थिति-आयुकर्म के पुद्गलो के रहने की मर्यादा को स्थिति कहते हैं अर्थात् आयु को स्थिति कहते हैं।

+ सागरोपम किसे कहते है ? यह जान लेना आवश्यक है। यह सख्या लोकोत्तर है। अको द्वारा प्रकट नही की जा सकती। अत उसे समझाने का उपाय उपमा है। उपमा द्वारा ही इसे बताया गया है। इसीलिए इसे 'उपमा सख्या' कहते हैं। और इसी कारण 'सागर' शब्द न कहकर 'सागरोपम' शब्द का व्यवहार किया है। जीवो के आयुष्य परिमाण मे सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सागरोपम काम मे आते है। उसका स्वरूप इस प्रकार है-

कल्पना कीजिये-उत्सेधागुल से चार कोस लम्बा और चार कोस चौडा तथा चार कोस गहरा (ऊडा) एक गोल कुँआ हो। देवकुरु, उत्तरकुरु के युगलिया के एक दिन से लेकर सात दिन के बढे हुए बाल (केश) लिये जावे। युगलिया के वाल अपने बालो से ४०९६ गुने सूक्ष्म होते है। उन वालों के असख्य खण्ड किये जावे, जो चर्म चक्षुओ से दिखाई दिये जाने वाले टुकडो से असख्य गुने छोटे हो अथवा सूर्य की किरणो मे जो रज दिखाई देती है उससे असख्य गुने छोटे हो। ऐसे टुकडे करके उस कुए मे ठसाठस भर दिये जावे। सौ सौ वर्ष व्यतीत होने पर एक एक टुकड़ा निकाला जाय। इस प्रकार निकालते निकालते जब वह कुआ खाली हो जाय तब एक सूक्ष्म अद्धापल्योपम होता है। जब ऐसे दस कोडाकोडी कुएं खाली हो जाय तब एक सूक्ष्म अद्धा सागरोपम होता है। एक करोड को एक करोड से गुणा करने से जो गुणनफल आता है, वह कोडाकोडी कहलाता है। ऐसे तेतीस सागरोपम की (अर्थात् ३३० कोडाकोडी पल्योपम की) नरक की उत्कृष्ट स्थिति है। यह आत्मा ऐसी स्थिति मे अनेक बार रह आया है।

दिया गया कि पन्नवणा सूत्र के उच्छ्वास पद नामक सातवें पद में जैसा वर्णन किया गया है वैसा ही यहाँ भी जान लेना चाहिए।

इस प्रश्नोत्तर में 'आणमंति पाणमंति' शब्द आये है। इनका क्रमशः अर्थ है–श्वास लेना और श्वास छोड़ना। शरीर के भीतर हवा खीचने को 'आणमन' (श्वास लेना) कहते है और हवा को शरीर से बाहर निकालने को 'प्राणमन' (श्वास छोड़ना) कहते है। इन दोनों पदों को स्पष्ट करने के लिए इसी प्रश्नोत्तर मे 'ऊससति णीससंति' पद दिये हैं। जो अर्थ 'आणमंति पाणमंति' का है, वही अर्थ 'ऊससंति णीससंति' का है।

किसी किसी आचार्य के मत से श्वासोच्छ्वास दो प्रकार के होते हैं–आध्यात्मिक (आन्तरिक) श्वासोच्छ्वास और बाह्य श्वासोच्छ्वास। आध्यात्मिक (आन्तरिक) श्वासोच्छ्वास को 'आणमन' और 'प्राणमन' कहते है और बाह्य श्वासोच्छ्वास को उच्छ्वास और निःश्वास कहते हैं।

पन्नवणा सूत्र में कहा गया है कि नैरयिक जीव निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं। क्योंकि वे अत्यन्त दुःखी हैं। जो अत्यन्त दुःखी होता है, वह निरन्तर श्वास लेता है और छोड़ता है।

गौतम स्वामी ने नैरयिक जीवों के आहार के विषय में प्रश्न किया। जिसका उत्तर भगवान् ने यह दिया कि–नैरयिक जीव आहारार्थी हैं। उनका आहार दो प्रकार का है–आभोगनिर्वर्तित और अनाभोग निर्वर्तित। "मैं आहार करता हूँ" इस प्रकार इच्छापूर्वक जो आहार लिया जाता है, वह 'आभोग निर्वर्तित' कहलाता है। 'मैं आहार करूँ', इस प्रकार की इच्छा के बिना ही जो आहार होता है, वह 'अनाभोग निर्वर्तित' कहलाता है। जैसे वर्षाकाल में मूत्र अधिक लगता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि शरीर में शीत पुद्गलों का प्रवेश अधिक हुआ है। जिस प्रकार उन शीत पुद्गलों का आहार इच्छा बिना हुआ है, उसी प्रकार नैरयिक जीवो के अनाभोग निर्वर्तित आहार भी होता है। यह आहार तो निरन्तर–प्रतिक्षण होता रहता है। एक समय भी ऐसा व्यतीत नही होता जब यह आहार न होता हो। यह आहार बुद्धिपूर्वक–सकल्प द्वारा नही रोका जा सकता है। जो आहार इच्छा पूर्वक होता है, उस आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा कम से कम असंख्यात समय मे होती है। यहाँ असंख्यात समय, एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जानना चाहिए, अर्थात् नैरयिक जीवों को अन्तर्मुहूर्त मे आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा होती है। इतने समय तक नैरयिक जीवो की भूख मिटी रहती हो, सो बात नही है, क्योंकि नैरयिक जीवो को कभी तृप्ति होती ही नही

है। वे एक बार जो आहार करते है, उससे उनको इतना तीव्र दुःख होता है कि जिससे वे अन्तर्मुहूर्त के पहले आहार की इच्छा नही करते है।

६ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया ? आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया ? अणाहारिया आहारिज्जस्समाणा पोग्गला परिणया ? अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा पोग्गला परिणया ?

६ उत्तर-गोयमा ! णेरइयाणं पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया। आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया, परिणमंति य। अणाहारिया आहारिज्जस्समाणा पोग्गला णो परिणया, परिणमिस्संति। अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा पोग्गला णो परिणया णो परिणमिस्संति।

७ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला चिया ? पुच्छा।

७ उत्तर-जहा परिणया तहा चिया वि, एवं उवचिया वि, उदीरिया, वेइया, णिज्जिण्णा।

गाहा-

परिणया चिया य उवचिया, उदीरिया वेइया य णिज्जिण्णा।
एक्केकम्मि पदम्मि, चउव्विहा पोग्गला होंति।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! क्या, णेरइयाणं-नैरयिक जीवों के, पुव्वाहारिया-पहले

आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, परिणया-परिणत हुए है ? क्या, आहारिया-आहार किये हुए और, आहारिज्जमाणा-आहार किये जाते हुए, पोग्गला-पुद्गल, परिणया-परिणत हुए है ? अणाहारिया-अनाहारित-आहार नही किये हुए तथा, आहारिज्जस्समाणा-आगे जो आहार रूप में ग्रहण किये जावेंगे वे, पोग्गला-पुद्गल परिणया-परिणत हुए हैं ? अणाहारिया-क्या अनाहरित-जो आहार नही किये गये हैं वे और, अणाहारिज्जस्समाणा -जो आगे भी आहार रूप से ग्रहण नही किये जावेंगे वे, पोग्गला-पुद्गल, परिणया -परिणत हुए है ?

गोयमा-हे गौतम ! १ णेरइयाणं-नैरयिक जीवो के, पुव्वाहारिया-पहले आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, परिणया-परिणत हुए हैं । (२) आहारिया-आहार किये हुए पुद्गल, परिणया-परिणत हुए है और आहारिज्जमाणा-आहार किये जाते हुए पुद्गल, परिणमंति-परिणत होते हैं । (३) अणाहारिया-अनाहारित-आहार नहीं किये हुए, पोग्गला -पुद्गल, णो परिणया-परिणत नही हुए है, और आहारिज्जस्समाणा-जो पुद्गल आहार रूप से ग्रहण किये जावेंगे वे, परिणमिस्संति-परिणत होगे । (४) अणाहारिया-अनाहारित -जो आहार नही किये गये वे पुद्गल, णो परिणया-परिणत नही हुए हैं,और अणाहारिज्जिस्समाणा-जो पुद्गल आहार नही किये जावेगे वे, णो परिणमिस्संति-परिणत नही होंगे ।

७ भंते-हे भगवन् ! क्या, णेरइयाणं-नैरयिक जीवों के, पुव्वाहारिया-पहले आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, चिया-चय को प्राप्त हुए है ? पुच्छा-इत्यादि रूप से प्रश्न करना चाहिए ।

जहा-जैसे, परिणया-परिणत का कहा, तहा-वैसे ही, चिया वि-चय का भी कहना चाहिए, एवं-इसी तरह, उवचिया-उपचित, उदीरिया-उदीरित, वेइया-वेदित और णिज्जिण्णा-निर्जीर्ण का भी कह देना चाहिए ।

गाथा का शब्दार्थ इस प्रकार है-

परिणय-परिणत, चिया-चित, उवचिया-उपचित, उदीरिया-उदीरित, वेइया-वेदित, य-और, णिज्जिण्णा-निर्जीर्ण, एक्केक्कम्मि-इन एक एक, पयम्मि-पद में, चउव्विहा-चार चार प्रकार के, पोग्गला-पुद्गल विषयक प्रश्न और उत्तर, होंती-होते है ।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नारकी जीवों के पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए है ? क्या आहार किये हुए तथा वर्तमान में आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत हुए है ? क्या जो पुद्गल आहार नहीं किये गये हैं वे और जो आगे आहार रूप में ग्रहण किये जावेंगे वे परिणत हुए है ? क्या जो

पुद्गल आहार रूप से ग्रहण नहीं किये गये हैं और आगे भी आहार रूप से ग्रहण नहीं किये जावेंगे वे पुद्गल परिणत हुए हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! (१) नारकी जीवों के पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं। (२) आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं और आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत होते हैं। (३) अनाहारित अर्थात् जो पुद्गल आहार रूप से ग्रहण नहीं किये गये हैं वे परिणत नहीं हुए हैं और जो पुद्गल आगे आहार रूप से ग्रहण किये जावेंगे वे परिणत होंगे। (४) अनाहारित–जो पुद्गल आहार रूप से ग्रहण नहीं किये गये हैं वे परिणत नहीं हुए हैं और जो पुद्गल आगे आहार रूप से ग्रहण नहीं किये जायेंगे वे परिणत नहीं होंगे।

७ हे भगवन् ! क्या नारकी जीवों के पहले आहार किये हुए पुद्गल चित अर्थात् चय को प्राप्त हुए हैं ?

जिस प्रकार 'परिणत' का कहा उसी प्रकार चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण का भी कह देना चाहिए।

परिणत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण, इस एक एक पद में पुद्गल विषयक चार चार प्रकार के प्रश्नोत्तर होते हैं।

विवेचन–यहाँ नैरयिक जीवो के आहार के विषय मे चार प्रश्न किये गये हैं। उनका आशय इस प्रकार है–

(१) पूर्वकाल में ग्रहण किये हुए या आहार किये हुए पुद्गल क्या शरीर रूप में परिणत हुए है ?

(२) क्या भूतकाल में ग्रहण किये हुए और वर्त्तमान काल में ग्रहण किये जाते हुए पुद्गल शरीर रूप में परिणत हुए है ?

(३) भूतकाल में जिन पुद्गलो का आहार नही किया है, किन्तु भविष्य काल में जिनका आहार किया जायगा, वे पुद्गल क्या शरीर रूप मे परिणत हुए हैं ?

(४) भूतकाल मे जिन पुद्गलो को आहार रूप से ग्रहण नही किया है और भविष्यकाल मे भी आहार रूप से ग्रहण नही किया जायगा, क्या वे पुद्गल शरीर रूप मे परिणत हुए हैं ?

पूर्वकाल में जिन पुदगलो का आहार किया गया हो या सग्रह किया गया हो उन्हें

आहृत या आहारित कहते है। संग्रह करना और खाना दोनों ही आहार हैं।

'पुद्गल' शब्द को यहाँ 'पुद्गलस्कन्ध' समझना चाहिए, परमाणु नही। 'परिणत' शब्द का अर्थ है-शरीर के साथ एकमेक होकर शरीर रूप में हो जाना। आहार का परिणाम है-शरीर बनना। जो आहार शरीर के साथ एकमेक होकर शरीर रूप बन जाता है वह आहार परिणत हुआ या परिणाम को प्राप्त हुआ कहलाता है।

इन चार प्रश्नो के ६३ भग (भांगे) होते हैं। असंयोगी (एक एक पद से बोले जाने वाले) छह भंग है--(१) आहृत (२) आहरियमाण (३) आहरिष्यमाण (४)अनाहृत (५) अनाहरियमाण(६) अनाहरिष्यमाण। इन छह पदों के त्रेसठ भग होते है। प्रत्येक भंग मे एक एक प्रश्न उत्पन्न होता है। अतएव त्रेसठ भगों के त्रेसठ प्रश्न हो जाते हैं-द्विसंयोगी पन्द्रह भग होते हैं। जैसे कि--

(१) आहृत आहरियमाण(२) आहृत आहरिष्यमाण (३) आहृत अनाहृत (४) आहृत अनाहरियमाण(५) आहृत अनाहरिष्यमाण (६)आहरियमाण आहरिष्यमाण (७) आहरियमाण अनाहृत (८)आहरियमाण अनाहरियमाण (९)आहरियमाण अनाहरिष्यमाण (१०) आहरिष्यमाण अनाहृत (११) आहरिष्यमाण अनाहरियमाण(१२) आहरिष्यमाण अनाहरिष्यमाण (१३) अनाहृत अनाहरियमाण (१४) अनाहृत अनाहरिष्यमाण (१५) अनाहरियमाण अनाहरिष्यमाण।

इस प्रकार द्विसंयोगी (दो दो पदो को मिलाने से) पन्द्रह भंग होते हैं। त्रिसंयोगी बीस भंग होते हैं। चतुस्संयोगी पन्द्रह भंग होते है। पञ्चसयोगी छह भंग होते है। छह संयोगी एक भंग होता है। इस प्रकार कुल त्रेसठ भंग होते है।

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम! जिन पुद्गलों का भूतकाल मे आहार किया है वे भूतकाल में ही शरीर रूप में परिणत हो चुके है। ग्रहण करने के पश्चात् परिणमन होता है। अतएव पूर्वकाल में आहार किये हुए पुद्गल पूर्व काल मे ही परिणत हो गये।

इसी प्रश्न के अन्तर्गत दूसरे विकल्प (प्रश्न) मे भूतकाल के साथ वर्तमान काल सम्बन्धी प्रश्न किया गया है। उसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि जिन पुद्गलों का आहार हो चुका, वे पुद्गल शरीर रूप से परिणत हो चुके और जिन पुद्गलो का आहार हो रहा है वे परिणत हो रहे हैं।

इसी प्रश्न के अन्तर्गत तीसरे विकल्प मे भविष्यकाल सम्बन्धी प्रश्न किया गया है

जिसका उत्तर यह दिया गया है कि जिन पुद्गलों का आहार नही किया गया वे परिणत नही हुए, किन्तु जिन पुद्गलों का आहार किया जायगा वे पुद्गल भविष्य में परिणत होंगे।

इसी प्रश्न के अन्तर्गत चौथे विकल्प मे यह पूछा गया है कि जिन पुद्गलो का भूतकाल मे आहार नही किया गया है और आगे भी आहार नही किया जायगा, क्या वे पुद्गल शरीर रूप में परिणत हुए हैं ? इसका उत्तर यह है कि-ऐसे पुद्गल परिणत नहीं हुए और नही होंगे, जिनका ग्रहण ही नही हुआ उनका शरीर रूप मे परिणमन भी नही होगा।

पहले जो त्रेसठ भंग बतलाये गये है, उन सबका समाधान इसी आधार पर समझ लेना चाहिए।

आहार किये हुए पुद्गल जब शरीर के भीतर गये तो उनका चय, उपचय भी अवश्य होगा। इसीलिए गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि जीव ने जिन पुद्गलों का आहार किया, क्या वे पुद्गल चय को प्राप्त हुए ? इस तरह परिणमन के सम्बन्ध में जितने और जैसे प्रश्न किये गये है. वे सब प्रश्न चय के सम्बन्ध में भी समझ लेने चाहिए। इन सब प्रश्नों का उत्तर भी परिणमन सम्बन्धी उत्तरों के समान ही समझ लेना चाहिए।

जो पुद्गल आहार रूप से ग्रहण किये गये हैं उनका शरीर मे एकमेक होकर शरीर को पुष्ट करना चय कहलाता है। चय के भी परिणमन की तरह चार विकल्प (भंग) हैं। इन चारों विकल्पों का उत्तर परिणमन की तरह ही है।

परिणमन और चय में भेद है। पहले परिणमन होता है और उसके बाद चय होता है। इसलिए परिणमन और चय ये दोनो पृथक् पृथक् हैं।

चय के पश्चात् उपचय का कथन है। जो चय किया गया है, उसमें और और पुद्-गल इकट्ठे कर देना उपचय कहलाता है। जैसे ईंट पर ईंट चुनी गई यह सामान्य चुनाई कहलाई और फिर उस पर मिट्टी या चूना आदि का लेप किया गया, यह विशेष चुनाई हुई। इसी प्रकार सामान्य रूप से शरीर का पुष्ट होना चय कहलाता है और विशेष रूप से पुष्ट होना उपचय कहलाता है।

कर्म पुद्गलो का स्वाभाविक रूप से उदय मे न आकर, करण विशेष के द्वारा उदय में आना 'उदीरणा'* कहलाता है अर्थात् प्रयोग के द्वारा कर्म का उदय में आना 'उदीरणा' है।

---

* 'जं करणेणाकड्डिय उदए दिज्जइ उदीरणा ऐसा' (कम्मपयडि चूर्णि)
अर्थ—करण विशेष के द्वारा खीचकर जो कर्म उदय में लाया जाता है वह 'उदीरणा' कहलाती है।

कर्म के फल को भोगना 'वेदना' है। जिस समय से कर्मफल का भोग आरंभ होता है और जिस समय तक भोगना जारी रहता है वह सब काल 'वेदना काल' कहलाता है।

कर्मों का एक देश से क्षय होना 'निर्जरा' है। जिस कर्म का फल भोग लिया जाता है वह कर्म क्षीण हो ज ता है। उसका क्षीण हो जाना 'निर्जरा' है।

चय, उपचय, उदीरणा, वेदना और निर्जरा, इन सबके विषय में 'परिणमन' के समान ही वक्तव्यता है। 'परिणमन' के समान प्रश्न, उत्तर और भंग समझने चाहिए। सिर्फ इतनी विशेषता है कि-परिणत के स्थान पर 'चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण' शब्दो का प्रयोग करना चाहिए।

भेद चयादि सूत्र

८ प्रश्न- णेरइयाणं भंते! कइविहा पोग्गला भिज्जंति?

८ उत्तर- गोयमा! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला भिज्जंति, तंजहा-अणू चेव बायरा चेव।

९ प्रश्न- णेरइयाणं भंते! कइविहा पोग्गला चिज्जंति?

९ उत्तर- गोयमा! आहार दव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला चिज्जंति, तंजहा-अणू चेव बायरा चेव। एवं उवचिज्जंति।

१० प्रश्न- णेरइयाणं भंते! कइविहा पोग्गला उदीरेंति?

१० उत्तर-गोयमा! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहे पोग्गले उदीरेंति, तंजहा-अणू चेव बायरा चेव। सेसा वि एवं चेव भाणियव्वा-वेदेंति णिज्जरेंति। उव्वट्टिंसु उव्वट्टेंति उव्वट्टिस्संति। संकामिंसु, संकामेंति, संकामिस्संति। णिहत्तिंसु णिहत्तेंति णिहत्तिस्संति। णिकायिंसु णिकायिंति णिकायिस्संति। सव्वेसु वि कम्म-

दव्ववग्गणमहिकिच्च । गाहा-

भेदिय चिया उवचिया, उदीरिया वेइया य णिज्जिण्णा ।
उव्वट्टण संकामण, णिहत्तण णिकायणे तिविहकालो ॥

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! णेरइयाणं-नैरयिकों के द्वारा, कइविहा-कितने प्रकार के, पोग्गला-पुद्गल, भिज्जंति-भेदे जाते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! कम्मदव्ववग्गणं-कर्म द्रव्य वर्गणा की, अहिकिच्च-अपेक्षा से, दुविहा-दो प्रकार के, पोग्गला-पुद्गल, भिज्जंति-भेदे जाते हैं । तंजहा-वे इस प्रकार हैं-अणू-अणु-सूक्ष्म, चेव-और, बायरा-बादर-स्थूल ।

भंते-हे भगवन् ! णेरइयाणं-नैरयिक जीव, कइविहा-कितने प्रकार के, पोग्गला-पुद्गलों का, चिज्जंति-चय करते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! आहार दव्ववग्गणं-आहार द्रव्य वर्गणा की, अहिकिच्च-अपेक्षा से, दुविहा-दो प्रकार के, पोग्गला-पुद्गलों का, चिज्जंति-चय करते है । तंजहा-वे इस प्रकार हैं, अणू-अणु-सूक्ष्म, चेव-और, बायरा-बादर-स्थूल, एवं-इस तरह से दो प्रकार के पुद्गलों का, उवचिज्जंति-उपचय भी करते है ।

भंते हे भगवन् ! णेरइयाणं-नैरयिक जीव, कइविहा-कितने प्रकार के पोग्गला, पुद्गलों की, उदीरेंति-उदीरणा करते है ?

गोयमा-हे गौतम ! कम्मदव्ववग्गणं-कर्म द्रव्य वर्गणा की, अहिकिच्च-अपेक्षा से, दुविहे-दो प्रकार के, पोग्गले-पुद्गलों की, उदीरेंति-उदीरणा करते हैं । तंजहा-वे इस प्रकार हैं-अणू-अणु, चेव-और, बायरा-बादर ।

सेसा वि-शेष पद भी, एवं चेव-इसी प्रकार, भाणियव्वा-कहने चाहिये, वेदेंति-वेदते हैं, णिज्जरेंति-निर्जरा करते हैं । उव्वट्टिसु-उद्वर्तना अपवर्तना की, उव्वट्टेंति-उद्वर्तना अपवर्तना करते हैं । उव्वट्टिस्संति-उद्वर्तना अपवर्तना करेंगे । संकामिसु-संक्रमण किया, संकामेंति-सक्रमण करते है, संकामिस्संति-संक्रमण करेंगे । णिहत्तिसु-निधत्त किया, णिहत्तेंति-निधत्त करते हैं, णिहत्तिस्संति-निधत्त करेंगे । णिकायिंसु-निकाचित किया, णिकायिंति-निकाचित करते हैं, णिकायिस्संति-निकाचित करेंगे । सव्वेसु वि-इन सब पदों में भी, कम्मदव्ववग्गणं-कर्म द्रव्य वर्गणा की, अहिकिच्च-अपेक्षा से अणु और बादर पुद्-

गलों का कथन करना चाहिये।

गाथा का शब्दार्थ-भेदिय-भिदे, चिया-चय को प्राप्त हुए, उवचिया-उपचय को प्राप्त हुए, उदीरिया-उदीरणा को प्राप्त हुए, वेइया-वेदे गये, य-और, णिज्जिण्णा-निजीर्ण हुए। उव्वट्टण-उद्वर्तन अपवर्तन, संकामण-संक्रमण, णिहत्तण-निधत्तन और, णिकायणे -निकाचन, इन चार पदों में, तिविहकालो-भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल कहने चाहिए।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! नैरयिक जीवों द्वारा कितने प्रकार के पुद्गल भेदे जाते है?

उत्तर-हे गौतम! कर्म द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा दो प्रकार के पुद्गल भेदे जाते है। वे इस प्रकार है-अणु और बादर।

९ प्रश्न-हे भगवन्! नैरयिक जीव कितने प्रकार के पुद्गलों का चय करते है?

९ उत्तर-हे गौतम! आहार द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के पुद्गलों का चय करते है। वे इस प्रकार है-अणु और बादर। इसी तरह से दो प्रकार के पुद्गलों का उपचय भी करते है?

१० प्रश्न-हे भगवन्! नैरयिक जीव कितने प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा करते है?

१० उत्तर-हे गौतम! कर्म-द्रव्य-वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा करते है। वे इस प्रकार है-अणु और बादर।

शेष पद भी इसी प्रकार कहने चाहिए-वेदते है और निर्जरा करते है। उद्वर्तना अपवर्तना की, उद्वर्तना अपवर्तना करते है, उद्वर्तना अपवर्तना करेंगे। संक्रमण किया, संक्रमण करते हैं, संक्रमण करेंगे। निधत्त किया, निधत्त करते है, निधत्त करेंगे। निकाचित किया, निकाचित करते है, निकाचित करेंगे। इन सब पदों में भी कर्म-द्रव्य-वर्गणा की अपेक्षा से अणु और बादर पुद्गलों का कथन करना चाहिए।

गाथा का भावार्थ इस प्रकार है-भिदे, चय को प्राप्त हुए, उपचय को

प्राप्त हुए, उदीरणा को प्राप्त हुए, वेदे गये और निर्जीर्ण हुए। उद्वर्तन अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और णिकाचन, इन चार पदों में भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल कहने चाहिए।

विवेचन-नरक के जीव पुद्गल का आहार करते है। यह बात बतलाई जा चुकी है। पुद्गल का अधिकार होने से अब पुद्गल का कथन किया जाता है-

गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि-हे भगवन् ! नारकी जीव कितने प्रकार के पुद्गलों को भेदते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् फरमाते हैं कि-हे गौतम ! कर्म द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के पुद्गलो को नारकी जीव भेदते है। वे दो प्रकार के पुद्गल ये है-अणु (सूक्ष्म) और बादर (स्थूल) अर्थात् अपनी अपनी वर्गणा की अपेक्षा छोटे और बड़े।

सामान्य रूप से पुद्गलों मे तीन प्रकार का रस होता है-तीव्र, मध्यम और मन्द। यहाँ भेदने का अर्थ है-इन रसों में परिवर्तन करना। जीव अपने उद्वर्तना करण (अध्यवसाय विशेष) द्वारा मन्द रस वाले पुद्गलो को मध्यम या तीव्र रस वाले और मध्यम रस वाले पुद्गलों को तीव्र रस वाले बना डालता है। उसी प्रकार अपवर्तनाकरण (अध्यवसाय विशेष) द्वारा तीव्र रस वाले पुद्गलो को मध्यम या मन्द रस वाले और मध्यम रस वाले पुद्गलो को मन्द रस वाले बना डालता है। जीव अपने अध्यवसाय द्वारा ऐसा परिवर्तन करने मे समर्थ है।

समान जाति वाले द्रव्य के समूह को वर्गणा कहते है। द्रव्य वर्गणा औदारिक आदि द्रव्यों की भी होती है, किन्तु उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है। उन औदारिक आदि द्रव्य वर्गणाओं का ग्रहण न हो, इसीलिए मूल मे 'कम्मदव्ववग्गण' पद दिया है। इस पद से सिर्फ कार्मण द्रव्यो की वर्गणा का ही ग्रहण होता है और औदारिक वर्गणा, तैजस वर्गणा आदि दूसरी वर्गणाओ का निषेध हो जाता है। कर्म द्रव्य वर्गणा का अर्थ है-कार्मण जाति के पुद्गलों का समूह। वास्तव में कार्मण जाति के पुद्गलो में ही यह धर्म है कि वे तीव्र रस से मध्यम और मन्द रस वाले तथा मन्द रस से मध्यम और तीव्र रस वाले हो सकते हैं। इसीलिए यहाँ अन्य वर्गणाओ को छोडकर कार्मण द्रव्य वर्गणा को ही ग्रहण किया गया है।

यहाँ कर्म द्रव्यो को अणु और बादर बताया गया है, सो इनका अणुत्व (सूक्ष्मता) और बदरत्व (स्थूलता) कर्म द्रव्यों की अपेक्षा ही समझना चाहिए। क्योंकि औदारिक

आदि द्रव्यों में कर्म द्रव्य ही सूक्ष्म है। यद्यपि कर्म वर्गणा चतुःस्पर्शी है और वह हमें दिखाई नहीं देती, तथापि ज्ञानीजन उसे देखते हैं और उनमें अणुत्व और बादरत्व का भी भेद देखते हैं। उन दिव्य ज्ञानियों की अपेक्षा ही कर्म द्रव्य को अणु और बादर कहा गया है।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी पूछते हैं कि हे भगवन् ! नारकी जीव कितने प्रकार के पुद्गलों का चय करते हैं ?

भगवान् फरमाते हैं कि-हे गौतम ! आहार द्रव्य की अपेक्षा अणु और बादर इन दो प्रकार के पुद्गलों का चय करते हैं। यहाँ अणु का अर्थ 'छोटा' करना चाहिए। आहार के कई पुद्गल छोटे होते हैं और कई मोटे होते हैं।

चय की तरह उपचय का भी कथन कर देना चाहिए। शरीर का आश्रय लेकर ही चय और उपचय होता है। आहार द्वारा शरीर का पुष्ट होना चय कहलाता है और विशेष पुष्ट होना उपचय कहलाता है। शरीर का चय, उपचय आहार द्रव्य से ही होता है, दूसरे द्रव्य से नहीं। इसीलिए चय और उपचय के आलापक में 'आहारदव्ववग्गणमहि-किच्च' ऐसा पाठ दिया है अर्थात् आहार द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा से शरीर में चय, उपचय होता है।

कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा उदीरणा, वेदना और निर्जरा भी दो ही प्रकार के पुद्-गलों की होती है-अणु और बादर की।

फिर गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! नारकी जीवों ने कितने प्रकार के पुद्गलों का अपवर्तन * किया, अपवर्तन करते हैं और अपवर्तन करेंगे ?

भगवान् ने उत्तर दिया कि-हे गौतम ! कर्म-द्रव्य वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के कर्मपुद्गलों का अपवर्तन किया, अपवर्तन करते हैं और अपवर्तन करेंगे-अणु और बादर का। अपवर्तन के साथ उपलक्षण से 'उद्वर्तन' का भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

अध्यवसाय विशेष के द्वारा कर्म की स्थिति आदि को कम करना अपवर्तना करण

---

* यहाँ अहमदाबाद वाली प्रति मे 'उयट्टिसु उयट्टेंति उयट्टिस्सति' ऐसा पाठ दिया है और 'आगमोदय समिति' द्वारा प्रकाशित प्रति मे 'उवट्टिसु उव्वट्टेंति उव्वट्टिस्सति' ऐसा पाठ दिया है। हमारी समझ से इन तीनो कालो के रूपो में एक रूपता रहनी चाहिए। अतः ऐसा पाठ ठीक प्रतीत होता है-'उव्वट्टिसु उव्वट्टेंति उव्वट्टिस्सति'। जिसका अर्थ टीकाकार ने किया है-'अपवर्तन किया, अपवर्तन करते हैं, अपवर्तन करेंगे'। ऐसा अपवर्तन अर्थ करके उपलक्षण से उद्वर्तन का ग्रहण किया है। ऐसा अर्थ शब्दार्थ और भावार्थ मे समझ लेना चाहिए।

हैं। और कर्म की स्थिति आदि की वृद्धि करना 'उद्वर्तना करण' है।

जिस प्रकार अपवर्तन उद्वर्तन के लिए कहा गया है उसी प्रकार संक्रमण, निधत्त और निकाचित के लिए भी कह देना चाहिए।

मूल प्रकृतियो से अभिन्न उत्तर प्रकृतियों का अध्यवसाय विशेष द्वारा एक का दूसरे रूप मे बदल जाना 'सक्रमण' कहलाता है। जैसा कि कहा-

मूलप्रकृत्यभिन्नाः संक्रमयति गुणत उत्तराः प्रकृतीः।
न त्वात्माऽमूर्त्तत्वादध्यवसाय प्रयोगेण ॥

अर्थ-गुणत. अर्थात् गुण की अपेक्षा मूल प्रकृतिओ से अभिन्न उत्तर प्रकृतियों को अध्यवसाय विशेष द्वारा संक्रमित किया जाता है, किन्तु आत्मा अमूर्त्त होने से आत्मा का सक्रमण नही होता है।

आत्मा की तरह आकाश भी अमूर्तिक है, किन्तु आकाश जड़ है और आत्मा चेतन है। इसलिए आत्मा मे अध्यवसाय विशेष की शक्ति है। वह उस शक्ति द्वारा कर्मप्रकृतियों मे सक्रमण कर देता है।

संक्रमण के विषय मे दूसरे आचार्य का मत यह है-

मोत्तूण आउयं खलु, दंसणमोहं चरित्तमोहं च।
सेसाणं पगईण, उत्तरविहिसंकमो भणिओ ॥

अर्थ-आयुकर्म, दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय, इनको छोड़कर शेष प्रकृतियों का उत्तर प्रकृतियो के साथ जो संचार होता है वह 'सक्रमण' कहलाता है।

उदाहरणार्थ कल्पना कीजिये-किसी प्राणी के शुभ कर्म उदय मे आये। वह साता-वेदनीय का अनुभव कर रहा है। इसी समय उसके अशुभकर्मो की कुछ ऐसी परिणति हुई कि उसका सातावेदनीय असातावेदनीय मे परिणत होगया। इसी प्रकार असातावेदनीय भोगते हुए शुभ कर्मो की कुछ ऐसी परिणति हुई कि उसका असातावेदनीय सातावेदनीय मे परिणत होगया। यह वेदनीय कर्म का 'सक्रमण' कहलाया। इसी प्रकार दूसरी कर्म प्रकृतियो के 'संक्रमण' के विषय मे समझ लेना चाहिए।

निधत्त-भिन्न भिन्न पुद्गलो को इकट्ठा करके रखना 'निधत्त' करना कहलाता है अर्थात् कर्म पुदगलो को एक दूसरे पर रच देना, जैसे एक थाली मे बिखरी हुइ सुइयों को एक के ऊपर दूसरी, आदि के क्रम से जमा देना-'निधत्त' करना कहलाता है।

कर्मो की अवस्था विशेष को 'निधत्त' कहते है। 'निधत्त' अवस्था को प्राप्त हुए कर्मो मे उद्वर्तनाकरण और अपवर्तनाकरण, ये दो 'करण' ही परिवर्तन कर सकते है, दूसरा कोई भी 'करण' उनमें परिवर्तन नही कर सकता। तात्पर्य यह है कि 'निधत्त' अवस्था से पहले तो दूसरे भी 'करण' लग सकते हैं किन्तु निधत्त अवस्था में उद्वर्तना और अपवर्तना, इन दो करणो के सिवाय कोई तीसरा करण नही लग सकता। जब कर्म पुर्वोक्त उद्वर्तना और अपवर्तना करण के सिवाय और किसी 'करण' का विषय न हो, उस अवस्था का नाम निधत्त' है।

निकाचित–जिन कर्मो को 'निधत्त' किया गया था उन्हे ऐसा मजबूत कर देना कि जिससे वे एक दूसरे से अलग न हो सकें और जिनमे कोई भी 'करण' कुछ भी फेरफार न कर सके, उसे 'निकाचित' करना कहते हैं। उदाहरणार्थ–सूइयों को एक दूसरे के पास इकट्ठा कर देना 'निधत्त' करना कहलाता है। उसके पश्चात् उन सूइयो को अग्नि में तपा कर हथौड़े से ठोक दिया गया और आपस में इस प्रकार मिला दिया गया कि जिससे वे एक दूसरे से अलग न हो सकें। सूइयों के समान कर्मों का इस प्रकार मजबूत हो जाना कि फिर उसमें कोई परिवर्तन न हो सके उसको 'निकाचित' होना कहते है।

तात्पर्य यह है कि 'निकाचित' कर्म वह कहलाता है जिसमे किसी प्रकार का 'सक्रमण' न हो सके। जिस रूप मे वह बँधा है उसी रूप में भोगना पड़े, जिसमें अपवर्तनाकरण और उद्वर्तनाकरण भी कुछ न कर सके। एक रोग साध्य होता है और एक असाध्य। असाध्य रोग मे औषधि का प्रभाव नही पडता। इसी प्रकार निधत्त अवस्था तक तो उपाय हो सकता है, परन्तु 'निकाचित' अवस्था में कोई उपाय कारगर नही होता। 'निकाचित' कर्म अवश्य भोगने पड़ेगे।

'भिज्जंति' आदि पदों का संग्रह करने के लिए जो गाथा मूल में कही गई है उसका तात्पर्य यह है कि इन सब पदो को इसी प्रकार समझना चाहिए।

उपर्युक्त अठारह सूत्रों में यह बतलाया गया है कि नारकी जीव कितने प्रकार के पुद्गलों को भेदते हैं, चय करते है, उपचय करते है, उदीरणा, वेदना, निर्जरा, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन करते है? इन सूत्रो मे से अन्त के चार सूत्रो मे (अपवर्तन, सक्रमण, निधत्तन और निकाचन, इन मे) भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल जोड़ देना चाहिए जिससे ये बारह सूत्र हो जायेंगे और प्रारम्भ के छह सूत्र (भेदन, चय, उपचय, उदीरणा, वेदना, निर्जरा) इनमें मिला देने से ये सब अठारह सूत्र होजायँगे।

यहाँ पर शंका की जा सकती है कि जिस प्रकार अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन, निकाचन इन चार पदों के साथ तीनों काल जोड़े गये हैं, उसी प्रकार भेद, चय, उपचय आदि पहले के छह पदों के साथ तीनों काल क्यों नही जोड़े गये ?

इसका समाधान यह है कि यद्यपि यह शंका ठीक है तथापि केवल विवक्षा (कहने की इच्छा) न होने कारण सूत्र में भेदादि पदों के साथ तीनों काल का निर्देश नहीं किया गया है।

काल चलितादि सूत्र

११ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गेण्हंति, ते किं तीयकालसमए गेण्हंति ? पडुप्पण्णकालसमए गेण्हंति ? अणागयकालसमए गेण्हंति ?

११ उत्तर-गोयमा ! णो तीयकालसमए गेण्हंति, पडुप्पण्ण-कालसमए गेण्हंति, णो अणागयकालसमए गेण्हंति।

१२ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गहिए उदीरेंति ते किं तीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति ? पडुप्पण्ण-कालसमयघेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति ? गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति ?

१२ उत्तर-गोयमा ! अईयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति, णो पडुप्पण्णकालसमयघेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति, णो गहणसमय पुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति। एवं वेदेंति णिज्जरेंति।

१३ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं बंधंति ?

अचलियं कम्मं बंधंति ?

१३ उत्तर-गोयमा ! णो चलियं कम्मं बंधंति, अचलियं कम्मं बंधंति।

१४ प्रश्न-णेरइया णं भंते! जीवाओ किं चलियं कम्मं उदीरेंति ? अचलियं कम्मं उदीरेंति ?

१४ उत्तर-गोयमा ! णो चलियं कम्मं उदीरेंति, अचलियं कम्मं उदीरेंति। एवं वेदेंति उयट्टेंति, संकामेंति, णिहत्तेंति, णिकायिंति, सव्वेसु अचलियं, णो चलियं।

१५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं णिज्जरेंति ? अचलियं कम्मं णिज्जरेंति ?

१५ उत्तर-गोयमा ! चलियं कम्मं णिज्जरेंति, णो अचलियं कम्मं णिज्जरेंति। गाहा-

बंधोदय वेदोयट्ट संकमे तह णिहत्तण णिकाये।
अचलियं कम्मं तु ए भवे, चलियं जीवाओ णिज्जरए॥

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! णेरइया-नारकी के जीव, जे-जिन, पोग्गले-पुद्गलों को, तेयाकम्मत्ताए-तैजस कार्मण रूप में, गेण्हंति-ग्रहण करते हैं, ते-उनको, किं-क्या, तीय कालसमए-अतीत काल समय में, गेण्हंति-ग्रहण करते है, पडुप्पण्णकालसमए-वर्तमान काल समय में, गेण्हंति-ग्रहण करते हैं? या, अणागयकालसमए-भविष्य काल समय में, गेण्हंति-ग्रहण करते हैं?

उत्तर-गोयमा-हे गौतम ! तीयकालसमए-अतीत काल समय में, णो गेण्हंति-ग्रहण नही करते है, पडुप्पण्णकालसमए-वर्तमान काल समय मे, गेण्हंति-ग्रहण करते हैं, अणागकालसमए-भविष्य काल समय में, णो गेण्हंति-ग्रहण नही करते हैं।

भंते-हे भगवन् ! णेरइया-नारक जीव, तेयाकम्मत्ताए-तैजस कार्मण रूप में, गहिए-ग्रहण किये हुए, जे-जिन, पोग्गले-पुद्‌गलों की, उदीरेंति-उदीरणा करते है, ते-सो किं-क्या, तीयकालसमयगहिए-अतीत काल समय में ग्रहण किये हुए, पोग्गले-पुद्‌गलों की, उदीरेंति-उदीरणा करते है ? या, पडुप्पण्णकालसमयघेप्पमाणे-वर्तमान काल समय में ग्रहण किये जाते हुए, पोग्गले-पुद्‌गलों की, उदीरेंति-उदीरणा करते है ? या, गहणसमयपुरक्खडे-आगामी समय मे ग्रहण किये जाने वाले-भविष्यकालीन, पोग्गले-पुद्‌गलो की उदीरणा करते हैं?

गोयमा-हे गौतम ! अईयकालसमयगहिए-अतीत काल समय में ग्रहण किये हुए, पोग्गले-पुद्‌गलो की, उदीरेंती-उदीरणा करते हैं, पडुप्पण्णकालसमयघेप्पमाणे-वर्तमान काल समय में ग्रहण किये जाते हुए, पोग्गले-पुद्‌गलों की, णो उदीरेंती-उदीरणा नही करते है, गहणसमयपुरक्खडे-आगामी काल में ग्रहण किये जाने वाले, पोग्गले-पुद्‌गलों की, णो उदीरेंती-उदीरणा नही करते है, एवं-इसी प्रकार, वेदेंति-वेदते हैं और, णिज्जरेंति-निर्जरा करते हैं।

भंते-हे भगवन् ! किं-क्या, णेरइया-नैरयिक जीव, जीवाओ-जीव प्रदेश से, चलियं-चलित, कम्मं-कर्म को, बंधंति-बाधते हैं ? या, अचलियं-अचलित, कम्मं-कर्म को, बंधंति-बाधते है ?

गोयमा-हे गौतम ! चलियं-चलित, कम्मं-कर्म को, णो बंधंति-नही बांधते हैं किन्तु, अचलियं-अचलित, कम्मं-कर्म को, बंधंति-बांधते है।

भंते-हे भगवन् ! किं-क्या, णेरइया-नैरयिक जीव, जीवाओ-जीव-प्रदेश से, चलियं-चलित, कम्मं-कर्म की, उदीरेंति-उदीरणा करते है ? या, अचलियं-अचलित, कम्मं-कर्म की, उदीरेंति-उदीरणा करते है ?

गोयमा-हे गौतम ! नैरयिक जीव, चलियं-चलित, कम्मं-कर्म की, णो उदीरेंति-उदीरणा नही करते है, किन्तु अचलियं-अचलित, कम्मं-कर्म की, उदीरेंति-उदीरणा करते है, एवं-इसी प्रकार, वेदेंति-वेदन करते हैं, उयट्टंति-अपवर्तन करते हैं, संकामेंति-संक्रमण करते है, णिहत्तेंति-निधत्त करते है, णिकायिंति-निकाचित करते हैं, सव्वेसु-इन सब पदों मे, अचलियं-अचलित कहना चाहिए, णो चलियं-चलित नही कहना चाहिए।

भंते-भगवन् ! किं-क्या, णेरइया-नैरयिक जीव, जीवाओ-जीव-प्रदेश से, चलियं-चलित, कम्मं-कर्म की, णिज्जरेंति-निर्जरा करते हैं ? या, अचलियं-अचलित, कम्मं कर्म की, णिज्जरेंति-निर्जरा करते है ?

गोयमा-हे गौतम ! चलियं-चलित, कम्मं-कर्म की, णिज्जरेंति-निर्जरा करते हैं,

किन्तु, अचलियं-अचलित, कम्मं-कर्म की, णो णिज्जरेंति-निर्जरा नही करते हैं।

गाथा का शब्दार्थ-बंध-बन्ध, उदय-उदय, वेद-वेदन, उयट्ट-अपवर्तन, संकमे-संक्रमण, णिहत्तण-निधत्तन, तह-तथा, णिकाये-निकाचन, इनके विषय मे, अचलियं-अचलित, कम्मं-कर्म, भवे-होता है और, णिज्जरए-निर्जरा में. तु-तो, जीवाओ-जीव प्रदेशों से, चलियं-चलित कर्म होता है।

भावार्थ-११ प्रश्न-हे भगवन् ! नारकी जीव, जिन पुद्गलों को तैजस कार्मण रूप में ग्रहण करते हैं, क्या उन्हें अतीत काल समय में ग्रहण करते हैं ? या वर्तमान काल समय मे ग्रहण करते हैं ? या भविष्य काल समय में ग्रहण करते हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! अतीत काल समय में ग्रहण नहीं करते, वर्तमान काल समय में ग्रहण करते हैं, भविष्य काल समय में ग्रहण नहीं करते।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! नारकी जीव, तैजस कार्मण रूप में ग्रहण किये हुए जिन पुद्गलों की उदीरणा करते हैं, सो क्या अतीत काल समय में ग्रहण किये हुए पुद्गलों की उदीरणा करते हैं ? या वर्तमान काल समय में ग्रहण किये जानेवाले पुद्गलों की उदीरणा करते हैं ? या आगे ग्रहण किये जानेवाले भविष्य कालीन पुद्गलों की उदीरणा करते हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! अतीत काल समय में ग्रहण किये हुए पुद्गलों की उदीरणा करते हैं, वर्तमान काल समय में ग्रहण किये जाते हुए पुद्गलों की उदीरणा नहीं करते और आगे ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों की भी उदीरणा नहीं करते।

जिस प्रकार उदीरणा का कहा है, उसी प्रकार वेदना और निर्जरा का भी कह देना चाहिए।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नारकी जीव, जीव-प्रदेश से चलित कर्म को बांधते हैं या अचलित कर्म को बांधते हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! चलित कर्म को नहीं बांधते, अचलित कर्म को बांधते हैं।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नारकी जीव, जीव-प्रदेश से चलित कर्म



की उदीरणा करते हैं अथवा अचलित कर्म की उदीरणा करते हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव चलित कर्म की उदीरणा नहीं करते, किन्तु अचलित कर्म की उदीरणा करते हैं। इसी प्रकार वेदन करते हैं, अपवर्तन करते हैं, संक्रमण करते हैं, निधत्त करते हैं और निकाचित करते हैं। इन सब पदों में 'अचलित' कहना चाहिए, चलित नहीं।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नारकी जीव, जीव-प्रदेश से चलित कर्म की निर्जरा करते हैं ? या अचलित कर्म की निर्जरा करते हैं ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव, जीव-प्रदेश से चलित कर्म की निर्जरा करते हैं, किन्तु अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं।

गाथा का अर्थ-बन्ध, उदय, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन के विषय में अचलित कर्म समझना चाहिए और निर्जरा के विषय में चलित कर्म समझना चाहिए।

विवेचन-यहाँ भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालो के साथ 'समय' विशेषण लगाया गया है अर्थात् काल और समय, इन दो पदो का प्रयोग किया गया है। इसका कारण यह है कि 'काल' शब्द के अनेक अर्थ हैं। अकेले 'काल' शब्द का प्रयोग करने से काला (कृष्ण) वर्ण अर्थ भी लिया जा सकता है। किन्तु यहाँ ऐसा अर्थ इष्ट नही है। यह बात प्रकट होने के लिए 'काल' के साथ 'समय' विशेषण लगा दिया गया है। 'काल' शब्द की तरह 'समय' शब्द के भी अनेक अर्थ है। वे सब यहाँ इष्ट नही हैं, किन्तु काल रूप 'समय' इष्ट है। इसलिए 'समय' के साथ 'काल' विशेषण लगा दिया है। इस प्रकार 'काल' का विशेषण 'समय' और 'समय' का विशेषण 'काल' कह देने से किसी प्रकार का भ्रम नही रहता और इष्ट अर्थ सरलता से समझ में आ सकता है।

यहाँ अतीत काल के साथ में जो 'समय' शब्द का प्रयोग किया गया है, इसका अभिप्राय यह है कि यहाँ अतीत काल सम्बन्धी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल न लेकर अतीत काल का छोटे से छोटा अंश लेना है।

गौतम स्वामी का प्रश्न है कि-नारकी जीव जिन पुद्गलो को तैजस और कार्मण शरीरपने ग्रहण करते है। क्या उन्हे अतीत काल मे ग्रहण करते हैं ? वर्तमान काल मे ग्रहण करते हैं या भविष्यकाल मे ग्रहण करते है ?

भगवान् ने इन प्रश्न का उत्तर दिया कि हे गौतम ! नारकी जीव अतीत काल में और भविष्य काल में तैजस कार्मण शरीरपने पुद्गलो को ग्रहण नही करते हैं, किन्तु वर्तमान काल में ग्रहण करते है । इसका कारण स्पष्ट है कि-अतीत काल तो नष्ट हो चुका है और भविष्य काल अभी तक उत्पन्न नही हुआ है । अतः जो भी क्रिया की जाती है वह वर्तमान में ही की जाती है । वर्तमान काल में भी स्वाभिमुख पुद्गलों को ही ग्रहण करते है, सब को नही ।

गौतम स्वामी का दूसरा प्रश्न यह है कि नारकी जीव जिन पुद्गलो को तैजस कार्मण शरीर के रूप में ग्रहण करते हैं, उनकी जो उदीरणा होती है, वह क्या भूतकाल में गृहीत पुद्गलों की होती है या वर्तमान काल में ग्रहण किये जाने वाले और भविष्य काल में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों की होती है ?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया-हे गौतम ! नारकी जीव अतीत काल में तैजस कार्मण शरीर रूप से ग्रहण किये हुए पुद्गलो की उदीरणा करते हैं, किन्तु वर्तमान काल में और भविष्य काल मे ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलो की उदीरणा नही करते है । उदीरणा भूतकाल मे बँधे हुए कर्म की ही होती है । वर्तमान काल मे कर्म बध रहा है, उसकी उदीरणा नही हो सकती और भविष्यकालीन कर्म अब तक बंधे ही नहीं है । अतः उनकी भी उदीरणा नही हो सकती । वर्तमानकालीन पुद्गल और भविष्यकालीन पुद्गल अब तक अगृहीत हैं । अगृहीत की उदीरणा नही होती । उदीरणा गृहित की होती है ।

जिस प्रकार उदीरणा का कथन किया गया है उसी प्रकार वेदन और निर्जरा का भी कथन कर देना चाहिए । क्योकि अतीत काल मे ग्रहण किये हुए कर्मों का ही वेदन और निर्जरा होती है । वर्तमान काल और भविष्य काल मे ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों का न वेदन होता है और न निर्जरा होती है ।

तैजस कार्मण शरीर रूप में ग्रहण, उदीरणा, वेदन और निर्जरा-ये चार सूत्र हुए। अब कर्म का अधिकार होने से कर्म सम्बन्धी आठ सूत्र कहे जाते हैं-

इनमें पहला प्रश्न यह है कि-नारकी जीव चलित कर्म बाँधते हैं, या अचलित कर्म बाँधते है ?

इसका उत्तर यह है कि-नारक जीव अचलित कर्म बाँधते है, चलित कर्म नही बाँधते।

जीव के प्रदेश से जो कर्म चलायमान हो गये है उन्हे चलित कर्म कहते है, उन्हे जीव नही बांधता, क्योंकि वे ठहरने वाले नही है । इससे विपरीत कर्म, अचलित कर्म कहलाते हैं, उन्हें जीव बाधता है । जैसा कि कहा है-

कृत्स्नैर्देशैः स्वकदेशस्थं, रागादिपरिणतो योग्यम् ।
बध्नाति योगहेतोः कर्म स्नेहाक्त इव च मलम् ॥

अर्थात्-जिस प्रकार जिस पुरुष के शरीर पर तेल आदि चिकना पदार्थ लगा हुआ हो वह मैल को सग्रह करता है अर्थात् धूल आदि उसके शरीर पर चिपकते हैं, उसी प्रकार रागादि में परिणत आत्मा मन, वचन, काया रूपी योगों के निमित्त से समस्त आत्मप्रदेशों द्वारा आत्मा के समीप योग्य देश में रहे हुए कर्मों को बाधता है ।

जिस प्रकार बन्ध का कथन किया-उसी प्रकार उदीरणा, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्त और निकाचन कर्म का भी कथन करना चाहिए अर्थात् उदीरणा, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्त और निकाचन, ये सब अचलित कर्म के होते हैं, चलित के नही ।

निर्जरा चलित कर्म की होती है, अचलित की नही । आत्मप्रदेशों से कर्म पुद्गलों को हटा देना निर्जरा कहलाती है । अचलित कर्म आत्मप्रदेशो से हटते नही हैं चलित कर्म ही हटते है । इसलिए निर्जरा चलित कर्म की होती है, अचलित कर्म की नहीं ।

इन आठ प्रश्नों की संग्रह गाथा मे भी यही बात कही गई है, बंध, उदीरणा, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्त और निकाचित इन सात प्रश्नों मे अचलित कर्म कहना चाहिए और आठवें निर्जरा सम्बन्धी प्रश्न मे चलित कर्म कहना चाहिए ।

असुरकुमार देवों का वर्णन-

१६ प्रश्न-असुरकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

१६ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं ।

१७ प्रश्न-असुरकुमारा णं भंते ! केवइयकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ?

१७-उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं

साइरेगस्स पक्खस्स आणमंति वा पाणमंति वा।

१८ प्रश्न-असुरकुमारा णं भंते ! आहारट्ठी ?

१८ उत्तर-हंता, आहारट्ठी।

१६ प्रश्न-असुरकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

१६ उत्तर-गोयमा ! असुरकुमाराणं दुविहे आहारे पण्णत्ते तंजहा-आभोगणिव्वत्तिए अणाभोगणिव्वत्तिए। तत्थ णं जे से अणाभोगणिव्वत्तिए से अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं साइरेगस्स वास सहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

२० प्रश्न-असुरकुमारा णं भंते ! किं आहारं आहारेंति ?

२० उत्तर-गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसियाइं दव्वाइं, खित्त-काल-भाव पण्णवणागमेणं, सेसं जहा णेरइयाणं जाव।

२१ प्रश्न-ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

२१ उत्तर-गोयमा ! सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए, सुरूवत्ताए, सुवण्णत्ताए, इट्ठत्ताए, इच्छियत्ताए, भिज्जयत्ताए, उड्ढत्ताए, णो अहत्ताए, सुहत्ताए, णो दुहत्ताए, भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

२२ प्रश्न-असुरकुमाराणं पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया ?

२२ उत्तर-असुरकुमाराभिलावे जहा णेरइयाणं, जाव णो अच-लियं कम्मं णिज्जरेंति।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! असुरकुमाराणं-असुरकुमारो की, ठिई-स्थिति, केवइयं कालं-कितने काल की, पण्णत्ता-कही गई है ?

गोयमा-हे गौतम ! जहण्णेणं-जघन्य, दस वाससहस्साइं-दस हजार वर्ष की और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, साइरेगं सागरोवमं-सागरोपम से कुछ अधिक की है।

भंते-हे भगवन् ! असुरकुमारा-असुरकुमार, केवइयकालस्स-कितने समय में, आणमंति-श्वास लेते है, वा-और कितने समय में, पाणमंति-निःश्वास छोड़ते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! जहण्णेणं-जघन्य, सत्तण्हं-सात, थोवाणं-स्तोक रूप काल से और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, साइरेगस्स पक्खस्स-एक पक्ष-पखवाड़े से कुछ अधिक काल में श्वास लेते और छोड़ते है।

भंते-हे भगवन् ! क्या. असुरकुमारा-असुरकुमार, आहारट्ठी-आहार के अभिलाषी होते हैं ?

हंता-हाँ गौतम ! आहारट्ठी-आहार के अभिलाषी होते है।

भंते-हे भगवन् ! असुरकुमाराणं-असुरकुमारों को, केवइयकालस्स-कितने काल में, आहारट्ठे-आहार की अभिलाषा, समुप्पज्जइ-उत्पन्न होती है ?

गोयमा-हे गौतम ! असुरकुमाराणं-असुरकुमारो का, आहारे-आहार, दुविहे-दो प्रकार का, पण्णत्ते-कहा गया है, आभोगणिव्वत्तिए-आभोग निर्वर्तित और, अणाभोग-णिव्वत्तिए-अनाभोग निर्वर्तित, तत्थ-इन दोनो में से, जे-जो, अणाभोगणिव्वत्तिए-अना-भोग निर्वर्तित अर्थात् बिना इच्छा के होने वाला, आहारट्ठे-आहार है, उसकी अभिलाषा, अविरहिए-विरह रहित, अणुसमयं-निरन्तर, समुप्पज्जइ-उत्पन्न होती है और, आभोग-णिव्वत्तिए-आभोग निर्वर्तित आहार की अभिलाषा, जहण्णेणं-जघन्य, चउत्थभत्तस्स-चतुर्थ भक्त अर्थात् एक अहोरात्र से और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, साइरेगस्स वाससहस्सस्स-एक हजार वर्ष से कुछ अधिक काल में, आहारट्ठे-आहार की अभिलाषा, समुप्पज्जइ-उत्पन्न होती है।

भंते-हे भगवन् ! असुरकुमारा-असुरकुमार, किं-किन पुद्गलों का, आहारं आहा-

रेंती-आहार करते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! दव्वओ-द्रव्य की अपेक्षा, आणंतपएसियाइं-अनन्तप्रदेशी, दव्वाइं -द्रव्यो का आहार करते हैं, खेत्त-काल-भाव पण्णवणागमेणं-क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा जैसा पन्नवणा सूत्र के अट्ठाइसवें पद में कहा है, वैसा वर्णन यहाँ भी जान लेना चाहिए।

भंते-हे भगवन् ! तेसिं-उन असुरकुमारों द्वारा आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, कीसत्ताए-किस रूप में, भुज्जो भुज्जो-बारबार, परिणमंति-परिणत होते है ?

गोयमा-हे गौतम ! सोइंदियत्ताए-श्रोत्रेन्द्रिय रूप में, जाव फासिंदियत्ताए-यावत् स्पर्शनेन्द्रियपने, सुरूवत्ताए-सुरूपपने, सुवण्णत्ताए-सुवर्णपने, इट्ठत्ताए-इष्टपने, इच्छियत्ताए -इच्छियपने, भिज्जियत्ताए-मनोहरपने, उड्ढत्ताए-ऊर्ध्वपने और, सुहत्ताए-सुखपने, भुज्जो भुज्जो-बारबार, परिणमंति-परिणत होते है किन्तु, णो अहत्ताए, णो दुहत्ताए-अधःरूप में और दुःख रूप में नही परिणमते है।

भंते-हे भगवन् ! क्या असुरकुमाराणं-असुरकुमारों द्वारा, पुव्वाहारिया-पहले आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, परिणया-परिणत हुए है ?

गोयमा-हे गौतम ! असुरकुमाराभिलावेणं जहा णेरइयाणं-असुरकुमार के अभिलाप से अर्थात् नारकी के स्थान पर असुरकुमार शब्द का प्रयोग करके यह सब नारकियों के समान ही समझना चाहिए, जाव-यावत्, अचलियं कम्मं-अचलित कर्म की, णो णिज्जरेंति-निर्जरा नहीं करते है।

भावार्थ १६-गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि-हे भगवन् ! असुर कुमारों की स्थिति कितनी है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक की है।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार कितने समय में श्वास लेते हैं और कितने समय में निःश्वास छोड़ते हैं ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य सात स्तोक रूप काल में और उत्कृष्ट एक पक्ष से कुछ अधिक काल में श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असुरकुमार आहार के अभिलाषी होते है ?

१८ उत्तर-हाँ, गौतम ! असुरकुमार आहार के अभिलाषी होते हैं।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमारों को कितने काल में आहार की अभिलाषा होती है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमारों का आहार दो प्रकार का कहा गया है-आभोग निर्वर्तित और अनाभोग निर्वर्तित। अनाभोगनिर्वर्तित अर्थात् अनिच्छापूर्वक होने वाले आहार की अभिलाषा उन्हें निरन्तर प्रतिसमय हुआ करती है। आभोगनिर्वर्तित अर्थात् इच्छापूर्वक होने वाले आहार की अभिलाषा उन्हे जघन्य चतुर्थ भक्त से अर्थात् एक अहोरात्र से और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष से कुछ अधिक काल में होती है।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमार किन द्रव्यों का आहार करते हैं ?

२० उत्तर-हे गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा अनन्त प्रदेशी पुद्गलों का आहार करते हैं।

क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा जैसा पन्नवणा सूत्र के अट्ठाईसवें पद में कहा है वैसा ही यहाँ समझ लेना चाहिए।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमारों द्वारा आहार किये हुए पुद्गल किस रूप में बार बार परिणत होते हैं ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय रूप में यावत् स्पर्शनेन्द्रियपने, सुरूप-पने, सुवर्णपने, इष्टपने, इच्छितपने, मनोहरपने, ऊर्ध्वपने और सुखपने बार बार परिणत होते हैं। किन्तु अधःपने और दुःखपने परिणत नहीं होते हैं।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असुरकुमारों द्वारा पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! असुरकुमार के अभिलाप से अर्थात् नारकी के स्थान पर असुरकुमार शब्द का प्रयोग करते हुए यह सारा वर्णन नारकियों के समान ही समझना चाहिए। यावत् अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं।

विवेचन-चोबीस दण्डको मे से पहला नैरयिक दण्डक कहा गया। उसके बाद क्रम प्राप्त असुरकुमारो का कथन किया गया है। नैरयिक प्रकरण में ७२ सूत्र कहे गये हैं।

उनमें से २३ सूत्र असुरादि प्रकरण में समान हैं। सिर्फ विशेषता यह है कि असुरकुमारों में उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम से कुछ अधिक ही है, वह असुरराज बलि की अपेक्षा से समझनी चाहिए, क्योकि चमरेन्द्र का आयुष्य एक सागरोपम होता है और बलिन्द्र का आयुष्य एक सागरोपम से कुछ अधिक होता है।

मूल में असुरकुमारों के स्वासोच्छ्वास के लिए सात स्तोक का कथन किया गया है, उसका मतलब यह है कि-सात स्तोक बीतने के बाद वे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। स्तोक का लक्षण इस प्रकार कहा गया है-

हट्ठस्स अणवगल्लस्स, णिरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए॥

अर्थ-रोगरहित, स्वस्थ हृष्टपुष्ट प्राणी के एक श्वासोच्छ्वास को एक प्राण कहते हैं। सात प्राणों का एक स्तोक होता है। सात स्तोक का एक लव होता है। ७७ लवों का एक मुहूर्त होता है।

जघन्य स्थिति वाले असुरकुमार जघन्य काल में श्वासोच्छ्वास लेते हैं और उत्कृष्ट स्थिति वाले असुरकुमार उत्कृष्ट काल में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। असुरकुमारों के श्वासोच्छ्वास का उत्कृष्ट काल एक पक्ष से कुछ अधिक है।

'चउत्थभत्त-चतुर्थभक्त' यह उपवास की संज्ञा है। यहां 'चउत्थभक्त' का अर्थ है-एक दिन रात अर्थात् आठ प्रहर। असुरकुमार एक दिन आहार कर लेने पर फिर दूसरा दिन और रात बीत जाने के बाद तीसरे दिन उसको आहार की अभिलाषा होती है। यह उनके आहार की अभिलाषा का जघन्य काल है। उत्कृष्ट काल तो एक हजार वर्ष है अर्थात् एक हजार वर्ष बीतने के बाद उनको आहार की अभिलाषा होती है। जघन्य स्थिति वालों को जघन्य काल में और उत्कृष्ट स्थिति वालों को उत्कृष्ट काल में आहार की अभिलाषा होती है।

नागकुमार देवों का वर्णन

२३ प्रश्न-णागकुमाराणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

२३ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ।

२४ प्रश्न-णागकुमाराणं भंते ! केवइयकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा णीससंति वा ?

२४ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा ।

२५ प्रश्न-णागकुमाराणं भंते आहारट्ठी ?

२५ उत्तर-हंता, आहारट्ठी ।

२६ प्रश्न-णागकुमाराणं भंते ! केवइयकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

२६ उत्तर-गोयमा ! णागकुमाराणं दुविहे आहारे पण्णत्ते, तंजहा—आभोगणिव्वत्तिए, अणाभोगणिव्वत्तिए य, तत्थ णं जे से अणाभोगणिव्वत्तिए से अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ । तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ । सेसं जहा असुरकुमाराणं जाव चलियं कम्मं णिज्जरेंति, णो अचलियं कम्मं णिज्जरेंति । एवं सुवण्णकुमाराणं वि, जाव थणियकुमाराणं ति ।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! णागकुमाराणं-नागकुमार देवों की, ठिई-स्थिति, केवइयं कालं-कितने काल की, पण्णत्ता-कही गई है ?

गोयमा-हे गौतम ! **जहण्णेणं**-जघन्य, **दस वाससहस्साइं**-दस हजार वर्ष की और **उक्कोसेणं**-उत्कृष्ट, **देसूणाइं दो पलिओवमाइं**-देशोन-कुछ कम दो पल्योपम की कही गई है।

भंते-हे भगवन् ! **णागकुमारा**-नागकुमार, **केवइयकालस्स**-कितने समय में, **आणमंति**-श्वास लेते है ? **पाणमंति**-निःश्वास छोड़ते हैं ? **ऊससंति**-उच्छ्वास लेते है ? **नीससंति**-निःश्वास छोड़ते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! **जहण्णेणं**-जघन्य से, **सत्तण्णं**-सात, **थोवाणं**-स्तोक में और **उक्कोसेणं**-उत्कृष्ट से, **मुहुत्तपुहुत्तस्स**-मुहूर्त्त पृथक्त्व अर्थात् दो मुहूर्त्त से लेकर नव मुहूर्त्त के अन्दर किसी भी समय, **आणमंति वा ४**-श्वासोच्छ्वास लेते और छोड़ते है।

भंते-हे भगवन् ! क्या, **णागकुमारा**-नागकुमार देव, **आहारट्ठी**-आहारार्थी है ?

हंता-हाँ, गौतम ! नागकुमार देव, **आहारट्ठी**-आहारार्थी हैं।

भंते-हे भगवन् ! **णागकुमाराणं**-नागकुमार देवों को, **केवइयकालस्स**-कितने काल में, **आहारट्ठे**-आहार की अभिलाषा, **समुप्पज्जइ**-उत्पन्न होती है ?

गोयमा-हे गौतम ! **णागकुमाराणं**-नागकुमार देवों का, **आहारे**-आहार, **दुविहे**-दो प्रकार का, **पण्णत्ते**-कहा गया है। **आभोगणिव्वत्तिए**-आभोगनिर्वर्तित और, **अणाभोगणिव्वत्तिए**-अनाभोगनिर्वर्तित । **अणाभोगणिव्वत्तिए आहारट्ठे**-अनाभोग निर्वर्तित आहार की अभिलाषा, **अणुसमयं अविरहिए**-प्रतिसमय विरह रहित, **समुप्पज्जइ**-होती है। **आभोगणिव्वत्तिए**-आभोग निर्वर्तित, **आहारट्ठे**-आहार की अभिलाषा, **जहण्णेणं**-जघन्य से, **चउत्थभत्तस्स**-चतुर्थभक्त अर्थात् एक अहोरात्र के बाद, और **उक्कोसेणं**-उत्कृष्ट, **दिवसपुहुत्तस्स**-दिवस पृथक्त्व के बाद, **समुप्पज्जइ**-उत्पन्न होती है। **सेसं**-बाकी सारा वर्णन, **जहा असुरकुमाराणं**-असुरकुमार देवों की तरह समझना चाहिए। **जाव**-यावत्, **चलियं कम्मं**-चलित कर्म की, **णिज्जरेंति**-निर्जरा करते है, **णो अचलियं कम्मं णिज्जरेंति**-किन्तु अचलित कर्म की निर्जरा नही करते है। यहाँ तक कह देना चाहिए। **एवं**-इसी तरह, **सुव्वणकुमाराणं वि**-सुवर्ण कुमारों का भी कह देना चाहिए। **जाव**-यावत्, **थणियकुमाराणं**-स्तनितकुमारों तक कह देना चाहिए।

भावार्थ-२३ प्रश्न-हे भगवन् ! नागकुमार देवों की स्थिति कितनी है ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की है।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! नागकुमार देव कितने समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य सात स्तोक में और उत्कृष्ट मुहूर्त्त पृथक्त्व में अर्थात् दो मुहूर्त्त से लेकर नव मुहूर्त्त के भीतर श्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं।

२५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नागकुमार आहारार्थी हैं ?

२५ उत्तर-हाँ, गौतम ! आहारार्थी हैं।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! कितने समय के बाद नागकुमार देवों को आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

उत्तर-हे गौतम ! नागकुमार देवों का आहार दो प्रकार का है-आभोग-निर्वर्तित और अनाभोग निर्वर्तित। अनाभोग निर्वर्तित आहार की अभिलाषा प्रतिसमय निरन्तर उत्पन्न होती है। और आभोग निर्वर्तित आहार की अभि-लाषा जघन्य एक अहोरात्र के बाद और उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नव दिन तक का समय बीतने के बाद होती है। शेष सारा वर्णन असुरकुमारों की तरह समझना चाहिए। इसी प्रकार सुवर्णकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

विवेचन-यहाँ पर नागकुमार देवों की जो देशोन(कुछ कम)दो पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति कही है वह उत्तर दिशा के नागकुमार देवों की अपेक्षा समझनी चाहिए। कहा है-

'दाहिणदिवड्ढपलियं, दो देसूणुत्तरिल्लाणं'

अर्थात्-दक्षिण दिशा के नागकुमारो की उत्कृष्ट स्थिति डेढ पल्योपम की और उत्तर दिशा के नागकुमारो की उत्कृष्ट स्थिति देशोन दो पल्योपम कही गई है।

सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार, इन आठ की स्थिति उच्छ्वास आदि का वर्णन नागकुमार की तरह कह देना चाहिए।

यहाँ यह आशंका हो सकती है कि असुरकुमार आदि दस भवनपतियों के दस दण्डक माने गये हैं और सात नरक के जीवो का एक ही दण्डक माना गया है। इसका

क्या कारण है ?

इस आशंका का समाधान यह है कि नारकी जीव दुःख मे पड़े हुए हैं, इसलिए उनमें इतनी अधिक उथल पुथल नहीं होती है, किन्तु भवनपति देवों में उथल पुथल अधिक होती रहती है, इत्यादि कारणों से उनके दण्डक अलग अलग माने गये संभवित होते हैं।

इस विषय में शास्त्रों में कोई स्पष्टीकरण देखने में नही आया है, किन्तु पूर्वाचार्यों की धारणा ऐसी है कि सातों नरकों की क्षेत्र-सीमा परस्पर संलग्न है। इनके बीच में कोई दूसरे त्रस जीव नही है। किन्तु भवनपति देवों में यह बात नही है, इनके बीच में नैरयिक जीवों का व्याघात होने से इनके दण्डक पृथक् पृथक् माने गये है अर्थात् प्रथम नरक में १३ प्रतर और १२ अन्तर हैं। जिनमे से ऊपर के दो अन्तरों को छोड़कर शेष नीचे के दस अन्तरों में दस जाति के भवनपति देव रहते हैं और प्रतर में नेरिये रहते है, परन्तु प्रथम नरक के नीचे के प्रतर से सातवी नरक तक बीच में कोई भी त्रस जीव नही होने से सातों नरक जीवों का एक ही दण्डक कहा गया है और दस जाति के भवनपतियों के बीच बीच में प्रथम नरक के नैरयिकों के प्रतर आने से भवनपतियों के दस दण्डक (विभाग) किये गये हैं। ऐसी पूर्वाचार्यों की धारणा है।

पृथ्वीकाय आदि का वर्णन-

२७ प्रश्न-पुढवीकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

२७ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

२८ प्रश्न-पुढवीकाइया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा ?

२८ उत्तर-गोयमा ! वेमायाए आणमंति वा ४।

२९ प्रश्न-पुढवीकाइया णं भंते ! आहारट्ठी ?

२९ उत्तर-हंता, आहारट्ठी।

३० प्रश्न-पुढवीकाइयाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

३० उत्तर-गोयमा ! अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

३१ प्रश्न-पुढवीकाइया किं आहारं आहारेंति ?

३१ उत्तर-गोयमा ! दव्वओ जहा णेरइयाणं, जाव णिव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं, वण्णओ काल-णील-पीय-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलाणं, गंधओ सुब्भिगंधाइं २। रसओ तित्ताइं ५। फासओ कक्खडाइं ८ सेसं तहेव णाणत्तं।

३२ प्रश्न-कइभागं आहारेंति, कइभागं फासाइंति ?

३२ उत्तर-गोयमा ! असंखिज्जभागं आहारेंति, अणंतभागं फासाइंति।

३३ प्रश्न-तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

३३ उत्तर-गोयमा ! फासिंदिय वेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति, सेसं जहा णेरइयाणं, जाव णो अचलियं कम्मं णिज्जरंति, एवं जाव वणस्सइकाइयाणं, णवरं ठिइ वण्णेयव्वा जा जस्स उस्सासो वेमायाए।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! पुढवीकाइयाणं-पृथ्वीकाय के जीवों की, ठिई-

केवइयं कालं–कितने काल की, **पण्णत्ता**–कही गई है ?

गोयमा–हे गौतम ! **जहण्णेणं**–जघन्य, **अंतोमुहुत्तं**–अन्तर्मुहूर्त और, **उक्कोसेणं**–उत्कृष्ट, **बावीसं वाससहस्साइं**–बाईस हजार वर्ष की है।

भंते–हे भगवन् ! **पुढवीकाइया**–पृथ्वीकाय के जीव, **केवइयकालस्स**–कितने काल में, **आणमंति**–श्वास लेते है और, **पाणमंति**–नि.श्वास छोड़ते है ४ ?

गोयमा–हे गौतम ! **वेमायाए**–विमात्रा से अर्थात् विविध काल में, **आणमंति**–श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् इनके श्वासोच्छ्वास का समय स्थिति के अनुसार नियत नही है।

हे भगवन् ! क्या, **पुढवीकाइया**–पृथ्वीकाय के जीव, **आहारट्ठी**–आहार के अभिलाषी होते है ?

हंता–हां, गौतम ! **आहारट्ठी**–आहार के अभिलाषी होते हैं।

पुढवीकाइयाणं–पृथ्वीकाय के जीवों को, **केवइकालस्स**–कितने काल में, **आहारट्ठे** आहार की अभिलाषा, **समुप्पज्जइ**–उत्पन्न होती है ?

गोयमा–हे गौतम ! **अणुसमयं**–अनुसमय-प्रतिसमय, **अविरहिए**–विरह रहित-निरन्तर, **आहारट्ठे**–आहार की अभिलाषा, **समुप्पज्जइ**–उत्पन्न होती है।

हे भगवन् ! **पुढवीकाइया**–पृथ्वीकाय के जीव, **किं**–क्या, **आहारं आहारेंति**–आहार करते हैं ?

गोयमा–हे गौतम ! **दव्वओ**–द्रव्य की अपेक्षा, **जहा णेरइयाणं**–जिस प्रकार नारकी जीवों में कहा, उसी तरह कह देना चाहिये अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा वे अनन्तप्रदेशी द्रव्य का आहार करते है। **जाव**–इत्यादि सारा वर्णन नारकी जीवों के समान जानना चाहिए। **जाव**–यावत् पृथ्वीकाय के जीव, **णिव्वाघाएणं**–निर्व्याघात आश्री अर्थात् व्याघात न हो तो, **छद्दिसिं**–छहों दिशाओं से आहार लेते है। **वाघायं पडुच्च**–व्याघात आश्री अर्थात् व्याघात हो तो, **सिय**–कदाचित्, **तिदिसिं**–तीन दिशाओं से, **सिय**–कदाचित्, **चउद्दिसिं**–चार दिशाओं से और, **सिय**–कदाचित्, **पंचदिसिं**–पांच दिशाओं से आहार लेते है। **वण्णओ**–वर्ण की अपेक्षा, **कालणीलपीयलोहियहालिद्दसुक्किलाणं**–काला, नीला, पीला, लाल, हारिद्र–हल्दी जैसा तथा सफेद वर्ण के द्रव्यो का आहार करते है। **गंधओ**–गन्ध से, **सुब्भिगंधाइं २**–सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध वाले, दोनो गन्ध वाले, **रसओ**–रस की अपेक्षा, **तित्ताइं**–तिक्त आदि पांचो रस वाले, **फासओ**–स्पर्श की अपेक्षा, **कक्खडाइं ८**–कर्कश आदि आठो स्पर्श वाले

द्रव्य का आहार करते हैं। सेसं तहेव-शेष सब वर्णन पहले के समान ही समझना चाहिए। णाणत्तं-सिर्फ भेद यह है-

हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीव, कइभागं-कितने भाग का आहारेंति-आहार करते हैं ? और कइभागं-कितने भाग का, फासाइंति-स्पर्श करते हैं-आस्वादन करते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! असंखिज्जभागं-असंख्यातवें भाग का, आहारेंति-आहार करते है, और अणंतभागं-अनन्तवें भाग का, फासाइंति-स्पर्श करते हैं-आस्वादन करते हैं।

हे भगवन् ! तेसिं-उनके द्वारा आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, कीसत्ताए-किस रूप में, भुज्जो भुज्जो-बारबार, परिणमंति-परिणत होते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! फासिंदिय वेमायत्ताए-स्पर्शेन्द्रिय के रूप में साता असाता रूप विविध प्रकार से, भुज्जो भुज्जो-बारबार, परिणमंति-परिणत होते हैं। सेसं जहा णेरइयाणं -शेष सब वर्णन नारकियों के समान समझना चाहिए, जाव-यावत्, णो अचलियं कम्मं णिज्जरंति-अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं। एवं-इसी प्रकार, जाव वणस्सइकाइयाणं-अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों के विषय में समझना चाहिए, णवरं-सिर्फ फरक यह है कि, ठिई वण्णेयव्वा जा जस्स-जिसकी जितनी स्थिति हो उसकी उतनी कह देनी चाहिए। उस्सासो वेमायाए-इन सब का उच्छ्वास भी विमात्रा-विविध प्रकार से जानना चाहिए अर्थात् स्थिति के अनुसार नियत नहीं है।

भावार्थ-२७ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीवों की स्थिति कितनी है ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीव कितने काल में श्वासोच्छ्वास लेते हैं ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! विमात्रा से श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् इनके श्वासोच्छ्वास का समय स्थिति के अनुसार नियत नहीं है।

२९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पृथ्वीकाय के जीव आहार के अभिलाषी हैं ?

२९ उत्तर-हाँ गौतम ! आहार के अभिलाषी हैं।

३० प्रश्न–हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीवों को कितने समय में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

३० हे गौतम ! प्रतिसमय निरन्तर आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ।

३१ प्रश्न–हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीव किसका आहार करते हैं ?

३१ उत्त–हे गौतम ! द्रव्य से अनन्त प्रदेश वाले द्रव्य का आहार करते हैं । इत्यादि वर्णन नारकी जीवों के समान जानना चाहिए । पृथ्वीकाय के जीव व्याघात न हो तो छहों दिशाओं से आहार लेते हैं । व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से आहार लेते हैं । वर्ण की अपेक्षा पांचों वर्ण के द्रव्य का आहार करते हैं । गन्ध की अपेक्षा दोनों गन्ध वाले, रस की अपेक्षा पांचों रस वाले और स्पर्श की अपेक्षा आठों स्पर्श वाले द्रव्य का आहार करते हैं । शेष सब वर्णन पहले के समान समझना चाहिए ।

३२ प्रश्न–हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीव कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का स्पर्श करते हैं–आस्वादन करते हैं ?

३२ उत्तर–हे गौतम ! असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का स्पर्श करते हैं–आस्वादन करते है ।

३३ प्रश्न–हे भगवन् ! उनके आहार किये हुए पुद्गल किस रूप में बार बार परिणत होते हैं ?

३३ उत्तर–हे गौतम ! स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में विमात्रा से अर्थात् इष्ट अनिष्ट आदि विविध प्रकार से बारबार परिणत होते है । शेष सब नारकी जीवों के समान समझना चाहिए । यावत् चलित कर्म को निर्जरा करते हैं, किंतु अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं । इसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायु-काय और वनस्पतिकाय के जीवों के विषय में समझना चाहिए, किन्तु इतना फर्क है कि इन सब की स्थिति अलग अलग है, सो जिसकी जितनी स्थिति हो

उसकी उतनी स्थिति कह देनी चाहिए और इन सब का उच्छ्वास भी विमात्रा से जानना चाहिए।

विवेचन-नारकी जीवों का एक दण्डक, दस भवनपति देवों के दस दण्डक, ये ग्यारह दण्डक हुए। इसके बाद पृथ्वीकाय जीवों का एक दण्डक आता है। उसका वर्णन किया गया है।

पृथ्वीकाय जीवों की आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है। ऊपर बताया जा चुका है कि ७७ लव का एक मुहूर्त होता है, उससे कुछ कम तक के काल को अर्थात् मुहूर्त के भीतर के समय को अन्तर्मुहूर्त कहते है। पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष की जो बताई गई है वह 'खर' पृथ्वी की अपेक्षा से समझनी चाहिए। पृथ्वी के छह भेद हैं-

सण्हा य सुद्ध वालुय, मणोसिला सक्करा य खरपुढवी।
एगं बारस चोद्दस, सोलस अट्ठारस बावीस त्ति॥

अर्थ-श्लक्ष्ण-स्निग्ध, शुद्ध, बालुका, मनःशिला, शर्करा और खर, यह छह प्रकार की पृथ्वी है। श्लक्ष्ण-सुहाली पृथ्वी की स्थिति एक हजार वर्ष की है। 'शुद्ध' पृथ्वी की बारह हजार वर्ष की, 'बालुका' पृथ्वी की चौदह हजार वर्ष की, 'मन.शिला' पृथ्वी की सोलह हजार वर्ष की, 'शर्करा' पृथ्वी की अठारह हजार वर्ष की और 'खर' की बाईस हजार वर्ष की स्थिति है।

पृथ्वीकाय के जीवो के श्वासोच्छ्वास के लिए 'वेमायाए' शब्द दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पृथ्वीकाय के जीवो के श्वासोच्छ्वास की क्रिया विषम काल वाली है अर्थात् अमुक स्थिति वाले इतने काल में श्वासोच्छ्वास लेते है, ऐसा निश्चित निरूपण नही किया जा सकता। इसी प्रकार आहार के परिणमन के विषय में भी इनकी 'विमात्रा' है अर्थात् इष्ट अनिष्ट विविध रूप से परिणमता है।

पृथ्वीकाय के जीवो के आहार के विषय में कहा गया है कि यदि व्याघात न हो, तो वे छहो दिशा से आहार लेते हैं। तो यहां यह जान लेना आवश्यक है कि व्याघात किसे कहते है? लोक के अन्त मे जहा लोक और अलोक की सीमा मिलती है वहीं व्याघात होना सभव है। जहाँ व्याघात हो, वहाँ तीन, चार या पांच दिशा से आहार लेते हैं। तात्पर्य यह है कि लोक के अन्त में कोने में ऊपर या नीचे रहा हुआ पृथ्वीकाय का जीव, तीन, चार या पांच दिशाओं से आहार ग्रहण करता है। जब पृथ्वीकायिक जीव लोकान्त

में ऊपर अग्निकोण में रहा हुआ होता है तब उसके तीन तरफ यानी ऊपर, पूर्व और दक्षिण में अलोक होता है तब वह तीन दिशाओं का आहार लेता है। इसी प्रकार नीचे के अग्निकोण मे रहा हुआ जीव, नीचे पूर्व और दक्षिण में अलोक आजाने से शेष तीन दिशाओं से आहार लेता है। जब ऊपर या नीचे मे से एक तरफ अलोक होता है और पूर्वादि चारो दिशा में से एक दिशा में अलोक होता है तब-शेष चार दिशाओं से आहार ग्रहण करता है, जब छह दिशाओं में से किसी एक दिशा में अलोक होता है तब पांच दिशा से आहार ग्रहण करता है, तात्पर्य यह है कि किसी भी कोने मे रहे हुए जीव के जिस तरफ अलोक होता है, उस तरफ का आहार नही लेता है, शेष दिशाओ से आहार लेता है।

पृथ्वीकायिक जीवों के आहार के लिये नैरयिक जीवों के आहार की भलामण दी है, किंतु इस मे इतनी विशेषता है कि नैरयिक और देवों में 'ओसण्ण कारणं पडुच्च'-शब्द दिया है जिसका अर्थ है-प्राय. करके सामान्यतया। किन्तु यह बात पृथ्वीकायिक जीवों के लिये नही कहनी चाहिये। क्योकि प्रज्ञापना सूत्र के अट्ठाईसवें पद में कहा है-'णवरं ओसण्ण कारणं न भण्णइ' अर्थात् इन में 'ओसण्ण कारण (सामान्यतया) नही कहना चाहिये। इसी तरह सभी औदारिक दण्डकों में समझना चाहिये।

पृथ्वीकाय के जीवों के एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है, उनके रसनेन्द्रिय नही होती है। जिसके रसनेन्द्रिय होती है, वह उसके द्वारा आहार का स्वाद लेता है, किन्तु यह बात पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे नही है। इसलिए पृथ्वीकायिकादि जीव स्पर्शनेन्द्रिय से ही आहार ग्रहण करके उसी के द्वारा उसका आस्वादन करते है। इनका स्पर्शन भी एक प्रकार का आस्वादन है।

पृथ्वीकायादि पांच स्थावरो में पृथ्वीकाय की स्थिति पहले बताई जा चुकी है। अप्काय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है। तेउकाय के जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन अहोरात्र की है। वायुकाय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है। वनस्पतिकाय के जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।



बेइन्द्रिय जीवों का वर्णन

३४–बेइंदियाणं ठिई भाणियव्वा उस्सासो वेमायाए।

३५ प्रश्न–बेइंदियाणं आहारे पुच्छा ?

३५ उत्तर–अणाभोग णिव्वत्तिए तहेव, तत्थ णं जे से आभोग-णिव्वत्तिए से एं असंखेज्जसमइए, अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, सेसं तहेव जाव अणंतभागं आसायंति।

३६ प्रश्न–बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति, ते किं सव्वे आहारंति, णो सव्वे आहारंति ?

३६ उत्तर–गोयमा! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पण्णत्ते तंजहा–लोमाहारे पक्खेवाहारे। जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गिण्हंति ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति, जे पक्खेवाहारत्ताए गिण्हंति तेसिं णं पोग्गलाणं असंखेज्जइभागं आहारेंति, अणेगाइं च णं भाग-सहस्साइं अणासाइज्जमाणाइं अफासाइज्जमाणाइं विद्धंसं आगच्छंति।

३७ प्रश्न–एएसि णं भंते! पोग्गलाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

३७ उत्तर–गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

३८ प्रश्न–बेइंदिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति, ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

३८ उत्तर–गोयमा ! जिब्भिदिय-फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ।

३९ प्रश्न–बेइंदियाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया ?

३९ उत्तर–तहेव जाव णो अचलियं कम्मं णिज्जरेंति ।

शब्दार्थ–बेइंदियाणं–बेइन्द्रिय जीवों की, ठिई–स्थिति, भाणियव्वा–कह देनी चाहिए, उस्सासो–उनका श्वासोच्छ्वास, वेमायाए–विमात्रा से कहना चाहिए ।

बेइंदियाणं–बेइन्द्रिय जीवों के, आहारे–आहार के विषय में, पुच्छा–प्रश्न करना चाहिए । अर्थात् हे भगवन् ! बेइन्द्रिय जीव को कितने काल में आहार की अभिलाषा होती है ?

अणाभोगणिव्वत्तिए–अनाभोगनिर्वर्तित आहार, तहेव–पहले के समान समझना चाहिए । जे–जो, आभोगणिव्वत्तिए–आभोग निर्वर्तित आहार है, से–उस, आहारट्ठे–आहार की अभिलाषा, वेमायाए–विमात्रा से, असंखेज्ज समइए अंतोमुहुत्तिए–असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त में होती है । सेसं–बाकी, तहेव–उसी प्रकार जानना चाहिए, जाव–यावत्, अणंतभागं–अनन्तवें भाग को, आसायंति–आस्वादन करते हैं ।

भंते–हे भगवन् ! बेइंदिया–बेइन्द्रिय जीव, जे–जिन, पोग्गले–पुद्गलों को, आहारत्ताए–आहार रूप से, गिण्हंति–ग्रहण करते है, किं–क्या वे, ते–उन, सव्वे–सबको, आहारंति–खा जाते है ? अथवा, णो सव्वे आहारंति–उन सबको नही खाते है ?

गोयमा–हे गौतम ! बेइंदियाणं–बेइन्द्रिय जीवों का आहारे–आहार, दुविहे–दो प्रकार का, पण्णत्ते–कहा गया है । तंजहा–वह इस प्रकार है–लोमाहारे–रोमाहार य–और, पक्खेवाहारे–प्रक्षेपाहार । जे–जिन पोग्गले–पुद्गलों को, लोमाहारत्ताए–वे रोमाहार द्वारा, गिण्हंति–ग्रहण करते हैं, ते सव्वे–उन सबको, अपरिसेसिए–सम्पूर्णपने, आहारेंति–खा जाते हैं । जे–जिन पुद्गलों को, पक्खेवाहारत्ताए–प्रक्षेपाहार रूप से, गिण्हंति–ग्रहण करते है, तेसिं पोग्गलाणं–उन पुद्गलो में से, असंखिज्जइभागं–असंख्यातवां भाग, आहारेंति–खाया

जाता है, च-और, अणेगाइं भागसहस्साइं-अनेक हजारों भाग, अणासाइज्जमाणाइं-आस्वाद किये बिना और, अफासाइज्जमाणाइं-स्पर्श किये बिना, विद्धंसं आगच्छंति-नष्ट हो जाते हैं।

भंते-हे भगवन् ! एएसि-इन, अणासाइज्जमाणाणं-बिना आस्वादन किये हुए, य-और, अफासाइज्जमाणाणं-बिना स्पर्श किये हुए पुद्गलों में से, कयरे-कौन से पुद्गल, कयरेहितो-किन पुद्गलो से, अप्पा-अल्प हैं, वा-अथवा, बहुया-बहुत है, वा-अथवा, तुल्ला -तुल्य हैं, वा-अथवा, विसेसाहिया-विशेषाधिक है ?

गोयमा-हे गौतम ! सव्वत्थोवा-सब से थोड़े, पोग्गला-पुद्गल, अणासाइज्जमाणा -आस्वाद मे नही आये हुए है और, अफासाइज्जमाणा-स्पर्श मे नही आये हुए पुद्गल, अणंतगुणा-उनसे अनन्तगुणा हैं।

भंते-हे भगवन् ! बेइंदिया-बेइन्द्रिय जीव, जे-जिन, पोग्गले-पुद्गलों को, आहारत्ताए-आहार रूप में ग्रहण करते हैं। ते-वे, पोग्गला-पुद्गल, तेसिं-उनके, कीसत्ताए-किस रूप मे, भुज्जो भुज्जो-बारम्बार, परिणमंति-परिणत होते है ?

गोयमा-हे गौतम ! जिब्भिदिय फासिंदिय वेमायत्ताए-वे पुद्गल उनको विविधता-पूर्वक जिव्हेन्द्रियपने और स्पर्शनेन्द्रियपने, भुज्जो भुज्जो-बारबार, परिणमंति-परिणत होते हैं।

भंते-हे भगवन् ! बेइंदियाणं-बेइन्द्रिय जीवों को क्या, पुव्वाहारिया-पहले आहार किये हुए, पोग्गला-पुद्गल, परिणया-परिणत हुए हैं ?

तहेव-यह सब वक्तव्य पहले की तरह समझना चाहिए। जाव-यावत्, अचलियं-कम्मं-अचलित कर्म की, णो णिज्जरंति-निर्जरा नही करते है।

भावार्थ ३४-बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कह देनी चाहिए। उनका श्वासोच्छ्वास विमात्रा से कहना चाहिए।

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! बेइन्द्रिय जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा होती है ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! बेइन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का है। उनमें से अनाभोगनिर्वर्तित आहार तो पहले के समान समझना चाहिए। आभोग-निर्वर्तित आहार की अभिलाषा विमात्रा से असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त में

होती है। बाकी उसी प्रकार जानना चाहिए यावत् अनन्तवां भाग आस्वादन करते हैं।

३६ प्रश्न–हे भगवन् ! बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार रूप से ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सब पुद्गलों को खा जाते हैं अथवा उन सब को नहीं खाते हैं ?

३६ उत्तर–हे गौतम ! बेइन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है–रोमाहार और प्रक्षेपाहार। जिन पुद्गलों को रोमाहार द्वारा ग्रहण करते हैं, उन सब को सम्पूर्णपने खा जाते हैं। जिन पुद्गलों को प्रक्षेपाहार रूप से ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलों में से असंख्यातवां भाग खाया जाता है और अनेक हजारों भाग आस्वादन किये बिना और स्पर्श किये बिना विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं।

३७ प्रश्न–हे भगवन् ! इन बिना आस्वादन किये हुए और बिना स्पर्श किये हुए पुद्गलों में से कौन से पुद्गल किन पुद्गलों से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

३७ उत्तर–हे गौतम ! आस्वादन में नहीं आये हुए पुद्गल सब से थोड़े हैं, स्पर्श में नहीं आये हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं।

३८ प्रश्न–हे भगवन् ! बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार रूप से ग्रहण करते हैं वे पुद्गल उनके किस रूप में बारम्बार परिणत होते हैं ?

३८ उत्तर–हे गौतम ! वे पुद्गल उनको विविधतापूर्वक जिव्हेन्द्रियपने और स्पर्शनेन्द्रियपने बारबार परिणत होते हैं।

३९ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या बेइन्द्रिय जीवों को पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं ?

३९ उत्तर–हे गौतम ! यह सब पहले की तरह समझना चाहिए। यावत् अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं, वहां तक कह देना चाहिए।

विवेचन–द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रिय वाले) जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और

उत्कृष्ट बारह वर्ष की है। इन जीवों को आभोग आहार ('मैं आहार करता हूँ' इस प्रकार बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला आहार) की अभिलाषा असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त्त बाद होती है। इन जीवों के स्थिति के अनुसार आहार का कोई निश्चित नियम नहीं है, अतएव 'विमात्रा' से कहा गया है।

इन जीवों का आभोग आहार भी दो प्रकार का होता है-रोमाहार और प्रक्षेपाहार। रोमाहार उसे कहते हैं जो रोमों द्वारा अपने आप लिया जाता है। जैसे कि-जब वर्षा होती है तब रोमों द्वारा शीत अपने आप ही आजाता है। इस प्रकार रोमों द्वारा ग्रहण किये हुए आहार को वे पूर्ण रूप से खा जाते हैं। कवल (ग्रास) द्वारा जो आहार ग्रहण किया जाता है उसे प्रक्षेपाहार कहते हैं। प्रक्षेपाहार का बहुत सा भाग नष्ट हो जाता है और असंख्यातवां भाग शरीर रूप मे परिणत होता है। इस कथन के आधार पर यह प्रश्न किया गया है कि जो पुद्गल स्पर्श में तथा आस्वाद में आये बिना ही नष्ट हो जाते हैं उनमे कौन से अधिक हैं? अर्थात् स्पर्श मे न आने वाले पुद्गल अधिक हैं या आस्वाद में न आने वाले? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया गया है कि आस्वाद में न आने वाले पुद्गल थोड़े है और स्पर्श न किये जाने वाले पुद्गल अनन्तगुणा है।

तेइन्द्रियादि जीवों का वर्णन

४०-तेइंदिय चउरिंदियाणं णाणत्तं ठिइए जाव णेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं अणासाइज्जमाणाइं अफासाइज्जमाणाइं विद्धंसं आगच्छंति।

४१ प्रश्न-एएसिं णं भंते! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाणं पुच्छा।

४१ उत्तर-गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा, अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

तेइंदियाणं घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियवेमायाए भुज्जो भुज्जो परिणमंति। चउरिंदियाणं चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

शब्दार्थ-तेइंदिय चउरिंदियाणं-तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों की, ठिइए-स्थिति में, णाणत्तं-भेद है। जाव-यावत्, अणेगाइं च णं भागसहस्साइं-अनेक हजारों भाग, अणाघाइज्जमाणाइं-बिना सूंघे, अणासाइज्जमाणाइं-बिना चखे, अफासाइज्जमाणाइं-बिना स्पर्शे ही, विद्धंसं आगच्छंति-नष्ट हो जाते हैं।

भंते-हे भगवन्! एएसि-इन, अणाघाइज्जमाणाणं-बिना सूंघे हुए, अणासाइज्जमाणाणं-बिना चखे हुए, अणाफासाइज्जमाणाणं-बिना स्पर्श किये हुए, पोग्गलाणं-पुद्गलों में कौन किससे थोड़ा, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है? पुच्छा-ऐसा प्रश्न करना चाहिए।

गोयमा-हे गौतम! अणाघाइज्जमाणा-बिना सूंघे हुए, पोग्गला-पुद्गल, सव्वत्थोवा-सब से थोड़े हैं, अणासाइज्जमाणा-बिना चखे हुए पुद्गल,अणंतगुणा-उनसे अनन्तगुणा है, अफासाइज्जमाणा-बिना स्पर्श किये हुए पुद्गल, अणंतगुणा-अनन्तगुणा हैं, तेइंदियाणं-तेइन्द्रिय जीवों द्वारा किया हुआ आहार उनके घाणिंदिय जिब्भिंदिय फासिंदियवेमायाए-घ्राणेन्द्रिय के रूप में, जिव्हेन्द्रिय के रूप में और स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में विमात्रा से, भुज्जो भुज्जो-बारबार, परिणमंति-परिणत होता है। चउरिंदियाणं-चौइन्द्रिय जीवों द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार उनके, चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियत्ताए-चक्षु-इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय रूप में विमात्रा से, भुज्जो भुज्जो-बारम्बार परिणमंति-परिणत होते है।

भावार्थ-४०-तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों की स्थिति मे भेद है। शेष सब पहले की तरह है। यावत् अनेक हजारों भाग बिना सूंघे, बिना चखे और बिना स्पर्शे ही नष्ट हो जाते हैं।

४१ प्रश्न-हे भगवन्! इन बिना सूंघे हुए, बिना चखे हुए और बिना स्पर्श किये हुए पुद्गलों में कौन किससे थोड़ा, बहुत, अल्प या विशेषाधिक है? ऐसा प्रश्न करना चाहिए।

४१ उत्तर-हे गौतम! बिना सूंघे हुए पुद्गल सब से थोड़े है, बिना

चखे हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं और बिना स्पर्श किये हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं।

तेइन्द्रिय जीवों द्वारा खाया हुआ आहार घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में विमात्रा से बारबार परिणत होता है। चौइन्द्रिय जीवों द्वारा खाया हुआ आहार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय रूप में विमात्रा से बारम्बार परिणत होता है।

विवेचन—तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों का कथन बेइन्द्रिय जीवों की तरह ही कहना चाहिए। किन्तु स्थिति आदि मे अन्तर है। वह इस प्रकार है—तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ४९ रात दिन की है। चौइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट छह मास की है। तेइन्द्रिय जीव जो आहार करते हैं वह उनके घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय, इन तीन इन्द्रिय रूप में परिणत होता है और चौइन्द्रिय जीवों के चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय इन चार इन्द्रिय के रूप में परिणत होता है।

शेष सारा वर्णन बेइन्द्रियों के समान समझना चाहिए।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य का वर्णन

४२—पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई भणिऊणं उस्सासो वेमायाए। आहारो अणाभोगणिव्वत्तिओ अणुसमयं अविरहिओ। आभोगणिव्वत्तिओ जहण्णेणं अंतो मुहुत्तस्स, उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स। सेसं जहा चउरिंदियाणं जाव णो अचलियं कम्मं णिज्जरेंति।

४३—एवं मणुस्साण वि, णवरं आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठमभत्तस्स, सोइंदिय ५ वेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति, सेसं जहा तहेव जाव णिज्जरेंति।

शब्दार्थ-पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं-पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों की, ठिई स्थिति, भणिऊणं-कह कर, उस्सासो-उनका उच्छ्वास, वेमायाए-विमात्रा से कहना चाहिए। अणाभोगणिव्वत्तिओ आहारो-उनका अनाभोगनिर्वतित आहार, अविरहिओ-विरह रहित, अणुसमयं-प्रति समय होता है। आभोगणिव्वत्तिओ-आभोग निर्वतित आहार, जहण्णेणं -जघन्य, अंतोमुहुत्तस्स-अन्तर्मुहूर्त्त और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, छट्ठभत्तस्स-षष्ठ भक्त अर्थात् दो दिन बीतने पर होता है। सेसं जहा चउरिंदियाणं-शेष वर्णन चौइन्द्रिय जीवों के समान समझना चाहिए। जाव-यावत्, अचलियं कम्मं-अचलित कर्म की, णो णिज्जरेंति-निर्जरा नही करते हैं।

एवं मणुस्साण वि-मनुष्यों के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही जानना चाहिए, णवरं-किंतु इतनी विशेषता है कि, आभोगणिव्वत्तिए-उनका आभोग निर्वतित आहार, जहण्णेणं-जघन्य अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त्त, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, अट्ठमभत्तस्स-अष्टम भक्त अर्थात् तीन दिन बीतने पर होता है।

पञ्चेन्द्रिय जीवों द्वारा गृहीत आहार सोइंदिय ५ वेमायत्ताए-श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय, इन पांचों इन्द्रिय रूप में विमात्रा से भुज्जो भुज्जो-बारम्बार, परिणमंति-परिणत होता है, सेसं जहा तहेव जाव णिज्जरेंति शेष सब पहले के समान समझना चाहिए यावत् अचलित कर्म की निर्जरा नही करते हैं।

भावार्थ-४२-पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों की स्थिति कहकर उनका उच्छ्वास विमात्रा-विविध प्रकार से कहना चाहिए। उनके अनाभोगनिर्वतित आहार निरन्तर प्रतिसमय होता है। आभोगनिर्वतित आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट षष्ठभक्त अर्थात् दो दिन बीते जाने पर होता है। शेष वर्णन चतुरिन्द्रिय जीवों के समान समझना चाहिए यावत् वे अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं।

४३-मनुष्यों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उनका आभोग निर्वतित आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अष्टम भक्त (तीन रात दिन) बीतने पर होता है।

पञ्चेन्द्रियों द्वारा गृहीत आहार श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय,

रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय रूप में विमात्रा से परिणत होता है। शेष सब पहले की तरह समझना चाहिए। यावत् वे अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते हैं।

विवेचन-पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च का आहार षष्ठ भक्त अर्थात् दो दिन बीत जाने पर बतलाया गया है। यह आहार देवकुरु और उत्तरकुरु के युगलिक तिर्यञ्चों की अपेक्षा समझना चाहिए और ऐसी ही स्थिति (आयु) वाले भरत ऐरवत के तिर्यञ्च युगलिको के लिए भी समझना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यो का आहार अष्टम भक्त अर्थात् तीन दिन बीत जाने के बाद कहा गया है वह देवकुरु उत्तरकुरु के युगलिक मनुष्यों की अपेक्षा तथा भरत ऐरवत क्षेत्र में जब अवसर्पिणी का प्रथम आरा प्रारम्भ होता है और उत्सर्पिणी का छठा आरा समाप्ति पर होता है उस समय के मनुष्यों की अपेक्षा समझना चाहिए।

वाणव्यन्तरादि का वर्णन

४४-वाणमंतराणं ठिईए णाणत्तं, अवसेसं जहा णागकुमाराणं।

४५-एवं जोइसियाण वि, णवरं उस्सासो जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि मुहुत्तपुहुत्तस्स। आहारो जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि दिवसपुहुत्तस्स, सेसं तहेव।

४६-वेमाणियाणं ठिई भाणियव्वा ओहिया, उस्सासो जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं, आहारो आभोगणिव्वत्तिओ जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं, सेसं चलियाइं तहेव जाव णिज्जरेंति।

शब्दार्थ-वाणमंतराणं-वाणव्यन्तर देवों की, ठिईए-स्थिति में, णाणत्तं-भेद है।

अवसेसं-बाकी सारा वर्णन, जहा णागकुमाराणं-नागकुमारों की तरह समान समझना चाहिए।

एवं-इसी तरह, जोइसियाण वि-ज्योतिषी देवों के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए। णवरं-इतनी विशेषता है कि, उस्सासो-उनका उच्छ्वास, जहण्णेणं-जघन्य से, मुहुत्तपुहुत्तस्स -मुहूर्त्त पृथक्त्व और, उक्कोसेण-उत्कृष्ट भी, मुहुत्तपुहुत्तस्स-मुहूर्त्तपृथक्त्व के बाद होता है। अहारो-उनका आहार, जहण्णेणं-जघन्य से, दिवसपुहुत्तस्स-दिवसपृथक्त्व से और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, दिवसपुहुत्तस्स-दिवसपृथक्त्व के बाद होता है। सेसं तहेव-शेष सारा वर्णन पहले के समान समझना चाहिए।

वेमाणियाणं-वैमानिक देवों की, ओहिया-औघिक, ठिई-स्थिति, भाणियव्वा-कहनी चाहिये। उस्सासो-उनका उच्छ्वास, जहण्णेणं-जघन्य से, मुहुत्तपुहुत्तस्स-मुहुर्त्तपृथक्त्व से और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, तेत्तीसाए पक्खाणं-तेतीस पक्ष के बाद होता है। आभोगणिव्वत्तिओ आहारो-उनका आभोगनिर्वर्तित आहार, जहण्णेणं-जघन्य से, दिवसपुहुत्तस्स-दिवस पृथक्त्व और, उक्कोसेणं-उत्कृष्ट, तेत्तीसाए वाससहस्साणं-तेत्तीस हजार वर्ष के बाद होता है। सेसं चलियाइयं तहेव जाव णिज्जरेंति-वे चलित कर्म की निर्जरा करते हैं। इत्यादि शेष सब वर्णन पूर्ववत् ही समझना चाहिए।

भावार्थ-४४-वाणव्यन्तर देवों की स्थिति में भेद है। बाकी सारा वर्णन नागकुमारों की तरह समझना चाहिए।

४५-ज्योतिषी देवों के सम्बन्ध में भी इसी तरह जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उनका उच्छ्वास जघन्य से मुहूर्त्त पृथक्त्व और उत्कृष्ट भी मुहूर्त्त पृथक्त्व के बाद होता है। उनका आहार जघन्य से दिवसपृथक्त्व और उत्कृष्ट भी दिवसपृथक्त्व के बाद होता है। शेष सारा वर्णन पहले के समान समझना चाहिए।

४६-वैमानिक देवों की औघिक स्थिति कह देनी चाहिए। उनका उच्छ्वास जघन्य से मुहूर्त्त पृथक्त्व और उत्कृष्ट तेतीस पक्ष के पश्चात् होता है। उनका आभोग निर्वर्तित आहार जघन्य दिवस पृथक्त्व के बाद और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्ष के बाद होता है। वे चलित कर्म की निर्जरा करते है। इत्यादि शेष सब वर्णन पहले के समान समझना चाहिए।

विवेचन-वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है। ज्योतिषी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है।

दो से लेकर नौ तक की संख्या को 'पृथक्त्व' कहते है। 'पृथक्त्व' यह सैद्धांतिक पारिभाषिक शब्द है। अतः दो मुहूर्त्त से लेकर नौ मुहूर्त्त तक को 'मुहूर्त्त पृथक्त्व' कहते हैं। जघन्य 'मुहूर्त्तपृथक्त्व' में दो या तीन मुहूर्त्त समझना चाहिए और उत्कृष्ट में आठ या नौ मुहूर्त्त समझना चाहिए।

यहाँ वैमानिक देवो की औधिक स्थिति कही है। औधिक का परिमाण एक पल्योपम से लेकर तेतीस सागरोपम तक है। इसमे जघन्य स्थिति सौधर्म देवलोक की अपेक्षा और उत्कृष्ट अनुत्तर विमानो की अपेक्षा से कही गई है।

श्वासोच्छ्वास और आहार का जघन्य परिमाण जघन्य स्थिति वालों की अपेक्षा और उत्कृष्ट परिमाण उत्कृष्ट स्थिति वालो की अपेक्षा से जानना चाहिए। यहाँ संग्रह गाथा कही गई है जो इस प्रकार है-

जस्स जाइं सागराइं तस्स ठिई तत्तिएहिं पक्खेहिं।
उस्सासो देवाणं, वाससहस्सेहिं आहारो॥

अर्थ-जिन वैमानिक देवों की जितने सागरोपम की स्थिति हो, उनका श्वासोच्छ्वास उतने ही पक्ष में होता है और आहार उतने ही हजार वर्ष में होता है। ऐसा समझना चाहिए।

आत्मारम्भ परारम्भ आदि का वर्णन

४७ प्रश्न-जीवा णं भंते! किं आयारंभा परारंभा तदुभयारंभा अणारंभा?

४७-उत्तर गोयमा! अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, णो अणारंभा। अत्थेगइया जीवा णो आयारंभा, णो परारंभा, णो तदुभयारंभा, अणारंभा।

४८ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि' एवं पडिउच्चारेयव्वं ?

४८ उत्तर-गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता तंजहा-संसार समावण्णगा य, असंसार समावण्णगा य। तत्थ णं जे ते असंसार समावण्णगा ते णं सिद्धा। सिद्धा णं णो आयारंभा णो परारंभा णो तदुभयारंभा, अणारंभा। तत्थ णं जे ते संसार समावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा-संजया य असंजया य। तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता तंजहा-पमत्तसंजया य अप्पमत्तसंजया य। तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया ते णं णो आयारंभा णो परारंभा णो तदुभयारंभा, अणारंभा। तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुहं जोगं पडुच्च णो आयारंभा णो परारंभा णो तदुभयारंभा अणारंभा। असुहं जोगं पडुच्च आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, णो अणारंभा। तत्थ णं जे ते असंजया ते अविरइं पडुच्च आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, णो अणारंभा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'अत्थेगइया जीवा जाव अणारंभा।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवान् ! किं-क्या, जीवा-जीव, आयारंभा-आत्मारम्भी हैं ? परारंभा-परारम्भी हैं, तदुभयारंभा-तदुभयारम्भी है या, अणारंभा-अनारम्भी है ?

गोयमा-हे गौतम ! अत्थेगइया-कितनेक, जीवा-जीव, आयारंभा वि-आत्मारम्भी भी हैं, परारंभा वि-परारम्भी भी हैं और, तदुभयारंभा वि-तदुभयारम्भी भी है किन्तु, णो अणारंभा-अनारम्भी नही है, अत्थेगइया-कितनेक, जीवा-जीव, णो आयारंभा-आत्मारम्भी

भी नही है, णो परारंभा-परारम्भी भी नहीं हैं, णो तदुभयारंभा-तदुभयारम्भी भी नही हैं किन्तु, अणारंभा-अनारम्भी हैं।

भंते-हे भगवन् ! केणट्ठेणं-किस कारण से, एवं वुच्चइ-आप ऐसा फरमाते है कि अत्थेगइया-कितनेक, जीवा-जीव, आयारंभा वि-आत्मारम्भी भी हैं ? एवं पडिउच्चारेयव्वं-इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न फिर से उच्चारण करना चाहिए ?

गोयमा-हे गौतम ! जीवा-जीव, दुविहा-दो प्रकार के, पण्णत्ता-कहे गये हैं, तजहा -वे इस प्रकार हैं, संसारसमावण्णगा-ससार-समापन्नक, य-और, असंसारसमावण्णगा-असंसार-समापन्नक, तत्थ-उनमें से, जे-जो, असंसारसमावण्णगा-असंसार-समापन्नक हैं। ते-वे, सिद्धा-सिद्ध है, सिद्धा-सिद्ध भगवान्, णो आयारंभा, णो परारंभा, णो तदुभयारंभा -आत्मारम्भी नही है, परारम्भी नही हैं, और तदुभयारम्भी नही हैं किन्तु, अणारंभा-अनारम्भी है, जे-जो, संसारसमावण्णगा-संसार-समापन्नक जीव है, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, पण्णत्ता-कहे गये हैं, तंजहा-वे इस प्रकार है-संजया-संयत, य-और, असंजया-असंयत, तत्थ-उनमें से, जे-जो, संजया-संयत है, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, पण्णत्ता-कहे गये है, तंजहा-वे इस प्रकार है-पमत्तासंजया-प्रमत्त संयत, य-और, अप्पमत्तसंजया-अप्रमत संयत, तत्थ-उनमें से, जे-जो, अप्पमत्तसंजया-अप्रमत्त संयत है, ते-वे णो आयारंभा णो परारंभा णो तदुभयारंभा-आत्मारम्भी नही है, परारम्भी नही है और तदुभयारम्भी नही है किन्तु, अणारंभा-अनारम्भी है। जे-जो, पमत्तसंजया-प्रमत्तसयत हैं, ते-वे, सुहं जोगं-शुभ योग की, पडुच्च-अपेक्षा, णो आयारंभा, णो परारंभा, णो तदुभयारंभा-आत्मारम्भी नहीं है, परारम्भी नही हैं और तदुभयारम्भी नही है, किंतु अणारंभा-अनारम्भी है। असुहं जोगं-अशुभ योग की, पडुच्च-अपेक्षा, आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि-अत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी है, किन्तु णो अणारंभा-अनारम्भी नही है। जे-जो, असंजया-असंयत हैं, ते-वे, अविरइं पडुच्च-अविरति की अपेक्षा, आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि-आत्मारम्भी भी है, परारम्भी भी है और तदुभयारम्भी भी है किन्तु, णो अणारंभा-अनारम्भी नही है। तेणट्ठेणं-इस कारण, गोयमा-हे गौतम ! एवं वुच्चइ-ऐसा कहा जाता है, कि अत्थेगइया जीवा जाव अणारंभा-कितनेक जीव आत्मारम्भी भी है यावत् अनारम्भी भी है।

भावार्थ-४७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं या अनारम्भी है ?

४७ उत्तर-हे गौतम ! कितनेक जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी है और तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं है, तथा कितनेक जीव आत्मारम्भी नहीं हैं, परारम्भी नहीं हैं और तदुभयारम्भी भी नहीं हैं, किन्तु अनारम्भी हैं।

४८ प्रश्न-हे भगवन् ! आप इस प्रकार किस कारण से कहते हैं कि -'कितनेक जीव आत्मारम्भी भी हैं' इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न फिर से उच्चारण करना चाहिए।

४८ उत्तर-हे गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं-संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक। उनमें से जो जीव असंसारसमापन्नक हैं वे सिद्ध भगवान् हैं, वे आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं हैं किन्तु अनारम्भी हैं। जो संसारसमापन्नक हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-संयत और असंयत। इनमें से जो संयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं यथा-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत। जो अप्रमत्त संयत हैं, वे आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। जो प्रमत्तसंयत हैं, वे शुभ योग की अपेक्षा आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं हैं, किंतु अनारम्भी हैं और अशुभ योग की अपेक्षा आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं, किंतु अनारम्भी नहीं हैं। जो असंयत हैं, वे अविरति की अपेक्षा से आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं, किंतु अनारम्भी नहीं हैं। इसलिए हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'कितनेक जीव आत्मारम्भी भी हैं, यावत् कितनेक जीव अनारम्भी भी हैं।

विवेचन-'आरम्भ' शब्द अनेक अर्थों में प्रचलित है। किसी कार्य को शुरू करना भी 'आरम्भ' कहलाता है, किन्तु यहा पर यह अभिप्राय नही है। यहाँ 'आरम्भ' का अर्थ है-ऐसा सावद्य कार्य करना जिससे किसी जीव को कष्ट पहुँचता हो या उसके प्राणो का घात होता हो। आशय यह है कि आश्रवद्वार में प्रवृत्ति करना आरम्भ कहलाता है।

आत्मारम्भ का अर्थ यह है-आत्मा को आश्रवद्वार मे प्रवृत्त करना या आत्मा द्वारा स्वयं आरम्भ करना। जो ऐसा करता है वह आत्मारम्भी कहलाता है। दूसरे को आश्रव में प्रवृत्त करना या दूसरे के द्वारा आरम्भ कराना-परारम्भ है और ऐसा करने वाला परा-

रम्भी कहलाता है। आत्मारम्भ और परारम्भ दोनों करने वाला-तदुभयारम्भी कहलाता है। जो जीव आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ से रहित होता है, वह अनारम्भी कहलाता है।

'आयारम्भा वि परारम्भा वि' यहाँ पर जो 'अपि' शब्द दिया है, वह पूर्वपद और उत्तरपद के संबंध को सूचित करता है। यह शब्द 'आत्मारम्भीपन' इत्यादि धर्मों का एकाश्रयपन को बतलाने के लिए अथवा भिन्नाश्रयपन को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। एकाश्रयपन कालभेद से समझना चाहिए। यथा-एक ही जीव किसी समय आत्मारम्भी होता है, किसी समय परारम्भी होता है और किसी समय उभयारम्भी होता है। इसीलिए अनारम्भी नहीं होता। भिन्नाश्रयपन भिन्न भिन्न जीवों की अपेक्षा समझना चाहिए कि कितनेक जीव अर्थात् असंयत जीव आत्मारम्भी, परारम्भी और उभयारम्भी भी होते हैं। कितनेक जीव अर्थात् सिद्ध आदि जीव न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं।

पहले जीव के दो भेद किये गये हैं-संसार-समापन्नक अर्थात् संसारी और असंसार-समापन्नक अर्थात् असंसारी-सिद्ध। सिद्ध जीव अनारम्भी है।

संसारी के दो भेद हैं-संयत और असंयत। जो जीव सब प्रकार की बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थि से और विषय कषाय से निवृत्त होगये हैं, वे संयत कहलाते हैं। जो विषय कषाय से निवृत्त नहीं हुए हैं और आरम्भ में प्रवृत्त हैं, वे असंयत कहलाते हैं।

संयत भी दो प्रकार के हैं-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत। अप्रमत्तसंयत न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं और न तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। प्रमत्तसंयत के भी दो भेद हैं-शुभ योग वाले और अशुभ योग वाले। उपयोगपूर्वक-सावधानतापूर्वक योग की प्रवृत्ति को शुभयोग कहते है। उपयोगपूर्वक पडिलेहणा (प्रतिलेखना) आदि करता हुआ संयत अनारम्भी होता है। उपयोग के बिना प्रतिलेखनादि करना अशुभ योग है। जैसा कि कहा-

पुढवी-आउक्काए-तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ॥

अर्थात्-प्रतिलेखनाप्रमत्त अर्थात् उपयोग रहित होकर प्रतिलेखना करने वाला पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन छह कायों का विराधक होता है।

सारांश यह है कि शुभयोग वाला प्रमत्त संयत-अनारम्भी है और अशुभयोग वाला आत्मारम्भी आदि है, अनारम्भी नहीं है। जैसे कि ईर्यासमिति में ध्यान रख कर गमन करते हुए मुनि द्वारा किसी जीव की विराधना हो जाने पर भी (द्रव्य हिंसा हो जाने पर भी) वह अनारम्भी है।

४९ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं आयारंभा परारंभा, तदुभयारंभा, अणारंभा ?

४९ उत्तर-गोयमा ! णेरइया आयारंभा वि, जाव णो अणारंभा। एवं जाव असुरकुमारा वि।

५० प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

५० उत्तर-अविरइं पडुच्च, से तेणट्ठेणं, जाव णो अणारंभा, एवं असुरकुमारा वि। जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया।

५१-मणुस्सा जहा जीवा, णवरं सिद्ध विरहिया भाणियव्वा।

५२-वाणमंतरा जाव वेमाणिया, जहा णेरइया।

५३-सलेस्सा जहा ओहिया। कण्हलेसस्स णीललेसस्स काउलेसस्स जहा ओहिया जीवा, णवरं पमत्त-अप्पमत्ता ण भाणियव्वा। तेउलेसस्स, पम्हलेसस्स, सुक्कलेसस्स जहा ओहिया जीवा, णवरं सिद्धा ण भाणियव्वा।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! णेरइया-नैरयिक जीव, किं-क्या, आयारंभा-आत्मारम्भी है, परारंभा-परारम्भी हैं, तदुभयारंभा-तदुभयारम्भी है या, अणारंभा-अनारम्भी हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! णेरइया-नैरयिक जीव, आयारंभा वि जाव णो अणारंभा-आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी है किन्तु अनारम्भी नहीं है।



से केणट्ठेणं-हे भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! अविरइं पडुच्च-अविरति की अपेक्षा, से तेणट्ठेणं-अविरति के कारण नैरयिक आत्मारम्भी आदि है, जाव णो अणारम्भा-किन्तु अनारम्भी नहीं हैं, एवं-इस प्रकार, असुरकुमारा वि-असुरकुमारो का जान लेना चाहिए, जाव पंचिदिय तिरिक्ख जोणिया-यावत् तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तक जान लेना चाहिए ।

मणुस्सा जहा जीवा-मनुष्य पूर्वोक्त सामान्य जीवों की तरह जानना चाहिए, णवरं -किन्तु विशेषता यह है कि, सिद्ध विरहिया भाणियव्वा-इन जीवों में सिद्धों का नही कहना चाहिए।

वाणमंतरा जाव वेमाणिया-वाणव्यन्तरों से लगाकर वैमानिक देवों तक, जहा णेरइया-नैरयिकों की तरह कहना चाहिए।

सलेस्सा-लेश्या वाले जीव, जहा ओहिया-सामान्य जीवों की तरह कहना चाहिए। कण्हलेसस्स, णीललेसस्स, काउलेसस्स-कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले, जहा ओहिया जीवा-सामान्य जीवो की तरह कहना चाहिए, णवरं-किन्तु इतना अन्तर है कि, पमत्ता अप्पमत्ता ण भाणियव्वा-यहाँ पर प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं कहना चाहिए, तेउलेसस्स पम्हलेसस्स सुक्कलेसस्स-तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीव, जहा ओहिया जीवा-औधिक जीवों की तरह कहना चाहिए, णवर-किन्तु इतनी विशेषता है कि, सिद्धा ण भाणियव्वा-सिद्ध जीव नही कहना चाहिए ।

भावार्थ-४९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं या अनारम्भी हैं ?

४९ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं ।

५० प्रश्न-हे भगवन् ! आप इस प्रकार किस कारण से कहते हैं ?

४८ उत्तर-हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं । इस प्रकार असुरकुमार का भी जान लेना चाहिए । यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तक जान लेना चाहिए ।

५१-मनुष्य पूर्वोक्त सामान्य जीवों की तरह जानना चाहिए,किन्तु विशे-

षता यह है कि इन जीवों में सिद्धों को नहीं कहना चाहिए।

५२—वाणव्यन्तरों से लगा कर वैमानिक देवों तक नैरयिकों की तरह कहना चाहिए।

५३—लेश्या वाले जीव सामान्य जीवों की तरह कहना चाहिए। कृष्ण लेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले औधिक जीवों की तरह कहना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि यहाँ पर प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं कहना चाहिए। क्योंकि इन लेश्या वाले सब प्रमत्त ही होते हैं। तेजो लेश्या वाले, पद्म लेश्या वाले और शुक्ल लेश्या वाले जीव सामान्य जीवों की तरह कह देना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि सिद्ध जीव नहीं कहना चाहिए।

विवेचन—नरक के जीव अव्रती हैं, इसलिए वे अनारम्भी नही हैं। इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक सभी अनारम्भी नही है, क्योकि वे सभी अव्रती हैं।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय जीवो के लिए भी यही बात है, वे आत्मारम्भी भी है, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नही हैं।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों में कोई कोई श्रावक तो हो सकते हैं, किन्तु वे सर्व-विरति चारित्र को अंगीकार नही कर सकते, इसलिए वे भी अनारम्भी नहीं हैं।

मनुष्य संयत और असंयत के भेद से दो प्रकार के है। संयत के भी प्रमत्त और अप्रमत्त ये दो भेद है। जीव के विषय में पहले समुच्चय रूप से जो कहा गया है वही यहाँ भी समझना चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के विषय में नरक जीवो के समान ही समझना चाहिए, क्योंकि अव्रत की अपेक्षा नारकी और देव समान ही हैं।

लेश्या वाले जीवों के विषय मे प्रश्न किया गया है। लेश्या का स्वरूप इस प्रकार है—

कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्राऽयं, लेश्याशब्दः प्रयुज्यते॥

अर्थात्—कृष्ण आदि द्रव्यो के सम्बन्ध से आत्मा में जो परिणाम उत्पन्न होते हैं उसे लेश्या कहते हैं। जैसे स्फटिक के नीचे काले रंग की वस्तु रखने से स्फटिक काला दिखाई देता है वैसे ही लेश्या से आत्मा हो जाता है।

लेश्या वाले जीवों के निरूपण में संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक ऐसे दो भेद नहीं करना चाहिए, क्योंकि लेश्या वाले जीव ससार समापन्नक ही होते हैं, अससार समापन्नक नही। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या में औघिक (सामान्य जीव) के समान समझना चाहिए। किन्तु इनमें प्रमादी, अप्रमादी के भेद नही हैं, क्योंकि इन लेश्या वाले अप्रमत्त सयत नही होते है।

तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या के प्रश्नोत्तर वैसे ही समझना चाहिए जैसे समुच्चय जीव के विषय में है। इन लेश्याओं मे संयत, असयत, प्रमादी और अप्रमादी के भेद भी है।

प्रमादी में भी तेजोलेश्या,पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या होती है× उसमें शुभयोग और अशुभ योग भी होता है। यदि वह उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करता है, तो अनारम्भी है और यदि ऐसा नहीं करता है, तो अनारम्भी नही है।

तेजोलेश्या आदि में समुच्चय जीव की अपेक्षा इतनी विशेषता है कि इनमें असंसार-समापन्नक (सिद्ध) नहीं कहना चाहिए, क्योकि सिद्ध अलेश्य हैं।

× टीकाकार कृष्णादि तीन भाव लेश्याओ मे संयम नही मानते हैं, किन्तु यह बात संगत नहीं होती है, क्योंकि जीव को चारित्र आते ही सातवां गुणस्थान ही आता है। फिर जीव सातवें गुणस्थान से छठे गुणस्थान मे आ सकते है। किन्तु नीचे के गुणस्थानो से नही। सातवें गुणस्थान में तो तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्याएं ही होती हैं और छठे गुणस्थान मे छहो ही हैं। यदि उनमे भाव कृष्णादिलेश्याएं मानी जाय तब तो उनमे द्रव्य कृष्णादि लेश्याए मानी जा सकती है। और यदि भाव कृष्णादि तीन लेश्याएं न मानी जाय तो द्रव्य तीन लेश्याएं कैसे आवेगी ? क्योकि (उन भाव लेश्याओ के बिना वे द्रव्य लेश्याएं प्राप्त नही हो सकती। हाँ, यह हो सकता है कि भाव लेश्या हट जाने के बाद भी द्रव्य लेश्या कुछ समय तक रह सकती है, किन्तु भाव लेश्या के बिना द्रव्य लेश्या नही आ सकती। भाव लेश्या तो उन उन द्रव्य लेश्याओ के बिना भी आ सकती है) चारित्र (छठे गुणस्थान) मे छह लेश्याएं शास्त्र मे बताई है। जबकि जीव सातवें गुणस्थान से ही छठे मे आते हैं और सातवें मे तीन ही लेश्याए हैं, तो फिर छठे मे तीन तो भाव लेश्या और कृष्णादि तीन द्रव्य लेश्या, ये छह मानें तो तीन भाव लेश्याओ का मानना तो ठीक हो जायगा, क्योकि वे तो सातवे मे थी ही, किन्तु कृष्णादि तीन द्रव्य लेश्या कहाँ से आई ? क्योकि भाव लेश्या के बिना द्रव्य लेश्या आ नही सकती, यह ऊपर बताया जा चुका है। अत. कृष्णादि तीन भाव लेश्याओ के मानने पर ही कृष्णादि तीन द्रव्य लेश्याओ का मानना युक्ति संगत हो सकेगा। कृष्णादि अशुभ लेश्याओ के भी असख्य दर्जे हैं। उनमे से नीचे के ज्यादा खराब अशुभ दर्जों को छोड़कर ऊपर के कम अशुभ दर्जे वाले परिणाम थोड़ी देर के लिये किसी किसी के हो जाते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याओ मे चारित्र की प्राप्ति नही होती, परन्तु चारित्र प्राप्त हो जाने के



ज्ञानादि सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

५४ प्रश्न–इहभविए भंते ! णाणे, परभविए णाणे, तदुभयभविए णाणे ?

५४ उत्तर–गोयमा ! इहभविए वि णाणे, परभविए वि णाणे, तदुभयभविए वि णाणे। दंसणं पि एवमेव ।

५५ प्रश्न–इहभविए भंते ! चरित्ते, परभविए चरित्ते, तदुभयभविए चरित्ते ?

५५ उत्तर–गोयमा ! इहभविए चरित्ते, णो परभविए चरित्ते, णो तदुभयभविए चरित्ते । एवं तवे संजमे ।

शब्दार्थ–भंते–हे भगवन् ! क्या, णाणे–ज्ञान, इहभविए–इह भविक है, परभविए–परभविक है ? या, तदुभयभविए–तदुभय भविक है ?

गोयमा–हे गौतम ! णाणे–ज्ञान, इहभविए वि–इह भविक भी है, परभविए वि–परभविक भी है और, तदुभयभविए वि–तदुभयभविक भी है, एवमेव–इसी तरह, दंसणं पि दर्शन भी जान लेना चाहिए ।

पश्चात् ये कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याए आ सकती हैं। जैसा कि भद्रबाहुस्वामि विरचित आवश्यक निर्युक्ति की उपोद्घात निर्युक्ति मे कहा है–

"पुव्वपडिवण्णओ पुण अण्णयरीए उ लेस्साए"

अर्थ–चारित्र प्राप्ति के पश्चात् साधु मे कोई भी लेश्या हो सकती है। जैसे कि–मन.पर्ययज्ञान अप्रमत्त संयत को ही प्राप्त होता है, किन्तु मन.पर्ययज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् वह प्रमत्तसंयत मे भी रह सकता है। भगवती श. ८ उ. २ तथा पन्नवणा पद १७ उ. ३ मे कृष्णादि पाच लेश्याओ में चार ज्ञान तक बतलाये हैं। अत. इससे भी यह स्पष्ट होता है कि जब कृष्णादि अशुभ लेश्या मे मन पर्ययज्ञान है, तो वह भाव लेश्या ही हो सकती है, क्योंकि द्रव्य लेश्या तो पुद्गल है। अतः चारित्र प्राप्ति के बाद इन संयत जीवो मे कृष्णादि लेश्या भी कभी हो सकती है।

भंते-हे भगवन् ! क्या, चरित्ते-चारित्र, इहभविए-इहभविक है, परभविए-परभविक है या, तदुभयभविए-तदुभयभविक है ?

गोयमा-हे गौतम ! चरित्ते-चारित्र, इहभविए-इहभविक है, णो परभविए परभविक नही है और, णो तदुभयभविए-तदुभयभविक भी नही है, एवं-इसी प्रकार, तवे-तप और, संजमे-संयम भी जान लेना चाहिए ।

भावार्थ-५४-हे भगवन् ! क्या ज्ञान इहभविक है, परभविक है या तदुभयभविक है ?

५४ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, पर भविक है और तदुभयभविक भी है । इसी तरह दर्शन भी जान लेना चाहिए ।

५५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या चारित्र इहभविक है, परभविक है या तदुभयभविक है ?

५५ उत्तर-हे गौतम ! चारित्र इहभविक है, किन्तु परभविक और तदुभविक नहीं है । इसी प्रकार तप और संयम के विषय में भी जान लेना चाहिए ।

विवेचन-जो इस वर्तमान चालू भव में ही हो उसे 'ऐहभविक' कहते है । जो वर्त्तमान चालू भव के बाद होने वाले दूसरे भव मे साथ रहे उसे 'पारभविक' कहते है । जो इस भव मे रहे और परभव में तथा परतर भव में अर्थात् तीसरे चौथे भव में भी साथ रहे उसे 'तदुभयभविक' कहते है । ज्ञान और दर्शन (सम्यक्त्व) ये दोनों ऐहभविक भी है, पारभविक भी हैं और तदुभयभविक भी हैं ।

चारित्र ऐहभविक ही है किन्तु पारभविक और तदुभयभविक नही है, क्योंकि इस भव मे ग्रहण किया हुआ चारित्र यावज्जीवन ही रहता है । देशविरति चारित्र और सर्व विरति चारित्र वाले जीवों की उत्पत्ति देवलोक मे ही होती है और देवलोक मे विरति का सर्वथा अभाव है । अतएव चारित्र का सर्वथा अभाव है । सर्वविरति चारित्र का पालनकर, सर्वथा कर्मो का क्षय कर जो जीव मोक्ष मे जाते है, तो मोक्ष मे भी चारित्र नही होता है । कर्मो का क्षय करने के लिए चारित्र अंगीकार किया जाता है । मोक्ष मे कर्म नही हैं, कर्मो का सर्वथा क्षय होने से ही मोक्ष होता है । इसलिए मोक्ष मे चारित्र का कुछ भी प्रयोजन नही है । चारित्र धारण करते समय जीवन पर्यन्त की प्रतिज्ञा ली जाती है, वह इस जीवन के समाप्त होने पर पूर्ण हो जाती है और मोक्ष मे नया चारित्र ग्रहण नही

किया जाता है। इस प्रकार मोक्ष में भी चारित्र नही है। यहाँ 'आत्मा के शुद्ध स्वरूप में रमण करने रूप' चारित्र का निषेध नही किया गया है, किन्तु अनुष्ठान रूप-क्रिया स्वरूप चारित्र का निषेध किया गया है। आत्मा का 'सत् चित् आनन्द' रूप सहज चारित्र मोक्ष में भी विद्यमान रहता है, किन्तु अनुष्ठानरूप चारित्र नही रहता है, क्योंकि क्रिया शरीर से होती है और सिद्ध जीव शरीर रहित होते हैं। इसलिए कहा गया है-

'सिद्धे णो चरित्ती, णो अचरित्ती, णो चरित्ताचरित्ती'

अर्थ-सिद्ध जीव न चारित्री हैं, न अचारित्री हैं और न चारित्राचारित्री है। मोक्ष में अनुष्ठान रूप चारित्र का अभाव होने से वे चारित्री नही हैं और अविरति का अभाव होने से अचारित्री तथा चारित्राचारित्री भी नहीं हैं।

जिस सम्यक् चारित्र का वर्णन यहाँ चल रहा है,उसके दो भेद हैं-तप और संयम। जिस प्रकार चारित्र का कथन किया गया है, वैसा ही तप और संयम के विषय में भी जान लेना चाहिए।

असंवृत अनगार

५६ प्रश्न-असंवुडे णं भंते ! अणगारे किं सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ ?

४६ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

५७ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव णो अंतं करेइ ?

५७ उत्तर-गोयमा ! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त-कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ हस्सकालठिइयाओ दीहकालठिइयाओ पकरेइ। मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसगाओ बहुप्पएसगाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय णो बंधइ अस्सायावेयणिज्जं च

णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणइ, अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! असंवुडे अणगारे णो सिज्झइ जाव णो अंतं करेइ ।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! **असंवुडे**-असंवृत, **अणगारे**-अनगार, **किं**-क्या, **सिज्झइ**-सिद्ध होता है ? **बुज्झइ**-बुद्ध होता है ? **मुच्चइ**-मुक्त होता है ? **परिणिव्वाइ**-निर्वाण प्राप्त करता है ? **सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ**-सब दु.खों का अन्त करता है ?

गोयमा-हे गौतम ! **णो इणट्ठे समट्ठे**-यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

से केणट्ठेणं-हे भगवन् ! किस कारण से, **जाव**-यावत्, **णो अंतं करेइ**-सब दु:खों का अन्त नही करता है ?

गोयमा-हे गौतम ! **असंवुडे अणगारे**-असंवृत अनगार, **आउयवज्जाओ**-आयु कर्म को छोड़कर, **सिढिलबंधणबद्धाओ**--शिथिल बन्धन से बांधी हुई, **सत्तकम्मपगडीओ**-सात कर्म प्रकृतिओं को, **धणियबंधणबद्धाओ**-गाढ़ रूप से बान्धता, **पकरेइ**-प्रारम्भ करता है, **हस्सकालठिइयाओ**-अल्पकालीन स्थिति वाली प्रकृतियों को, **दीहकालठिइयाओ**-दीर्घकालीन स्थिति वाली, **पकरेइ**-करता है । **मंदाणुभावाओ**-मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियो को, **तिव्वाणुभावाओ**-तीव्र अनुभाग वाली, **पकरेइ**-करता है, **अप्पपएसगाओ**-अल्प प्रदेश वाली प्रकृतियो को, **बहुप्पएसगाओ**-बहुत प्रदेश वाली, **पकरेइ**-करता है, **च**-और, **आउयं कम्मं** आयु कर्म को, **सिय बंधइ सिय णो बंधइ**-कदाचित् बांधता है और कदाचित् नही बांधता है । **अस्सायावेयणिज्जं कम्मं**-असातावेदनीय कर्म को **भुज्जो भुज्जो**-बारम्बार. **उवचिणइ**-उपार्जन करता है, **अणाइयं**-अनादि, **अणवयग्गं**-अनवदग्र-अनन्त, **दीहमद्धं**-दीर्घ मार्ग वाले, **चाउरंतसंसारकंतारं**-चतुर्गति वाले संसार रूपी अरण्य में, **अणुपरियट्टइ**-बारबार पर्यटन करता है, **से तेणट्ठेणं**-इस कारण से, **गोयमा**-हे गौतम ! **असंवुडे अणगारे**-असंवृत अनगार, **णो सिज्झइ**-सिद्ध नही होता है, **जाव**-यावत्, **णो अंतं करेइ**-सब दु.खो का अन्त नहीं करता है ।

भावार्थ-५६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असंवृत अनगार सिद्ध होता है ? बुद्ध होता है ? मुक्त होता है ? निर्वाण प्राप्त करता है ? सब दु:खों का अन्त करता है ?

५६ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

५७ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से यावत् वह सब दुःखों का अन्त नहीं करता है ?

५७ उत्तर-हे गौतम ! असंवृत अनगार आयु कर्म को छोड़ कर शिथिल बन्धन से बांधी हुई सात कर्म प्रकृतियों को गाढ़ रूप से बाँधना प्रारम्भ करता है, अल्पकाल की स्थिति वाली प्रकृतियों को दीर्घ काल की स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियों को तीव्र अनुभाग वाली करता है, अल्प प्रदेश वाली प्रकृतियों को बहुत प्रदेश वाली करता है। आयुकर्म को कदाचित् बाँधता है और कदाचित् नहीं भी बाँधता है। असातावेदनीय कर्म को बारम्बार उपार्जन करता है तथा अनादि अनन्त, दीर्घ मार्ग वाले, चतुर्गति रूप संसार रूपी अरण्य में बारबार पर्यटन करता है। इस कारण हे गौतम ! असंवृत अनगार सिद्ध नहीं होता यावत् सर्व दुःखों का अन्त नहीं करता ।

विवेचन-जिसने आश्रव द्वारों को नही रोका है ऐसे अनगार-साधु को असंवृत अनगार कहते हैं। उसके मुक्ति पाने के विषय में यहाँ प्रश्न किया गया है। प्रश्न में 'सिज्झइ' आदि पद दिये गये हैं जिनका अर्थ इस प्रकार है-

सिज्झइ-सिद्ध होता है अर्थात् चरम भव-अन्तिम जन्म प्राप्त करके मोक्ष के योग्य होता है।

'बुज्झइ' बुद्ध होता है अर्थात् केवलज्ञानी होता है। तात्पर्य यह है कि चरमशरीरी जीव को भावी नय की अपेक्षा से सिद्ध कह सकते है, किन्तु वह 'बुद्ध' तभी कहा जायगा जब वह केवलज्ञानी' हो जायगा। अत: 'बुज्झइ' का अर्थ है-केवलज्ञानी होना।

'मुच्चइ' कर्मों से मुक्त होता है अर्थात् जिस जीव को केवलज्ञान प्राप्त हो चुका है, अतएव जो बुद्ध होगया है, उसके केवल भवोपग्राही कर्म (आयुष्य, नाम, गोत्र और वेदनीय) शेष रहते है, जब वह भवोपग्राही कर्मों को प्रतिक्षण छोड़ता है तब वह 'मुक्त' कहलाता है।

'परिणिव्वाइ' निर्वाण प्राप्त करता है अर्थात् भवोपग्राही कर्मों को प्रतिक्षण छोड़ने वाला वह महापुरुष, कर्म पुद्गलों को ज्यो ज्यों क्षीण करता जाता है त्यो त्यो शीतल होता जाता है। इस प्रकार की शीतलता प्राप्त करना ही निर्वाण प्राप्त करना कहलाता है।

'सव्वदुक्खाणमंत करेइ' सब दुःखो का अन्त करता है। चरम भव के अन्त समय

मे समस्त कर्मो का क्षय करने वाला जीव ही सब दुःखों का अन्त करता है।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि–असंवृत अनगार मुक्ति प्राप्त नही कर सकता। इसका कारण यह है कि असंवृत अनगार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के ढीले बन्धन को मजबूत कर लेता है, निधत्त कर लेता है और निधत्त को निकाचित के रूप मे परिणत कर लेता है। थोड़ी स्थिति वाली कर्म प्रकृतियो को दीर्घकाल की स्थिति वाली बना लेता है। क्योकि असंवृतपन कषाय रूप भी है और कषाय स्थिति बन्ध का कारण है।

असंवृत अनगार मन्द रस वाली कर्म प्रकृतियों को तीव्र रस वाली बनाना आरम्भ करता है अर्थात् मन्द रस वाले कर्मो को तीव्र रस वाले बनाता है। जैसे नीम के पत्तों का रस मन्द होता है यदि उसे औटाया जाय तो वह गाढा हो जाता है वह जितना गाढा होगा उतना ही अधिक कटुक होगा। इसी प्रकार असंवृत अनगार मन्द रस वाले कर्मो को गाढे रस वाले करता है जिससे कि उन कर्मो में तीव्र फल देने की शक्ति आ जाती है। रसबन्ध भी कषाय से होता है और असंवृत अनगार मे कषाय की तीव्रता होती है।

कर्म बन्ध के चार प्रकार है–प्रकृति-बन्ध, स्थिति-बन्ध, प्रदेश-बन्ध और अनुभाग-बन्ध। इनमे प्रकृति-बन्ध और प्रदेश-बन्ध योग से होते है और स्थिति-बन्ध तथा अनुभाग-बन्ध कषाय से होते है। असंवृत अनगार के योग अशुभ होते है और कषाय तीव्र होते हैं। इसलिए वह चारों ही बन्धो मे वृद्धि करता है।

यहाँ आयुकर्म को पृथक् कर दिया गया है, क्योकि वह बारबार नही बंधता है, किन्तु एक भव मे एक ही बार बँधता है और वह भी आयु के त्रिभागादि अवशेष रहने पर अन्तर्मुहूर्त्त मे ही बँध जाता है।

असंवृत अनगार असातावेदनीय कर्म का बार बार उपचय करता है। असंवृत अनगार अत्यन्त दुःखी होता है, यह बात बतलाने के लिए असाता वेदनीय कर्म का पृथक् उल्लेख किया गया है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि असाता से बचने के लिए असंवृतपन का त्याग करना चाहिए।

असंवृत अनगार जिस संसार में परिभ्रमण करता है उसके लिए भगवान् ने 'अणाइय अणवयग्गं' आदि विशेषण लगाये हैं। उनका अर्थ यह है–'अणाइयं' अनादि अर्थात् जिसका आदि–प्रारम्भ न हो। अथवा 'अणाइयं' अज्ञातिक अर्थात् जिसका कोई स्वजन नही रहता, ऐसे पाप कर्म बाँधता है। अथवा 'अणाइयं' यानी 'ऋणातीत' अर्थात् ऋण से

होने वाले दुःख की अपेक्षा भी अधिक दुःखदायी। अथवा 'अणाइयं' यानी अणातीत अर्थात् अतिशय पाप। साराश यह है कि ससार में पाप तो अनेक है किन्तु साधु होकर आस्रव का सेवन करना बहुत बड़ा पाप है। इसलिए असंवृत अनगार अतिशय पाप रूप संसार में परिभ्रमण करता है।

संसार का दूसरा विशेषण है-'अणवयग्गं' यानी अनन्त अर्थात् जिसका परिमाण ज्ञान न हो, जिसके अन्त का पता न चले, उसे अनन्त कहते है।

तीसरा विशेषण है-'दीहमद्धं'। अध्व का अर्थ है-मार्ग और 'दीह' का अर्थ है दीर्घ (लम्बा)। जिसका मार्ग लम्बा हो, वह 'दीहमद्ध' कहलाता है अथवा दीर्घकाल वाले को भी 'दीहमद्ध' कहते है।

चौथा विशेषण है-'चाउरंत'। चाउरंत का अर्थ है-चार विभाग वाला। नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देव गति। इस प्रकार जिसमें चार विभाग है, वह चाउरंत-चातुरन्त कहलाता है।

तात्पर्य यह है कि असंवृत अनगार ऐसे संसार रूपी वन में भ्रमण करता है जिसमें दुःख ही दुःख है, जिसकी समाप्ति का पता नही, जिसके अन्त का कोई परिमाण नही, जिसका मार्ग लम्बा है और जिसके चारगति रूप चार विभाग हैं। अतः असंवृतपन त्याज्य है।

संवृत अनगार

५८ प्रश्न-संवुडे णं भंते! अणगारे सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ?

५८ उत्तर-हंता, सिज्झइ जाव अंतं करेइ।

५९ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते?

५९ उत्तर-गोयमा! संवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त-कम्मप्पगडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ,

दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ,बहुप्पएसगाओ अप्पपएसगाओ पकरेइ,आउयं च णं कम्मं ण बंधइ, असायावेयणिज्जं च णं कम्मं णो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ,अणादीयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धगं चाउरंतसंसारकंतारं वीईवयइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-संवुडे अणगारे सिज्झइ जाव अंतं करेइ।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन् ! क्या, **संवुडे अणगारे**-संवृत अनगार, **सिज्झइ**-सिद्ध होता है ? **जाव**-यावत्, **सव्वदुक्खाणं**-सब दुःखों का, **अंतं करेइ**-अन्त करता है ?

हंता-हाँ, गौतम ! **सिज्झइ**-सिद्ध होता है, **जाव**-यावत्, **अंतं करेइ**-सब दु.खों का अन्त करता है।

भंते-हे भगवन् ! **से केणट्ठेणं**-ऐसा आप किस कारण से फरमाते है ?

गोयमा-हे गौतम ! **संवुडे**-संवृत, **अणगारे**-अनगार, **आउयवज्जाओ**-आयुकर्म को छोड़कर, **सत्तकम्मप्पगडीओ**-शेष सात कर्मों की प्रकृतियों को, **धणियबंधणबद्धाओ**-जो गाढ बन्धन से बँधी हुई हो उन्हे, **सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ**-शिथिल बन्धन वाली कर देता है, **दीहकालट्ठिइयाओ**-लम्बे काल की स्थिति वाली को, **हस्सकालट्ठिइयाओ**-थोड़े काल की स्थिति वाली, **पकरेइ**-कर देता है, **तिव्वाणुभावाओ**-तीव्र रस वाली को, **मंदाणुभावाओ पकरेइ**-मंद रस वाली कर देता है, **बहुप्पएसगाओ**-बहुत प्रदेश वाली प्रकृतियों को, **अप्पप-एसगाओ**-अल्प प्रदेश वाली, **पकरेइ**-कर देता है, **च**-और, **आउयं कम्मं**-आयु कर्म को, **ण बंधइ**-नही बांधता है, **असायावेयणिज्जं कम्मं**-असाता वेदनीय कर्म को, **भुज्जो भुज्जो** वारम्बार, **णो उवचिणइ**-उपचय नही करता है इसलिए, **अणादीयं**-अनादि, **अणवदग्गं**-अनंत **दीहमद्धं**-दीर्घ मार्ग वाले, **चाउरंतसंसारकंतारं**-चार गति रूप संसार अटवी को, **वीईवयइ**-उल्लघ जाता है, **से तेणट्ठेणं**-इस कारण से, **गोयमा**-हे गौतम ! **एवं वुच्चइ**-ऐसा कहा जाता है कि, **संवुडे अणगारे**-संवृत अनगार, **सिज्झइ**-सिद्ध होजाता है, **जाव**-यावत्, **अंतं-करेइ**-सब दु:खो का अन्त कर देता है।

भावार्थ-५८प्रश्न-हे भगवन् ! क्या संवृत अनगार सिद्ध होता है, यावत्

सब दुःखों का अन्त करता है ?

५८ उत्तर-हाँ, गौतम ! सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है।

५९ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ?

५९ उत्तर-हे गौतम ! संवृत अनगार आयुकर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की प्रकृतियों को जो गाढ़ बन्धन से बँधी हुई हों उन्हें शिथिल बन्ध वाली करता है, दीर्घकालीन स्थिति वाली प्रकृतियों को अल्पकालीन स्थिति वाली बनाता है, तीव्र फल देने वाली प्रकृतियों को मन्द फल देने वाली बनाता है, बहुत प्रदेश वाली प्रकृतियों को अल्प प्रदेश वाली बनाता है। आयुष्य कर्म का बन्ध नहीं करता है तथा असाता वेदनीय कर्म का बारबार उपचय नहीं करता है। इसलिए अनादि अनन्त, लम्बे मार्ग वाले, चातुरन्तक-चार प्रकार की गति वाले संसार रूपी वन का उल्लंघन कर जाता है। इसलिए हे गौतम ! संवृत अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है।

विवेचन-आश्रव द्वार का निरोध करके संवर की साधना करने वाले मुनि को संवृत अनगार कहते हैं। संवृत अनगार छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होते हैं। छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्त और सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक अप्रमत्त होते हैं। संवृत अनगार चरमशरीरी और अचरमशरीरी के भेद से दो प्रकार के होते हैं। जो दूसरा शरीर धारण नही करेंगे वे चरमशरीरी कहलाते हैं। जिन्हें दूसरा शरीर धारण करना पड़ेगा उन्हे अचरमशरीरी कहते हैं। गौतम स्वामी और भगवान् के ये प्रश्नोत्तर चरमशरीरी की अपेक्षा से है। अचरमशरीरी के विषय में नही है अथवा इस सूत्र का दो तरह से अर्थ करना चाहिए-एक साक्षात्-इसी भव में मुक्त होने वाले और दूसरा परम्परा-अगले किसी भव में सिद्धि प्राप्त करने वाले। चरमशरीरी इसी भव से मोक्ष जावेंगे, अतएव यह सूत्र उन पर साक्षात् रूप से लागू होता है। अचरमशरीरी सात आठ भव में मोक्ष जायेंगे, इसलिए उनके लिए परम्परा से लागू होता है।

इस समाधान से एक नया प्रश्न उपस्थित होता है, वह यह है कि परम्परा से तो

असवृत अनगार भी मोक्ष प्राप्त करेंगे, क्योंकि शुक्ल-पाक्षिक का मोक्ष अवश्यम्भावी है। फिर संवृत और असंवृत अनगार का भेद करने से क्या लाभ है?

इसका समाधान यह है कि संवृत अनगार चाहे इस भव से मोक्ष न जावें, तथापि परम्परा से वे मोक्ष जायेंगे ही और परम्परा की सीमा सिर्फ सात-आठ भव ही है। सात आठ भवो के अन्दर ही उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जायगी। कहा भी है–

"जहण्णियं चरित्ताराहणं आराहित्ता सत्तट्ठभवग्गहणेहिं सिज्झइ"।

अर्थात्–जघन्य चारित्र की आराधना करने वाला सात आठ भव ग्रहण करके सिद्ध हो जाता है।

इस प्रमाण से यह स्पष्ट है कि सवृत अनगार सात-आठ भव में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, किन्तु असवृत अनगार के लिए यह नियम लागू नहीं होता। असवृत अनगार की परम्परा तो अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन (अर्द्ध पुद्गल परावर्तन से कुछ कम) भी हो सकती है। अतएव सवृत अनगार और असंवृत अनगार का भेद स्पष्ट है।

इस प्रकार यह सूत्र साक्षात् रूप से चरमशरीरी संवृत अनगार के लिए लागू होता है और परम्परा से अचरमशरीरी संवृत अनगार के लिए लागू होता है।

असवृत अनगार विराधक होता है, किन्तु सवृत अनगार आराधक होता है। यह भी दोनो में अन्तर है।

असंयत जीव की गति

६० प्रश्न–जीवे णं भंते! असंजए अविरइए अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे इओ चुए पेच्चा देवे सिया?

६० उत्तर–गोयमा! अत्थेगइए देवे सिया, अत्थेगइए णो देवे सिया।

६१ प्रश्न–से केणट्ठेणं जाव इओ चुए पेच्चा अत्थेगइए देवे सिया, अत्थेगइए णो देवे सिया?



६१ उत्तर-गोयमा ! जे इमे जीवा गामा-ऽगर-णगर-णिगम-रायहाणी-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-ऽसम-सण्णिवेसेसु-अकामतण्हाए अकामछुहाए अकामबंभचेरवासेणं अकामसीता-तव-दंस-मसग-अकामअण्हाणग-सेय-जल्ल-मल-पंक-परिदाहेणं अप्पतरं वा भुज्जतरं वा कालं अप्पाणं परिकिलेस्संति अप्पाणं परिकिलेस्सित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति ।

६२ प्रश्न-केरिसा णं भंते ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोया पण्णत्ता ?

६२ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए इह मणुस्सलोगम्मि असोगवणे इ वा, सत्तवण्णवणे इ वा, चंपयवणे इ वा, चूयवणे इ वा, तिलगवणे इ वा, लाउयवणे इ वा, णिग्गोहवणे इ वा, छत्तोहवणे इ वा, असणवणे इ वा, सणवणे इ वा, अयसिवणे इ वा, कुसुंभवणे इ वा, सिद्धत्थवणे इ वा, बंधुजीवगवणे इ वा, णिच्चं कुसुमिय माइय लवइय थवइय गुलइय गोच्छिय जमलिय जुवलिय विणमिय पणमिय सुविभत्तपिंडिमंजरिवडेंसगधरे सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ, एवामेव तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिइएहिं उक्कोसेणं पलिओवमट्ठिइएहिं बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं तद्देवीहि य आइण्णा विकिण्णा उवत्थडा संथडा

फुडा अवंगाढगाढा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति। एरिसगा णं गोयमा। तेसिं च वाणमंतराणं देवाणं देवलोया पण्णत्ता। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-जीवेणं असंजए जाव देवे सिया।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

शब्दार्थ-भंते-हे भगवन्! **असंजए**-असंयत, **अविरइए**-अविरत और, **अप्पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे**-पाप कर्म का हनन तथा त्याग न करने वाला, **जीवे**-जीव, **इओ**-इस लोक से, **चुए**-चव कर=मर कर, **पेच्चा**-परलोक में, **देवे**-देव, **सिया**-होता है?

गोयमा-हे गौतम! **अत्थेगइए**-कोई एक जीव, **देवे**-देव, **सिया**-होता है, **अत्थेगइए**-कोई जीव, **देवे**-देव, **णो सिया**-नही होता है।

से केणट्ठेणं-किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि, **इओ**-इस लोक से, **चुए**-चव कर, **पेच्चा**-पर लोक मे, **अत्थेगइए**-कोई जीव, **देवे**-देव, **सिया**-होता है और, **अत्थेगइए**-कोई जीव, **णो सिया**-नही होता है?

जे-जो, **इमे जीवा**-ये जीव, **गामागरणगरणिगमरायहाणीखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंणिवेसेसु**-गाव, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम तथा सन्निवेश आदि स्थानो में, **अकामतण्हाए**-अकाम तृषा से, **अकामछुहाए**-अकाम क्षुधा से, **अकामबंभचेरवासेणं**-अकाम ब्रह्मचर्य से, **अकामसीतातवदंसमसग**-अकाम शीत, आतप तथा डास मच्छरो के काटने के दुःख को सहन करने से, **अकामअण्हाणग सेय जल्लमलपंकपरिदाहेणं**-अकाम अस्नान, पसीना, जल्ल, मैल तथा पङ्क-कीचड से होने वाले परिदाह से, **अप्पतर वा भुज्जतरं वा कालं**-थोड़े समय तक या बहुत समय तक, **अप्पाणं**-अपनी आत्मा को, **परिकिलेस्संति**-क्लेशित करते हैं, **अप्पाणं परिकिलेस्सित्ता**-अपनी आत्मा को क्लेशित करके, **कालमासे कालं किच्चा**-मृत्यु के समय मर कर, **वाणमंतरेसु देवलोगेसु**

अण्णयरेसु-वाणव्यन्तर देवलोकों के किसी देवलोक में, **देवत्ताए**-देव रूप से, **उववत्तारो भवंति**-उत्पन्न होते है।

भंते-हे भगवन् ! **तेसि**-उन, **वाणमंतराणं देवाणं**-वाणव्यन्तर देवों के, **देवलोया**-देवलोक, **केरिसा**-किस प्रकार के, **पण्णत्ता**-कहे गये हैं ?

गोयमा-हे गौतम ! **से जहा णामए**-जैसे, **इह मणुस्स लोगम्मि**-इस मनुष्य लोक में, **णिच्चं कुसुमिय**-सदा फूला हुआ , **माइय**-मयूरित, पुष्प विशेष वाला-मौर वाला, **लवइय**-लवकित-कौंपलों वाला, **थवइय**-स्तवित-फूलो के गुच्छों वाला, **गुलइय**-लता समूह वाला, **गोच्छिय**-गुच्छों वाला, **जमलिय**-यमलित-समान श्रेणी के वृक्षों वाला, **जुवलिय**-युगल वृक्षों वाला, **विणमिय**-फल फूल के भार से झुका हुआ, **पणमिय**-फल फूल के भार से झुकने की शुरुआत वाला, **सुविभत्तपिडिमंजरीवडेंसगधरे**-विभिन्न प्रकार की बालों और मंजरियों रूपी मुकुटों को धारण करने वाला, इस प्रकार के विशेषणो सहित, **असोगवणे**-अशोक वन, **सत्तवण्णवणे**-सप्तपर्ण वन, **चंपयवणे**-चम्पक वन, **चूयवणे**-आम्रवन, **तिलगवणे**-तिलक वन, **लाउवणे**-तूम्बे की लताओ का वन, **णिग्गोहवणे**-वड़ वृक्षों का वन, **छत्तोहवणे**-छत्रौघ वन, **असणवणे**-अशन वृक्षों का वन, **सणवणे**-सन वृक्षों का वन, **अयसिवणे**-अलसी के पौधों का वन, **कुसुंभवणे**-कुसुम्ब वृक्षो का वन, **सिद्धत्थवणे**-सिद्धार्थ-सफेद सरसों का वन, **बंधुजीवगवणे**-बन्धुजीवक-दुपहरिया वृक्षो का वन, इत्यादि वन, **सिरीए**-शोभा से, **अईव अईव**-अतीव अतीव, **उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे**-सुशोभित होता है। **एवामेव**-इसी तरह से, **तेसि वाणमंतराणं देवाणं**-उन वाणव्यन्तर देवो के, **देवलोगा**-देवलोक, **जहण्णेणं**-जघन्य **दसवाससहस्सट्ठिइएहिं**-दस हजार वर्ष की स्थिति वाले, **उक्कोसेणं**-उत्कृष्ट, **पलिओवमट्ठिइएहिं**-एक पल्योपम की स्थिति वाले, **बहूहिं**-बहुत से, **वाणमंतरेहिं देवेहिं**-वाणव्यन्तर देवो से, **य**-और, **तद्देवीहिं**-उनकी देवियो से, **आइण्णा**-आकीर्ण-व्याप्त, **विकिण्णा**-व्याकीर्ण-विशेष व्याप्त, **उवत्थडा**-उपस्तीर्ण-एक दूसरे के ऊपर आच्छादित, **संथडा**-परस्पर मिले हुए, **फुडा**-स्फुट-प्रकाश वाले, **अवगाढगाढा**-अत्यन्त अवगाढ, **उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा**-सुशोभित, **चिट्ठंति**-रहते है।

तेसि वाणमंतराणं देवाणं-उन वाणव्यन्तर देवो के, **देवलोया**-देवलोक, **एरिसगा**-इस प्रकार के, **पण्णत्ता**-कहे गये हैं। **से तेणट्ठेणं**-इस कारण से, **एवं वुच्चइ**-इस प्रकार कहा जाता है कि, **जीवे णं असंजए जाव देवे सिया**-असंयत जीव मर कर कोई देव होता है और कोई देव नही होता है।

सेवं भंते-हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, त्ति-ऐसा कह कर, भगवं गोयमे-भगवान् गौतम स्वामी, समणं भगवं महावीरं-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को, वंदइ णमंसइ-वन्दना नमस्कार करते है, वंदित्ता णमंसित्ता-वन्दना नमस्कार करके, संजमेणं तवसा -सयम और तप से, अप्पाणं-अपनी आत्मा को, भावेमाणे-भावित करते हुए, विहरइ-विचरते हैं।

भावार्थ-६० प्रश्न-हे भगवन् ! असंयत, अविरत और पापकर्म का हनन तथा त्याग न करने वाला जीव इस लोक से चव कर-मर कर क्या परलोक में देव होता है ?

६० उत्तर-हे गौतम ! कोई एक जीव देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता है।

६१ प्रश्न-हे भगवन् ! इस लोक से चव कर परलोक में कोई जीव देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता, इसका क्या कारण है ?

६१ उत्तर-हे गौतम ! जो जीव ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सन्निवेश आदि स्थानों में अकाम तृषा से, अकाम क्षुधा से, अकाम ब्रह्मचर्य से, अकाम शीत आतप तथा डांस मच्छरों के काटने के दुःख को सहन करने से, अकाम अस्नान, पसीना, जल्ल, मैल तथा पङ्क-कीचड़ से होने वाले परिदाह से थोड़े समय तक या बहुत समय तक अपनी आत्मा को क्लेशित करते है, अपनी आत्मा को क्लेशित करके मृत्यु के समय मर कर वाणव्यन्तर देवलोकों के किसी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होते है।

६२प्रश्न-हे भगवन् ! उन वाणव्यन्तर देवों के देवलोक किस प्रकार के कहे गये है ?

६२ उत्तर-हे गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक में सदा फूला हुआ, मयूरित -पुष्प विशेष वाला-मौर वाला, लवकित-कोंपलों वाला, फूलों के गुच्छों वाला, लता समूह वाला, पत्तों के गुच्छों वाला, यमल-समान श्रेणी के वृक्षों वाला, युगल वृक्षों वाला, फल फूल के भार से झुका हुआ, फल फूल के भार से झुकने की

शुरुआत वाला, विभिन्न प्रकार की बालों और मंजरियों रूपी मुकुटों को धारण करने वाला इत्यादि विशेषणों से विशिष्ट अशोक वन, सप्तपर्ण वन, चम्पक वन, आम्रवन, तिलक वृक्षों का वन, तूम्बे की लताओं का वन, बड़ वृक्षों का वन, छत्रोघ वन, अशन वृक्षों का वन, सण वृक्षों का वन, अलसी के पौधों का वन, कुसुम्ब वृक्षों का वन, सिद्धार्थ-सफेद सरसों का वन, बन्धुजीवक अर्थात् दुपहरिया के वृक्षों का वन शोभा से अत्यन्त शोभित होता है। इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के देवलोक जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले बहुत से वाणव्यन्तर देवों और उनकी देवियों से व्याप्त, विशेष व्याप्त, उपस्तीर्ण-एक दूसरे के ऊपर आच्छादित, परस्पर मिले हुए, प्रकट अर्थात् प्रकाश वाले, अत्यन्त अवगाढ शोभा से अत्यन्त सुशोभित रहते हैं। हे गौतम ! वाणव्यन्तर देवों के देवलोक इस प्रकार कहे गये हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-असंयत जीव यावत् देव होता है।

भगवान् गौतम स्वामी ने कहा कि-हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं, वैसा ही है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी नें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरनें लगे।

विवेचन-असाधु को अर्थात् संयम रहित को असंयत कहते हैं। जिसने प्राणातिपात आदि पापों का त्याग रूप व्रत धारण नहीं किया है एवं जिसकी तप आदि के विषय में विशेष तल्लीनता नही है उसे अविरत कहते हैं। जिसने भूतकालीन पापों को निन्दा गर्हा आदि के द्वारा दूर नही किया है और भविष्यकालीन पापों का त्याग नहीं किया है उसे 'अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा' कहते हैं अथवा मरण काल से पहले जिसने तप आदि के द्वारा पाप का नाश न किया हो उसे 'अप्रतिहतपापकर्मा' कहते है और मृत्यु काल आ जाने पर भी जिसने पाप का नाश न किया हो उसे 'अप्रत्याख्यातपापकर्मा' कहते है। तात्पर्य यह है कि जिसने मृत्यु से पहले पापों का त्याग नही किया है और मृत्यु आने पर भी त्याग नही किया है वह 'अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा' कहलाता है अथवा शुद्ध श्रद्धा को धारण करना, पूर्व के पापकर्मों का नाश करना कहलाता है। जिसने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करके

पापकर्मों को नष्ट नही किया है वह अप्रतिहतपापकर्मा कहलाता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाने पर सर्व विरति आदि अंगीकार करके पापकर्मों का निरोध न करने वाला अप्रत्याख्यातपापकर्मा कहलाता है। इस प्रकार जिसने न सम्यक् श्रद्धा धारण की है और न व्रत धारण किये है वह अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा कहलाता है।

गौतम स्वामी का प्रश्न यह है कि जिनका मिथ्यात्व नही छूटा है उन असंयतियो मे से यहाँ से अर्थात् मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति से मरकर देव होता है या नही ? भगवान् ने फरमाया कि कोई होता है और कोई नहीं। इस पर गौतमस्वामी ने फिर पूछा कि-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? इस प्रश्न का उत्तर जो भगवान् ने फरमाया उसमे अनेक स्थानों के नाम आये हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है-

ग्राम-देश के मनुष्यों के लिए जो आश्रय रूप स्थान हो उसे ग्राम कहते है। जहाँ सामान्य बुद्धि वाले और विशेष बुद्धि वाले दोनों प्रकार के मनुष्य रहते हो उसे ग्राम कहते हैं।

आकर-खान (खदान) को आकर कहते हैं। जहाँ लोहा आदि धातुएं निकलती हैं वह भूभाग आकर कहलाता है।

नगर-न+कर अर्थात् जहाँ पर कर (टेक्स) न लगे वह स्थान नगर (न+कर) कहलाता है।

निगम-जहाँ व्यापारी अधिक संख्या मे रहते हों उस वस्ती का नाम निगम है अर्थात् जहाँ माल का आना जाना बना रहता हो और व्यापार खूब होता हो वह निगम कहलाता है।

राजधानी-जहाँ राजा स्वयं स्थायी रूप से रहता हो वह राजधानी है।

खेट-जिस छोटी बस्ती के चारों ओर धूल का कोट हो उसे खेट या खेड़ा कहते हैं।

कर्बट-खराब नगर कर्बट कहलाता है। जिसकी गणना न ग्राम मे की जा सके और न नगर मे।

मडम्ब-जिस बस्ती के चारो तरफ ढाई ढाई कोस तक दूसरी बस्ती न हो उसे मडम्ब कहते है।

द्रोणमुख-जहाँ के लिए जलमार्ग भी हो और स्थलमार्ग भी हो वह बस्ती द्रोणमुख कहलाती है।

पट्टण=पत्तन पाटण-जहां देश देशान्तर से आया हुआ माल उतरता है उसे पट्टण कहते है। पट्टण दो प्रकार के होते है-जलपट्टण और स्थलपट्टण। जो जल के बीच में या

किनारे पर बसा हो वह 'जलपट्टण' है और जो स्थल में बसा हुआ हो-जहाँ स्थलमार्ग से आया हुआ माल उतरता हो वह 'स्थलपट्टण' है। जहाँ सब प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ-हाथी, घोड़े रत्न आदि बिकते हो उसे भी पट्टण कहते हैं। कोई रत्नभूमि को पट्टण (पत्तन) कहते हैं।

आश्रम-तपस्वी और संन्यासियों के रहने के स्थान को आश्रम कहते हैं।

सन्निवेश-जहाँ दुध दही बेचने वाले लोग रहते हैं वह सन्निवेश कहलाता है। उसे 'घोष' भी कहते हैं।[1]।

भगवान् फरमाते हैं कि-इन स्थानों में से किसी भी स्थान में रहता हो किन्तु जो अकाम निर्जरा करता है वह देव होता है।

अज्ञानपूर्वक कीजाने वाली अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के योग्य निर्जरा की अभिलाषा से रहित अकाम-निर्जरा है। ज्ञान पूर्वक कीजाने वाली अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की कामना से की जाने वाली निर्जरा--सकाम-निर्जरा है।

जिसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त नही हुआ है वह पूर्वोक्त स्थानों में से किसी भी स्थान में रहता हुआ मिथ्यादृष्टि पुरुष, मोक्ष योग्य निर्जरा की अभिलाषा रहित भूख, प्यास सहन करता है, ब्रह्मचर्य पालन करता है, स्नान नही करता, स्वेद (पसीना), जल्ल (पसीने पर लगी हुई रज), मल (जल्ल का जम जाना) पङ्क (पसीने से जल्ल का गीला होना) इन सब को सहन करता है। इस प्रकार थोड़े काल तक या बहुत काल तक वह आत्मा को क्लेश पहुंचाता है। फिर भी उसके इन कार्यों से वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इस अकाम-निर्जरा के कारण वह वाणव्यन्तर देवो में जन्म लेता है।

कई ज्ञानी सकाम-निर्जरा वाले भी देवलोक में जाते है और कई मिथ्यात्वी अकाम-निर्जरा वाले भी देवलोक में जाते हैं। इन दोनों के देवलोक में जाने में क्या अन्तर है? यह बताने के लिए कहा है कि अकाम-निर्जरा वाले वाणव्यन्तर देव होते हैं और सकाम निर्जरा वाले परलोक की उत्तम से उत्तम स्थिति प्राप्त करके मोक्ष की भी आराधना कर सकते हैं।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी ने पूछा है कि-हे भगवन्! वाणव्यन्तर देवों के देव-लोक कैसे होते हैं? इसके उत्तर में भगवान् ने अशोक वन आदि वनों की उपमा देकर बतलाया है कि जैसे-अशोक वन आदि पल्लवित और पुष्पित होते है तब उनकी शोभा अद्भुत होती है, उसी प्रकार उन वाणव्यन्तर देवो के देवलोकों की शोभा भी अद्भुत है।

---

[1] इन स्थानो का अर्थ दूसरी टीकाओ मे दूसरी तरह से भी दिया है।

वाणव्यन्तर शब्द का अर्थ है-वन विशेष मे उत्पन्न होने वाले अर्थात् बसने वाले और वनों में क्रीड़ा करने वाले देव वाणव्यन्तर देव कहलाते है। वह स्थान वाणव्यन्तर देवो से और देवियो से व्याप्त होता है। वहाँ जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति है और अधिक से अधिक एक पल्योपम की है।

भगवान् के वचन सुनकर गौतम स्वामी ने कहा कि-"हे भगवन्! जैसा आप फरमाते है वैसा ही है, दूसरी तरह से नही है।" यह कहकर गौतम स्वामी ने भगवान् के वचनो के प्रति बहुमान प्रदर्शित किया है।

ऐसा कहकर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और तप सयम से आत्मा को भावित कर विचरने लगे।

यहाँ वन्दना नमस्कार करने का उल्लेख आया है। इससे यह प्रकट किया गया है कि-प्रश्न पूछने से पहले और उत्तर सुनने के बाद वन्दना करना-विनय प्रदर्शित करना है। बिना विनय के ज्ञान प्राप्त नही होता। अतः ज्ञान प्राप्त करने में विनय की अत्यन्त आवश्यकता है।

॥ प्रथम शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥



शतक १ उद्देशक २

६३ रायगिहे नगरे समोसरणं। परिसा णिग्गया, जाव-एवं वयासीः-

६४ प्रश्न-जीवे णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेएइ ?

६४ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ।

६५ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ' ?

६५ उत्तर-गोयमा ! उदिण्णं वेएइ अणुदिण्णं नो वेएइ, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ-'अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ'। एवं चउव्वीसदंडएणं, जाव-वेमाणिए।

६६ प्रश्न-जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेंति ?

६६ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइयं वेदेंति, अत्थेगइयं णो वेदेंति।

६७ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

६७ उत्तर-गोयमा ! उदिण्णं वेदेंति नो अणुदिण्णं वेदेंति, से तेणट्ठेणं, एवं जाव-वेमाणिया।

६८ प्रश्न-जीवे णं भंते ! सयंकडं आउयं वेएइ ?

६८ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ। जहा दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएणं वि दो दंडगा-एगत्तपुहत्तिया,

एगत्तेणं जाव-वेमाणिया, पुहत्तेण वि तहेव।

विशेष शब्दार्थ-समोसरणं-समवसरण, परिसा-परिषद्, वयासी-बोले, सयंकडं-अपना किया हुआ, अत्थेगइयं-कुछ दुःख को, उदिण्णं-उदय मे आया हुआ, अणुदिण्णं-उदय में नही आया हुआ, आउयं-आयुष्य, एगत्त-एक वचन, पुहुत्त-पृथक्त्व-बहुवचन।

भावार्थ-६३ राजगृह नगर में समवसरण हुआ। परिषद् निकली। यावत् भगवान् ने इस प्रकार फरमाया-

६४ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीव स्वयंकृत दुःख भोगता है?

६४ उत्तर-हे गौतम! कुछ भोगता है और कुछ नहीं भोगता।

६५ प्रश्न-आप किस कारण से ऐसा फरमाते हैं कि-कुछ भोगता है और कुछ नहीं भोगता?

६५ उत्तर-हे गौतम! जीव उदीर्ण अर्थात् उदय में आये हुए दुःख (कर्म) को भोगता है और अनुदीर्ण-उदय में नहीं आये हुए दुःख (कर्म) को नहीं भोगता है। इसलिए कहा गया है कि-कुछ भोगता है और कुछ नहीं भोगता है। इस प्रकार वैमानिक तक चौबीस (सभी) दण्डकों में समझ लेना चाहिए।

६६ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीव स्वयंकृत दुःख को भोगते हैं?

६६ उत्तर-हे गौतम! कुछ कर्म को भोगते हैं और कुछ कर्म को नहीं भोगते।

६७ प्रश्न-हे भगवन्! इसका क्या कारण है?

६७ उत्तर-हे गौतम! उदीर्ण कर्म को भोगते है, अनुदीर्ण को नहीं भोगते। इस कारण ऐसा कहा गया है कि-कुछ को भोगते हैं और कुछ को नहीं भोगते। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक चौबीस (सभी) दण्डकों में समझ लेना चाहिए।

६८ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीव स्वयंकृत आयु को भोगता है?

६८ उत्तर-हे गौतम! जीव कुछ आयु को भोगता है और कुछ को नहीं भोगता। जैसे दुःख-कर्म के विषय में दो दण्डक-आलापक कहे हैं उसी

प्रकार आयुष्य के सम्बन्ध में भी एक वचन आश्रयी और बहुवचन आश्रयी दो दण्डक-आलापक कह देने चाहिए। एक वचन से यावत् वैमानिकों तक कहना और बहुवचन से भी उसी प्रकार वैमानिकों तक चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिए।

विवेचन-पहले उद्देशक में 'चलन' आदि का कथन किया गया है, दूसरे उद्देशक में भी उसी का कथन किया जाता है। तथा उद्देशक की संग्रहणी गाथा में कहे हुए 'दुक्ख' शब्द का विवेचन किया जाता है।

गौतम स्वामी ने भगवान् से यह प्रश्न किया है कि-हे भगवन् ! क्या जीव स्वयंकृत दुःख भोगता है।

इस प्रश्न से यह बात स्पष्ट होती है कि-जीव अपने किये हुए कर्म को ही भोगता है, किन्तु दूसरों के किये हुए कर्म को नही भोगता है। जैसा कि कहा है-

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थात्-स्वय आत्मा ने जो कर्म पहले उपार्जन किये हैं, उन्ही कर्मो का शुभ या अशुभ फल वह आत्मा भोगता है। यदि दूसरे के किये हुए कर्मो का फल आत्मा भोगने लगे, तो अपने किये हुए कर्म निष्फल हो जायेंगे।

यहाँ 'दु.ख' शब्द से 'कर्म' लिया गया है। क्योकि सांसारिक सुख या दु.ख में कारण रूप कर्म ही है। दु.ख तो दु.ख रूप है ही, किन्तु सांसारिक सुख भी दुःख रूप ही है। परसंयोग से कभी सुख प्राप्त नही होता, दुःख ही होता है। सांसारिक सुख में निराकुलता नही है. व्याकुलता है, अतृप्ति है, भय है, उसका शीघ्र अंत हो जाता है, उसकी मात्रा अत्यल्प होती है, इन सब कारणों से सांसारिक सुख वास्तव मे दुःख रूप है।

यहाँ प्रश्नवाची कोई शब्द नहीं है तथापि काकुपाठ से प्रश्न समझना चाहिए।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि जीव कुछ कर्म को भोगता है और कुछ को नहीं भोगता। इसका कारण यह है कि कर्म की दो अवस्थाएं है-उदयावस्था और अनुदयावस्था। जो कर्म उदीरणा द्वारा या स्वाभाविक रूप से उदय में आये हैं उन्हे जीव भोगता है और जो कर्म अब तक उदय में नही आये हैं उन्हें नही भोगता है। शास्त्र मे कहा है कि-

'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि'

अर्थात्-किये हुए कर्मो को भोगे बिना छुटकारा नही होता है। इस नियमानुसार किये हुए सब कर्मो को भोगना ही पड़ता है; किन्तु बांधे हुए सभी कर्म एक साथ उदय मे नही आ जाते है। इसलिए अवश्य वेद्य कर्मो में से भी कुछ को वेदता है और कुछ को नही वेदता है अर्थात् उदय में नही आये हुए कर्म को नही वेदता है। यह एक वचन सम्बन्धी कथन नरक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक मे समझ लेना चाहिए।

एक वचन सम्बन्धी प्रश्न का जो उत्तर दिया गया वैसा ही बहुवचन सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर है। अर्थात् बहुत जीव (सभी जीव) अपने ही किये हुए कर्म का फल भोगते हैं और उदय प्राप्त कर्म का फल भोगते हैं, अनुदय प्राप्त का फल नही भोगते हैं। यह बात चौबीस ही दण्डकों के लिए समान रूप से लागू होती है।

शका-यहाँ पर यह शंका की जा सकती है कि-जो अर्थ एक वचन वाले प्रश्न में है वही अर्थ बहुवचन वाले प्रश्न में है, फिर यह बहुवचन वाला दूसरा प्रश्न क्यो किया गया?

इसका समाधान यह है कि-किसी पदार्थ के विषय में एक वचन सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर मे और बहुवचन सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर मे अर्थ विशेष देखने मे आता है। जैसे कि-एक जीव आश्री सम्यक्त्वादि (सम्यक्त्व, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) की स्थिति छासठ सागरोपम से कुछ अधिक की है और बहुत जीवो आश्री सम्यक्त्वादि की स्थिति 'सव्वद्धा'-सदा काल है। इसी प्रकार सम्यक्त्वादि की तरह यहाँ पर भी एक वचन और बहुवचन सम्बन्धी प्रश्नो के उत्तर में शायद कोई अर्थ विशेष सम्भवित हो, इस अभिप्राय से गौतम स्वामी ने बहुवचन सम्बन्धी प्रश्न किया है। अत बहुवचन सम्बन्धी प्रश्न करने मे किसी प्रकार का दोष नही है। अथवा अत्यन्त अव्युत्पन्न बुद्धि वाले शिष्यों को बोध कराने के लिए बहुवचन सम्बन्धी प्रश्न किया है।

यद्यपि आयुकर्म भी आठ कर्मो के अन्तर्गत है; तथापि यहाँ आयु के सम्बन्ध मे अलग प्रश्न करने का आशय यह है कि नरक तिर्यञ्च आदि के व्यवहार मे आयुष्य की मुख्यता है। इसलिए आयुष्य के सम्बन्ध में एक वचन और बहुवचन युक्त प्रश्न किये गये हैं। इसका उत्तर भी भगवान् ने यही फरमाया है कि-जीव अपने उपार्जन किये हुए आयुष्य को वेदता है, किन्तु दूसरों के उपार्जन किये हुए आयुष्य को नही वेदता। अपनी उपार्जन की हुई आयु मे से ज्यों ज्यों आयु उदय में आती जाती है, ज्यों त्यो वह आयु भोगी जाती है। और उदय में नही आई हुई आयु नही भोगी जाती है। उदाहरणार्थ-जैसे कोई

मनुष्य यहाँ मौजूद है, उसने आगामी भव के लिए स्वर्ग की आयु बांध ली। अब वह पहले बंधी हुई मनुष्यायु जो कि उदय में आई हुई है उसे भोग रहा है और अभी बंधी हुई देवायु को नहीं भोग रहा है, किन्तु उसे आगे भोगेगा, क्योंकि उसका अभी उदय नहीं आया है। चौबीस ही दण्डकों के लिए आयु के विषय में यही बात समझनी चाहिए।

यहाँ टीकाकार ने कृष्णवासुदेव का उदाहरण देकर यह बतलाया है कि-पहले उन्होंने सातवीं पृथ्वी का आयुष्य बांधा था, फिर कालान्तर में परिणाम विशेष से तीसरी पृथ्वी का आयुष्य बांधा। किन्तु यह बात आगम से मेल नहीं खाती है, क्योंकि एक जीव एक भव में एक ही बार आयुष्य का बन्ध करता है, दो बार नहीं।

एक भव में दो बार आयुष्य का बन्ध कहना टीकाकार का स्वयं स्ववचन बाधित है, क्योंकि प्रथम शतक के प्रथम उद्देशक में इन्हीं टीकाकार ने लिखा है-'यस्मादेकत्रभव-ग्रहणे सकृदेवाऽन्तर्मुहूर्तमात्रकाले एवायुषोबन्धः'। अर्थात् एक भव में एक जीव एक ही बार आयुष्य का बन्ध करता है।

नैरयिक सम्बन्धी विचार

६९ प्रश्न-नेरइया णं भंते ! सव्वे समाहारा, सव्वे समसरीरा, सव्वे समुस्सासनीसासा ?

६९ उत्तर-गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

७० प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'नेरइया नो सव्वे समाहारा, नो सव्वे समसरीरा, नो सव्वे समुस्सासनीसासा ?

७० उत्तर-गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-महासरीरा य, अप्पसरीरा य। तत्थ णं जे ते महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले उस्ससंति, बहुतराए पोग्गले नीससंति; अभिक्खणं आहा-

रेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं नीससंति । तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले उस्ससंति, अप्पतराए पोग्गले नीससंति; आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च उस्ससंति, आहच्च नीससंति; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–'नेरइया सव्वे नो समाहारा, नो सव्वे समसरीरा, नो सव्वे समुस्सासनीसासा' ।

विशेष शब्दों के अर्थ–समाहारा–समान आहार वाले. समसरीरा–समान शरीर वाले, समुस्सासनीसासा–समान उच्छ्वास निःश्वास वाले, इणट्ठे–यह अर्थ, समट्ठे–समर्थ, अभिक्खणं–बारम्बार, आहच्च–कदाचित् ।

भावार्थ–६९ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या सभी नारकी जीव समान आहार वाले, समान शरीर वाले, तथा समान उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं ?

६९ उत्तर–हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् ऐसी बात नहीं है ।

७० प्रश्न–हे भगवन् ! आप इस प्रकार किस कारण से कहते हैं कि–सभी नारकी जीव समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं ?

७० उत्तर–हे गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के कहे गये हैं–महाशरीरी अर्थात् बड़े शरीर वाले और अल्प शरीरी अर्थात् छोटे शरीर वाले । इन में जो बड़े शरीर वाले हैं वे बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत पुद्गलों को परिणमाते हैं, बहुत पुद्गलों को उच्छ्वास रूप से ग्रहण करते हैं और बहुत पुद्गलों को निःश्वास रूप से छोड़ते हैं । बारबार आहार करते हैं, बारबार परिणमाते हैं, बारबार उच्छ्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं । उनमें जो छोटे शरीर वाले हैं, वे थोड़े पुद्गलों का आहार करते हैं, थोड़े पुद्गलों को परिणमाते

हैं, थोड़े पुद्गलों को उच्छ्वास रूप से ग्रहण करते हैं, थोड़े पुद्गलों को निःश्वास रूप से छोड़ते है। कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् परिणमाते हैं, कदाचित् उच्छ्वास लेते है और निःश्वास छोड़ते है। इसलिये हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि-सब नारकी जीव समान आहार वाले, समान शरीरवाले और समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं।

विवेचन-श्री गौतमस्वामी प्रश्न करते हैं कि-हे भगवन् ! नैरयिक जीव दुःख में पड़े हुए है-क्या उन सब का आहार समान है ? क्या वे सब समान शरीर वाले हैं ? क्या वे समान उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया -नही, गौतम ! ऐसी बात नही है। सब नैरयिको का आहार आदि समान नही है। तब गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? सब नैरयिको का आहार आदि समान क्यों नही है ? भगवान् ने फ़रमाया कि-हे गौतम ! नैरयिक जीव दो प्रकार के है-महाशरीर वाले और अल्प शरीर वाले। उनके शरीर मे भिन्नता होने के कारण उनके आहारादि मे भी भिन्नता है।

यहाँ बड़ा और छोटा शरीर अपेक्षाकृत है। छोटे की अपेक्षा कोई पदार्थ बड़ा कहलाता है और बड़े की अपेक्षा छोटा कहलाता है। नारकी जीवो के शरीर दो प्रकार के होते है-भवधारणीय (मूल शरीर) और उत्तरवैक्रिय (अपनी इच्छानुसार बड़ा या छोटा बनाया हुआ शरीर)। नारकी जीवों का भवधारणीय शरीर छोटे से छोटा अंगुल के असख्यातवें भाग जितना होता है और बड़े से बड़ा पांच सौ धनुष परिमाण होता है। उत्तर वैक्रिय शरीर छोटे से छोटा अंगुल के सख्यातवें भाग तक हो सकता है, इससे अधिक छोटा नही हो सकता है। इसी प्रकार बड़े से बड़ा एक हजार धनुष का हो सकता है, इससे ज्यादा बड़ा नही हो सकता।

गौतम स्वामी ने जो प्रश्न किया है उसमें पहले आहार की बात पूछी है, उसके बाद शरीर की बात पूछी है, किन्तु भगवान् ने पहले शरीर के सम्बन्ध में कथन किया है। इस व्यतिक्रम (उल्टा क्रम) का कारण यह है कि शरीर का परिमाण बताये बिना आहार आदि की बात ठीक रूप से और सरलता से समझ मे नही आ सकती। शरीर का परिमाण बता देने पर आहार, श्वासोच्छ्वास आदि की बात ठीक तरह से और सरलता पूर्वक समझ में आ सकती है। इस कारण से शरीर सम्बन्धी प्रश्न बाद मे पूछने पर भी उत्तर पहले दिया गया है और आहार सम्बन्धी प्रश्न पहले पूछने पर भी उत्तर पीछे दिया गया है।

बड़े शरीर वाला नैरयिक बहुत पुद्गलों का आहार करता है और छोटे शरीर वाला कम पुद्गलो का। यहाँ मनुष्यलोक मे भी यही बात देखी जाती है कि बड़े शरीर वाला अधिक खाता है और छोटे शरीर वाला कम। इसके लिए हाथी और खरगोश का उदाहरण दिया जा सकता है।

आहार का यह परिमाण भी सापेक्ष ही समझना चाहिए अर्थात् बड़े शरीर वाले के आहार की अपेक्षा छोटे शरीर वाले का आहार कम है और छोटे शरीर वाले के आहार की अपेक्षा बड़े शरीर वाले नारकी का आहार अधिक है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि-इस लोक के प्राणियो का जो उदाहरण दिया गया है, सो इससे कोई निश्चित नियम सिद्ध नही होता, क्योकि कभी कभी यह देखा जाता है कि कोई छोटे शरीर वाला बहुत आहार करता है और कोई बड़े शरीर वाला थोड़ा आहार करता है। फिर यह कैसे घटित होगा ?

इसका समाधान यह है कि-यह उदाहरण प्रायिक है। अधिकांश मनुष्यों की अपेक्षा यह दृष्टान्त दिया गया है। अतः बहुतों की अपेक्षा यह कथन होने से कोई दोष नहीं है।

बड़े शरीर वाले नारकियों को क्षुधा की वेदना भी अधिक होती है और ताड़ना तर्जना तथा क्षेत्रादि से उत्पन्न होने वाली पीड़ा भी अधिक होती है।

बड़े शरीर वालों का आहार भी बहुत होता है और परिणमन भी बहुत होता है। यह परिणमन आहार की अपेक्षा से है। इसी प्रकार बड़े शरीर वाले नैरयिक श्वास लेने में बहुत पुद्गल ग्रहण करते हैं और निःश्वास मे बहुत पुद्गलों को छोड़ते भी है। बड़े शरीर वाले को वेदना ज्यादा होती है, इसलिए उन्हे श्वासोच्छ्वास भी ज्यादा लेना पड़ता है, क्योंकि दुःखी प्राणी शीघ्र शीघ्र और ज्यादा श्वास लेता है। छोटे शरीर वाले नैरयिक को दुःख कम होता है, अतः उनका श्वासोच्छ्वास भी कम होता है। वे कदाचित् आहार लेते हैं और कदाचित् नही लेते। वे कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेते है और कदाचित् नही लेते हैं।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि पहले उद्देशक मे नारकी जीवों के वर्णन में यह कहा गया था कि-नारकी जीव निरन्तर आहार लेते है और निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं। फिर यहाँ कदाचित् आहार लेने और कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेने का कथन कैसे किया गया है ?

इसका समाधान यह है कि पहले उद्देशक में निरन्तर आहार लेने और निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेने की जो बात कही है, वह बड़े शरीर वाले नारकियों की अपेक्षा कही गई है और यहाँ जो कदाचित् आहार लेने और कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेने की बात कही है

वह छोटे शरीर वाले नारकियों की अपेक्षा कही गई है। महाशरीर वाले नारकियो की अपेक्षा अल्प शरीर वाले नारकी बहुत अन्तर से आहार लेते है और बहुत अन्तर से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। अथवा-शरीर अपर्याप्त अवस्था में अर्थात् जहाँ तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो वहां तक नारकी जीवों का शरीर बहुत छोटा होने से वे लोमाहार (रोमाहार) नही कर सकते है और शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने पर वे लोमाहार करते हैं, इस अपेक्षा से यह कहा गया है कि-नारकी जीव कदाचित् आहार करते है और कदाचित् आहार नहीं करते है। इसी तरह जबतक वे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त रहते है तबतक श्वासोच्छ्वास नही लेते और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण करने पर श्वासोच्छ्वास लेते है, इस अपेक्षा से यह कहा गया है कि-'नारकी जीव कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेते हैं और कदाचित् श्वासोच्छ्वास नही लेते हैं'। इसलिए पहले उद्देशक में कही हुई बात और यहाँ कही हुई बात में परस्पर किसी प्रकार का विरोध नही है।

उपर्युक्त सारे कथन का आशय यह है कि सब नारकी जीव न तो समान आहार करते है, न समान रूप से परिणमाते है, न समान शरीर वाले हैं और न समान रूप से श्वासोच्छ्वास लेते है। और सभी विषम शरीरी आदि हों यह बात भी नहीं है।

नैरयिकों के समकर्म आदि प्रश्नोत्तर

७१ प्रश्न-नेरइया णं भंते ! सव्वे समकम्मा ?

७१ उत्तर-गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

७२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

७२ उत्तर-गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा:-पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं अप्पकम्मतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं महाकम्मतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा....।

७३ प्रश्न–नेरइया णं भंते ! सव्वे समवन्ना ?

७३ उत्तर–गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

७४ प्रश्न–से केणट्ठेणं तह चेव....?

७४ उत्तर–गोयमा ! जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धवन्नतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धवन्नतरागा, तहेव से तेणट्ठेणं एवं....।

७५ प्रश्न–नेरइया णं भंते ! सव्वे समलेस्सा ?

७५ उत्तर–गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

७६ प्रश्न–से केणट्ठेणं जाव–'नो सव्वे समलेस्सा' ?

७६ उत्तर–गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः–पुव्वोववण्णगा य, पच्छोववण्णगा य; तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धलेस्सतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धलेस्सतरागा, से तेणट्ठेणं....।

विशेष शब्दों के अर्थ–समकम्मा–समान कर्म वाले, **पुव्वोववण्णगा**–पूर्वोपपन्नक अर्थात् पहले उत्पन्न हुए, **पच्छोववण्णगा**–पश्चादुपपन्नक अर्थात् पीछे उत्पन्न हुए, **अप्पकम्मतरागा**–अल्प कर्म वाले, **महाकम्मतरागा**–महा कर्म वाले, **समवण्णा**–समान वर्ण वाले, **समलेस्सा**–समान लेश्या वाले, **विसुद्धवण्णतरागा**–विशुद्ध वर्ण वाले, **विसुद्धलेस्सतरागा**–विशुद्ध लेश्या वाले ।

भावार्थ–७१ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या सब नारकी समान कर्म वाले हैं ?

७१ उत्तर–गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

७२ प्रश्न–हे भगवन् ! किस कारण से ?

७२ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के कहे गये है-यथा-पूर्वोपपन्नक-पहले उत्पन्न हुए और पश्चादुपपन्नक-पीछे उत्पन्न हुए। इनमें जो नैरयिक पूर्वोपपन्नक हैं वे अल्प कर्म वाले हैं और जो पश्चादुपपन्नक हैं वे महा कर्म वाले हैं। इसलिए हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-सब नारकी समान कर्म वाले नहीं हैं।

७३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब नारकी समान वर्ण वाले हैं ?

७३ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

७४ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

७४ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के हैं। यथा-पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। इनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं वे विशुद्ध वर्ण वाले हैं और जो पश्चादुपपन्नक हैं वे अविशुद्ध वर्ण वाले हैं। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि सब नारकी समान वर्ण वाले नहीं हैं।

७५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या, सब नारकी समान लेश्या वाले हैं ?

७५ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

७६ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

७६ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। इनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं वे विशुद्ध लेश्या वाले हैं और जो पश्चादुपपन्नक हैं वे अविशुद्ध लेश्या वाले हैं। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-सब नारकी समान लेश्या वाले नहीं हैं।

विवेचन-श्री गौतम स्वामी ने नारकियों के कर्म, वर्ण और लेश्या के सम्बन्ध में प्रश्न किया है। जिसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया है कि-हे गौतम ! सब नारकियो के कर्म, वर्ण, लेश्या समान नहीं हैं। गौतमस्वामी ने इस असमानता का कारण पूछा, तब भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के हैं-पूर्वोपपन्नक (पूर्वोत्पन्न) अर्थात् पहले उत्पन्न हुए और पश्चादुपपन्नक (पश्चादुत्पन्न) अर्थात् पीछे उत्पन्न हुए। जो जीव नरक में पहले उत्पन्न हो चुके हैं उन्होंने नरक का आयुष्य और अन्य सात कर्म बहुत से भोग लिये हैं, अतएव उनके बहुत से कर्मो की निर्जरा हो चुकी है। इस कारण वे अल्प

कर्मी है। जो जीव पीछे उत्पन्न हुए हैं उन्हें आयु और सात कर्म बहुत भोगने बाकी है, इस लिए वे महाकर्मी (बहुत कर्म वाले) है, क्योंकि इनका आयुष्य और सात कर्म बहुत थोड़े भोगे गये हैं।

भगवान् का यह कथन समान स्थिति वाले नारकियो की अपेक्षा समझना चाहिए। विषम स्थिति वालो की अपेक्षा नही। जैसे कि मानलीजिये--एक जीव दस हजार वर्ष की स्थिति बाँधकर हाल ही में रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न हुआ है। और दूसरा रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर की बाधकर उससे बहुत पहले उत्पन्न हो चुका है और उसने बहुत-सी स्थिति भोग ली है, सिर्फ एक पल्योपम की स्थिति भोगनी बाकी रही है फिर भी वह पश्चादुत्पन्न दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक की अपेक्षा महाकर्मी है, और वह पश्चादुत्पन्न दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नैरयिक उस पूर्वोत्पन्न की अपेक्षा अल्पकर्मी है। यदि दो जीव समान स्थिति बांध कर नरक में गये हैं, तो उनमें से जो पहले उत्पन्न हुआ है वह अल्पकर्मी है और जो पीछे उत्पन्न हुआ है वह बहुकर्मी है, क्योंकि पहले उत्पन्न हुए नैरयिक ने उसकी अपेक्षा अधिक कर्म भोग लिए है और पीछे उत्पन्न होने वाले ने उसकी अपेक्षा कम कर्म भोगे है। इस तरह यह सूत्र समान स्थिति वाले नैरयिकों की अपेक्षा से है--ऐसा जानना चाहिए।

यही बात वर्ण के विषय मे है, समान स्थिति वाले नेरयिको मे से जो पहले उत्पन्न हुआ है, वह अल्पकर्मी होने से उसका वर्ण विशुद्ध होता है और जो पीछे उत्पन्न हुआ है उसका वर्ण उसकी अपेक्षा अविशुद्ध होना है, क्योकि वह उसकी अपेक्षा महाकर्मी है।

लेश्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। 'लेश्या' शब्द से यहाँ 'भाव लेश्या' को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि द्रव्य लेश्या तो वर्ण रूप है, वह 'वर्ण' में आ चुकी है। इस प्रकार समान स्थिति बाँधकर जो जीव नरक मे पहले उत्पन्न हो चुका है, उसकी भाव लेश्या-पश्चात् उत्पन्न होने वाले नैरयिक की अपेक्षा विशुद्ध है और पश्चात् उत्पन्न होने वाले की भाव लेश्या पूर्वो-पन्न की अपेक्षा अविशुद्ध है।

नैरयिकों के समवेदना आदि

७७ प्रश्न--नेरइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?

७७ उत्तर--गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

७८ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

७८ उत्तर-गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सण्णिभूया य, असण्णिभूया य; तत्थ णं जे ते सन्निभूया ते णं महावेयणा, तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं अप्पवेयणतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा....।

७९ प्रश्न-नेरइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

७९ उत्तर-गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

८० प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

८० उत्तर-गोयमा ! नेरइया तिविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी; तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी तेसिं णं चत्तारि किरियाओ पन्नत्ता, तं जहाः-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पचक्खाणकिरिया । तत्थ णं जे ते मिच्छदिट्ठी तेसिं णं पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहाः-आरंभिया जाव-मिच्छादंसणवत्तिया । एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणं पि, से तेणट्ठेणं गोयमा....।

८१ प्रश्न-नेरइया णं भंते ! सव्वे समाउया, सव्वे समोववन्नगा ?

८१ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

८२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

८२ उत्तर-गोयमा ! नेरइया चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहाः-अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा; से तेणट्ठेणं गोयमा !

विशेष शब्दों के अर्थ-समवेयणा-समान वेदना वाले, सण्णिभूया-संज्ञीभूत, असण्णिभूया-असंज्ञीभूत, समकिरिया-समान क्रिया वाले,समाउया-समान आयु वाले, समोववण्णगा-समोपपन्नक=एक साथ उत्पन्न हुए, विसमोववण्णगा-विषमोपपन्नक=एक साथ नही किन्तु पहले पीछे उत्पन्न हुए।

भावार्थ-७७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब नारकी समान वेदना वाले हैं ?

७७ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

७८ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

७८ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के कहे गये है। यथा-संज्ञिभूत और असंज्ञिभूत। इनमें जो संज्ञिभूत हैं वे महावेदना वाले है और जो असंज्ञिभूत हैं वे अल्पवेदना वाले हैं। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सब नारकी समान वेदना वाले नहीं है।

७९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब नारकी समान क्रिया वाले है ?

७९ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

८० प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

८० उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव तीन प्रकार के कहे गये है। यथा-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिश्रदृष्टि। इनमें जो सम्यग्दृष्टि है उनके चार क्रिया कही गई हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यान क्रिया। मिथ्यादृष्टि के पाँच क्रिया होती हैं-आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया। इसी तरह सम्यग्मिथ्यादृष्टि के भी पांच क्रियाएँ होती हैं। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-सब नारकी समान क्रिया वाले नहीं है।

८१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब नारकी समान आयुष्य वाले हैं और समोपपन्नक-एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं ?

८१ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

८२ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

८२ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा-१ समायुष्क समोपपन्नक-समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए। २ समायुष्क विषमोपपन्नक-समान आयु वाले और पहले पीछे उत्पन्न हुए। ३ विषमायुष्क समोपपन्नक-विषम आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए। ४ विषमायुष्क विषमोपपन्नक-विषम आयु वाले और पहले पीछे उत्पन्न हुए। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-सब नारकी जीव समायुष्क समोपपन्नक अर्थात् समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए नहीं है।

विवेचन-श्री गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! क्या सब नारकी जीव समान वेदना वाले हैं ? भगवान् ने फरमाया कि-सब जीव समान वेदना वाले नही है, क्योंकि नारकी जीवो के दो भेद हैं-सज्ञिभूत और असंज्ञिभूत। सज्ञिभूत नारकियो को बहुत वेदना होती है और असज्ञिभूत नारकियो को अल्प वेदना होती है।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि संज्ञिभूत और असंज्ञिभूत किसे कहते है ? इस सम्बन्ध मे टीकाकार का कथन इस प्रकार है-संज्ञा का अर्थ है-सम्यग्दर्शन अर्थात् शुद्ध श्रद्धा। सम्यग्दर्शन वाले जीव को संज्ञी कहते है और जिस जीव को संज्ञीपन प्राप्त हुआ है, उसे सज्ञिभूत कहते हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि को सज्ञिभूत कहते है।

संज्ञिभूत का दूसरा अर्थ है-जो पहले असज्ञी (मिथ्यादृष्टि) था और अब सज्ञी (सम्यग्दृष्टि) होगया है अर्थात् जो नरक में ही मिथ्यात्व को छोड़ कर सम्यग्दृष्टि हुआ है, वह सज्ञी कहलाता है। सज्ञिभूत को बहुत वेदना होती है। इसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव जब नरक में जाता है या नरक मे गये हुए जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, तब वह अपने पूर्वकृत कर्मो का विचार करता है और सोचता है कि-अहो ! मैं कैसे घोर सकट मे हूँ। अरिहन्त भगवान् का धर्म सब संकटो को टालने वाला और परमानन्द देने वाला है, उसका मैंने आचरण नही किया। इसी कारण यह अचिन्तित आपदा आ पड़ी है। कामभोग जो ऊपरी दृष्टि से अच्छे प्रतीत होते थे, किन्तु जिनका परिणाम अत्यन्त दारुण है, उनमे फंसा

रहा। इन कामभोगों के जाल मे फंस जाने के कारण ही मैंने अरिहन्त भगवान् के धर्म का आचरण नही किया। मैने नर-भव निष्फल गंवा दिया। इस प्रकार का पश्चात्ताप संज्ञिभूत नारकी को होता है, जिससे उसकी मानसिक वेदना बढजाती है और जिससे वह महावेदना का अनुभव करता है।

असंज्ञिभूत का अर्थ है-मिथ्यादृष्टि। उसे यह ज्ञान ही नही है कि-हम अपने पूर्वकृत कर्मो का फल भोग रहे है। अतएव उन्हे पश्चात्ताप नही होता और न मानसिक पीड़ा ही होती है। इसलिए असंज्ञिभूत नैरयिक अल्प वेदना का अनुभव करता है।

सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व अवस्था मे नरक का आयुष्य नही बांधता, किन्तु जिसने मिथ्यात्व अवस्था में नरक का आयु बाँध लिया हो, ऐसा जीव फिर चाहे सम्यक्त्व प्राप्त कर भी ले तो भी उसे पूर्व बद्ध नरकायु के अनुसार नरक में अवश्य जाना पड़ता है। नरक में जाने पर भी वह सम्यग्दृष्टि रह सकता है और उसे अपने कृतकर्मों पर पश्चात्ताप होता है।

तात्पर्य यह है कि नरक में सम्यग्दृष्टि महावेदना का अनुभव करता है, क्योंकि उसे पश्चात्ताप अधिक होता है। असंज्ञिभूत अर्थात् मिथ्यादृष्टि को अल्पवेदना होती है, क्योंकि स्वकृत कर्मो को न जानने से उसे पश्चात्ताप नही होता।

सज्ञिभूत और असज्ञिभूत शब्दो के अर्थ में किसी किसी आचार्य का मत भिन्न है। उनका कहना है कि-सज्ञिभूत का अर्थ यहाँ सज्ञी पञ्चेन्द्रिय है अर्थात् जो जीव नरक में जाने से पहले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय था, उसे यहाँ सज्ञिभूत कहा गया है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव में तीव्र अशुभ परिणाम हो सकते है। इसलिए वह सातवी नरक तक जा सकता है। जो जीव आगे की नरको मे जाता है उसको अधिक वेदना होती है। नरक में जाने से पहले जो जीव असज्ञी था उसे यहाँ 'असज्ञिभूत' कहा गया है। ऐसा जीव रत्नप्रभा के तीव्र वेदना रहित नरक स्थानो मे उत्पन्न होता है। अत· उसे अल्प वेदना होती है।

अथवा-यहाँ सज्ञिभूत का अर्थ 'पर्याप्त' और 'असंज्ञिभूत' का अर्थ 'अपर्याप्त' है। जिस नारकी ने सभी पर्याप्तियाँ पूर्ण करली हो, उसे 'पर्याप्त' कहते है और जिसने अभी तक उन्हे पूर्ण न किया हो उसे-'अपर्याप्त' कहते हैं। संज्ञिभूत अर्थात् पर्याप्त को महावेदना होती है और 'असज्ञीभूत' अर्थात् अपर्याप्त को अल्पवेदना होतो है।

सज्ञिभूत और असज्ञिभूत शब्दो के ये सभी अर्थ अपेक्षाकृत ठीक हैं।

गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि-हे भगवन्! क्या सभी नारकी जीव समान क्रिया वाले हैं? भगवान् ने फरमाया कि-नही, सभी नारकी जोव समान क्रिया वाले नहीं

है, क्योंकि नरक के जीव तीन प्रकार के है-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) । क्रियाएँ पाँच हैं-आरंभिया (आरम्भिकी), परिग्गहिया (पारिग्रहीकी), मायावत्तिया (मायाप्रत्यया), अपच्चक्खाणिया (अप्रत्याख्यानिकी), मिच्छादसणवत्तिया (मिथ्यादर्शनप्रत्यया) ।

सम्यग्दृष्टि को चार क्रियाएँ लगती हैं । यथा-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानिकी । मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि को उपर्युक्त पाँचों क्रियाएँ लगती हैं । इन क्रियाओं का अर्थ इस प्रकार है-

आरम्भिकी-पृथ्वीकायादि छह काया रूप जीव तथा अजीव (जीव रहित शरीर, आटे आदि के बनाये हुए जीव की आकृति के पदार्थ या वस्त्रादि) के आरम्भ से लगने वाली क्रिया को 'आरम्भिकी' कहते हैं ।

पारिग्रहिकी-'परिग्रहो धर्मोपकरणवर्जवस्तुस्वीकारः, धर्मोपकरणमूर्च्छा च, स प्रयोजनं यस्याः सा पारिग्रहिकी' ।

अर्थ-धर्मोपकरण जो धर्म की साधना के लिए रखे जाते हैं उनको छोड़कर अन्य समस्त पर-पदार्थ परिग्रह है और धर्मोपकरणों पर ममता होना भी परिग्रह है । मूर्च्छा-ममत्वभाव से लगने वाली क्रिया-'पारिग्रहिकी'-है।

मायाप्रत्यया-सरलता का भाव न होना-कुटिलता का होना माया है । क्रोध, मान, माया और लोभ के निमित्त से लगने वाली क्रिया-मायाप्रत्यया क्रिया कहलाती है ।

अप्रत्याख्यानिकी-अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़ा-सा भी विरति परिणाम न होने रूप क्रिया अप्रत्याख्यानिकी है। अथवा अव्रत से जो कर्मबन्ध होता है वह अप्रत्याख्यानकी क्रिया है।

मिथ्यादर्शनप्रत्यया-जीव को अजीव, अजीव को जीव, धर्म को अधर्म, अधर्म को धर्म, साधु को असाधु, असाधु को साधु समझना इत्यादि विपरीत श्रद्धान से तथा तत्त्व मे अश्रद्धान आदि से लगने वाली क्रिया-मिथ्यादर्शन प्रत्ययाक्रिया है ।

यद्यपि दूसरी जगह "मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः" अर्थात्-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच कर्मबन्ध के कारण हैं-ऐसा कहा है, और यहाँ आरम्भ परिग्रह आदि को कर्मबन्ध का कारण कहा है तथापि इसमे तात्त्विक विरोध नही है, क्योंकि आरम्भ परिग्रह योग के अन्तर्गत है, और योग आरम्भ परिग्रह रूप ही है तथा प्रमाद तो सब कारणो के साथ ही है । शेष तीन कारण मिथ्यात्व, अविरति और कषाय दोनों जगह समान हैं ।

इसके पश्चात् गौतमस्वामी ने यह प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! क्या सब नारकी जीव समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए हैं ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! ऐसा नही है, क्योंकि इस विषय में नारकी जीवो में चार भंग है । यथा-१ समायुष्क समोपपन्नक-कोई कोई जीव समान आयु वाले हैं और एक साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे किन्ही जीवो ने दस हजार वर्ष की नरकायु बाधी और वे एक साथ नरक में उत्पन्न हुए, वे समायुष्क समोपपन्नक कहलाते है, यह प्रथम भंग है । २ समायुष्क विषमोपपन्नक-कोई जीव समान आयु वाले हैं किन्तु विषम उत्पत्ति वाले हैं । जैसे-किन्ही जीवों ने दस हजार वर्ष की नरक आयु बाँधी, किन्तु उनमे से कोई जीव नरक में पहले उत्पन्न हुआ और कोई जीव नरक में पीछे उत्पन्न हुआ, वे समायुष्क विषमोपपन्नक कहलाते हैं, यह दूसरा भग है । ३ विषमायुष्क समोपपन्नक-जिनकी आयु समान नही है, किन्तु नरक में एक साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे-किसी जीव ने दस हजार वर्ष की नरकायु बाधी और किसी जीव ने एक सागरोपम की आयु बाँधी, वे दोनों जीव नरक मे एक साथ उत्पन्न हुए, वे विषमायुष्य समोपपन्नक कहलाते हैं, यह तीसरा भंग है । ४ विषमायुष्क विषमोपपन्नक अर्थात् जिनकी आयु भी विषम है और उत्पत्ति भी विषम है, जैसे-एक जीव ने दस हजार वर्ष की नरकायु बांधी और एक जीव ने एक सागर की नरकायु बांधी, वे दोनों नरक में भी भिन्न भिन्न समय में उत्पन्न हुए, वे विषमायुष्क विषमोपपन्नक कहलाते हैं, यह चौथा भग है ।

इस प्रकरण मे पहले नारकी जीवों के दो भेद किये, फिर तीन भेद किये और फिर चार भेद किये । ये सब अपेक्षाकृत भेद है, अतः विरोध की कोई संभावना नही है ।

असुरकुमारादि में समाहारादि-

८३ प्रश्न-असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा, समसरीरा ?

८३ उत्तर-जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं-कम्म-वण्ण-लेस्साओ परिवण्णेयव्वाओ-पुव्वोववण्णगा महाकम्मतरागा, अविसुद्धवण्णतरागा, अविसुद्धलेसतरागा । पच्छोववण्णगा पसत्था, सेसं तहेव । एवं जाव-थणियकुमारा णं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-भाणियव्वा-कहना चाहिए, णवरं-इतनी विशेषता है, इतना अन्तर है, पसत्था-प्रशस्त-अच्छा।

भावार्थ-८३ प्रश्न-हे भगवन्! क्या सब असुरकुमार समान आहार वाले और समान शरीर वाले हैं?

८३ उत्तर-हे गौतम! असुरकुमारों का वर्णन नारकी जीवों के समान कहना चाहिए। विशेषता यह है कि-असुरकुमारों के कर्म, वर्ण और लेश्या नारकी जीवों से विपरीत कहना चाहिए अर्थात् पूर्वोपपन्नक (पूर्वोत्पन्न) असुरकुमार महाकर्म वाले, अविशुद्ध वर्ण वाले और अविशुद्ध लेश्या वाले हैं और पश्चादुपपन्नक (बाद में उत्पन्न होने वाले) प्रशस्त हैं। शेष पहले के समान समझना चाहिए। इसी तरह स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

विवेचन-सात नरकों का एक दण्डक है और वह पहला दण्डक है। उसके विषय में प्रश्नोत्तर हो चुके। असुरकुमारों का दूसरा दण्डक है। अब उनके विषय मे प्रश्नोत्तर आरम्भ होते हैं।

गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन्! क्या सब असुरकुमार देवों का आहार और शरीर एक समान हैं? भगवान् ने फरमाया कि ऐसा नहीं है। असुरकुमारो के विषय में भी सभी बाते नैरयिकों के समान ही हैं। इतना फर्क है कि असुरकुमारो का कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिकों के कर्म, वर्ण और लेश्या से विपरीत समझना चाहिए।

नारकी जीवो के समान असुरकुमार भी अल्प शरीर वाले और महा शरीर वाले हैं। महाशरीर वाले असुरकुमार बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं और बार बार आहार करते हैं तथा बार बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं। अल्प शरीर वाले असुरकुमार थोड़े पुद्गलो का आहार करते हैं, बारबार आहार नही करते और बारबार श्वासोच्छ्वास नहीं लेते।

असुरकुमारों का भवधारणीय (स्वाभाविक) शरीर जघन्य अंगुल के असख्यातवें भाग का और उत्कृष्ट सात हाथ का होता है। उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन होता है।

यहाँ असुरकुमारों के मनोभक्षी (मानसिक-आहार ग्रहण करने का मन होते ही इष्ट कान्त आदि आहार के पुद्गल मनोभक्षी आहार के रूप में परिणत होजाते हैं) आहार को मुख्य करके उसकी अपेक्षा से कथन किया गया है-अल्प शरीर वालों का अल्प (कम)

आहार और महाशरीर वालों का अधिक आहार अपेक्षा कृत समझना चाहिए। जैसे किसी असुरकुमार का शरीर सात हाथ का है और किसी का छह हाथ का। सात हाथ वाले की अपेक्षा छह हाथ वाले का आहार कम है, परन्तु पाँच हाथ वाले की अपेक्षा छह हाथ वाले का अधिक है। इस प्रकार कम, अधिक होना अपेक्षाकृत है।

शङ्का-असुरकुमारों का आहार चतुर्थभक्त (एक दिन के अन्तर से होने वाला) और श्वासोच्छ्वास सात स्तोक में लेना कहा है। फिर यहाँ बारबार आहार और बारबार श्वासोच्छ्वास क्यों कहा है ?

समाधान-'बराबार का आहार' यह कथन भी अपेक्षाकृत समझना चाहिए। जैसे एक असुरकुमार चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन के अन्तर से आहार करता है और दूसरा असुरकुमार देव सातिरेक (साधिक) एक हजार वर्ष में एक बार आहार करता है। सातिरेक एक हजार वर्ष मे एक बार आहार करने वाले की अपेक्षा एक दिन के अन्तर से आहार करने वाला 'बारबार आहार करता है' ऐसा कहा जाता है और जो पाँच दिन के अन्तर से आहार करता है वह उसकी अपेक्षा 'कदाचित् आहार करता है' ऐसा कहा जाता है। लोक में भी ऐसा ही व्यवहार होता है। यही बात श्वासोच्छ्वास के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। कोई असुरकुमार सात स्तोक में एक बार श्वासोच्छ्वास लेता है और कोई असुरकुमार सातिरेक एक पक्ष मे श्वासोच्छ्वास लेता है, तो इसकी अपेक्षा सात स्तोक में श्वासोच्छ्वास लेने वाला 'बारबार श्वासोच्छ्वास लेता है'-ऐसा कहा जाता है।

अथवा-अल्पशरीरी का अल्पाहार और अल्प श्वासोच्छ्वास तथा कदाचित् आहार और कदाचित् श्वासोच्छ्वास, अतराल की अपेक्षा से कहा गया है। अल्पशरीर वालों के आहार और श्वासोच्छ्वास मे अन्तराल बहुत पड़ जाता है। इस अपेक्षा से यह कथन किया गया है।

अन्तराल का अर्थ है-बीच या अन्तर। एक आहार से दूसरे आहार के बीच के समय का अन्तर या व्यवधान कहलाता है।

यद्यपि महाशरीर वाले के आहार में भी अन्तराल है-एक दिन का अन्तर पड़ता है, परन्तु वह अन्तर अन्य देवों की अपेक्षा अत्यल्प है, इसलिए नगण्य है। नगण्य होने के कारण ही अल्पशरीरी की अपेक्षा महाशरीरी का आहार 'अभीक्ष्णं-वारम्वार आहार' कहा गया है। यह बात आगम से भी सिद्ध है कि-महाशरीर वाले का आहार बारबार होता है और अल्पशरीर वाले का, आहार-अन्तराल बड़ा होने से बारबार नही होता। यथा-प्रथम देवलोक के देव का शरीर सात हाथ का है। उनका आहार दो हजार वर्ष के अन्तर से और

श्वासोच्छ्वास दो पक्ष के अन्तर से होता है। अनुत्तर विमान के देव का शरीर एक हाथ का है और उनका आहार तेतीस हजार वर्ष के अन्तर से तथा श्वासोच्छ्वास तेतीस पक्ष के अन्तर से होता है। इस अपेक्षा से प्रथम देवलोक के देवों का शरीर बड़ा है, इसलिए वे आहार और श्वासोच्छ्वास भी बारबार लेते हैं। इनकी अपेक्षा अनुत्तर विमान के देवों का शरीर छोटा है, इसलिए वे आहार और श्वासोच्छ्वास भी अल्प लेते हैं। यही बात असुरकुमारों के विषय में भी है।

अथवा-पर्याप्त अवस्था में महाशरीर वाले असुरकुमार लोमाहार की अपेक्षा बारबार आहार लेते हैं और अपर्याप्त अवस्था में अल्पशरीर वाले असुरकुमार लोमाहार नहीं करते, किन्तु ओजाहार ही करते हैं, इस अपेक्षा से भी महाशरीर वाले बारबार आहार करते हैं और अल्पशरीर वाले कदाचित् आहार करते हैं, ऐसा कहा गया है।

भगवान् ने असुरकुमारों के कर्म, वर्ण और लेश्या की असमानता बतलाते हुए यह भी बतलाया है कि इनके कर्म आदि का कथन नारकियों से उल्टा है। इसका आशय यह है कि-नैरयिकों में जो पूर्वोपपन्नक (पूर्वोत्पन्न) हैं, वे अल्प कर्म, विशुद्ध वर्ण और विशुद्ध लेश्या वाले हैं और पश्चादुपपन्नक महाकर्म, अविशुद्ध वर्ण और अविशुद्ध लेश्या वाले हैं, किन्तु असुरकुमारों में इससे विपरीत है। पूर्वोपपन्नक असुरकुमार महाकर्म, अविशुद्ध वर्ण और अविशुद्ध लेश्या वाले हैं और पश्चादुपपन्नक अल्प कर्म, विशुद्ध वर्ण और विशुद्ध लेश्या वाले हैं।

इस विपरीतता का कारण यह है कि पूर्वोपपन्नक असुरकुमारों का चित्त अतिकन्दर्प और दर्प युक्त होने से वे नरक के जीवों को बहुत त्रास देते हैं। त्रास सहन करने से नरक के जीवों के तो निर्जरा होती है, किन्तु असुरकुमारों के नये कर्मों का बन्ध होता है। वे अपनी क्रूर भावना के कारण एवं विकारादि के कारण अपनी अशुद्धता बढ़ाते हैं। उनका पुण्य क्षीण होता जाता है, पाप कर्म बढ़ता जाता है, इसलिए वे महाकर्मी होते हैं, उनका वर्ण और लेश्या अशुद्ध होजाती है। इस अपेक्षा से पश्चादुपपन्नक असुरकुमार अल्पकर्मी, विशुद्ध वर्ण वाले और विशुद्ध लेश्या वाले होते हैं।

अथवा-बद्धायुष्क की अपेक्षा देखा जाय तो पूर्वोत्पन्न असुरकुमार यदि तिर्यञ्च गति का आयुष्य बाँध चुके हों, तो वे महाकर्म, अशुद्ध वर्ण और अशुद्ध लेश्या वाले होते हैं। पश्चादुत्पन्न हुए असुरकुमारों ने अभी परलोक का आयुष्य नहीं बाँधा हो, तो वे अपने साथ जो शुभ कर्म ले गये हैं, वे ज्यादा क्षीण न होने से वे अल्प कर्म, विशुद्ध वर्ण और विशुद्ध लेश्या वाले होते हैं।

असुरकुमारों की वेदना भी नारकी जीवों की तरह होती है, क्योंकि उनमें भी नैरयिकों की तरह दो भेद हैं-संज्ञिभूत और असंज्ञिभूत। संज्ञिभूत चारित्र के विराधक होते है। इसलिए चारित्र की इस विराधना के कारण उन्हें पश्चात्तापजन्य मानसिक वेदना बहुत होती है। इसलिए संज्ञिभूत (सम्यग्दृष्टि) महावेदना वाले होते हैं। असंज्ञिभूत अर्थात् मिथ्यादृष्टि असुरकुमारों को यह वेदना नहीं होती है। इस कारण से वे अल्पवेदना वाले होते है।

अथवा-पूर्व-भव मे जो संज्ञी (समनस्क) थे वे संज्ञिभूत कहलाते है। अथवा जो पर्याप्त अवस्था प्राप्त कर चुके हैं, वे संज्ञिभूत कहलाते हैं। इन्हें शुभ वेदना की अपेक्षा महावेदना होती है और असंज्ञिभूत को अल्पवेदना होती है। शेष सब वर्णन नैरयिकों की तरह यावत् स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

पृथ्वीकायिक में आहारादि

८४-पुढविक्काइयाणं आहार-कम्म-वन्न-लेस्सा जहा णेरइयाणं।

८५ प्रश्न-पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?

८५ उत्तर-हंता, समवेयणा।

८६ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! समवेयणा ?

८६ उत्तर-गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे असन्नी असन्निभूयं अणिदाए वेयणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं....।

८७ प्रश्न-पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

८७ उत्तर-हंता, समकिरिया।

८८ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

८८ उत्तर-गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे माई मिच्छादिट्ठी । ताणं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहाः-आरंभिया जाव-मिच्छादंसणवत्तिया । से तेणट्ठेणं.... समाउया, समोववन्नगा जहा नेरइया तहा भाणियव्वा ।

विशेष शब्दों के अर्थ-अणिदाए-अनिर्धारित रूप से । माई-मायी-माया का सेवन करने वाले ।

भावार्थ-८४ पृथ्वीकाय के जीवों का आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिकों के समान समझना चाहिए ।

८५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब पृथ्वीकायिक जीव समान वेदना वाले हैं ?

८५ उत्तर-हाँ, गौतम ! समान वेदना वाले हैं ।

८६ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

८६ उत्तर-हे गौतम ! सब पृथ्वीकायिक जीव असंज्ञी हैं और असंज्ञि-भूत वेदना को अनिर्धारित रूप से वेदते हैं । इस कारण हे गौतम ! वे सब समान वेदना वाले हैं ।

८७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब पृथ्वीकायिक जीव समान क्रिया वाले हैं ?

८७ उत्तर-हाँ, गौतम ! सब समान क्रिया वाले हैं ।

८८ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

८८ उत्तर-हे गौतम ! सब पृथ्वीकायिक जीव मायी और मिथ्यादृष्टि हैं । इसलिए उन्हें नियम से पांचों क्रियाएँ लगती है । वे पांच क्रियाएँ ये हैं-आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि-सब पृथ्वीकायिक जीव समान क्रिया वाले हैं ।

जैसे नारकी जीवों में समायुष्क समोपपन्नक आदि चार भंग कहे हैं

वैसे ही पृथ्वीकायिक जीवों में भी कहना चाहिए।

विवेचन–श्री गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! क्या पृथ्वीकाय के सब जीव समान आहारी हैं ? भगवान् ने फरमाया कि–हे गौतम ! पृथ्वीकाय के सब जीव समान आहारी नहीं है, क्योंकि पृथ्वीकाय के जीवों के दो भेद हैं–महाशरीरी और अल्पशरीरी। महाशरीरी का आहार आदि बारबार होता है और अल्पशरीरी का कदाचित् होता है, इत्यादि समस्त वर्णन तथा कर्म, वर्ण, लेश्या आदि का वर्णन नैरयिकों के समान ही समझना चाहिए।

शका–पृथ्वीकायिक जीवों का शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग कहा गया है, फिर उनमें महाशरीर और अल्पशरीर कैसे हो सकता है ?

समाधान–अंगुल के असंख्यातवें भाग वाले शरीर में भी तरतमता से असंख्य भेद होते हैं। अतएव एक दूसरे की अपेक्षा से उनमें कोई महाशरीरी है और कोई अल्पशरीरी है। इस सम्बन्ध में आगम प्रमाण है। पन्नवणा सूत्र में कहा है–‡पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना की अपेक्षा चउट्ठाणवडिया (चतुःस्थान पतित) हैं। यथा–असंख्यात-भागहीन, संख्यात-भागहीन, संख्यात-गुणहीन, असंख्यात-गुणहीन, असंख्यात-भागवृद्ध, संख्यात-भागवृद्ध सख्यात-गुणवृद्ध असंख्यात-गुणवृद्ध। इन चार स्थान वाले होते है। इन्हे चउट्ठाणवडिया कहते है†। तात्पर्य यह है कि–यद्यपि सब पृथ्वीकायिक जीव अंगुल के असख्यातवें भाग शरीर वाले हैं, तथापि उनकी परस्पर अवगाहना में चउट्ठाणवडिया हीनता और चउट्ठाण वडिया वृद्धि पाई जाती है। इस अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीव अल्पशरीरी भी हैं और महाशरीरी भी हैं।

---

‡ 'पुढवीक्काइए पुढवीक्काइयस्स ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए'।

† वुड्ढी वा हाणी वा, अणंत-असंख-संखभागेहिं।
वत्थूण संख-अस्संखऽणंतगुणणेण य विहेआ॥

जहाँ छट्ठाण वडिया (षट्स्थान पतित) शब्द आता है, वहाँ छह स्थान इस प्रकार हैं–वृद्धि सम्बन्धी छह स्थान–अनन्त-भाग-वृद्ध, असख्यात-भाग-वृद्ध, सख्यात-भाग-वृद्ध, संख्यात-गुण-वृद्ध, असंख्यात गुण-वृद्ध, अनन्त-गुण-वृद्ध।

हानि सम्बन्धी छह स्थान ये हैं–अनन्त-भाग-हीन असख्यात-भाग-हीन, संख्यात-भाग-हीन, संख्यात-गुण-हीन, असख्यात-गुण-हीन, अनन्त-गुण-हीन। इसी तरह तिट्ठाणवडिया दुट्ठाणवडिया एगट्ठाणवडिया आदि भी समझ लेना चाहिए।'

महाशरीर वाले पृथ्वीकायिक लोमाहार द्वारा बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं और बारबार श्वासोच्छ्वास लेते है। अल्पशरीरी कम आहार करते है और कम श्वासोच्छ्वास लेते है। कदाचित् आहार लेते है और कदाचित् आहार नहीं लेते हैं। यही बात पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था के लिए भी कही जा सकती है।

पृथ्वीकायिक जीवों के कर्म, वर्ण और लेश्या का वर्णन नैरयिक जीवों के समान समझना चाहिए।

सब पृथ्वीकायिक जीव समान वेदना को वेदते है। इसका कारण यह है कि-सब पृथ्वीकायिक जीव असंज्ञी हैं और असंज्ञिभूत वेदना को वेदते हैं। उनकी वेदना 'अणिदा' अर्थात् अनिर्धारित होती है। वे सभी मिथ्यादृष्टि और असज्ञी (अमनस्क) होने के कारण मूर्च्छित एवं उन्मत्त पुरुष के समान वे बेसुध होकर कष्ट भोगते है। उन्हें इस बात का पता नही है कि-यह हमारे पूर्व कर्मो का फल है,हमें कौन पीड़ा दे रहा है, कौन मारता है, कौन काटता है और किस कर्म के उदय से यह वेदना हो रही है।

प्रायः करके पृथ्वीकायिक जीवों में मायी-मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं। जैसा कि कहा है-

उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ गूढहियमाइल्लो।
सढसीलो य ससल्लो, तिरियाउं बंधए जीवो ॥

अर्थात्-उन्मार्ग का उपदेश देने वाला, सन्मार्ग का नाश करने वाला, गूढ़ हृदय वाला अर्थात् हृदय में गांठ रखने वाला, मायावी, शठ स्वभाव वाला और शल्य वाला जीव, पृथ्वीकाय आदि तिर्यञ्च योनि की आयु बांधता है।

यद्यपि पृथ्वीकाय के जीव इस समय मायाचार करते हुए दिखाई नहीं देते हैं, किंतु माया के कारण ही वे पृथ्वीकाय में आये हैं, इसलिए वे मायी-मिथ्यादृष्टि हैं।

अथवा-माया का दूसरा अर्थ-अनन्तानुबन्धी कषाय है। जिसके अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होता है, वह मिथ्यादृष्टि होता है। जहाँ मिथ्यात्व है वहां अनन्तानुबन्धी कषाय है। इस कारण पृथ्वीकायिक जीवों के नियमित रूप से पांचों क्रियाएँ होती हैं।

बेइन्द्रियादि जीवों का वर्णन

८९ जहा पुढविक्काइया तहा-चउरिंदिया।

९० पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया,णाणत्तं किरियासु।

९१ प्रश्न-पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! सव्वे समकिरिया ?

९१ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

९२ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

९२ उत्तर-गोयमा! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पन्नता तं जहाः-सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी । तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते दुविहा पन्नता, तं जहाः-असंजया य, संजयासंजया य, तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसि णं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहाः-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया; असंजयाणं चत्तारि, मिच्छाट्ठीणं पंच, सम्मामिच्छादिट्ठीणं पंच ।

विशेष शब्दों के अर्थ-णाणत्तं-भिन्नता, असंजया-असंयत, संजयासंजया-संयतासंयत, तंजहा-वे इस प्रकार हैं ।

भावार्थ-८९-जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का वर्णन किया गया है उसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवों का समझना चाहिए ।

९०-पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों का कथन नारकियों के समान है, केवल क्रियाओं में भिन्नता है ।

९१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीव समान क्रिया वाले हैं ?

९१ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

९२ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

९२ उत्तर-हे गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीव तीन प्रकार

के हैं-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)। उनमें जो सम्यग्दृष्टि है वे दो प्रकार के हैं-असंयत और संयतासंयत। उनमें जो संयतासंयत हैं उन्हें तीन क्रियाएँ लगती हैं। वे इस प्रकार हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। उनमें जो असंयत हैं उन्हें अप्रत्याख्यानी क्रिया सहित चार क्रियाएँ लगती हैं। उनमें जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उन्हें पाँच क्रियाएँ लगती हैं।

विवेचन-अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय का वर्णन पृथ्वीकाय के समान समझना चाहिए। इनमें अल्पशरीर और महाशरीर अपनी अपनी अवगाहना की अपेक्षा समझना चाहिए। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवों में कवलाहार भी होता है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों के लिए जो यह बात कही गई है-'जो महाशरीर वाले हैं वे बारम्बार आहार करते है और बारम्बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं। यह बात संख्यात वर्ष की आयु वालों की अपेक्षा से समझनी चाहिए, यहाँ पर असंख्यात वर्ष की आयु वाले नहीं लेना चाहिए, क्योंकि उनका प्रक्षेपाहार छट्ठभत्त-दो दिन के अन्तर से होता है।

अल्पशरीर वालों के जो कदाचित् कहा हैं वह अपर्याप्त अवस्था मे लोमाहार और श्वासोच्छ्वास न होने से कहा गया है। पर्याप्त अवस्था में ये दोनों होते है, इसलिए 'बारम्बार' कहा है।

पूर्वोत्पन्न जीव अल्पकर्मी और पश्चादुत्पन्न जीव महाकर्मी होते हैं। यह जो कहा गया है वह आयुष्यादि तद्भववेद्य कर्मो की अपेक्षा समझना चाहिए।

वर्ण और लेश्या सूत्र मे पूर्वोत्पन्न जीवों के जो शुभवर्णादि कहे गये हैं, वे युवावस्था की अपेक्षा समझना चाहिए। और पश्चादुत्पन्न जीवों में जो अशुभ वर्णादि कहे गये है वे बचपन की अपेक्षा समझना चाहिए। लोक व्यवहार में इसी प्रकार देखा जाता है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे सम्यग्दृष्टि संयतासंयत (देशविरत श्रावक) के तीन क्रियाएँ होती है। सम्यग्दृष्टि असंयत के चार क्रियाएँ होती है। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि जीवो के पाँचों क्रियाएँ होती हैं।

मनुष्य के आरंभिकी आदि क्रिया

६३-मणुस्सा जहा नेरइया, नाणत्तं-जे महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, ते आहच्च आहारेंति। जे अप्पसरीरा ते अप्पतराए पोग्गले आहारेंति। अभिक्खणं आहारेंति। सेसं जहा णेरइयाणं जाव-वेयणा।

६४ प्रश्न-मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

६४ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

६५ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

६५ उत्तर-गोयमा ! मणुस्सा तिविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्माभिच्छादिट्ठी; तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते तिविहा पन्नत्ता, जहाः-संजया, संजयाऽसंजया, असंजया। तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सरागसंजया य, वीयरागसंजया य। तत्थ णं जे ते वीयरागसंजया ते णं अकिरिया। तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-पमत्तसंजया य, अप्पमत्तसंजया य, तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया तेसिं णं एगा मायावत्तिया किरिया कज्जइ, तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया तेसिं णं दो किरियाओ कज्जंति, तं जहाः-आरंभिया, मायावत्तिया, तत्थ णं जे ते संजयाऽसंजया तेसिं णं आइल्लाओ

(आदिमाओ) तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा:-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया । असंजयाण चत्तारि किरियाओ कज्जंति:-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाण-पच्चया । मिच्छादिट्ठीणं पंच:-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाणपच्चया, मिच्छादंसणवत्तिया । सम्मामिच्छादिट्ठीणं पंच ।

विशेष शब्दों के अर्थ-सरागसंजया-सराग संयत, वीयरागसंजया-वीतराग संयत, पमत्तसंजया-प्रमत्त संयत, अप्पमत्तसंजया-अप्रमत्तसंयत, कज्जइ-की जाती है । आइल्लाओ -आदि की=प्रारंभ की=पहले की ।

भावार्थ-९३-मनुष्यों का वर्णन नारकियों के समान समझना चाहिए । उनमें इतना अन्तर है कि-जो महाशरीर वाले हैं, वे बहुतर पुद्गलों का आहार करते हैं और वे कभी कभी आहार करते हैं । जो अल्पशरीरी वाले हैं वे अल्प-तर पुद्गलों का आहार करते हैं और बारबार आहार करते हैं । शेष सब वेदना पर्यन्त नारकियों के समान समझना चाहिए ।

९४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सब मनुष्य समान क्रिया वाले हैं ?

९४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

९५ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

९५ उत्तर-हे गौतम ! मनुष्य तीन प्रकार के हैं-सम्यग्दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि । उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं वे तीन प्रकार के कहे गये हैं-संयत, संयतासंयत और असंयत । इनमें से संयत दो प्रकार के कहे गये हैं-सरागसंयत और वीतरागसंयत । इनमें जो वीतरागसंयत हैं, वे क्रिया रहित हैं । सरागसंयत के दो भेद हैं-प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत । अप्रमत्तसंयत को एक मायावत्तिया क्रिया लगती है । प्रमत्तसंयत को दो क्रियाएँ लगती

हैं-आरम्भिकी और मायाप्रत्यया । संयतासंयत को तीन क्रियाएँ लगती हैं-आर-म्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया । असंयत मनुष्य को चार क्रियाएँ लगती हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मयाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानप्रत्यया । मिथ्यादृष्टि मनुष्य को पाँच क्रियाएँ लगती हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया और मिथ्यादर्शनप्रत्यया । सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) मनुष्य को भी ये पाँचों क्रियाएँ लगती हैं ।

विवेचन-गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! क्या सब मनुष्य समान आहार करने वाले हैं ? इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-इनका सारा वर्णन नारकियों के समान ही समझ लेना चाहिए, किंतु इतनी विशेषता है-महाशरीरवाले मनुष्य बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं, परन्तु कदाचित् आहार करते हैं । महाशरीरी नारकी बारबार आहार करते है, किन्तु महाशरीरी मनुष्य कभी कभी आहार करते हैं । यहां महाशरीरी मनुष्यों से देवकुरु आदि के मनुष्य लेना चाहिए । उनका शरीर तीन गाऊ का होता है और आहार अष्टम-भक्त होता है अर्थात् तीन दिन में एक बार आहार करते हैं । इस अपेक्षा से 'कदा-चित् आहार करनेवाले' ऐसा कहा गया है । यद्यपि वे परिमाण की अपेक्षा अल्प परिमाण में आहार करते है, तथापि बहुत पुद्गलो का आहार करते हैं, ऐसा जो कहागया है । उसका आशय यह है कि-वे सारभूत आहार करते है, सारभूत आहार में जितने पुद्गल होते हैं, निःसार में उतने नहीं होते । इस अपेक्षा से यह कहा गया है कि-वे बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं ।

अल्पशरीरी मनुष्य थोड़े पुद्गलो का आहार करते हैं और बारबार आहार करते है, जैसे कि बालक बारबार आहार करता है । तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्य अल्पशरीरी होते हैं और वे बारबार आहार करते हैं ।

यहाँ पूर्वोत्पन्न मनुष्यो में जो शुभ वर्णादि का कथन किया गया है वह युवावस्था की अपेक्षा समझना चाहिए अथवा यह कथन सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की अपेक्षा से समझना चाहिए ।

इसके बाद क्रिया का प्रश्न किया गया है । भगवान् ने फरमाया कि-मनुष्य तीन प्रकार के हैं सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग् मिथ्यादृष्टि ।

जो संयम का पालन करता है, चारित्ररूपी यतना का विवेक रखता है वह सयत

कहलाता है। जिसमें चारित्र की क्रिया नही है वह असंयत है। जो देश चारित्र की आराधना करता है, जिसके अणुव्रत हैं परन्तु महाव्रत नही है वह सयतासयत (श्रावक) कहलाता है।

जो संयम का पालन करता है, किन्तु संज्वलन कषाय का क्षय या उपशम नही हुआ है, वह 'सरागसंयत' कहलाता है। जिसके सम्पूर्ण कषाय का सर्वथा क्षय या उपशम होगया है उसे क्रमश 'क्षीणकषायी वीतराग संयत' और 'उपशान्त कषायी वीतराग संयत' कहते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशान्त कषायी वीतराग कहलाते हैं और बारहवें, तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवाले क्षीण कषायी वीतराग कहलाते है।

वीतराग संयत कर्मबन्ध की कारणभूत क्रिया से रहित होते है। यद्यपि सयोगी अवस्था में योग की प्रवृत्ति से होनेवाली ईर्यापथिक क्रिया उनमें विद्यमान है, परन्तु वह क्रिया नही के बराबर है और इन पांच क्रियाओं में उसकी गणना नही है।

अप्रमत्त संयत मे सिर्फ एक मायाप्रत्यया होती है, क्योकि वह क्षीण कषायी नही है। उसमें कषाय अवशिष्ट है। कषाय के निमित्त से होने वाली क्रिया मायाप्रत्यया कहलाती है।

यहां पर टीकाकार ने यह बात कही है कि:-

"कदाचिदुड्डाहरक्षणप्रवृत्तानामक्षीणकषायत्वादिति"

अर्थात्-उड्डाह (धर्म पर आया हुआ कलंक एवं धर्म की होती हुई हंसी) से रक्षण के निमित्त अप्रमत्त-संयत मायाप्रत्यया क्रिया का सेवन करते हैं, क्योकि उनके कषाय अभी क्षीण नही हुए हैं।

किन्तु टीकाकार की यह बात आगम से मेल नही खाती है, क्योंकि अप्रमत्त अवस्था मे आहारक लब्धि का भी प्रयोग नही करते है, तो फिर जानबूझकर प्राणवध सरीखी क्रिया में तो प्रवृत्ति करें ही कैसे? और यह क्रिया दशवें गुणस्थान तक है फिर 'उड्डाह' रक्षण कार्य की संगति वहा तक कैसे बैठेगी? इसलिए अप्रमत्त सयत में तो यह क्रिया कषाय के सद्भाव से ही लगती है, विपरीत प्रवृत्ति के कारण नही।

प्रमत्त संयत को आरम्भिकी और मायाप्रत्यया ये दो क्रियाएँ लगती हैं।

"सर्वः प्रमत्तयोग आरम्भः"

अर्थात्-सब प्रमत्तयोग आरम्भ रूप है। प्रमत्तसंयत में प्रमाद का अस्तित्व है। इसलिए उसे आरम्भिकी क्रिया लगती है। उसके संज्वलन कषाय का सर्वथा क्षय या उपशम नही हुआ है, इसलिए उसे 'मायाप्रत्यया' क्रिया लगती है।

संयतासंयत अर्थात् देशविरत (श्रावक) के तीन क्रिया होती हैं-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। श्रावक को अप्रत्याख्यानप्रत्यया क्रिया नहीं लगती है। असंयत सम्यग्दृष्टि के चार होती है और मिथ्यादृष्टि तथा मिश्रदृष्टि के पाँचो ही क्रियाएँ होती हैं।

देवों का वर्णन

९६-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा असुरकुमारा, नवरं वेयणाए णाणत्तं-मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य अप्पवेयणतरा, अमायिसम्मदिट्ठीउववन्नगा य महावेयणातरागा भाणियव्वा जोइस-वेमाणिया।

विशेष शब्दों के अर्थ-अमायिसम्मदिट्ठिउववण्णगा-जो अमायी सम्यग्दृष्टि रूप से उत्पन्न हुए है, जोइसवेमाणिया-ज्योतिषी और वैमानिक देव।

भावार्थ-९६-यहाँ वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, ये सब असुरकुमारों के समान कहना चाहिए। इनकी वेदना में भिन्नता है। ज्योतिषी और वैमानिकों में जो मायी-मिथ्यादृष्टि रूप से उत्पन्न हुए हैं, वे अल्प वेदना वाले हैं और जो अमायी-सम्यग्दृष्टि रूप से उत्पन्न हुए हैं वे महावेदनावाले होते हैं-ऐसा कहना चाहिए।

विवेचन-यहां वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों का वर्णन असुरकुमार देवों के समान बतलाया गया है। इनमे वेदना का भेद है।

इन देवों मे अल्पशरीरी और महाशरीरी अपनी अपनी अवगाहना के अनुसार समझना चाहिए। वेदना के विषय मे असुरकुमारो के लिए यह कहा था कि-जो संज्ञिभूत हैं वे महावेदना वेदते हैं और असंज्ञिभूत है वे अल्प वेदना वेदते हैं। यही बात वाणव्यन्तर देवों में भी समझना चाहिए क्योंकि असुरकुमारों से लेकर वाणव्यन्तर देवों तक असंज्ञी जीव उत्पन्न होते हैं। यह बात इसी उद्देशक में आगे बतलाई जायगी। यथा-

"असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु"।

अर्थात्-असंज्ञी जीव यदि देवगति में उत्पन्न हो तो जघन्य भवनपतियो में और

उत्कृष्ट वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होते हैं और वे अल्पवेदना वाले होते हैं। यह बात असुर-कुमारों मे कही हुई युक्ति के अनुसार समझनी चाहिए। 'संज्ञिभूत अर्थात् सम्यग्दृष्टि' और 'असंज्ञिभूत अर्थात् 'मिथ्यादृष्टि' यह जो पहले अर्थ किया था वह यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

ज्योतिषी और वैमानिक देवों में तो असंज्ञी जीव उत्पन्न ही नही होते है। इसलिए इनकी वेदना के सम्बन्ध में कहा गया है कि ज्योतिषी देवों के दो भेद है—मायी-मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। शुभ वेदना की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि को अल्प वेदना होती है और सम्यग्दृष्टि को महा वेदना होती है।

लेश्या

९७ प्रश्न—सलेस्सा णं भंते ! नेरइया सव्वे समाहारगा ?

९७ उत्तर—ओहियाणं, सलेस्साणं, सुक्कलेस्साणं; एएसि णं तिण्हं एक्को गमो। कण्हलेस्साणं, नीललेस्साणं पि एक्को गमो। नवरं वेदणाए-मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य,अमायिसम्मदिट्ठीउववन्नगा य भाणियव्वा। मणुस्सा किरियासु सराग-वीअराग-पमत्ता-ऽपमत्ता न भाणियव्वा, काउलेस्साण वि एसेव गमो। नवरं—नेरइए जहा ओहिए दंडए तहा भाणियव्वा, तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा जस्स अत्थि जहा ओहिओ दंडओ तहा भाणियव्वा। नवरं—मणुस्सा सरागा, वीयरागा न भाणियव्वा। गाहाः—

दुक्खा-उए उदिण्णे आहारे कम्म-वन्न-लेस्सा य,
समवेयण-समकिरिया समाउए चेव बोधव्वा।

विशेष शब्दों के अर्थ-ओहियाणं-औधिक=सामान्य, तिण्हं-तीन का, एक्को गमो-एक गम अर्थात् समान पाठ।

भावार्थ-९७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या लेश्या वाले सब नैरयिक समान आहार वाले हैं ?

९७ उत्तर-हे गौतम ! औधिक-सामान्य, सलेश्य और शुक्ल लेश्या वाले, इन तीनों का एक गम-पाठ कहना चाहिए। कृष्ण लेश्या वालों का और नील लेश्या वालों का एक समान पाठ कहना चाहिए, परन्तु उनकी वेदना में इस प्रकार भेद है-मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और अमायी-समदृष्टि उपपन्नक कहने चाहिए तथा कृष्ण लेश्या और नील लेश्या में मनुष्यों के सराग-संयत, वीतराग-संयत, प्रमत्त-संयत और अप्रत्तसंयत ऐसे भेद नहीं करना चाहिये। क्योंकि कृष्ण और नील लेश्या वाले वीतराग संयत नहीं होते है, किन्तु सराग संयत ही होते हैं, अप्रमत्त संयत नहीं होते हैं, किन्तु प्रमत्त संयत ही होते हैं। कापोत लेश्या में भी यही पाठ कहना चाहिए, किंतु भेद यह है कि कापोत लेश्या वाले नैरयिकों को औधिक दण्डक के समान कहना चाहिए। तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों को औधिक दण्डक के ही समान कहना चाहिए, विशेषता यह है कि मनुष्यों को सराग और वीतराग नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वे सराग ही होते हैं।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है-

कर्म और आयुष्य उदीर्ण हो तो वेदते है। आहार, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और आयुष्य, इन सब की समानता के सम्बन्ध में पहले कहे अनुसार ही समझना चाहिए।

विवेचन-अब लेश्या की अपेक्षा चौवीस दण्डको का विचार किया जाता है। छह लेश्याओ के छह दण्डक (आलापक) और सलेश्य का एक दण्डक, इस प्रकार सात दण्डको से यहाँ विचार किया गया है।

पहले नैरयिकों का जो वर्णन किया गया है उसमे सामान्य नैरयिको का प्रश्न था। किन्तु यहाँ पर यह प्रश्न है कि-हे भगवन् ! क्या लेश्या वाले सब नैरयिक समान आहारी हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! सलेश्य नारकों के दो भेद

हैं-अल्पशरीरी नैरयिक भी सलेश्य है और महाशरीरी नैरयिक भी लेश्या युक्त हैं। अतएव नैरयिकों के आहारादि की वक्तव्यता पहले के समान ही समझनी चाहिए।

आहार के विषय में जिस प्रकार प्रश्न किया गया है उसी प्रकार शरीर, श्वासोच्छ्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और उपपात के लिए भी प्रश्न करना चाहिए। इसी प्रकार चौबीस ही दण्डको को लेकर प्रश्न करना चाहिए।

सामान्य रूप से सलेश्य का प्रश्न करने के पश्चात् कृष्णलेश्या सम्बन्धी प्रश्न आता है। वह इस प्रकार है-क्या कृष्णलेश्या वाले सब नारकी समान आहारी है ? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि-नही। क्योकि कृष्णलेश्या यद्यपि सामान्य रूप से एक है तथापि उसके अवान्तर भेद अनेक है। कोई कृष्णलेश्या अपेक्षाकृत विशुद्ध होती है, कोई अविशुद्ध होती है। एक कृष्णलेश्या से नरक गति मिलती है और एक कृष्णलेश्या से भवनपति देवों में उत्पत्ति होती है। अतएव कृष्णलेश्या में तरतमता के भेद से अनेक भेद हैं। कृष्णलेश्या वाले नारकियों के दो भेद हैं-अल्पशरीरी और महाशरीरी। अतएव उन सबका आहार समान नही है। कृष्णलेश्या और नीलेश्या में मनुष्यों के सराग-संयत, वीतराग-संयत, प्रमत्त-संयत और अप्रमत्त संयत, ऐसे भेद नहीं करने चाहिए, क्योंकि कृष्णलेश्या और नीललेश्या वाले वीतराग संयत नही होते हैं, किन्तु सराग संयत ही होते हैं, अप्रमत्त-संयत नहीं होते हैं। किन्तु प्रमत्त-संयत ही होते है+।

कृष्णलेश्या की तरह सभी लेश्याओं का वर्णन आहार, शरीर आदि नौ पदों को लेकर करना चाहिए। इस प्रकार सात दण्डकों का प्रश्न समझना चाहिए।

९८ प्रश्न-कइ णं भंते ! लेस्साओ पण्णत्ताओ ?

९८ उत्तर-गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ता, तं जहाः-लेस्साणं बिईओ उद्देसो भाणियव्वो, जाव-इड्ढी।

विशेष शब्दों के अर्थ-बिईओ-दूसरा, उद्देसो-उद्देशक, जाव-यावत्=तक, पर्यन्त, इड्ढी-ऋद्धि।

भावार्थ-९८ प्रश्न-हे भगवन् ! कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

+ पाद टिप्पण पृ० ९१ मे देखे।

९८ उत्तर-हे गौतम ! छह लेश्याएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं- कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल। यहां पन्नवणा सूत्र के लेश्या पद का दूसरा उद्देशक कहना चाहिए। वह ऋद्धि की वक्तव्यता तक कहना चाहिए।

विवेचन-गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! लेश्याएँ छह हैं। पन्नवणा सूत्र के सतरहवें पद के दूसरे उद्देशक में लेश्या का जो वर्णन किया गया है वह सब यहाँ समझ लेना चाहिए। वहाँ इस प्रकार वर्णन है-

प्रश्न-हे भगवन् ! लेश्याएँ कितनी है ?

उत्तर-हे गौतम ! लेश्याएँ छह है। यथा-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या।

प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिकों के कितनी लेश्याएँ होती हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! तीन होती है। यथा-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या।

तिर्यञ्च योनि के जीवो के छहों लेश्याएँ होती हैं। एकेन्द्रियों में चार लेश्याएँ पाई जाती है। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में चार लेश्याएँ, तेउकाय, वायुकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय जीवों में तीन लेश्याएँ होती हैं। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य में छहों लेश्याएँ होती हैं। भवनपति, वाणव्यन्तर देवो में चार लेश्याएँ, ज्योतिषी देवो मे एक तेजोलेश्या होती है। पहले दूसरे देवलोक में एक तेजो लेश्या, तीसरे, चौथे, पाँचवें देवलोक मे एक पद्म लेश्या तथा आगे के देवलोकों में एक शुक्ल लेश्या होती है।

फिर गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! कृष्ण लेश्या से शुक्ल लेश्या तक के जीवों में से कौन कम ऋद्धि वाला है और कौन किससे अधिक ऋद्धि वाला है ? इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि कृष्ण लेश्या वाले से नील लेश्या वाला महाऋद्धि वाला है। इस प्रकार सबसे अधिक ऋद्धि वाले शुक्ल लेश्या वाले हैं और सब से कम ऋद्धि वाले कृष्ण लेश्या वाले हैं।

इत्यादि ऋद्धि पर्यन्त सारा वर्णन जान लेना चाहिए।

संसार संस्थान काल

९९ प्रश्न-जीवस्स णं भंते ! तीतद्धाए आदिट्ठस्स कइविहे संसारसंचिट्ठणकाले पण्णत्ते ?

९९ उत्तर-गोयमा ! चउव्विहे संसारसंचिट्ठणकाले, पण्णत्ते तं जहाः-णेइयसंसारसंचिट्ठणकाले, तिरिक्ख-मणुस्स-देव-संसार-संचिट्ठणकाले य पण्णत्ते ।

१०० प्रश्न-नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

१०० उत्तर-गोयमा ! तिविहे पन्नत्ते, तं जहाः-सुन्नकाले, असुन्नकाले मिस्सकाले ।

१०१ प्रश्न-तिरिक्खजोणियसंसार.... पुच्छा ?

१०१ उत्तर-गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तं जहाः-असुन्नकाले मिस्सकाले य ।

१०२-मणुस्साण य देवाण य जहा नेरइयाणं ।

१०३ प्रश्न-एयस्स णं भंते ! नेरइयस्स संसारसंचिट्ठणकालस्स सुन्नकालस्स, असुन्नकालस्स, मीसकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

१०३ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवे असुन्नकाले, मिस्सकाले अणंतगुणे, सुन्नकाले अणंतगुणे ।

१०४ तिरिक्खजोणियाण सव्वत्थोवे असुन्नकाले, मिस्सकाले अणंतगुणे ।

१०५-मणुस्स-देवाण य जहा नेरइयाणं ।

१०६ प्रश्न-एयस्स णं भंते! नेरइयसंसारसंचिट्ठणकालस्स जाव-देवसंसारसंचिट्ठणकालस्स जाव-विसेसाहिए वा?

१०६ उत्तर-गोयमा! सव्वत्थोवे मणुस्ससंसारसंचिट्ठणकाले, नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, देवसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणिएसंसारसंचिट्ठणकाले अणंतगुणे।

विशेष शब्दों के अर्थ-तीतद्धाए-अतीत काल मे, आदिट्ठस्स-अदिष्ट-नारकादि विशेषण विशिष्ट, संसारसंचिट्ठणकाले-संसार संस्थान काल, सुण्णकाले-शून्यकाल, असुण्णकाले-अशून्यकाल, मिस्सकाले-मिश्रकाल, कयरे-कौन, कयरेहिंतो-किनसे, अप्पे-अल्प, तुल्ले-तुल्य, विसेसाहिए-विशेषाधिक, सव्वत्थोवे-सब से थोड़े।

भावार्थ-९९ प्रश्न-हे भगवन्! अतीत काल में आदिष्ट-नारक आदि विशेषण विशिष्ट जीवों का संसार संस्थान काल कितने प्रकार का कहा गया है?

९९ उत्तर-हे गौतम! संसार संस्थान काल चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-नैरयिक संसार संस्थान काल, तिर्यञ्च संसार संस्थान काल, मनुष्य संसार संस्थान काल और देव संसार संस्थान काल।

१०० प्रश्न-हे भगवन्! नैरयिक संसार संस्थान काल कितने प्रकार का कहा गया है?

१०० उत्तर-हे गौतम! तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-शून्यकाल, अशून्यकाल, मिश्रकाल।

१०१ प्रश्न-हे भगवन्! तिर्यञ्च संसार संस्थान काल कितने प्रकार का कहा गया है?

१०१ उत्तर-हे गौतम! दो प्रकार का कहा गया है-अशून्यकाल और मिश्रकाल।

१०२-मनुष्यों और देवों के संसार संस्थान काल का कथन नारकियों के समान समझना चाहिए।

१०३ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक संसार संस्थान काल के जो तीन भेद हैं-शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल। इनमें कौन किससे कम, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

१०३ उत्तर-हे गौतम ! सब से कम अशून्यकाल है, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है, उससे शून्यकाल अनन्तगुणा है।

१०४-तिर्यञ्च संसार संस्थान काल के दो भेद हैं, उनमें सब से कम अशून्यकाल है, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है।

१०५-मनुष्य और देवों के संसार संस्थान काल का अल्पबहुत्व (न्यूनाधिकता) नैरयिकों के संसार संस्थान काल के अल्प बहुत्व के समान ही समझना चाहिए।

१०६ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारों के संसार संस्थान कालों में कौन किससे कम, ज्यादा, तुल्य या विशेषाधिक है ?

१०६ उत्तर-हे गौतम ! मनुष्य संसार संस्थान काल सब से थोड़ा है, उससे नैरयिक संसार संस्थान काल असंख्यात गुणा है, उससे देव संसार संस्थान काल असंख्यात गुणा है, और उससे तिर्यञ्च संसार संस्थान काल अनन्त गुणा है।

विवेचन-'पशवः पशुत्वमश्नुवते' अर्थात् पशु मर कर पशु ही होता है और मनुष्य मर कर मनुष्य ही होता है, इस प्रकार की मान्यता का निराकरण करने के लिए गौतम स्वामी ने यह प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! जीव अनादिकाल से एक योनि से दूसरी योनि मे भ्रमण कर रहा है, तो अतीत काल में जीव ने कितने प्रकार का संसार बिताया है ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! सब जीव अतीत काल में चार प्रकार के संसार में रहे हैं-कभी नारकी, कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देव। 'इस प्रकार एक भव से दूसरे भव में भ्रमण करना' इसी को संसार संस्थान काल कहते है।

गौतम स्वामी पूछते है-हे भगवन् ! नरक में जीव रहा तो वहाँ उसने कितने प्रकार का काल विताया है ? भगवान् ने फरमाया-वहाँ उसने तीन प्रकार का काल विताया है। यथा-शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल। जैसा कि कहा है-

सुण्णासुण्णो मीसो तिविहो संसारचिट्ठणाकालो।
तिरियाणं सुण्णवज्जो, सेसाणं होइ तिविहो वि ॥

अर्थात्-संसार संस्थानकाल तीन प्रकार का है-शून्यकाल, अशून्यकाल, मिश्रकाल। तिर्यञ्चो में शून्यकाल नही होता। शेष तीन गतियों मे तीनों काल है।

अब इन तीनो काल का स्वरूप बतलाया जाता है। यद्यपि पहले शून्यकाल का नाम आया है तथापि पहले अशून्यकाल का स्वरूप बतलाया जाता है, क्योंकि अशून्यकाल का स्वरूप समझ लेने पर शेष दो सरलता से समझ में आ सकते है। जैसे-वर्तमान काल में सातो नरको मे जितने जीव विद्यमान है उनमें से जितने समय तक कोई जीव न तो मरे और न नया उत्पन्न हो अर्थात् उतने के उतने ही जीव जितने समय तक रहें उस समय को नरक की अपेक्षा अशून्यकाल कहते है। तात्पर्य यह है कि नरक में एक ऐसा समय भी आता है जब न कोई नया जीव नरक मे जाता है और न पहले के नारकियो मे से कोई बाहर निकल कर आता है। वह काल नरक की अपेक्षा अशून्यकाल कहलाता है। कहा भी है-

आइट्ठसमइयाणं, णेरइयाणं न जाव इक्को वि।
उव्वट्टइ अण्णो वा,उववज्जइ सो असुण्णो उ॥

अर्थात्-आदिष्ट (नियत) समय वाले नारकी जीवो में से जबतक मर कर एक भी वहाँ से नही निकलता है और न कोई नया उत्पन्न होता है, तबतक का काल अशून्य काल कहलाता है।

वर्तमानकाल के इन नारकियों में से एक दो तीन चार इत्यादि क्रम से निकलते निकलते जब उनमें से एक ही नारकी शेष रह जाय अर्थात् मौजुदा नारकियों में से एक का निकलना जब आरम्भ हुआ तब से लेकर जब एक शेष रहो तब तक के काल को मिश्रकाल कहते हैं।

निर्दिष्ट वर्तमान काल के जिन नारकियों का ऊपर विचार किया गया है उनमें से जब समस्त नारकी जीव नरक से निकल जावें, उनमें से एक भी जीव शेष न रहे और उनके स्थान पर सभी नये नारकी जीव पहुँच जावें, वह समय नरक की अपेक्षा शून्यकाल कहलाता है। जैसा कि कहा है-

उव्वट्टे एक्कम्मि वि ता मीसो धरइ जाव एक्को वि।
णिल्लेविएहिं सव्वेहिं, वट्टमाणे हि सुण्णो उ॥

अर्थात्-उद्वर्तन होते हुए जब तक उनमें से एक भी जीव वहाँ बाकी रहे उसे मिश्रकाल कहते है और वर्तमान समय के सभी जीव निर्लेप रूप से वहाँ से निकल आवे और जो है वे सब अन्य हो उसे शून्यकाल कहते है।

यह जीव नरक में रहा है। इसने कभी ऐसी अवस्था भोगी है जब नरक के अपने साथियों से बिछुड़ कर अकेला ही रहा। कभी इसने ऐसी अवस्था भोगी है जब इसके साथी अनेक जीव वहाँ मौजूद थे और कभी ऐसा भी समय आया जब इसके साथ पहले वालों में से कोई भी शेष नही रहा था।

यहाँ नारक संसार संस्थान काल में जो मिश्रकाल सम्बन्धी विचार किया गया है वह केवल वर्तमान काल के जीवों की अपेक्षा से ही नही किया गया है, किन्तु जिस काल में नरक के जीव नरक में थे वे वहाँ से निकलकर दूसरी योनि में गये, फिर वे चाहे किसी भी योनि में गये हों, परन्तु उनकी अपेक्षा भी विचार किया गया है। यदि ऐसा न माना जायगा तो दोष आयगा। क्योंकि आगे अशून्यकाल की अपेक्षा मिश्रकाल अनन्तगुणा कहा गया है सो वह घटित नही हो सकेगा। नरक का अशून्यकाल अर्थात् विरहकाल बारह मुहूर्त्त का है। यदि यहाँ नरक के वर्तमान के जीवों की ही अपेक्षा ली जाय तो वह असंख्यातगुणा ही ठहरेगा, अनन्तगुणा नही। इसलिए जो जीव नरक से निकलकर दूसरी गति में गया और वापिस नरक में उत्पन्न हुआ वह भी नरक की अपेक्षा वाले मिश्र-काल में गिना जायगा, तभी मिश्रकाल की अनन्तगुणता सिद्ध हो सकेगी। कहा भी है—

एयं पुण ते जीवे, पडुच्च सुत्तं न तब्भवं चेव।
जइ होज्ज तब्भवं तो, अणंतकालो ण संभवइ॥

अर्थात्—यह सूत्र जीवों के उसी भव के आश्रित नहीं है। यदि उसी भव के आश्रित माना जाय तो मिश्रकाल अनन्तगुणा सभव नहीं होगा। अनन्तगुणता मे बाधा आने का कारण यह है कि नरक के वर्तमान कालीन नारकी जीव अपनी आयु पूर्ण करके नरक से निकलते ही हैं और नरक की आयु असंख्यातकाल की ही है, अनन्तकाल की नही है। ऐसी अवस्था में बारह मुहूर्त्त वाले अशून्यकाल की अपेक्षा मिश्रकाल असंख्यातगुणा सिद्ध होगा, अनन्तगुणा नही। अतएव नरक के जीव जबतक नरक में रहे तभीतक मिश्रकाल नहीं समझना चाहिए, किन्तु नरक के जीव नरक से निकलकर दूसरी योनि में जन्म लेकर फिर नरक में आवे तबतक का काल मिश्रकाल है।

तिर्यञ्च योनि में दो ही सस्थानकाल हैं—अशून्यकाल और मिश्रकाल। तिर्यञ्च योनि में शून्यकाल नही है। शून्यकाल तब होता जब उस योनि में पहले वाला एक भी जीव न रहे, किन्तु वनस्पति की अपेक्षा तिर्यञ्च योनि में अनन्त जीव है। वे सब के सब उसमे से निकलकर कहाँ समा सकते है, क्योंकि अन्य किसी भी योनि में अनन्त जीव समा

सकने का अवकाश स्थान नही है। इसलिए तिर्यञ्च योनि में शून्यकाल नही है।

मनुष्य योनि और देवयोनि में तीनों काल हैं। इसलिए इनका वर्णन पूर्वोक्त नारकियों के वर्णन के समान ही समझना चाहिए।

नरक की अपेक्षा सबसे कम अशून्यकाल है। अशून्यकाल उत्कृष्ट से उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त का है। मिश्रकाल, अशून्यकाल से अनन्तगुणा है। जीव नरक से निकल कर दूसरी गति में जाकर त्रस और वनस्पति मे गमनागमन करके फिर नरक में आवे तबतक मिश्रकाल ही है। मिश्रकाल अनन्तगुणा है। इसका कारण यह है कि नरक का निर्लेपन काल वनस्पतिकाय की कायस्थिति के अनन्तवे भाग है। इसलिए मिश्रकाल अनन्तगुणा है। शून्यकाल, मिश्रकाल से भी अनन्तगुणा है। नरक के विवक्षित सभी जीव नरक से निकल कर दूसरी गति में चले गये हो, तो उनमें से बहुत से जीव वनस्पति में अनन्तकाल तक रह सकते हैं।

तिर्यञ्चों की अपेक्षा सब से कम अशून्यकाल है। उनमें बारह मुहूर्त्त का विरह होता है, इसलिए अशून्यकाल कम है। सन्नी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का विरह काल उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त है। तीन विकलेन्द्रिय और सम्मूच्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है। पृथ्वीकायादि पाँच स्थावर मे समय समय परस्पर एक दूसरे में असंख्य जीव उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिए इनमें विरह काल नही है। तिर्यञ्च गति में जो बारह मुहूर्त्त का विरह बतलाया गया है वह 'तीन गतियों से आकर जीव इस गति में उत्पन्न नही होते हैं, इस अपेक्षा से है।' मिश्रकाल अनन्तगुणा है। वह नरक के समान जान लेना चाहिए।

मनुष्यो के और देवो के संस्थान काल की अल्पबहुत्व आदि नारकियों के समान ही समझना चाहिए।

अन्तक्रिया

१०७ प्रश्न-जीवे णं भंते ! अंतकिरियं करेज्जा ?

१०७ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए नो करेज्जा; अंतकिरियापयं नेयव्वं।

विशेष शब्दों के अर्थ-अंतकिरियं-अन्तक्रिया=मोक्ष प्राप्ति।

भावार्थ--१०७ प्रश्न--हे भगवन् ! क्या जीव अन्तक्रिया करता है ?

१०७ उत्तर--हे गौतम ! कोई जीव करता है और कोई जीव नहीं करता । यहाँ प्रज्ञापना सूत्र का अन्तक्रिया पद समझ लेना चाहिए ।

विवेचन--जिस क्रिया के पश्चात् फिर कभी दूसरी क्रिया न करनी पड़े वह 'अन्तक्रिया' कहलाती है अथवा कर्मो का सर्वथा अन्त करने वाली क्रिया अन्तक्रिया कहलाती है। इन दोनो व्याख्याओ का आशय एक ही है कि--समस्त कर्मो का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना ।

प्रश्न यह है कि क्या जीव संसार में ही रहता है या संसार का अन्त कर मोक्ष प्राप्त करलेता है ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए पन्नवणा सूत्र के बीसवें पद का उल्लेख किया गया है। वहाँ अन्तक्रिया पद में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन है । वह इस प्रकार है--

प्रश्न--हे भगवन् ! क्या जीव अन्तक्रिया करता है ?

उत्तर--हे गौतम ! कोई जीव करता है और कोई जीव नही करता है ।

प्रश्न--हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर--हे गौतम ! भव्य जीव अन्तक्रिया करते हैं और अभव्य जीव अन्तक्रिया नही करते है ।

इस तरह नरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए । किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि मनुष्य के सिवाय अन्य किसी भी दण्डक के जीव उसी भव में अन्तक्रिया नही कर सकते । वे नरकादि दण्डकों से निकलकर मनुष्य-भव में आकर फिर अन्तक्रिया कर सकते हैं ।

उपपात

१०८ प्रश्न--अह भंते ! असंजयभवियदव्वदेवाणं, अविराहियसंजमाणं, विराहीयसंजमाणं, अविराहियसंजमासंजमाणं, विराहियसंजमासंजमाणं, असण्णीणं, तावसाणं, कंदप्पियाणं, चरगपरि-

व्वायगाणं, किव्विसियाणं, तेरिच्छियाणं, आजीवियाणं, आभिओगियाणं सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं, एएसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहिं उववाए पन्नत्ते ?

१०८ उत्तर-गोयमा ! असंजयभवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं उवरिमगेविज्जएसु; अविराहियसंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे विमाणे; विराहियसंजमाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे; अविराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे, विराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं जोइसिएसु; असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु; अवसेसा सव्वे जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसणं वोच्छामिः-तावसाणं जोइसिएसु, कंदप्पियाणं सोहम्मे कप्पे, चरगपरिव्वायगाणं बंभलोए कप्पे, किव्विसियाणं लंतगे कप्पे, तेरिच्छियाणं सहस्सारे कप्पे, आजीवियाणं अच्चुए कप्पे, आभिओगियाणं अच्चुए कप्पे, सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं उवरिमगेविज्जएसु ।

विशेष शब्दों के अर्थ-असण्णीणं-असञ्ज्ञी, तावसाणं-तापस, कंदप्पियाणं-कान्दर्पिक, चरगपरिव्वायगाणं-चरक परिव्राजक, किव्विसियाणं-किल्विषिक, तेरिच्छियाणं-तिर्यञ्च-योनिक, आजीवियाणं-आजीविक-गोशालक मतानुयायी, दंसणवावण्णगाणं-दर्शनव्यापन्न-सम्यक्त्व से भ्रष्ट ।

भावार्थ-१०८-हे भगवन् ! असंयत भव्य-द्रव्य-देव, अखण्डित संयम

वाला, खण्डित संयम वाला, अखंडित संयमासंयम—देशविरति वाला, खण्डित संयमासंयम वाला, असंज्ञी,-तापस, कान्दर्पिक, चरक परिव्राजक, किल्विषिक, तिर्यञ्च, आजीविक, आभियोगिक, श्रद्धा-भ्रष्ट वेशधारी, ये सब यदि देवलोक में उत्पन्न हों, तो कौन कहाँ उत्पन्न हो सकता है ?

१०८ उत्तर—हे गौतम ! असंयत भव्य-द्रव्य-देवों का जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट ऊपर के ग्रैवेयकों में उत्पाद (उत्पत्ति) कहा गया है। अखण्डित संयमवालों का जघन्य सौधर्म कल्प में और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध विमान में, खण्डित संयम वालों का जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट सौधर्म कल्प में, अखण्डित संयमासंयम वालों का जघन्य सौधर्म कल्प में और उत्कृष्ट अच्चुत कल्प में, खंडित संयमासंयम वालों का जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट ज्योतिषी देवों में, असंज्ञी जीवों का जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाणव्यन्तर देवों में, और शेष का उत्पाद जघन्य भवनवासियों में होता है और उत्कृष्ट अब बताया जाता है। तापसों का ज्योतिष्कों में, कान्दर्पिकों का सौधर्म कल्प में, चरक परिव्राजकों का ब्रह्मलोक कल्प में, किल्विषिकों का लान्तक कल्प में, तिर्यञ्चों का सहस्रार कल्प में, आजीविकों का तथा आभियोगिकों का अच्युत कल्प में और श्रद्धा-भ्रष्ट वेशधारियों का ऊपर के ग्रैवेयक में उत्पाद होता है।

विवेचन—जो चारित्र के परिणाम से शून्य हो वह 'असंयत' कहलाता है। जो देव होने के योग्य है वह 'भव्य-द्रव्य-देव' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जो चारित्र पर्याय से रहित है और इस समय तक देव नहीं हुआ है, किन्तु आगे देव होने वाला है वह 'असंयत-भव्य-द्रव्य' देव है।

कोई यहाँ पर असंयत भव्य द्रव्य-देव का अर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि करते हैं, किन्तु वह ठीक नही है। क्योंकि इसी सूत्र में असंयत भव्य-द्रव्य-देव की उत्पत्ति ऊपर के ग्रैवेयक तक बतलाई है, किन्तु असंयत सम्यग्दृष्टि की तो बात ही क्या है, देशविरत श्रावक भी बारहवें देवलोक से ऊपर नहीं जा सकता है। ऐसी अवस्था में असंयत सम्यग्दृष्टि ऊपर के ग्रैवेयक तक कैसे जा सकता है ?

यहां पर कोई असंयत भव्य-द्रव्य-देव का अर्थ निन्हव करते हैं, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि निन्हव का पाठ आगे इसी सूत्र में अलग आया है। अतः यहां पर असंयत भव्य-

द्रव्य देव का अर्थ 'मिथ्यादृष्टि' लेना चाहिए। असंयत भव्य-द्रव्य-देव वही होगा जो साधु के गुणों को धारण करनेवाला, साधु की सम्पूर्ण समाचारी का पालन करने वाला, किन्तु जिसमे आन्तरिक साधुता न हो, केवल द्रव्य-लिंग धारण करने वाला हो। ऐसा भव्य या अभव्य मिथ्यादृष्टि ही यहा लेना चाहिए।

जब देशविरत श्रावक भी बारहवें देवलोक से आगे नहीं जाता है, तो समझना चाहिए कि ऊपरी ग्रैवेयक तक जाने के लिए और भी विशेष क्रिया की आवश्यकता है। वह विशेष क्रिया श्रावक की तो है नही, अतएव साधु के सम्पूर्ण बाह्य गुण ही हो सकते हैं। उस सम्पूर्ण क्रिया के प्रभाव से ही ऊपरी ग्रैवेयक मे उत्पन्न होता है। यद्यपि वह साधु की सम्पूर्ण बाह्य क्रिया करता है, किन्तु परिणाम रहित होने के कारण वह असंयत है।

शका-वह भव्य या अभव्य मिथ्यादृष्टि श्रमण गुणो का धारक कैसे कहा जा सकता है?

समाधान-यद्यपि असंयत भव्य-द्रव्य-देव को महामिथ्यादर्शन रूप मोह की प्रबलता होती है, तथापि जब वह साधुओं की चक्रवर्ती आदि अनेक राजा महाराजों द्वारा वन्दन-पूजन, सत्कार, सम्मान आदि देखता है, तो मन में सोचता है कि यदि मैं भी दीक्षा ले लूं, तो मेरा भी इसी तरह वन्दन, पूजन, सत्कार, सम्मान आदि होगा। इस प्रकार प्रतिष्ठा मोह से उसमें व्रत पालन की भावना उत्पन्न होती है। वह लोक सन्मान की भावना से व्रतों का पालन करता है, आत्मशुद्धि के उद्देश्य से नही। इस कारण वह व्रतो का पालन करता हुआ भी चारित्र के परिणाम से शून्य ही है अर्थात् भावपूर्वक क्रिया करते हुए भी उसके मिथ्यात्व का उदय होने से वह असंयत ही गिना गया है।

गौतम स्वामी का यहाँ पहला प्रश्न है कि-हे भगवन्! असंयत भव्य-द्रव्य-देव यदि देव रूप में उत्पन्न हो, तो किस देवलोक तक उत्पन्न हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम! जघन्य भवनवासियों में उत्पन्न होता है और उत्कृष्ट नववें ग्रैवेयक तक उत्पन्न होता है।

गौतम स्वामी ने दूसरा प्रश्न यह किया है कि-हे भगवन्! अविराधित सयम वाला अर्थात् दीक्षाकाल से लेकर जिसका चारित्र कभी भंग नही हुआ है, ऐसा साधु यदि देवलोक में उत्पन्न हो, तो किस देवलोक तक उत्पन्न होता है? भगवान् ने उत्तर दिया-हे गौतम! जघन्य सौधर्म कल्प में और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होता है। सज्वलन कषाय से अथवा प्रमत्तगुणस्थान के कारण उनमें स्वल्प मायादि दोष संभवित हो

सकते हैं, तथापि चारित्र के उपघात का हो ऐसा आचरण नही करते हैं। अतएव सकषाय और सप्रमाद होने पर भी साधु आराधक संयमी हो सकता है।

जिसने महाव्रतों को ग्रहण करके उनका भली प्रकार पालन नही किया है और जिसने संयम की विराधना की है, ऐसा विराधित संयमी यदि देवलोक में जाय तो जघन्य भवन वासी और उत्कृष्ट सौधर्म कल्प में उत्पन्न होता है।

अविराधित संयमासंयमी अर्थात् जिस समय से देशविरति को ग्रहण किया है, उस समय से अखण्डित रूप से उसका पालन करने वाला आराधक श्रावक यदि देवलोक मे उत्पन्न हो, तो जघन्य सौधर्म कल्प मे और उत्कृष्ट अच्युत कल्प (बारहवें देवलोक) में उत्पन्न होता है। विराधित संयमासंयमी (श्रावकव्रतो की विराधना करनेवाला) जघन्य भवनवासी में और उत्कृष्ट ज्योतिषियों में उत्पन्न होता है।

असंज्ञी जीव अर्थात् जिसके मनो-लब्धि नहीं है, ऐसा असज्ञी जीव, अकाम निर्जरा करता है, (निर्जरा के उद्देश्य बिना कष्ट सहन करता है) वह यदि देवगति में जाय तो जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाणव्यन्तरों में जाता है।

शेष तापस आदि आठ प्रश्नों के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया है कि यदि ये देवगति में जावें, तो जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट भिन्न भिन्न स्थानों में जाते हैं।

तापस आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार है-

तापस-वृक्ष आदि से गिरे हुए पत्तो को खाकर उदर निर्वाह करने वाला तापस, यानी बाल, तपस्वी कहलाता है। वह उत्कृष्ट ज्योतिष्क देवों मे उत्पन्न होता है।

कान्दर्पिक-जो साधु हंसोड़ हो-हास्य के स्वभाव वाला हो। ऐसे साधु चारित्रवेश में रहते हुए भी हास्यशील होने के कारण अनेक प्रकार की कुचेष्टाएँ करते है। भौह, आँख, मुख, होठ, हाथ, पैर आदि से ऐसी चेष्टा करते है कि जिससे दूसरों को हंसी आवे, कन्दर्प अर्थात् कामसम्बन्धी वार्तालाप करे, उनको कान्दर्पित कहते हैं। ऐसे कान्दर्पिक साधु देवों में जावे तो उत्कृष्ट सौधर्म कल्प में उत्पन्न होते हैं और वे उसी प्रकार के कान्दर्पिक देव होते हैं।

चरक परिव्राजक-गेरु से या और किसी पृथ्वी के रंग से वस्त्र रंग कर उसी वेश से धाटी (एक प्रकार की भिक्षा) द्वारा आजीविका करने वाले त्रिदण्डी, चरक परिव्राजक कहलाते हैं। अथवा कुच्छोटक आदि चरक कहलाते हैं और कपिल ऋषि के शिष्य परिव्राजक कहलाते हैं। ये यदि देवलोक मे उत्पन्न हो, तो उत्कृष्ट ब्रह्मलोक कल्प (पाचवे देवलोक) तक उत्पन्न हो सकते हैं।

किल्विषिक-किल्विष-का अर्थ है-पाप। जो पापी हो उसे किल्विषिक कहते हैं। किल्विषिक व्यवहार से चारित्रवान् भी होते है, किन्तु ज्ञान आदि का अवर्णवाद करने के कारण किल्विषिक कहलाते है। कहा भी है.-

णाणस्स केवलीणं धम्मायरियस्स सव्वसाहूणं।
माई अवण्णवाई, किब्विसियं भावणं कुणइ॥

अर्थात्-ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य और सब साधुओं का अवर्णवाद करने वाला एवं पापमय भावना रखने वाला किल्विषिक कहलाता है। ऐसा किल्विपिक साधु देवों में जावे तो उत्कृष्ट लान्तक कल्प तक उत्पन्न हो सकता है।

तिर्यञ्च.-[†]गाय, घोड़ा आदि देवलोक में जावे तो उत्कृष्ट सहस्रार कल्प में उत्पन्न हो सकते हैं।

आजीविक-एक खास तरह के पाखण्डी, आजीविक कहलाते हैं, या गोशालक के नग्न रहने वाले शिष्य अथवा लब्धि प्रयोग करके अविवेकी लोगों द्वारा ख्याति एवं महिमा, पूजा आदि प्राप्त करने के लिए तप और चारित्र का अनुष्ठान करने वाले और अविवेकी लोगों में चमत्कार दिखला कर अपनी आजीविका उपार्जन करने वाले-आजीविक कहलाते हैं। ये आजीविक यदि देवलोक में उत्पन्न हों, तो अच्युतकल्प तक उत्पन्न होते हैं।

आभियोगिक-विद्या और मन्त्र आदि के द्वारा दूसरों को अपने वश में करना-अभियोग कहलाता है। अभियोग दो प्रकार का है-द्रव्य और भाव अभियोग। द्रव्य से चूर्ण आदि का योग बताना-द्रव्याभियोग और मन्त्र आदि बताकर वश में करना-भावाभियोग है। जो व्यवहार से तो सयम का पालन करता है, किन्तु मन्त्र आदि के द्वारा दूसरे को अपने अधीन बनाता है, उसे-आभियोगिक कहते हैं। आभियोगिक का लक्षण बताते हुए कहा है-

कोऊय भूइकम्मे पसिणापसिणे निमित्तमाजीवी।
इड्ढि-रस-साय-गरुओ, अहिओगं भावणं कुणइ॥

अर्थात्-जो सौभाग्य आदि के लिए स्नान बतलाता है, भूतिकर्म (रोगी को भभूत देने का काम) करता है, प्रश्नाप्रश्न अर्थात् प्रश्न का फल, स्वप्न का फल बताकर तथा

[†] टीका मे-'देशविरति' विशेषण दिया है, किन्तु विना देशविरति वाले तिर्यञ्च भी आठवे देवलोक तक जा सकते हैं। यह बात भगवती सूत्र के चौबीसवें शतक के बीसवे उद्देशक के जघन्य उत्कृष्ट गम्मे से तथा इसी शतक के चौवीसवें उद्देशक के उत्कृष्ट जघन्य गम्मे से स्पष्ट होती है।

निमित्त बताकर आजीविका करता है, ऋद्धि, रस और साता का गर्व करता है, इस प्रकार कार्य करके जो संयम को दूषित करता है, फिर भी व्यवहार में साधु की क्रिया करता है, उसे आभियोगिक कहते हैं। यदि वह देवलोक में जावे तो उत्कृष्ट अच्युत देवलोक तक जाता है।

सलिंगी-सलिंगी होते भी जो निन्हव हैं अर्थात् जो साधु के वेश में है, किन्तु दर्शन भ्रष्ट है, वह निन्हव कहलाता है। यदि ये देव गति में जावे तो उत्कृष्ट नववें ग्रैवेयक तक जा सकते है।

ये चौदह प्रश्नोत्तर हैं। इनसे यह नहीं समझना चाहिए कि-ये चौदह प्रकार के जीव देवलोक में ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु यदि ये देवलोक में उत्पन्न हो तो कौन कहां तक उत्पन्न हो सकता है-इसी बात पर यहां विचार किया गया है। ये सब दूसरी गतियों में भी उत्पन्न होते हैं। किन्तु उसका यहां विचार नहीं किया गया है।

शंका-यहाँ विराधित संयम वालों की उत्पत्ति जघन्य भवनवासी और उत्कृष्ट सौधर्म देवलोक बतलाई गई है, किन्तु सुकुमालिका के भव में द्रौपदी संयम की विराधिका होते हुए भी ईशान देवलोक में गई थी। फिर उपर्युक्त कथन कैसे संगत होगा?

समाधान-सुकुमालिका ने मूलगुण की विराधना नहीं की थी, किन्तु उत्तरगुण की विराधना की थी अर्थात् उसने बकुशत्व का कार्य किया था। बारबार हाथ मुंह धोते रहने से साधु का चारित्र बकुश (चितकबरा) हो जाता है। सुकुमालिक का यही हुआ था। यह उत्तर गुण की विराधना हुई, मूलगुण की नहीं। यहाँ जिन विराधक संयमियो की उत्पत्ति उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में बताई गई है, वे मूलगुण के विराधक हैं, ऐसा समझना चाहिए। क्यों कि उत्तर गुण प्रतिसेवी बकुशादि की उत्पत्ति तो अच्युत कल्प तक ही हो सकती है।

शंका-यहाँ असंज्ञी जीवों की उत्पत्ति जघन्य भवनवासी और उत्कृष्ट वाणव्यन्तर बतलाई गई है। तो क्या भवनवासी देवों से वाणव्यन्तर बड़े हैं? इसके सिवाय भवनवासी देवों के इन्द्र चमर और बलि की ऋद्धि बड़ी कही गई हैं। आयुष्य भी इनका सागरोपम से अधिक है,जबकि वाणव्यंतरों का आयुष्य पल्योपम प्रमाण ही है। फिर वाणव्यन्तर भवन-वासियों से बड़े कैसे माने जा सकते हैं?

समाधान-कई वाणव्यन्तर कई भवनवासियों से भी उत्कृप्ट ऋद्धि वाले होते है और कई भवनवासी वाणव्यन्तरों की अपेक्षा कम ऋद्धि वाले हैं। अतः यहां जो कथन किया गया है, उसमें किसी प्रकार का दोष नही है, कई वाणव्यन्तर कई भवनवासियों से अधिक

ऋद्धिशाली होते हैं और कई भवनवासी वाणव्यन्तरों से अल्प ऋद्धि वाले होते हैं। यह बात शास्त्र के इसी कथन से सिद्ध है।

समान स्थिति वाले भवनवासी और वाणव्यन्तरो मे वाणव्यन्तर श्रेष्ठ गिने जाते हैं।

असंज्ञी जीवों का आयुष्य

१०९ प्रश्न–कइविहे णं भंते ! असन्निआउए पन्नत्ते ?

१०९ उत्तर–गोयमा ! चउव्विहे असन्निआउए पन्नत्ते, तं जहाः–नेरइयअसन्निआउए, तिरिक्ख-मनुस्स-देवअसन्निआउए।

११० प्रश्न–असण्णी णं भंते ! जीवे किं नेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्ख-मणु-देवाउयं पकरेइ ?

११० उत्तर–हंता, गोयमा ! नेरइयाऽऽउयं पि पकरेइ, तिरिक्ख-देवाउयं पि पकरेइ। नेरइयाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं दस वास-सहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जभागं पकरेइ; तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ; मणुस्साउयं वि एवं चेव, देवाउयं जहा नेरइयाउए।

१११ प्रश्न–एयस्स णं भंते ! नेरइयअसन्निआउयस्स, तिरिक्ख-मणु–देवअसन्निआउयस्स कयरे कयरे० जाव–विसेसाहिए वा ?

१११ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवे देवअसन्निआउए, मणुस्स-असन्नी आउए असंखेज्जगुणे, तिरियअसन्नी आउए असंखेज्जगुणे,

नेरइय असन्नीआउए असंखेज्जगुणे ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

॥ बिइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-असण्णि आउए-असंज्ञी का आयुष्य, पकरेइ-करता है, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त ।

भावार्थ-१०९ प्रश्न-हे भगवन् ! असंज्ञी का आयुष्य कितने प्रकार का कहा गया है ?

१०९ उत्तर-हे गौतम ! असंज्ञी का आयुष्य चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है-नैरयिक असंज्ञी आयुष्य, तिर्यञ्च असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य और देव असंज्ञी आयुष्य ।

११० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या असंज्ञी जीव नरक की आयु उपार्जन करता है ? तिर्यञ्च की, मनुष्य की और देव की आयु उपार्जन करता है ?

११० उत्तर-हे गौतम ! असंज्ञी जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव की आयु भी उपार्जन करता है। नरक की आयु उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की उपार्जन करता है। तिर्यञ्च की आयु उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की उपार्जन करता है। मनुष्य की आयु भी इतनी ही उपार्जन करता है और देव की आयु, नरक की आयु के समान उपार्जन करता है।

१११ प्रश्न-हे भगवन् ! नरक असंज्ञी आयुष्य, तिर्यञ्च असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य और देव असंज्ञी आयुष्य, इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

१११ उत्तर-हे गौतम ! देव असंज्ञी आयुष्य सब से कम है। उसकी

अपेक्षा मनुष्य असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है, उससे तिर्यञ्च असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है और उससे नरक असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है।

हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी तप संयम से अपनी आत्मा को भावते हुए विचरते हैं।

विवेचन-असंज्ञी जीव की उत्पत्ति देवों मे होती है, यह बात पहले कही गई है। वह उत्पत्ति आयुष्य से ही होती है। इसलिए यहाँ असंज्ञी जीवो के आयुष्य का कथन किया गया है।

वर्तमान में जो जीव असंज्ञी है, वह परभव का जो आयुष्य बाँधता है उसे 'असंज्ञी का आयुष्य' कहते है। असज्ञी जीव नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देव चारों गतियों का आयुष्य बाँध सकता है। इसलिए असज्ञी आयुष्य के चार भेद है। यह चार प्रकार का आयुष्य असंज्ञी जीव उपार्जन करता है।

असज्ञी जीव नरक में जघन्य दस हजार वर्ष का आयुष्य उपार्जन करता है। यह आयुष्य रत्नप्रभा नरक के पहले पाथड़े की अपेक्षा समझना चाहिए। क्योंकि रत्नप्रभा के पहले पाथड़े में जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ९० नव्वे हजार वर्ष की स्थिति होती है। असंज्ञी जीव की नरक की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग की होती है। यह स्थिति रत्नप्रभा के चौथे पाथड़े की अपेक्षा समझनी चाहिए। क्योकि रत्नप्रभा के दूसरे पाथड़े में जघन्य दस लाख वर्ष की × और उत्कृष्ट ९० नव्वे लाख वर्ष की स्थिति होती है। तीसरे पाथड़े में जघन्य ९० नव्वे लाख वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की है। चौथे पाथड़े में जघन्य पूर्वकोटि वर्ष की और उत्कृष्ट सागरोपम के दसवे भाग की स्थिति होती है। इस प्रकार इस चौथे पाथड़े मे पल्योपम के असंख्यातवे भाग की स्थिति, मध्यम स्थिति बनती है।

असंज्ञी जीव की तिर्यञ्च और मनुष्य सम्बन्धी उत्कृष्ट आयु जो पल्योपम के असंख्यातवें भाग कही है, वह युगलिक तिर्यञ्च और युगलिक मनुष्य की समझनी चाहिए।

× पहले पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति नव्वे हजार वर्ष की होती है और दूसरे पाथड़े की जघन्य स्थिति दस लाख वर्ष की होती है। इसका यह फलितार्थ निकलता है कि-इसके बीच की स्थिति वाले नैरयिक नहीं होते हैं अर्थात् नव्वे हजार वर्ष एक समय अधिक से लेकर एक समय कम दस लाख वर्ष की स्थिति किसी भी नैरयिक की नहीं होती है,क्योंकि वस्तु स्वभाव ही ऐसा है।

असंज्ञी जीव की देव सम्बन्धी उत्कृष्ट आयु जो पल्योपम के असंख्यातवें भाग कही गई है वह भवनपति और वाणव्यन्तर देवों की अपेक्षा समझनी चाहिए और वह पल्योपम का असंख्यातवां भाग करोड़पूर्व से ज्यादा नही समझना चाहिए।

भगवान् के उत्तर को सुनकर श्री गौतम स्वामी ने श्रद्धा और विनम्रता प्रकट करते हुए कहा-हे भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है। जैसा आप फरमाते हैं वैसा ही वस्तुतत्त्व है।

॥ प्रथम शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥



शतक १ उद्देशक ३

कांक्षा-मोहनीय

११२ प्रश्न–जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

११२ उत्तर–हंता, कडे।

११३ प्रश्न–से भंते ! किं देसेणं देसे कडे, देसेणं सव्वे कडे,सव्वेणं देसे कडे, सव्वेणं सव्वे कडे ?

११३ उत्तर–गोयमा ! नो देसेणं देसे कडे, नो देसेणं सव्वे कडे, नो सव्वेणं देसे कडे, सव्वेणं सव्वे कडे ।

११४ प्रश्न–नेरइयाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

११४ उत्तर–हंता, कडे, जाव–सव्वेणं सव्वे कडे, एवं जाव-वेमाणियाणं दंडो भाणियव्वो ।

११५ प्रश्न–जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं करिंसु ?

११५ उत्तर–हंता करिंसु ।

११६ प्रश्न–तं भंते ! किं देसेणं देसं करिंसु ४ ?

११६ उत्तर–एएणं अभिलावेणं दंडओ भाणियव्वो,जाव–वेमाणियाणं, एवं करेंति, एत्थ वि दंडओ जाव–वेमाणियाणं, एवं करिस्संति एत्थ वि दंडओ जाव–वेमाणियाणं,एवं चिए,चिणिंसु, चिणंति, चिणिस्संति, उवचिए, उवचिणिंसु, उवचिणंति, उवचिणिस्संति,

उदीरेंसु, उदीरेंति, उदीरिस्संति, वेदेंसु, वेदेंति, वेदिस्संति, निज्ज-रेसु, निज्जरेंति, निज्जरिस्संति। गाहा-

कड-चिया उवचिया उदीरिया वेदिया य निज्जिण्णा।
आदितिए चउभेदा तियभेया पच्छिमा तिण्णि॥

विशेष शब्दों के अर्थ-कंखामोहणिज्जे-कांक्षामोहनीय, कडे-किया, कारिंसु-किया, अभिलावेणं-अभिलाप से=कथन से, करेंति-करते है, करिस्संति-करेंगे।

भावार्थ-११२ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीवों का कांक्षामोहनीय कर्म कृत-क्रिया-निष्पादित अर्थात् किया हुआ है?

११२ उत्तर-हाँ गौतम! कृत है।

११३ प्रश्न-हे भगवन्! क्या वह देश से देशकृत है, देश से सर्वकृत है, सर्व से देशकृत है या सर्व से सर्वकृत है?

११३ उत्तर-हे गौतम! वह देश से देशकृत नहीं है, देश से सर्वकृत नहीं है, सर्व से देशकृत नहीं है, सर्व से सर्वकृत है।

११४ प्रश्न-हे भगवन्! क्या नैरयिकों का कांक्षामोहनीय कर्म, कृत है?

११४ उत्तर-हाँ गौतम! कृत है, यावत् सर्व से सर्वकृत है। इसी तरह यावत् चौवीस ही दण्डकों में वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

११५ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीवों ने कांक्षामोहनीय कर्म उपार्जन किया है?

११५ उत्तर-हां, गौतम! किया है,

११६ प्रश्न-हे भगवन्! क्या देश से देशकृत है? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न करना चाहिए।

११६ उत्तर-हे गौतम! सर्व से सर्वकृत है। इस प्रकार यावत् वैमा-निकों तक चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए। इसी प्रकार करते हैं और करेंगे, इन दोनों का कथन भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। इसी

प्रकार चय, चय किया, चय करते हैं, चय करेंगे। उपचय, उपचय किया, उपचय करते हैं, उपचय करेंगे। उदीरणा की, उदीरणा करते है, उदीरणा करेंगे। वेदन-किया, वेदन करते है, वेदन करेंगे। निर्जीर्ण किया, निर्जीर्ण करते हैं, निर्जीर्ण करेंगे। इन सब पदों का कथन करना चाहिए।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है-कृत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण इतने अभिलाप यहां कहना है। इनमें से कृत, चित, उपचित में एक एक के चार चार भेद है अर्थात् सामान्य क्रिया, भूतकाल की क्रिया, वर्तमान काल की क्रिया और भविष्यकाल की क्रिया। पिछले तीन पदों में सिर्फ तीन काल सम्बन्धी क्रिया कहनी चाहिए।

विवेचन-दूसरे उद्देशक के अन्त में असंज्ञी जीव के आयुष्य का विचार किया गया है। आयु, मोह रूपी दोष से बंधता है। जब आयु का बन्ध होता है तब आठों ही कर्मो का बन्ध होता है। अतएव आयु बन्ध के बाद काक्षामोहनीय कर्म का विचार किया जाता है।

प्रथम शतक के प्रारम्भ मे उद्देशो सम्बन्धी जो संग्रह गाथा कही गई थी, उसमें तीसरे उद्देशक के लिए 'कखपओस' नाम दिया गया है। तदनुसार यहा कांक्षामोहनीय कर्म का विचार किया जाता है।

जो कर्म जीव को मोहित करता है और मूढ बनाता है उसे मोहनीय-कर्म कहते है। मोहनीय-कर्म के दो भेद है-चारित्र-मोहनीय और दर्शन-मोहनीय। यहां चारित्र-मोहनीय कर्म के विषय मे प्रश्न नही है। इसीलिए मोहनीय शब्द के साथ 'कांक्षा' शब्द लगाया है। काक्षामोहनीय का अर्थ है-दर्शनमोहनीय।

यहा 'कांक्षा' का अर्थ है, 'अन्यदर्शनों की इच्छा करना'। जैसे कोई सोचता है-जैनधर्म वैराग्य की ओर प्रेरित करता है और संसार के आमोद प्रमोदों के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है, किन्तु चार्वाक (नास्तिक) मत कितना सुन्दर है, जो 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'-ऋण करके भी खूब घी पीओ' का उपदेश देता है और सासारिक सुख भोग का समर्थन करता है। उसमें परलोक का भी कुछ भय नही है। वह कहता है कि-'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत.'-जला हुआ शरीर दूसरे भव में आता नही है और आत्मा का अस्तित्व है ही नही। ऐसी अवस्था मे जैनधर्म को त्यागकर चार्वाक मत को ग्रहण करना अच्छा है। इत्यादि रूप से विचार करना-'कांक्षामोहनीय कर्म' कहलाता है। संशयमोहनीय

परपाषण्ड प्रशंसा मोहनीय आदि कांक्षामोहनीय के अन्तर्गत समझ लेना चाहिए।

'क्रियते इति कर्म' जो कर्त्ता द्वारा किया जाय उसे कर्म कहते है। जो कर्त्ता द्वारा नही किया जाता वह कर्म नही हो सकता। यदि विना किये ही कर्म होने लगे तो जगत् की सम्पूर्ण व्यवस्था उथलपुथल हो जाय। अतः गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि—कांक्षा मोहनीय कर्म जीव द्वारा किया हुआ है। इसके बाद गौतम स्वामी ने पूछा कि जीव ने कांक्षामोहनीय कर्म किया है तो क्या—१ देश से देश को किया ? २ देश से सर्व को किया ? ३ सर्व से देश को किया ? या ४ सर्व से सर्व को किया ?

कार्य चार प्रकार से होता है। जैसे कोई मनुष्य किसी वस्तु को ढकना चाहे, तो वह उसे चार प्रकार से ढक सकता है। १ अपने शरीर के हाथ आदि किसी एक अवयव से वस्तु के एक भाग को ढके। २ शरीर के किसी एक भाग से सम्पूर्ण वस्तु को ढके। ३ अपने सारे शरीर से वस्तु के किसी एक भाग को ढके। ४ अपने सारे शरीर से सम्पूर्ण वस्तु को ढके।

'यहाँ 'देश' का अर्थ है—आत्मा का एक देश और एक समय में ग्रहण किये जाने वाले कर्म का एक देश। यदि आत्मा के एक देश से कर्म का एक देश किया, तो यह 'देश से देश किया' कहलाता है। यदि आत्मा के एक देश से सर्व कर्म किया, तो 'देश से सर्व किया' कहलाता है। सम्पूर्ण आत्मा से कर्म का एक देश किया गया, तो 'सर्व से देश किया' कहलाता है। सम्पूर्ण आत्मा से सम्पूर्ण कर्म किया, तो 'सर्व से सर्व किया' कहलाता है।

गौतम स्वामी ने इसी अभिप्राय से कांक्षामोहनीय कर्म के विषय में प्रश्न किया है। भगवान् ने उत्तर मे फरमाया है कि—हे गौतम ! कांक्षामोहनीय कर्म 'सर्व से सर्वकृत' है। अर्थात् समस्त आत्मप्रदेशो से समस्त कर्म किया हुआ है। पूर्वोक्त चौभगी में से यहां चौथा भंग ग्रहण किया गया है।

केवल चौथा भंग ही ग्रहण करने का कारण है—जीव का स्वभाव। जीव अपने स्वभाव से समस्त आत्म-प्रदेशों के द्वारा एक क्षेत्रावगाढ कर्म पुद्गलों को, जो एक समय में बधने योग्य हो, बाँधता है। अतएव एक काल मे किया जानेवाला कांक्षामोहनीय कर्म, जीव 'सर्व से सर्व' को करता है। इसलिए तीन भंगों का निषेध करके यहां सिर्फ चौथा भंग स्वीकार किया गया है।

अथवा—जिन आकाश प्रदेशो मे जीव का अवगाहन हो रहा है—जिस क्षेत्र मे आत्मा के प्रदेश विद्यमान है, उसी आकाश प्रदेश मे रहने वाले कर्मपुद्गल एक क्षेत्रावगाढ कहलाते

हैं। ऐसे ही कर्मपुद्गलों को जीव समस्त प्रदेशों से अपने में एकमेक करता है। जिस हेतु से आत्मा कर्म करता है वह हेतु सभी कर्म प्रदेशो का है। इस प्रकार समस्त आत्मप्रदेशो द्वारा एक समय मे बधने योग्य समस्त कर्म पुद्गलो को बांधने के कारण कांक्षामोहनीय कर्म 'सर्व से सर्वकृत' है।)

कई ग्रन्थकारों का मत है कि-जीव के आठ रुचक प्रदेश 'कर्मबन्ध से खाली रहते है। वहाँ कर्म का बन्ध नही होता', किन्तु शास्त्र मे तो उपरोक्त प्रकार से कथन है। अतः आठ रुचक प्रदेशो को निर्लेप कहना सगत नही है।

यह समुच्चय प्रश्नोत्तर है, अब दण्डक विशेष को आश्रित करके प्रश्न किया जाता है। गौतम स्वामी पूछते है कि-हे भगवन्! क्या नैरयिको का कांक्षामोहनीय कर्म कृत किया हुआ है? भगवान् ने फरमाया-हाँ, गौतम! कृत है, और वह भी सर्व से सर्वकृत है। जीस प्रकार नैरयिको के लिए प्रश्नोत्तर हैं उसी प्रकार चौबीस ही दण्डकों के लिए समझ लेना चाहिए।

कर्म क्रिया निष्पाद्य है अर्थात् कर्म क्रिया से होता है और क्रिया तीनो काल से सम्बन्ध रखती है। अतीत काल मे कर्म निष्पादन की क्रिया की थी, वर्तमान में की जा रही है और भविष्य मे की जायगी। इस त्रिकाल सम्बन्धी क्रिया से कर्म लगते हैं। क्रिया पहले होती है, कर्म बाद मे लगते हैं।

जीव ने कांक्षामोहनीय कर्म किया है और वह भी 'सर्व से सर्व' किया है। इसी तरह वर्तमान काल और भविष्य काल सम्बन्धी प्रश्नोत्तर समझ लेना चाहिए। इस समुच्चय कथन की तरह चौवीस ही दण्डक मे समझ लेना चाहिए।

यहाँ जो प्रश्नोत्तर 'कृत' के विषय मे बतलाये गये हैं, वे ही प्रश्नोत्तर चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण के विषय मे भी समझ लेना चाहिए। पूर्वोक्त प्रश्नों में जहाँ 'कृत' शब्द आया है वहाँ 'चित, उपचित' आदि शब्दो का प्रयोग करके प्रश्नोत्तरों की योजना कर लेनी चाहिए।

मूलपाठ मे चित उपचित आदि के विषय में एक संग्रह गाथा कही गई है। उसमे यह बतलाया गया है कि 'कृत, चित, उपचित' इन तीन पदो के चार चार भेद कहने चाहिए। अर्थात् एक सामान्य क्रिया और तीन काल की तीन क्रियाएं। उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण इन तीन पदो में तीन काल की क्रिया कहनी चाहिए, जिससे प्रत्येक के तीन तीन भेद होंगे। इन तीन पदो के साथ सामान्य क्रिया नही कहनी चाहिए।

'चय' आदि का स्वरूप इस प्रकार है-

जो कर्म पहले उपार्जन किये हुए हैं उनमें प्रदेश और अनुभाग की वृद्धि करना 'चय' कहलाता है। बारबार चय करना 'उपचय' कहलाता है।

अन्य आचार्यों का अभिप्राय ऐसा है कि-कर्मपुद्गलों को ग्रहण करना 'चय' कहलाता है और अबाधाकाल को छोड़ कर दूसरे काल मे ग्रहण किए हुए कर्मपुद्गलों को वेदने के लिए निषेचन करना उपचय कहलाता है।

अबाधाकाल-कर्मबन्ध होने के पश्चात् और उदय से पहले का समय जब कि कर्म सत्ता मे पड़ा रहता है और फल नही देता, उस काल को अबाधाकाल कहते हैं। कर्म की स्थिति जितने कोड़ाकोड़ी सागर की होती है उतने ही सौ वर्ष का अबाधा काल, उत्कृष्ट अबाधाकाल माना गया है।

निषेचन का अर्थ है-वर्गीकरण। जीव पहली स्थिति में बहुत से कर्म दलिकों का निषेचन करता है। उसके पश्चात् दूसरी स्थिति में बहुत कम कर्म दलिकों का निषेचन करता है। इस प्रकार यावत् उत्कृष्ट स्थिति में बहुत कम का निषेचन करता है। कहा भी है-

मोत्तूण सगमबाहं, पढमाइ ठिईइ बहुयरं दव्वं।
सेसं विसेसहीणं जाव उक्कोसं ति सव्वासं॥

अर्थात्-अपना अबाधाकाल छोड़कर प्रथम स्थिति में बहुतर द्रव्य को और इसी प्रकार यावत् उत्कृष्ट स्थिति मे बहुत कम द्रव्य का निषेचन करता है।

जो कर्म उदय में नही आये है उन्हें एक प्रकार के विशिष्ट करण द्वारा उदय में ले आना 'उदीरणा' है। और उदय में आये हुए कर्मो के फल को भोगना 'वेदना' कहलाता है। जीव प्रदेशों से कर्म का पृथक् हो जाना 'निर्जरा' है। स्थिति के परिपक्व होने पर कर्म आत्मप्रदेशों से पृथक् होते है-वह निर्जरा है।

सग्रह गाथा में बताया गया है कि पहले के तीन पदो में चार चार भेद और पीछे के तीन पदो में तीन तीन भेद करना चाहिए। इसका कारण यह है कि-कृत, चित और उपचित कर्म बहुत समय तक-सत्तर कोडाकोडी सागरोपम तक ठहर सकते है। इसलिए इन तीन पदों मे तीन काल बतलाने के साथ ही साथ सत्ता रूप काल बतलाने के लिए सामान्य क्रिया का भी प्रयोग किया जाता है। उदीरणा आदि बहुतकाल तक नही रहते हैं, इस लिए इनमे सामान्य क्रिया नही बतलाई गई है, किन्तु सिर्फ तीन काल ही बतलाये गये है। इसी कारण से पहले के तीन पदों के चार चार और पिछले तीन पदों के तीन तीन भेद किये गये है।

कांक्षा-मोहनीय वेदन

११७ प्रश्न–जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

११७ उत्तर–हंता, गोयमा वेदेंति ।

११८ प्रश्न–कह णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

११८ उत्तर–गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं संकिया, कंखिया वितिगिंछिया, भेदसमावन्ना, कलुससमावन्ना, एवं खलु जीवा कंखा-मोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ।

प्रश्न ११९–से णूणं भंते ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ?

उत्तर ११९–हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ।

१२० प्रश्न–से णूणं भंते ! एवं मणं धारेमाणे, एवं पकरेमाणे एवं चिट्ठेमाणे, एवं संवरेमाणे आणाए आराहए भवइ ?

१२० उत्तर–हंता, गोयमा ! एवं मणं धारेमाणे जाव भवइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ–वेदेंति–वेदते हैं, कहं–किस तरह से, संकिया–शङ्कित, कंखिया–कांक्षित, वितिगिंछिया–विचिकित्सा वाले, भेयसमावण्णा–भेद समापन्न–भेद को प्राप्त हुए, सच्चं–सत्य, णीसंकं–निःशंक ।

भावार्थ–११७ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं ?

११७ उत्तर-हाँ, गौतम ! वेदन करते हैं।

११८ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म को किस प्रकार वेदते हैं ?

११८ उत्तर-हे गौतम अमुक अमुक कारणों से जीव शंकायुक्त, कांक्षा-युक्त विचिकित्सायुक्त भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर कांक्षामोहनीय कर्म को वेदते हैं।

११९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान् नें निरूपण किया है ?

११९ उत्तर-हाँ, गौतम ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भग-वान् नें निरूपण किया है।

१२० प्रश्न-हे भगवन् ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान् नें निरूपण किया है, इस प्रकार मन में निश्चय करता हुआ, इसी प्रकार आच-रण करता हुआ, रहता हुआ, संवर करता हुआ, जीव आज्ञा का आराधक होता है ?

१२० उत्तर-हाँ, गौतम ! इस प्रकार मन में निश्चय करता हुआ यावत् आज्ञा का आराधक होता है।

विवेचन-गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करता है ? इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हाँ, गौतम ! करता है।

यहाँ पर शंका की जाती है कि यह प्रश्न पहले भी किया था, फिर दूसरी बार वही प्रश्न किस आशय से किया गया है ?

इसका समाधान यह है कि-वेदन के कारणों को बतलाने के लिए यह प्रश्न वापिस दोहराया गया है। यथा-

पुव्वीभणियं पि पच्छा जं भण्णइ तत्थ कारणं अत्थि।
पडिसेहो य अणुण्णा-हेउविसेसोवलंभो त्ति ॥

अर्थ-एक बार कही हुई बात को फिर कहने के कारण ये हैं-प्रतिषेध, अनुज्ञा और एक प्रकार के हेतु का कथन। तात्पर्य यह है कि पहले कही हुई बात का प्रतिषेध करने के

लिए, पहले की बात में अनुमति देने के लिए और पूर्वोक्त बात में कोई विशेष हेतु देने के लिये उस बात को दोहराया जाता है। ऐसी जगह पुनरुक्ति दोष नहीं होता हैं।

शंका आदि कारणों से जीव कांक्षामोहनीय कर्म वेदते है। शंका कांक्षा शब्दों का अर्थ इस प्रकार है-

वीतराग भगवान् ने अपने अनन्तज्ञान दर्शन मे जिन तत्त्वों का जान कर निरूपण किया है उन तत्त्वों पर या उनमें से किसी भी एक पर शका करना-कौन जाने यह ठीक है या नही ? इस प्रकार का सन्देह करना शङ्का है।

एक देश से या सर्व देश से अन्यदर्शन को ग्रहण करने की इच्छा करना कांक्षा है।

फल के विषय में सशय होना विचिकित्सा है। जैसे-मैं तपस्या करता हूँ, ब्रह्मचर्य आदि पालता हूँ, किन्तु अभी तक तो कुछ फल मिला ही नही, कौन जाने आगे मिलेगा या नही। इस प्रकार फल के विषय में संशय करना विचिकित्सा है।

बुद्धि मे द्वैधीभाव उत्पन्न हो जाना भेदसमापन्नता है। जैसे--जिनशासन यह के है या वह है ? इस प्रकार जिनशासन के विषय में जिसकी बुद्धि भेद को प्राप्त हो रही है वह भेदसमापन्न कहलाता है। अथवा-अनध्यवसाय-अनिश्चित ज्ञान वाले को भेदसमापन्न कहते हैं। अथवा पहले शका या काक्षा उत्पन्न होने मे जिसकी बुद्धि मे विभ्रम-भ्रान्ति उत्पन्न होगई है उसको भेद समापन्न कहते हैं।

विपरीत बुद्धि वाले को कलुषसमापन्न कहते हैं। जिन भगवान् ने जो वस्तु जंसी प्रकट की है उसे उसी रूप में निश्चय न करके विपरीत रूप से समझना कलुषसंपन्नता है।

भगवान् फरमाते हैं कि-हे गौतम ! जीव इन कारणो से कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते है।

गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! क्या वही बात सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान् के द्वारा प्ररूपित की गई है ? भगवान् ने फरमाया-हाँ, गौतम ! वही बात सत्य और निःशक है जो जिन भगवान् द्वारा प्ररूपित की गई है।

'जिन"-यह किसी व्यक्ति का नाम नही है। जिन' एक पदवी है। जिन्होने प्रकृष्ट साधना के द्वारा अनादिकालीन राग द्वेष आदि समस्त आत्मिक विकारों पर विजय प्राप्त कर ली हो वे ही महापुरुष 'जिन' कहलाते हैं। फिर भले हो उनका नाम कुछ भी क्यों न हो। जिन्होने राग द्वेष और अज्ञान से अपनी आत्मा को पृथक् कर लिया है, उनके वचनो में सन्देह करने की गुंजाइश ही नही है। 'जिन' द्वारा उपदिष्ट धर्म 'जैनधर्म' कहलाता है।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! निश्चयपूर्वक ऐसी श्रद्धा करने से कि 'जिन भगवान्' की कही हुई बात सत्य और संशय रहित है। तथा यही बात हृदय में स्थिर करने से, इसी प्रकार की क्रिया करने से, किसी के पूछने पर ऐसा ही कहने से, अन्यथा न कहने से, मन मे भी जिन भगवान् के वचनों को सत्य समझने से और अन्यथा न समझने से, तथा जिन भगवान् के वचनानुसार प्राणातिपात, असत्य, चोरी आदि से मन को हटा लेने से, क्या ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सेवनरूप जिन-आज्ञा का आराधक होता है ? क्या वह जिन-भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाला है ?

भगवान् ने उत्तर दिया-हाँ, गौतम ! जो जीव ऐसा करता है वह जिन-आज्ञा का आराधक है।

जीव का ज्ञान राग द्वेष आदि कषायो के कारण मिथ्या हो जाता है। जितने जितने अंश में राग द्वेष क्षीण होते जाते हैं उतने उतने अंश में ज्ञान में निर्मलता आती जाती है। जब राग द्वेष रूपी कषाय सम्पूर्ण रूप से क्षय हो जाते है तब ज्ञान में पूर्ण निर्मलता आ जाती है और ज्ञान अनन्त हो जाता है। यहाँ मनुष्य की ऐसी स्थिति है कि इसमें असत्य के लेश की भी संभावना नही है। अतएव जो वस्तु जैसी है, उसे जिन भगवान् वैसी ही बतलाते हैं। वास्तविकता से विपरीत बतलाने का कारण राग द्वेष और अज्ञान है और इन दोषो को जिन-भगवान् दूर कर चुके है। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि जो इन दोषों को दूर कर देता है वही 'जिन' कहलाता है। इस कारण जिन-भगवान् वही बात कहते हैं जो सत्य है।



अस्तित्व और नास्तित्व

१२१ प्रश्न-से णूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?

१२१ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-परिणमइ।

१२२ प्रश्न-जं तं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ; तं किं पयोगसा, वीससा ?

१२२ उत्तर-गोयमा ! पयोगसा वि तं, वीससा वि तं ।

१२३ प्रश्न-जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ?

१२३ उत्तर-हंता, गोयमा ! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ । जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ।

१२४ प्रश्न-से णूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ?

१२४ उत्तर-जहा 'परिणमइ' दो आलावगा, तहा ते इह गमणिज्जेण वि दो आलावगा भाणियव्वा । जाव-जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ।

१२५ प्रश्न-जहा ते भंते ! एत्थं गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं, जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं ?

१२५ उत्तर-हंता, गोयमा ! जहा मे एत्थं गमणिज्जं जाव-तहा मे एत्थं गमणिज्जं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-अत्थित्तं-अस्तित्व, नत्थित्तं-नास्तित्व, परिणमइ-परिणमता है, पओगसा-प्रयोग से-पर-प्रेरणा से, वीससा-विश्रसा-स्वाभाविक रूप से, गमणिज्जं-गमनीय, आलावगा-आलापक ।

भावार्थ-१२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है ?

१२१ उत्तर-हाँ, गौतम ! अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है।

१२२ प्रश्न-हे भगवन् ! अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है, सो क्या वह प्रयोग से अर्थात् जीव के व्यापार से या स्वभाव से परिणत होता है ?

१२२ उत्तर-हे गौतम ! प्रयोग से और स्वभाव से, दोनों तरह से परिणत होता है।

१२३ प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे आपके मत में अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है तो क्या उसी प्रकार नास्तित्व,नास्तित्व में परिणत होता है? और जैसे आपके मत में नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है,तो क्या उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है ?

१२३ उत्तर-हां, गौतम ! जैसे मेरे मत में अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है और जिस प्रकार मेरे मत में नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है।

१२४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्व में गमनीय है ?

१२४ उत्तर- हे गौतम ! जैसे 'परिणत' पद के आलापक कहे हैं, उसी प्रकार यहां 'गमनीय' पद के साथ भी दो आलापक कहना चाहिए। यावत् मेरे मत में अस्तित्व, अस्तित्व में गमनीय है।

१२५ प्रश्न-हे भगवन् ! जैसे आपके मत में (स्वात्मा में) गमनीय है, क्या उसी प्रकार परात्मा में भी गमनीय है ? हे भगवन् ! जैसे आपके मत में 'अन्नगमनीय' है उसी प्रकार 'इह गमनीय' भी है ?

१२५ उत्तर-हां, गौतम ! जैसे मेरे मत में अन्न गमनीय है यावत् उसी प्रकार 'इह गमनीय' भी है।

विवेचन-वस्तु का विद्यमान होना अस्तित्व कहलाता है और विद्यमान न होना 'नास्तित्व' कहलाता है। गौतम स्वामी प्रश्न करते है कि-हे भगवन् ! जो वस्तु है

वह अपने अस्तित्व में और जो वस्तु नही है वह अपने नास्तित्व मे परिणत होती है ?

'अगुली का अगुली के रूप मे होना' यह अस्तित्व है। अगुली का अस्तित्व कहने मात्र के लिए नही है, किन्तु अंगुली की लम्बाई, चौड़ाई आदि पर्याये भी वैसी ही है। अगुली का स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव रूप मे परिणत होना, अस्तित्व का अस्तित्व रूप मे परिणत होना कहलाता है। जिसका अस्तित्व है वह स्वकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप मे परिणत होता है। तात्पर्य यह है कि अंगुली आदि कोई भी वस्तु, जिसका कि अस्तित्व है वह अपने पर्याय से भिन्न नही है अर्थात् पर्याय होने पर भी अस्तित्व, अस्तित्व रूप में ही है। अंगुली 'अस्ति' रूप हैं, इसलिए चाहे वह सीधी हो या टेढ़ी हो अपने पर्याय-अस्तित्व रूप मे ही परिणत होती है। सीधी होना या टेढ़ी होना अंगुली का ही धर्म है।

जिस वस्तु में 'अस्तित्व' है, जो सत् है, उसका रूपान्तर भले ही हो जाय अर्थात् वह एक रूप से पलटकर दूसरे रूप में भले ही पहुंच जाय, किन्तु वह रहेगी सत्य रूप ही। सत्ता कभी असत्ता नही बन सकती। सत्ता का विनाश होना त्रिकाल में भी संभव नहीं है। उदाहरण के लिए मिट्टी को लीजिये। वह पहले बिखरी हुई और सूखी हुई थी। उसमें पानी डाला गया तब वह गीली होगई। उसका एक पिण्ड बन गया। इतना परिवर्तन होने पर भी मिट्टी, मिट्टी ही रही। उसकी सत्ता ज्यों की त्यो अक्षुण्ण है। इसके बाद कुम्हार ने उस मिट्टी के पिण्ड को चाक पर चढाया और उसका घड़ा बना लिया। तब भी मिट्टी तो कायम ही रही। मिट्टी के रूप मे उसकी सत्ता अखण्ड है। इस प्रकार अस्तित्व, अस्तित्व रूप मे ही परिणत होता है। सत्ता त्रिकाल और त्रिलोक में कभी असत्ता नही बनेगी।

पदार्थ मे अस्तित्व और नास्तित्व दोनो धर्म भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से विद्यमान रहते हैं। यद्यपि दोनों धर्म परस्पर विरोधी से प्रतीत होते हैं और साधारणतया ऐसा मालूम होता है कि जहाँ अस्तित्व है वहाँ नास्तित्व कैसे रह सकता है ? और जहाँ नास्तित्व है वहाँ अस्तित्व कैसे रह सकता है ? किन्तु अपेक्षा से इन दोनो धर्मो में विरोध नहीं है, बल्कि इनमे साहचर्य सम्बन्ध है। जहाँ अस्तित्व है वहाँ नास्तित्व और जहाँ नास्तित्व है वहाँ अस्तित्व अवश्य रहता है। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता, किन्तु यहाँ अपेक्षा भेद का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। तात्पर्य यह है कि-यदि एक ही अपेक्षा से अस्तित्व और नास्तित्व ये दोनो धर्म एक पदार्थ में स्वीकार किये जांय, तो विरोध आता है, किन्तु

भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से दोनों धर्मो को एक ही पदार्थ में मानना विरुद्ध नही है। जैसे घट (घड़ा) घट रूप से अस्ति है, किन्तु पट (वस्त्र) रूप से नही। घट स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा 'अस्ति' रूप है और परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा 'नास्ति' रूप है। यदि घट को परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा भी 'नास्ति' रूप न माना जाय तो वह 'पट' रूप भी हो जायगा। इस प्रकार प्रति-नियत पदार्थो की व्यवस्था होना असम्भव हो जायगा। इसलिए भिन्न भिन्न अपेक्षा से प्रत्येक पदार्थ मे अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्म रहते है।

इस विषय में एक और उदाहरण दिया जाता है। मान लीजिये-एक दीपक जल रहा है, उसका प्रकाश फैल रहा है। किसी कारण से दीपक बुझ गया किंतु प्रकाश अपने मूल रूप से नष्ट नहीं हुआ। वह प्रकाश-पुद्गल अब अपनी पर्याय पलट कर अन्धकार के रूप में परिणत हो गया है। अन्धकार भी एक प्रकार का पुद्गल ही है। इस प्रकार जो पुद्गल पहले 'प्रकाश' अवस्था में था वह अब 'अन्धकार' अवस्था में आ गया। दोनो अवस्थाओं में पुद्गल द्रव्य वही है। कुछ लोग अन्धकार को अभाव रूप मानते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। शास्त्रकार अत्यन्ताभाव को ही 'नास्तित्व' रूप मानते है। यथा-खरविषाण (गधे के सींग)। जो नास्तित्व है वह कभी भी अस्तित्व नही होगा।

'अस्तित्व, अस्तित्व में और नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है' यह निर्णय हो जाने के बाद गौतम स्वामी पूछते है कि-हे भगवन्! अस्तित्व, अस्तित्व मे परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्व मे परिणत होता है सो क्या 'विश्रसा'-स्वभाव से परिणत होता है या 'प्रयोगसा'-प्रयोग से अर्थात् जीव के व्यापार से? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम! दोनों रूप से परिणत होता है।

प्रयोग का अर्थ है-व्यापार-जीव का प्रयत्न। जीव के प्रयत्न से भी अस्तित्व, अस्तित्व रूप में परिणत होता है। जैसे-कुम्हार के व्यापार से मिट्टी के पिण्ड का घट रूप मे परिणत होना। अथवा जैसे मनुष्य की क्रिया से सीधी अंगुली का टेढी हो जाना। यह अस्तित्व का अस्तित्व में प्रयोग से परिणमन हुआ। इसी प्रकार जीव के व्यापार के बिना भी अस्तित्व, अस्तित्व में परिणत होता है। जैसे काले बालों का सफेद हो जाना। इस परिणमन में जीव के किसी बाह्य व्यापार की आवश्यकता नही है।

इसी प्रकार नास्तित्व का नास्तित्व रूप में परिणमन भी प्रयोग और स्वभाव से होता है। अंगुली का अंगूठा आदि रूप मे न होना 'नास्तित्व' कहलाता है। अर्थात् अंगुली की अपेक्षा से अंगूठे का अस्तित्व ही नास्तित्व है।

अब गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि-हे भगवन् ! सामान्य रूप से तो पदार्थ जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं, किन्तु कभी अतिशय प्रबल कारण मिल जाने से अन्यथा प्रकार के भी हो जाते हैं। जैसे-अतिशायी के प्रताप से अग्नि का शीतल हो जाना और विष का अमृत हो जाना। तो क्या प्रत्येक अवस्था में अस्तित्व, अस्तित्व रूप और नास्तित्व, नास्तित्व रूप ही रहता है, या प्रबल कारण मिल जाने पर अन्यथा परिणमन भी हो जाता है ?

इसके उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! ऐसा नही हो सकता। चाहे जितना प्रबल कारण क्यों न हो, किन्तु अस्तित्व, नास्तित्व मे परिणत नही हो सकता और नास्तित्व, अस्तित्व मे परिणत नही हो सकता। पदार्थों मे जो धर्म है वह उनमें सदा विद्यमान रहता है। प्रत्येक पदार्थ मे अनन्तगुण हैं। इसलिए यह नही समझना चाहिए कि जिस पदार्थ में जो गुण प्रसिद्ध है उसके सिवाय कोई दूसरा गुण उसमें है ही नही। यदि ऐसा होता, तो अग्नि कदापि शीतल नही होती। उदाहरण के लिए दीपक प्रकाशमय है। वह बुझ जाने पर अन्धकार के रूप मे परिणत हो गया। यह अस्तित्व का अस्तित्व मे परिणमन हुआ, किन्तु अस्तित्व, नास्तित्व में या नास्तित्व, अस्तित्व में परिणत नही हुआ है। जिस प्रकार दीपक का परिणमन हुआ उसी प्रकार जीव के व्यापार द्वारा भी वस्तु में परिणमन होता है। जैसे अग्नि को शीतल कर दिया जाता है, किन्तु अस्तित्व का नास्तित्व और नास्तित्व का अस्तित्व कदापि नही बन सकता है। इसी प्रकार गौतम स्वामी ने भगवान् के मत के विषय मे प्रश्न किया। उसका उत्तर भी उपरोक्त रूप से जान लेना चाहिए।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्व मे गमनीय है अर्थात् क्या यह सिद्धात प्ररूपणा करने के लिए भी है ?

भगवान् ने फरमाया-हाँ, गौतम ! अस्तित्व, अस्तित्व में और नास्तित्व, नास्तित्व में परिणत होता है-यह सिद्धान्त गमनीय है अर्थात् प्ररूपणा करने के लिए है। जो वस्तु जैसी है, उसी प्रकार उसकी प्ररूपणा करना उचित ही है।

गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! क्या जिस प्रकार मैं आपका शिष्य हूँ और भक्ति पूर्वक आपसे पूछता हूँ और आप समभावपूर्वक फरमाते है क्या अन्य कोई संसारी या पाखण्डी द्वारा पूछा जाने पर भी आप इसी प्रकार फरमाते है और क्या इसी प्रकार प्ररूपणा के योग्य समझते है ? भगवान् ने उत्तर दिया-हाँ, गौतम ! मैं इसी प्रकार कहता हूँ और प्ररूपणा के योग्य समझता हूँ।

अथवा-'एत्थ' का अर्थ 'स्वात्मा' है और 'इह' का अर्थ 'परात्मा' है। क्या जैसे

स्वात्मा को सुख प्रिय है, वैसा परात्मा को भी सुख प्रिय है ? भगवान् ने फरमाया कि-हाँ, गौतम ! जैसे स्वात्मा को सुख प्रिय है, वैसा परात्मा को भी सुख प्रिय है।

अथवा-'एत्थ' और 'इह' ये दोनों शब्द 'एतद्' शब्द से बने है। ये दोनों समानार्थक है। इन दोनों का अर्थ है-प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु। अर्थात् आपकी सेवा में रहे हुए ये श्रमण और गृहस्थ आदि दोनों ही प्रत्यक्ष-सामने हैं।

कांक्षामोहनीय के बन्धादि

१२६ प्रश्न-जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?

१२६ उत्तर-हंता, गोयमा ! बंधंति।

१२७ प्रश्न-कह णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?

१२७ उत्तर-गोयमा ! पमादपच्चया, जोगनिमित्तं च।

१२८ प्रश्न-से णं भंते ! पमाए किंपवहे ?

१२८ उत्तर-गोयमा ! जोगप्पवहे।

१२९ प्रश्न-से णं भंते ! जोए किंपवहे ?

१२९ उत्तर-गोयमा ! वीरियप्पवहे।

१३० प्रश्न-से णं भंते ! वीरिए किंपवहे ?

१३० उत्तर-गोयमा ! सरीरप्पवहे।

१३१ प्रश्न-से णं भंते ! सरीरे किंपवहे ?

१३१ उत्तर-गोयमा ! जीवप्पवहे। एवं सति अत्थि उट्ठाणेइ वा, कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा।

विशेष शब्दों के अर्थ-बंधंति-बांधते हैं, पमादपच्चया-प्रमाद के कारण, जोग-

णिमित्तं-योगों के निमित्त से, जोगप्पवहे-योगो से उत्पन्न होना, उट्ठाणे-उत्थान, कम्मे-कर्म, बले-बल, वीरिए-वीर्य, पुरिसक्कार परिक्कमे-पुरुषकार पराक्रम ।

भावार्थ-१२६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म बांधते हैं ?

१२६ उत्तर-हाँ, गौतम ! बांधते हे ।

१२७ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ?

१२७ उत्तर-हे गौतम ! प्रमाद के कारण और योग के निमित्त से जीव कांक्षामोहनीय कर्म बांधते हैं ।

१२८ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रमाद किससे उत्पन्न होता है ?

१२८ उत्तर-हे गौतम ! प्रमाद योग से उत्पन्न होता है ।

१२९ प्रश्न-हे भगवन् ! योग किससे उत्पन्न होता है ?

१२९ उत्तर-हे गौतम ! योग वीर्य से उत्पन्न होता है ।

१३० प्रश्न-हे भगवन् ! वीर्य किससे उत्पन्न होता है ?

१३० उत्तर-हे गौतम ! वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है ।

१३१ प्रश्न-हे भगवन् ! शरीर किससे उत्पन्न होता है ?

१३१ उत्तर-हे गौतम ! शरीर जीव से उत्पन्न होता है और जीव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम से यह करता है ।

विवेचन-जीव प्रमाद रूप हेतु से और योग रूप निमित्त से, कांक्षामोहनीय कर्म बाधता है । मिथ्यात्व, अविरति और कषाय इन तीनो का प्रमाद में समावेश हो जाता है । शास्त्रकारो ने प्रमाद के आठ भेद बतलाये है । यथा-

पमाओ य मुणिदेहिं, भणिओ अट्ठभेयओ । अण्णाणं संसओ चेव, मिच्छाणाणं तहेव य ॥
रागदोसो मइब्भंसो, धम्मम्मि य अणायरो । जोगाणं दुप्पणिहाणं, अट्ठहा वज्जियव्वओ ॥

अर्थ-अज्ञान, सशय, मिथ्याज्ञान, रागद्वेष, मतिभ्रंश, धर्म में अनादर बुद्धि, अशुभ योग और दुर्ध्यान, ये प्रमाद के आठ भेद है । इन्हें त्याग देना चाहिए ।

यद्यपि बन्ध के पांच कारण हैं-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग । यहा प्रमाद का उल्लेख करके मिथ्यात्व, अविरति और कषाय को उसी के अन्तर्गत कर दिया है । और योग का पृथक् उल्लेख है ही । इस प्रकार बन्ध के कारणो की संख्या में

किसी प्रकार की असंगति नही है ।

प्रमाद की उत्पत्ति योग से अर्थात् मन वचन काया के व्यापार से होती है । मद्य आदि के सेवन से तथा मिथ्यात्व आदि के आचरण से जो प्रमाद होता है वह सब मन, वचन और काया के व्यापार से होता है । अतएव प्रमाद की उत्पत्ति मन, वचन और काया के व्यापार से कही गई है ।

योग वीर्य से उत्पन्न होता है । अन्तराय कर्म के पांच भेदों में वीर्यान्तराय कर्म भी एक है । इस वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसे वीर्य कहते हैं अर्थात् आत्मा का परिणाम विशेष वीर्य कहलाता है ।

वीर्य की उत्पत्ति शरीर से होती है । यहां पर यह शंका की जा सकती है कि–वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से वीर्य उत्पन्न होता है और अलेशी केवली भगवान् इस कर्म का क्षय कर चुके हैं । ऐसी दशा में उन्हें सवीर्य कहना चाहिए या निर्वीर्य ?

इस शंका का समाधान यह है कि–वीर्य के दो भेद हैं–सकरण वीर्य और अकरण-वीर्य । अलेशी केवली भगवान् में जो वीर्य विद्यमान है, वह अकरण वीर्य कहलाता है । यहां इस अकरण वीर्य का प्रकरण नही है । यहां 'सकरण वीर्य' का ग्रहण किया गया है । लेश्या वाले जीव का मन, वचन और काया रूप साधन वाले आत्म प्रदेशों के परिस्पन्द रूप व्यापार को 'सकरण वीर्य' कहते है । करण का अर्थ है साधन । जिसका साधन मन, वचन, काया का व्यापार है उसे सकरण वीर्य कहते है । यह वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है, बिना शरीर के नही हो सकता ।

शरीर किससे उत्पन्न होता है ? इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि–हे गौतम ! शरीर, जीव से उत्पन्न होता है ।

शरीर की उत्पत्ति का कारण अकेला जीव ही नही है, किन्तु कर्म भी है, तथापि कर्म को भी करने वाला जीव ही है । जीव सब में प्रधान–मुख्य है । इसलिए यहा शरीर का उत्पादक कारण केवल जीव ही बतलाया है ।

यहाँ प्रसंगवश गोशालक मत का निषेध करते हुए कहा है–गोशालक के मत मे पुरुषार्थ आदि कुछ नही है । उनका मत है कि जीव के पुरुषार्थ करने से कुछ नही होता है । जो कुछ होता है वह नियति (होनहार) से ही होता है । जैसा कि नियतिवादी का कथन है–

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥

अर्थ-मनुष्यों को शुभ या अशुभ जो कुछ मिलना होता है वह नियति (होनहार) के प्रभाव से अवश्य मिलता है। जीव चाहे जितना प्रयत्न करे, किन्तु जो नही होने वाली बात है वह कभी नही होगी और जो बात होने वाली है वह लाख प्रयत्न करने पर भी टल नही सकती।

नियतिवादी के इस मत का यहाँ खण्डन होता है, क्योकि यहाँ कार्य-कारण की शृखला बतलाई गई है। वह इस प्रकार है कि-कांक्षामोहनीय कर्म प्रमाद से, प्रमाद योग से, योग वीर्य से, वीर्य शरीर से और शरीर जीव से उत्पन्न होता है। जब जीव से शरीर उत्पन्न होता है, तो जीव मे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम भी है। यदि नियतिवाद को स्वीकार किया जाय, तो प्रत्यक्ष सिद्ध पुरुषार्थ का अपलाप होता है। परन्तु जैसे सूर्य प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उसका अपलाप नही किया जा सकता, उसी प्रकार प्रत्यक्ष से सिद्ध पुरुषार्थ का भी अपलाप नही किया जा सकता। जीव में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकारपराक्रम है।

खड़ा होना, (तत्पर होना) 'उत्थान' कहलाता है। उत्क्षेपण अपक्षेपण अर्थात् ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना इत्यादि जीव की चेष्टा विशेष को 'कर्म' कहते हैं। शारीरिक प्राण को 'बल' कहते हैं। जीव के उत्साह को 'वीर्य' कहते है। पुरुष का स्वाभिमान अर्थात् इष्ट फल का साधक पराक्रम 'पुरुषकार पराक्रम' कहलाता है।

यहाँ यह शका की जा सकती है कि क्या स्त्रियाँ क्रिया नही करती है? यदि करती है, तो 'पुरुषकार' की तरह 'स्त्रीकार' क्यो नही कहा? इसका समाधान यह है कि-स्वभावतः स्त्रियों की क्रिया की अपेक्षा पुरुषों की क्रिया विशेष होती है और विशेष को लक्ष्य करके ही बात कही जाती है। इसलिए यहाँ 'पुरुषकार' कहा है। उपलक्षण से स्त्री का उद्योग भी पुरुषार्थ ही समझना चाहिए।

पुरुषकार अर्थात् पुरुष की क्रिया और पराक्रम अर्थात् शत्रु का पराजय। ये दोनों कार्य स्त्री और नपुसक की अपेक्षा पुरुष अधिक करता है। पुरुष की क्रिया और शत्रु का पराजय ये दोनो मिलकर 'पुरुषकार पराक्रम' कहलाता है।

१३२ प्रश्न-से णूणं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरइ ?

१३२ उत्तर-हंता, गोयमा ! अप्पणा चेव० तं चेव उच्चारे-यव्वं ।

१३३ प्रश्न-जं तं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ तं किं उदिण्णं उदीरेइ, अणुदिण्णं उदीरेइ, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ, उदयाणंतरपच्छा कडं कम्मं उदीरेइ ?

१३३ उत्तर-गोयमा ! नो उदीण्णं उदीरेइ, नो अणुदिण्णं उदीरेइ, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ, णो उदयाणंतर-पच्छाकडं कम्मं उदीरेइ ।

१३४ प्रश्न-जं तं भंते ! अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ तं किं उट्ठाणेणं, कम्मेणं, बलेणं, वीरिएणं, पुरिसक्कार-परिक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ, उदाहु तं अणु-ट्ठाणेणं, अकम्मेणं, अबलेणं, अवीरिएणं, अपुरिक्कारपरिक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ ?

१३४ उत्तर-गोयमा ! तं उट्ठाणेण वि, कम्मेण वि, बलेण वि, वीरियेण वि, पुरिसक्कारपरक्कमेण वि अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ । णो तं अणुट्ठाणेणं, अकम्मेणं, अबलेणं, अवीरिएणं, अपुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ । एवं सति अत्थि उट्ठाणेइ वा, कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिएइ वा,

पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा)।

१३५ प्रश्न-से णूणं भंते ! अप्पणा चेव उवसामेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ ?

१३५ उत्तर-हंता, गोयमा ! एत्थ वि तहेव भाणियव्वं। नवरं-अणुदिण्णं उवसामेइ; सेसा पडिसेहेयव्वा तिण्णि।

१३६ प्रश्न-जं तं भंते ! अणुदिण्णं उवसामेइ तं किं उट्ठाणेणं ?

१३६ उत्तर-जाव-पुरिसक्कारपरिक्कमेति वा।

१३७ प्रश्न-से णूणं भंते ! अप्पणा चेव वेदेइ, अप्पणा चेव गरहइ ?

१३७ उत्तर-एत्थ वि सव्वे वि परिवाडी, नवरं-उदिन्नं वेएइ, णो अणुदिण्णं वेएइ, एवं जाव-पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा।

१३८ प्रश्न-से णूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेति, अप्पणा चेव गरहइ ?

१३८ उत्तर-एत्थ वि सव्वे वि परिवाडी, नवरं-उदयाणंतर-पच्छाकडं कम्मं निज्जरेइ, एवं जाव-परिक्कमेइ वा।

विशेष शब्दों के अर्थ-उदीरेइ-उदीरणा करता है, गरहइ-गर्हा करता है, संवरइ-संवृत करता है, उदीरणा भवियं-उदीरणा के योग्य, उदयाणंतरपच्छाकडं-उदयानन्तर पश्चात् कृत, उवसामेइ-उपशान्त करता है, परिवाडी-परिपाटी।

भावार्थ-१३२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव अपनी आत्मा से ही उदीरणा करता है ? अपनी आत्मा से ही उसकी गर्हा करता है ? और अपनी

आत्मा से ही उसका संवर करता है ?

१३२ उत्तर-हाँ, गौतम ! जीव अपनी आत्मा से ही उदीरणा, गर्हा और संवर करता है।

१३३ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव अपनी आत्मा से ही उदीरणा, गर्हा और संवर करता है तो क्या उदीर्ण (उदय में आये हुए) की उदीरणा करता है ? अनुदीर्ण (उदय में नहीं आये हुए) की उदीरणा करता है ? या अनुदीर्ण उदीरणाभविक (उदय में नहीं आया हुआ किन्तु उदीरणा के योग्य) की उदीरणा करता है ? या उदयानन्तर पश्चात् कृत कर्म की उदीरणा करता है ?

१३३ उत्तर-हे गौतम ! उदीर्ण की उदीरणा नहीं करता, अनुदीर्ण की भी उदीरणा नहीं करता, तथा उदयानन्तर पश्चात्कृत की भी उदीरणा नहीं करता, किन्तु अनुदीर्ण उदीरणा-भविक कर्म की उदीरणा करता है।

१३४ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव अनुदीर्ण उदीरणा-भविक की उदीरणा करता है, तो क्या उत्थान से, कर्म से, बल से, वीर्य से और पुरुषकार पराक्रम से उदीरणा करता है ? या अनुत्थान से, अकर्म से, अबल से, अवीर्य से और अपुरुषकार पराक्रम से उदीरणा करता है ?

१३४ उत्तर-हे गौतम ! अनुदीर्ण उदीरणा-भविक कर्म की उदीरणा उत्थान से, कर्म से, बल से, वीर्य से और पुरुषकार पराक्रम से करता है, किन्तु अनुत्थान से, अकर्म से, अबल से, अवीर्य से और अपुरुषकार पराक्रम से उदीरणा नहीं करता है। इसलिए उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम है।

१३५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह अपनी आत्मा से ही उपशम, गर्हा, और संवर करता है ?

१३५ उत्तर-हाँ, गौतम ! यहाँ भी उसी प्रकार 'पूर्ववत्' कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अनुदीर्ण (उदय में नहीं आये हुए) का उपशम करता है। शेष तीन विकल्पों का निषेध करना चाहिए।

१३६ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव अनुदीर्ण कर्म का उपशम करता है, तो

क्या उत्थान से यावत् पुरुषकार पराक्रम से करता है ? या अनुत्थान से यावत् अपुरुषकार पराक्रम से करता है ?

१३६ उत्तर-हे गौतम ! पूर्ववत् जानना । यावत् पुरुषकार पराक्रम से उपशम करता है ।

१३७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव अपनी आत्मा से ही वेदन करता है और गर्हा करता है ?

१३७ उत्तर-हाँ, गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त समस्त परिपाटी समझनी चाहिए । विशेषता यह है कि-उदीर्ण को वेदता है, अनुदीर्ण को नहीं वेदता है । इस प्रकार यावत् पुरुषकार पराक्रम से वेदता है, अनुत्थानादि से नहीं वेदता है ।

१३८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव अपनी आत्मा से ही निर्जरा करता है और गर्हा करता है ?

१३८ उत्तर-हे गौतम ! यहाँ भी समस्त परिपाटी पूर्ववत् समझनी चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की निर्जरा करता है । इस प्रकार यावत् पुरुषकार पराक्रम से निर्जरा और गर्हा करता है । इसलिए उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम है ।

विवेचन-यहाँ गौतम स्वामी ने कांक्षामोहनीय कर्म की उदीरणा, गर्हा और संवर के विषय में प्रश्न किया है कि-हे भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म को आप ही उदीरता है ? आप ही गर्हा करता है और आप ही संवर करता है ? भगवान् ने फरमाया -हाँ, गौतम ! जीव आप ही उदीरणा आदि करता है । क्योंकि बन्ध आदि में जीव की ही मुख्यता है, परन्तु दूसरे की नही । जैसा कि कहा है-

अणुमेत्तो वि ण कस्सइ बंधो । परवत्थुपच्चया भणिओ ॥

अर्थात्-किसी भी जीव को अणुमात्र (जरा सा) भी कर्मबन्ध अन्य वस्तु के कारण नही होता है ।

उदीरणा-भविष्यकाल मे उदय में आने वाले कर्म को शीघ्र नष्ट करने के लिए करण विशेष द्वारा खींच कर उदयावलिका में लाना 'उदीरणा' कहलाती है ।

गर्हा-अतीत काल में जो पापकार्य किया है उनके स्वरूप को जानकर उनकी निन्दा

करना अर्थात् कर्मबन्ध के कारणों को जानकर आत्मनिन्दा करना 'गर्हा' है।

संवर-पापकर्म के स्वरूप को जानकर या उसके हेतु को समझकर वर्त्तमान में उस कर्म को न करना, उस पर रोक लगा देना 'संवर' है।

जैसे आत्मा आप स्वयं ही बन्ध का कर्त्ता है, उसी प्रकार उदीरणा, गर्हा और संवर का कर्त्ता भी आत्मा ही है। यद्यपि संवर आदि में गुरु का उपदेश आदि भी सहकारी कारण होते है, तथापि उनकी प्रधानता नही है, प्रधानता जीव की ही है। क्योंकि जीवका वीर्य ही संवर आदि में प्रधान कारण है। गुरु आदि तो उपदेश द्वारा आत्मा के सुस्त पड़े हुए वीर्य को उत्साहित कर देते हैं। किन्तु आत्मा आप ही उदीरणा करता है, आप ही गर्हा करता है, और आप ही संवर करता है।

यहाँ कर्मो की चार प्रकार की स्थिति बतलाई गई है-१ उदीर्ण-उदय में आया हुआ। २ अनुदीर्ण-उदय में नही आया हुआ। ३ अनुदीर्ण उदीरणा-भविक-जो अभी उदय में नही आया है, किन्तु उदीरणा करने के योग्य है। ४ उदयानन्तर पश्चात्कृत-उदय हो चुकने के बाद जो पश्चात्कृत हो गया है। गौतम स्वामी ने यह प्रश्न किया है कि इन कर्मो में से जीव किन कर्मो की उदीरणा करता है ?

शंका-पहले प्रश्न मे यह कहा गया है कि आत्मा स्वयं ही उदीरणा, गर्हा और संवर करता है, किन्तु इसके बाद जो प्रश्न किया गया है कि आत्मा उदीर्ण कर्म की उदीरणा करता है, या अनुदीर्ण कर्म की अथवा अनुदीर्ण उदीरणा-भविक की, या फिर उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की उदीरणा करता है। इस प्रश्न में सिर्फ उदीरणा का ही ग्रहण क्यों किया गया है ? यहाँ गर्हा और संवर को क्यों छोड़ दिया गया है ? अर्थात् यह क्यों नही पूछा कि-उदीर्ण कर्म की गर्हा करता है, या अनुदीर्ण कर्म की ? इसी प्रकार संवर के विषय मे भी यह प्रश्न क्यों नही किया है ?

समाधान-उदीर्ण, अनुदीर्ण, अनुदीर्ण उदीरणा-भविक और उदयानन्तर पश्चात्कृत, ये चार विशेषण उदीरणा के लिए ही है। इसलिए इन चार विशेषणों द्वारा उदीरणा के विषय में ही प्रश्न किया गया है। इन चारों विशेषणों में से एक भी विशेषण का सम्बन्ध गर्हा और संवर के साथ नही है। अतएव चारो में से किसी भी विशेषण का प्रयोग गर्हा और संवर के विषय में नही हो सकता।

शका-यदि उदीरणा के साथ गर्हा और संवर का सम्बन्ध नही है, तो फिर पहले प्रश्न में इन तीनों को साथ क्यों रखा गया, वहाँ केवल 'उदीरणा'-यह एक ही पद देना

चाहिए था ?

समाधान-गर्हा और संवर, ये दोनों उदीरणा के साधन है। यह बात प्रकट करने के लिए ही इन दोनो पदों को उदीरणा के साथ रखा गया है। पहले प्रश्न का जो उत्तर दिया गया है उससे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है।

गौतम स्वामी ने जो उदीरणा का प्रश्न किया है उसका उत्तर यह दिया गया कि-आत्मा उदीर्ण (उदय मे आया हुआ) कर्म की उदीरणा नही करता, क्योकि वे तो स्वयं ही उदय मे आये हुए है। जो कर्म उदय मे आये हुए हैं यदि उनकी भी उदीरणा की जायगी, तो फिर उदीरणा का अन्त नहीं आवेगा। इस प्रकार अव्यवस्था हो जायगी। इसी प्रकार अनुदीर्ण कर्म की भी उदीरणा नही होती है अर्थात् जिन कर्मो की उदीरणा भविष्य मे बहुत देर में होने वाली है, या जिन कर्मो की उदीरणा भविष्य में नहीं होगी, ऐसे उदी॰रणा के अयोग्य कर्मो की उदीरणा नही होती है। जो कर्म स्वरूप से अनुदीर्ण हैं, लेकिन उदीरणा के योग्य है, वे उदीरणाभविक (उदीरणा भाव्य) कहलाते हैं। ऐसे ही कर्मों की उदीरणा होती है अर्थात् पूर्वोक्त चार भगों में से तीसरे भंग के कर्मो की उदीरणा होती है। जो कर्म उदयानन्तर पश्चात्कृत है, उनकी भी उदीरणा नही होती, क्योंकि वे कर्म उदय में आ चुके है, इसलिए अतीत रूप है और अतीत वस्तु असत्‌रूप होती है। अतएव ऐसे कर्म की उदीरणा नही होती है। कर्म की उदीरणा मे काल, स्वभाव, नियति (होनहार) आदि भी कारण है, किन्तु प्रधानता आत्मा के वीर्य की ही है। इसलिए आत्मा अपने आप उदीरणा करता है और वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम से करता है। ये सब आत्मामे विद्यमान हैं।

यहां तक कांक्षामोहनीय कर्म की उदीरणा के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर हुए। अब कांक्षामोहनीय कर्म के उपशम के विषय मे गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि-हे भगवन्! क्या आत्मा अपने आप ही कर्म को उपशान्त करता है, गर्हता है और संवरता है! भगवान् ने फरमाया-हां, गौतम ! यह सब कथन उदीरणा के सम्बन्ध में दिये गये उत्तर की ही तरह समझना चाहिए। विशेष यह है कि जो कर्म अनुदीर्ण है अर्थात् उदय मे नही आये हैं, उन्ही का उपशम होता है, उदय में आये हुए कर्म का उपशम नहीं होता। तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त चार भंगो में से यहां दूसरा भंग कहना चाहिए।

उपशम केवल मोहनीय कर्म का ही होता है। जैसा कि कहा है-

मोहस्सेवोवसमो खओवसमो चउण्हं घाईणं।
उदयक्खयपरिणामा, अट्ठण्ह वि होंति कम्माणं॥

अर्थात्-उपशम सिर्फ मोहनीय कर्म का ही होता है क्षयोपशम चार घाती-कर्मो (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय) का ही होता है। उदय, क्षय और परिणाम आठो ही कर्मो का होता है।

उपशम का अर्थ यह है-उदीर्ण (उदय में आए हुए) कर्म का क्षय होना और अनुदीर्ण (उदय मे नही आये हुए) कर्म का विपाक और प्रदेशों के द्वारा अनुभव न होना। कर्म की ऐसी अवस्था को उपशम कहते है।

शंका-कर्मो की ऐसी अवस्था होना तो क्षयोपशम है, फिर इसे 'उपशम' कैसे कहा गया ?

समाधान-क्षयोपशम में भी उदीर्ण कर्म का क्षय होता है और अनुदीर्ण का उपशम होता है, किन्तु वहां प्रदेश द्वारा कर्म का अनुभव होता है, केवल विपाक से ही अनुभव नही होता। इस प्रकार जब कर्म का प्रदेश और विपाक दोनो द्वारा अनुभव नही होता है, तब वह उपशम कहलाता है और जब सिर्फ विपाक से अनुभव नही होता, किंतु प्रदेश से अनुभव होता है तब क्षयोपशम कहलाता है। यह उपशम और क्षयोपशम में अन्तर है।

यह उपशम, औपशमिक समकिति जीव में और उपशमश्रेणी वाले जीव में पाया जाता है।

उदीर्ण कर्म वेदा जाता है, अनुदीर्ण कर्म नही वेदा जाता है। यदि अनुदीर्ण कर्म भी वेदा जाय, तो फिर उदीर्ण और अनुदीर्ण में फ़र्क ही क्या रहे ? जो कर्म वेदने में आता है उसकी निर्जरा होती है। इसलिए आगे निर्जरा के विषय मे प्रश्न किया गया है। जीव अपने आप ही निर्जरा करता है अर्थात् अपने उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम द्वारा निर्जरा करता है, किन्तु विशेष यह है कि निर्जरा उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्म की होती है।

उदीरणा, उपशम, वेदना और निर्जरा के सम्बन्ध में एक संग्रह गाथा कही है। वह इस प्रकार है-

तइएण उदीरेंति, उवसामेंति य पुणो वि बीएणं।
वेइंति णिज्जरंति य, पढमचउत्थेहिं सव्वेवि॥

अर्थ-पहले जो चार भांगे कहे हैं उनमे से तीसरे भांगे में उदीरणा होती है, दूसरे में उपशम होता है, पहले मे वेदन होता है और चौथे मे निर्जरा होती है। शेष सब बाते सब में समान हैं।

नैरयिकादि और श्रमणों के कांक्षामोहनीय

१३९ प्रश्न-नेरइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति ?

१३९ उत्तर-जहा ओहिआ जीवा तहा नेरइया, जाव-थणिय-कुमारा ।

१४० प्रश्न-पुढविक्काइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेइंति ?

१४० उत्तर-हंता, वेइंति ।

१४१ प्रश्न-कह णं भंते ! पुढविक्काइया कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

१४१ उत्तर-गोयमा ! तेसि णं जीवाणं णो एवं तक्का इ वा, सण्णा इ वा, पण्णा इ वा, मणे इ वा, वई ति वा अम्हे णं कंखा-मोहणिज्जं कम्मं वेएमो, वेएंति पुण ते ।

१४२ प्रश्न-से णूणं भंते ! तमेव सच्चं, णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ?

१४२ उत्तर-सेसं तं चेव, जाव-पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा; एवं जाव-चउरिंदियाणं-पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जाव-वेमाणिया जहा ओहिया जीवा ।

१४३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! समणा वि निग्गंथा कंखामोह-

णिज्जं कम्मं वेएंति ?

१४३ उत्तर-हंता अत्थि ।

१४४ प्रश्न-कह णं भंते ! समणा णिग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति ?

१४४ उत्तर-गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं नाणंतरेहिं, दंसणंतरेहिं, चरित्तंतरेहिं, लिंगंतरेहिं, पवयणंतरेहिं, पावयणंतरेहिं, कप्पंतरेहिं, मग्गंतरेहिं, मयंतरेहिं, भंगंतरेहिं, णयंतरेहिं, नियमंतरेहिं, पमाणंतरेहिं संकिया, कंखिया, वितिकिच्छिया, भेयसमावन्ना, कलुससमावन्ना एवं खलु समणा, णिग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेइंति ।

१४४ प्रश्न-से णूणं भंते ! तमेव सच्चं, णीसंकं जं जिणेहिं पवेदंति ?

१४५ उत्तर-हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं, णीसंकं, एवं जाव-पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

॥ तइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-तक्का-तर्क, सण्णा-संज्ञा, पण्णा-प्रज्ञा, मणे-मन, वई-वचन, समणा णिग्गंथा-श्रमण निर्ग्रन्थ ।

भावार्थ-१३६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म वेदते हैं ?

१३६ उत्तर-हां, गौतम ! वेदते हैं । जैसे सामान्य जीव कहे, वैसे ही

नैरयिक भी समझना चाहिए। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए।

१४० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पृथ्वीकाय के जीव कांक्षामोहनीय कर्म वेदते है ?

१४० उत्तर-हां, गौतम ! वेदते हैं।

१४१ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार वेदते है ?

१४१ उत्तर-हे गौतम ! उन जीवों को ऐसा तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन नहीं होता है कि 'हम कांक्षामोहनीय कर्म को वेदते है,' किन्तु वे उसे वेदते है।

१४२ प्रश्न-हे भगवन् ! वह सत्य और निःशंक है जो जिन भगवन्तों नें प्ररूपित किया है ?

१४२ उत्तर-हे गौतम ! यह सब पहले के समान समझना चाहिए। अर्थात् जो जिन भगवन्तों नें प्ररूपित किया है वह सत्य और निःशंक है। यावत् पुरुषकार पराक्रम से निर्जरा होती है। इस प्रकार चौइन्द्रिय जीवों तक जानना चाहिए। जैसे सामान्य जीव कहे है वैसे ही पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

१४३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म वेदते है ?

१४३ उत्तर-हां, गौतम ! वेदते हैं।

१४४ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रमण निर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार वेदते है ?

१४४ उत्तर-हे गौतम ! उन कारणों से ज्ञानान्तर 'दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकान्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर और प्रमाणान्तर के द्वारा शंका वाले, कांक्षा वाले,

विचिकित्सा वाले, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर, इस प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म को वेदते है।

१४५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वही सत्य और असंदिग्ध है जो जिन भगवन्तों ने प्ररूपित किया है ?

१४५ उत्तर-हां, गौतम ! वही सत्य है, असंदिग्ध है, जो जिन भगवन्तों ने प्ररूपित किया है। यावत् पुरुषकार पराक्रम से निर्जरा होती है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यही सत्य है।

विवेचन-अब चौबीस दण्डक की अपेक्षा से वेदना से लगाकर निर्जरा तक का विचार किया जाता है।

गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! क्या नारकी जीव भी कांक्षामोहनीय कर्म को वेदते है ? भगवान् ने फरमाया कि-हाँ, गौतम ! वेदते हैं। सामान्य जीवों के सम्बन्ध मे जो बाते कही गई है वे सब बाते यहाँ भी लागू होती है। ये ही सब बाते स्तनितकुमारों तक भी समझ लेनी चाहिए।

इसके पश्चात् गौतमस्वामी ने प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! क्या पृथ्वीकाय के जीव भी कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते है ? भगवान् ने फरमाया-हाँ, गौतम ! वे भी वेदन करते है।

जिन्हे मनोलब्धि प्राप्त है वे जीव कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करे, यह तो ठीक है, किन्तु जिनमें मनोज्ञान नही है, जिन्हे भले बुरे की भी पहचान नही है, वे कांक्षामोहनीय कर्म को किस प्रकार वेदते हैं ? इसी अभिप्राय से गौतमस्वामी ने फिर प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! पृथ्वीकाय के जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार वेदते हैं ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! 'हम कांक्षामोहनीय कर्म वेदते हैं' इस प्रकार उन जीवों में तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन नही है, फिर भी वे वेदते है।

तर्क अर्थात् विमर्श। 'यह इस प्रकार होगा' इस तरह के विचार को 'तर्क' कहते है। संज्ञा अर्थात् अर्थावग्रह रूप ज्ञान। अवग्रह के दो भेद है-अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। प्रज्ञा का अर्थ है-बुद्धि। सब विशेष सम्बन्धी ज्ञान को प्रज्ञा कहते हैं। स्मरणादि रूप मति-ज्ञान के भेद को मन कहते है। अपने अभिप्राय को शब्द द्वारा प्रकट करना 'वचन' कहलाता है।

पृथ्वीकाय के जीवों में तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, और मन नही है, उनमें बोलने की शक्ति भी नही है, फिर भी वे जीव कांक्षामोहनीय कर्म को वेदते हैं। जो जिन भगवन्तो ने अपने ज्ञान में देखा है वह सत्य और शका रहित है। वे पृथ्वीकाय के जीव कांक्षा-मोहनीय कर्म को अपने आप उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम से वेदते हैं।

पृथ्वीकाय की तरह अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय तक ऐसा ही जानना चाहिए। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय से वैमानिक तक समुच्चय जीव के वर्णन की तरह समझना चाहिए।

कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन श्रमण निर्ग्रन्थों के सिवाय बाकी दूसरे जीवों को हो तो हो, किन्तु उसका वेदन श्रमण निर्ग्रन्थो को कैसे हो सकता है? क्योकि उनकी बुद्धि जिनागमो के परिशीलन से पवित्र बनी हुई होती है। इसलिए अब गौमत स्वामी इस विषय में प्रश्न पूछते हैं कि–हे भगवन्! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षा-मोहनीय कर्म का वेदन करते है? भगवान् ने फरमाया कि–हाँ, गौतम! श्रमण निर्ग्रन्थ भी काक्षा-मोहनीय कर्म वेदते है।

यहाँ मूल में साधु अर्थ के वाचक 'श्रमण' और 'निर्ग्रन्थ' ये दो शब्द दिये हैं। इसका प्रयोजन यह है कि–शाक्य अर्थात् बौद्धभिक्षु आदि को भी 'श्रमण' कहते हैं। परन्तु उनका यहाँ ग्रहण नही है। इसलिए श्रमण के साथ 'निर्ग्रन्थ' विशेषण लगाया गया है। अर्थात् जो बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ–परिग्रह से रहित हैं, ऐसे निर्ग्रन्थ श्रमणों (जैनमुनियों) का यहाँ ग्रहण है। वे श्रमण निर्ग्रन्थ भी ज्ञानान्तर आदि कारणो से काक्षा-मोहनीय कर्म का वेदन करते हैं।

१ ज्ञानान्तर–एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान को 'ज्ञानान्तर' कहते है। इनके विषय में शका हो जाना कि ऐसा क्यो है? यथा–अवधिज्ञान, परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को जानता है, इसलिए इसके असंख्यात भेद है। वह रूपी पदार्थों को जानता है। मनः पर्ययज्ञान, मनोद्रव्य को जानता है। मनोद्रव्य भी रूपी है। रूपी होने के कारण मनोद्रव्य भी अवधिज्ञान के द्वारा जाने जा सकते है। ऐसी हालत मे अवधिज्ञान और मन.पर्यय ज्ञान को भिन्न मानने की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार का सन्देह हो जाना शका है।

इसका समाधान यह है कि–यद्यपि मनोगत पदार्थ रूपी हैं और अवधिज्ञान द्वारा जाने जा सकते हैं, तथापि मन·पर्ययज्ञान और अवधिज्ञान एक नही हो सकते। दोनों भिन्न हैं। दोनो का स्वभाव भिन्न भिन्न है। मन पर्ययज्ञान मन के भीतर आने वाले पदार्थ के

विकल्प को ही जानता है इसके सिवाय और किसी पदार्थ को नही जानता। अवधिज्ञानी सामान्य देख कर विशेष देखता है अर्थात् अवधिज्ञान दर्शनपूर्वक होता है। अवधिज्ञान के साथ अवधिदर्शन होता है, किन्तु मन.पर्यय ज्ञान के साथ दर्शन नही है। कोई कोई अवधि-ज्ञान, मनोद्रव्यों को विषय नहीं करता और कोई कोई मनोद्रव्य के साथ अन्य रूपी पदार्थों को भी विषय करता है। अर्थात् कोई भी अवधिज्ञान ऐसा नहीं है जो मन.पर्यय ज्ञान की तरह केवल मनोद्रव्यों को ही जानता हो। यह दोनों ज्ञानों में विषय की अपेक्षा अन्तर है।

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में और भी बहुत अन्तर है। मनःपर्ययज्ञान सिर्फ मनुष्य क्षेत्र के संज्ञी जीवों के मनोद्रव्य को ही ग्रहण करता है, जब कि अवधिज्ञान समस्त लोकाकाश के रूपी पदार्थों को ग्रहण कर सकता है और शक्ति तो इससे भी कई गुणी अधिक है। इसके सिवाय अवधिज्ञान चारो गतियों के जीवों को हो सकता है, किन्तु मनः-पर्यय ज्ञान केवल मनुष्य को ही होता है और वह भी अप्रमत्त संयत को ही। इस प्रकार विषय, क्षेत्र, स्वामी आदि अनेक अपेक्षाओं से दोनों ज्ञानों में अन्तर है। इस अन्तर को न समझ कर उनके विषय में शंका करने से और फिर शंका न मिटाने से कांक्षा, विचिकित्सा और कलुषता आदि आती है।

२ दर्शनान्तर-ज्ञान की तरह दर्शन में भी शंका हो सकती है। सामान्य बोध को दर्शन कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है-१ इन्द्रिय से और २ अनिन्द्रिय के निमित्त से। इन्द्रियों में श्रोत, चक्षु, घ्राण, रसना, और स्पर्शन हैं तथा अनिन्द्रिय में मन है। कोई दर्शन (सामान्य बोध) इन्द्रियों से होता है और कोई मन से।

यहां यह शंका उत्पन्न होती है कि जब इन्द्रिय और मन से होने वाला सामान्य बोध 'दर्शन' कहलाता है, तो फिर एक चक्षुदर्शन और दूसरा अचक्षुदर्शन, इस प्रकार दो भेद करने की क्या आवश्यकता है? यदि इन्द्रियजन्य और अनिन्द्रियजन्य भेद करने थे, तो श्रोत्रदर्शन, चक्षुदर्शन, घ्राणदर्शन, रसनादर्शन-और स्पर्शनदर्शन तथा मनोदर्शन-इस प्रकार छह भेद करना चाहिए थे, अथवा संक्षेप में 'इन्द्रिय दर्शन' और 'मनोदर्शन'-ये दो भेद ही किये होते तो उचित था। किन्तु 'चक्षुदर्शन' और 'अचक्षु दर्शन' इस प्रकार दो भेद क्यों किये?

इस शंका का समाधान यह है कि-प्रत्येक वस्तु में सामान्य धर्म भी होते हैं और विशेष धर्म भी होते हैं। अतएव कभी सामान्य रूप से वस्तु का कथन किया जाता है और कभी विशेष रूप से। यहां चक्षुदर्शन कहकर विशेष रूप से कथन किया गया है और अचक्षु-दर्शन कह कर सामान्य रूप से निरूपण किया गया है अर्थात् चक्षुदर्शन यह विशेष भेद

है और अचक्षुदर्शन सामान्य भेद है। अन्य प्रकार से भी दर्शन के भेद किये जा सकते हैं तथापि चक्षुदर्शन और अक्षुदर्शन, इस प्रकार दो भेद करने का और भी कारण है। वह यह है कि इन्द्रियाँ दो प्रकार की है-१ प्राप्यकारी और २ अप्राप्यकारी। जो इन्द्रिय अपने ज्ञेय पदार्थ को प्राप्त करके ज्ञान कराती है, वह 'प्राप्यकारी' कहलाती है और जो प्राप्त किये विना ही ज्ञान करा देती है वह 'अप्राप्यकारी' कहलाती है। चक्षु इन्द्रिय 'अप्राप्य कारी' है और शेष चार इन्द्रियां 'प्राप्यकारी' हैं। यद्यपि मन भी अप्राप्यकारी है, किन्तु वह प्राप्यकारी इन्द्रियों के साथ भी रहता है। मन सब इन्द्रियों के साथ रहता है, किन्तु प्राप्यकारी इन्द्रियां चार हैं और अप्राप्यकारी सिर्फ एक है। अतएव मन प्राप्यकारी इन्द्रियों के साथ अधिक रहता है, इस कारण अप्राप्यकारी होने पर भी उसे प्राप्यकारी इन्द्रियो के साथ गिना गया है। इसलिए मन से और चार इन्द्रियों से होने वाला दर्शन 'अचक्षुदर्शन' कहलाता है और आंख से होने वाला दर्शन 'चक्षुदर्शन' कहलाता है।

अथवा-दर्शन का दूसरा अर्थ 'सम्यक्त्व' है। उसके विषय में शंका इस प्रकार हो सकती है-शास्त्र मे सम्यक्त्व के क्षायोपशमिक और औपशमिक आदि भेद बतलाये गये हैं। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का लक्षण यह बतलाया गया है कि-जब उदीर्ण (उदय मे आया हुआ) मिथ्यात्व का क्षय हो गया हो और अनुदीर्ण (उदय में नही आया हुआ) मिथ्यात्व उपशान्त हो गया हो, तब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होती है। जैसा कि कहा है-

मिच्छत्तं जमुदिण्णं तं खीणं, अणुदियं च उवसंतं।

अर्थ-उदीर्ण मिथ्यात्व का क्षय और अनुदीर्ण का उपशम होना 'क्षायोपशमिक' सम्यक्त्व है।

औपशमिक सम्यक्त्व का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है-

खीणम्मि उइण्णम्मि अणुदिज्जंते य सेसमिच्छत्ते।
अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥

अर्थ-उदय में आये हुए मिथ्यात्व का क्षय होने पर और शेष मिथ्यात्व के उदय में न आने पर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र के लिए जीव को उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक सम्यक्त्व का लक्षण एक-सा मालूम होता है। फिर इन दोनों दर्शनो को अलग अलग क्यों कहा गया है?

इस प्रकार की शंका होने पर विचिकित्सा आदि के द्वारा कलुषितता में पड़ कर श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षा-मोहनीय कर्म का वेदन करते हैं।

इस शंका का समाधान यह है कि-क्षयोपशम और उपशम का लक्षण एक नही है। अलग अलग है। अतएव इन दोनों से होने वाले सम्यक्त्व भी अलग अलग है।

क्षयोपशम और उपशम का भेद यह है-क्षयोपशम में उदय में आये हुए कर्म का तो क्षय हो जाता है और उदय में नही आये हुए का विपाक से उपशम होता है, किन्तु प्रदेश से उपशम नही होता, अर्थात् विपाकोदय नही होता, किन्तु प्रदेशोदय होता है। उपशम सम्यक्त्व में विपाकानुभव और प्रदेशानुभव दोनो ही नही होते। जैसा कि कहा है-

वेएइ संतकम्म खओवसमिएसु णाणुभावं सो।
उवसंतकसाओ पुण, वेएइ ण संतकम्मं ॥

अर्थात्-क्षायोपशमिक भाव मे विपाकानुभव नही होता है, किन्तु प्रदेशानुभव होता है। उपशम भाव मे विपाकानुभव और प्रदेशानुभव इन दोनो से वेदन नही होता।

इसके अतिरिक्त औपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त मात्र की है और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति ६६ सागर झाझेरी (कुछ अधिक) है। इस प्रकार दोनो दर्शन भिन्न भिन्न है।

३ चारित्रान्तर-चारित्रान्तर का स्वरूप इस प्रकार है-सामायिक चारित्र और छेदोपस्थापनीय चारित्र अलग अलग है। इनके विषय में यह शका होती है कि-इन दोनों का लक्षण तो एक-सा मालूम होता है, फिर इन्हे अलग अलग क्यों कहा? सामायिक चारित्र में सर्व सावद्य योग का त्याग है और छेदोपस्थापनीय चारित्र में महाव्रत है, किंतु महाव्रत भी सर्व सावद्य योग का त्याग ही है। फिर इन दोनों चारित्रों को अलग अलग क्यो कहा?

इस शंका का समाधान यह है-

रिउवक्कजडा पुरिमेयराण समाइए वायारूहणं।
मणयमसुद्धे पि जओ, सामाइए हुंति हु वयाइं ॥

अर्थ-प्रथम तीर्थङ्कर के साधु ऋजुजड़ होते है और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु वक्र-जड़ होते है। इसलिए छेदोपस्थापनीय चारित्र की स्थापना की है, क्योंकि सामायिक चारित्र में थोड़ा-सा भी दोष लग जाने पर छेदादि के द्वारा उसकी शुद्धि हो जाती है। तात्पर्य यह है कि वास्तव में तो सामायिक चारित्र ही है, लेकिन समय और प्रकृति के भेद से इसमे भेद किया गया है। इन साधुओं को आश्वासन देने के लिए छेदोपस्थापनीय चारित्र बतलाया गया है। इन्हें पहले सामायिक चारित्र ही दिया जाता है और फिर सात

दिन, चार मास या छह मास बाद निरतिचार अवस्था में भी छेदोपस्थापनीय चारित्र अर्थात् महाव्रतों का आरोपण किया जाता है। महाव्रत धारण करने के बाद यदि किसी कारण से चारित्र में दोष लग भी जावे, तो इस विचार से उन्हें शान्ति होगी कि मैंने दोषों के परिमार्जन से अपने महाव्रतो की रक्षा करली है। यदि ऐसा न किया गया होता, केवल सामायिक चारित्र ही धारण कराया गया होता और महाव्रत रूप छेदोपस्थापनीय चारित्र धारण न कराया जाता, तो सामायिक चारित्र में दोष लग जाने पर साधु यही सोचता कि मेरे सामायिक चारित्र में दोष लगने से मेरा चारित्र ही नष्ट हो गया है। इसलिए उन्हें आश्वासन दिया कि तुम्हारे सामायिक चारित्र में दोष लग गया है, किन्तु प्रायश्चित्तादि के द्वारा तुम्हारे महाव्रतों की शुद्धि होगई है।

इस कारण सामायिक चारित्र और छेदोपस्थापनीय चारित्र को अलग अलग कहा है।

४ लिंगान्तर-कांक्षामोहनीय के वेदन का चौथा कारण लिंगान्तर है। लिंग अर्थात् वेश के विषय में यह शंका होती है कि-बीच के बाईस तीर्थङ्करों ने अपने साधुओं के लिए जैसा मिले वैसा ही वस्त्र रखने की आज्ञा दी। इनके शासन में रग और परिमाण का कोई नियम नहीं है। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुओं के लिए परिमाणोपेत श्वेत वस्त्र रखने की ही आज्ञा दी है। सर्वज्ञों के वचनों मे परस्पर विरोध नही होता। फिर यह दो तरह की आज्ञा क्यों दी गई ?

इस शंका का समाधान यह है कि-प्रथम तीर्थङ्कर के साधु 'ऋजुजड़' और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु 'वक्रजड' होते हैं। बीच के बाईस तीर्थङ्करो के साधु 'ऋजुप्राज्ञ' होते हैं। इस प्रकार स्वभाव भेद के कारण यह भिन्न भिन्न आज्ञा दी गई है। इसमें मौलिक सैद्धांतिक अन्तर कुछ भी नही है। सब तीर्थङ्करों द्वारा प्रतिपादित तत्त्व एक ही है।

५ प्रवचनान्तर-प्रवचन के विषय में शका इस प्रकार हो सकती है-बीच के बाईस तीर्थङ्करों ने चार महाव्रतों का प्रतिपादन किया है और प्रथम तथा अन्तिम तीर्थङ्कर ने पांच महाव्रतों का प्रतिपादन किया है। यह भेद क्यों है ? सर्वज्ञों के वचनों में परस्पर विरोध नही होना चाहिए ?

इस शंका का समाधान यह है कि-बीच के बाईस तीर्थङ्करो ने चार महाव्रत रूप जो धर्म कहा है, वह पांच महाव्रत रूप ही समझना चाहिए। क्योंकि चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत को पांचवें परिग्रह विरमण व्रत में अन्तर्गत कर लिया है। क्योंकि-

"योषा हि नापरिगृहीता भुज्यते"

अर्थात्-अपरिगृहीत स्त्री भोगी नहीं जाती है। इस अपेक्षा से स्त्री परिगृह रूप ही

है। इसलिए मध्य के बाईस तीर्थङ्करों ने स्त्री को परिग्रह में गिन लिया है और प्रथम तथा अन्तिम तीर्थङ्कर ने मैथुन त्याग रूप महाव्रत अलग बतला दिया है। अतः तीर्थङ्करो की प्ररूपणा में परस्पर कुछ भी भेद नही है।

६ प्रावचनिकान्तर-प्रवचन का अध्ययन करने वाला एवं प्रवचन का ज्ञाता प्रावचनिक कहलाता है। तत् तत् काल की अपेक्षा बहुश्रुत (बहुत आगमों का ज्ञाता) पुरुष प्रावचनिक कहलाता है। इनके विषय में शंका इस प्रकार हो सकती है कि-एक प्रावचनिक इस प्रकार आचरण करता है और दूसरा प्रावचनिक इस प्रकार आचरण करता है। फिर किसकी बात सत्य मानी जाय ?

इसका समाधान यह है कि-चारित्रमोहनीय कर्म से क्षयोपशम की विचित्रता के कारण प्रावचनिकों की प्रवृत्ति में भेद हो सकता है, किन्तु वही प्रवृत्ति प्रमाणभूत है जो आगम विरुद्ध नही हो, किन्तु आगमानुकूल हो।

७ कल्पान्तर-कल्प के विषय में शंका इस प्रकार हो सकती है-जिनकल्पी मुनि नग्न रहते हैं। नग्न रहने में बड़ा कष्ट होता है। उनके कल्प में यह कष्ट सहन कर्मक्षय के लिए है। स्थविरकल्पी मुनि वस्त्र पात्र आदि रखते हैं। उन्हे जिनकल्पी की भांति कष्ट नही होता। फिर उनका कल्प कर्मक्षय का कारण कैसे हो सकता है ? यदि स्थविरकल्प भी कर्मक्षय का कारण है, तो फिर जिनकल्प का उपदेश क्यों दिया गया ?

इस शंका का समाधान यह है कि-दोनों कल्प सर्वज्ञ भगवान् के फरमाये हुए है। और अवस्था भेद से दोनों कल्प कर्मक्षय के कारण है। कष्ट और अकष्ट विशिष्ट कर्मक्षय के लिए कोई कारण नही है।

८ मार्गान्तर-मार्ग के विषय मे शंका इस प्रकार हो सकती है-मार्ग का अर्थ है-'परम्परा से चली आती हुई समाचारी' पद्धति। किसी की समाचारी दो लोगस्स रूप कायोत्सर्ग करने की है और किसी की इससे भिन्न है। तो इसमे ठीक क्या है ?

इसका समाधान यह है कि-जो समाचारी आचरित लक्षण युक्त हो वही ठीक है। आचरित लक्षण का आशय बतलाने के लिए कहा गया है-

असढेण समाइण्णं जं कत्थइ केणइ असावज्जं।
ण णिवारियमण्णेहिं, बहुमणुमयमेयमायरियं ॥

अर्थ-सरल स्वभाव वाले निष्कपट पुरुष ने जिसका आचरण किया हो, शास्त्र में किसी जगह पर जिसका निषेध न किया गया हो, जो असावद्य-निष्पाप हो, तथा बहुजन द्वारा अनुमत हो उसे 'आचरित' कहते हैं।

६ मतान्तर-एक ही विषय में आचार्यों का भिन्न भिन्न मत होना 'मतान्तर' कहलाता है। मतान्तर किस प्रकार होता है, इसके लिए एक उदाहरण दिया गया है-श्री सिद्धसेन दिवाकर और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, दोनों बड़े विद्वान आचार्य हुए हैं। इन दोनों मे एक विषय पर मतभेद होगया। सिद्धसेन दिवाकर का कथन है कि-केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग एक साथ होता है। ऐसा न माना जाय, तो केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय कर्म के क्षय की निरर्थकता हो जायगी।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का कथन है कि-दोनों का उपयोग भिन्न भिन्न समय में होता है, क्योंकि जीवों का स्वभाव ही ऐसा है। जीव जब सामान्य को देखता है, तो उसे विशेष का ज्ञान नहीं होता और जब विशेष का ज्ञान होता है तब सामान्य को नहीं देखता है। जैसेकि-मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्मों का क्षयोपशम एक साथ होने पर भी दोनों का उपयोग एक साथ नहीं होता। जब मतिज्ञान का उपयोग होता है, तब श्रुतज्ञान का नहीं और जब श्रुतज्ञान का उपयोग होता है, तब मतिज्ञान का नहीं। एक ज्ञान का उपयोग होने पर दूसरे ज्ञान का क्षयोपशम मिट जाता हो, ऐसी बात भी नहीं हैं। अतएव जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनो का एक साथ क्षयोपशम होने पर भी उपयोग क्रमपूर्वक ही होता है। उसी प्रकार केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग भी क्रमपूर्वक ही होते हैं।

मति ज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की स्थिति ६६ सागरोपम से कुछ अधिक है। यदि एक के उपयोग के समय दूसरे का उपयोग न माना जाय, तो ६६ सागरोपम से कुछ अधिक की स्थिति पूरी न होगी, अतः स्थिति में कमी माननी पड़ेगी।

इस शंका का समाधान यह है कि-जो बात आगम सम्मत हो उसको मान्य करना चाहिये और दूसरी बात की उपेक्षा कर देना चाहिए।

उक्त प्रश्नोत्तर के सम्बन्ध मे पन्नवणा सूत्र में कहा है कि-'केवली भगवन् जिस समय देखते है, उस समय जानते नही हैं और जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि-केवलज्ञान और केवलदर्शन का एक साथ उपयोग होना शास्त्रसम्मत नही है। शास्त्र में दोनों का उपयोग अलग अलग समय में बतलाया गया है। अतएव जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की बात शास्त्रानुकूल है।

कौनसी बात आगम सम्मत है और कौनसी बात आगम सम्मत नही है ? इसका निर्णय तो बहुश्रुत पुरुष ही कर सकते है, परन्तु जो बहुश्रुत न हो वह इस बात का निर्णय

नही कर सकता, तब क्या करना चाहिए ? तब विवादग्रस्त बात के लिए इस प्रकार विचार करना चाहिए कि-आचार्यो का यह मतभेद सम्प्रदायादि के दोष से है, परन्तु जिनेन्द्र भगवान् का मत तो एक है और वह परस्पर अविरुद्ध है। क्योकि वे रागादि रहित है। कहा है कि-

अणुवकय पराणुग्गह परायणा जं जिणा जुगप्पवरा।
जियरागदोसमोहा य णण्णहा वाइणो तेणं ॥

अर्थ-जिन जीवो ने अपने पर किसी प्रकार का उपकार नही किया है, उन प्राणियों पर भी उपकार और अनुग्रह करने वाले जिनेन्द्र भगवान् राग द्वेष और मोह को जीते हुए होते हैं, इसलिए वे अन्यथावचन-झूठवचन नही कहते हैं। "नान्यथावादिनो जिना:"-जिनेन्द्र भगवान् अन्यथावादी नही होते है, क्योकि उनके झूठ बोलने का कोई कारण नही है।

१० भंगान्तर-द्रव्यादि संयोग से होने वाले भंगों को देखकर इस प्रकार शका हो जाती है। जैसा कि हिंसा के सम्बन्ध में चार भंग कहे गये है। यथा-

१ द्रव्य से हिंसा, भाव से नही।
२ द्रव्य से हिंसा नही, भाव से हिंसा।
३ द्रव्य से भी हिंसा नही, भाव से भी हिंसा नही।
४ द्रव्य से भी हिंसा, भाव से भी हिंसा।

ये हिंसा सम्बन्धी चार भंग है। इनमे से पहले भंग के लिए यह शंका होती है कि-उसमें हिंसा का लक्षण नही घटता। फिर उसे हिंसा क्यों कहा गया ? द्रव्य से हिंसा हो, किन्तु भाव से हिंसा न हो, तो वह हिंसा नही कहलाती, जैसे कि-मुनि ईर्यासमिति से देख कर चलते है, फिर भी उनके पैर से चीटी आदि जीव मर जाय, तो मुनि को चीटी मारने की हिंसा नही लगती। इस प्रकार भावहीन द्रव्य हिंसा मे हिंसा का लक्षण घटित नही होता। हिंसा का लक्षण इस प्रकार कहा गया है-

जो उ पमत्तो पुरिसो, तस्स य जोगं पडुच्च जे सत्ता।
वावज्जंति णियमा, तेसिं सो हिंसओ होई ॥

अर्थात्-जो पुरुष प्रमादी है, अहंकार, विषय, कषाय, आदि प्रमादो के वशवर्ती है उसके योग द्वारा प्राणी की जो हिंसा होती है, उसे हिंसा समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि प्रमाद के योग से जीव का मारना हिंसा है।

हिंसा का यह लक्षण पहले भंग में तो घटित नही होता और शास्त्र मे तो इसको

हिंसा कहा है। यह कैसे ?

इस शंका का समाधान यह है कि-इस गाथा में हिंसा का जो लक्षण बताया गया है वह द्रव्य हिंसा का नही, किंतु द्रव्य और भाव दोनों हिंसा का है। केवल द्रव्य हिंसा का लक्षण तो-जीव का मरना है। यह लक्षण प्रथम भग मे घटित हो जाता है। इसलिए हिंसा के लक्षण में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

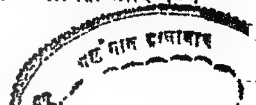
दूसरा भंग है-द्रव्य से हिंसा नही, परन्तु भाव से हिंसा। जैसे-'तन्दुलमच्छ'। यह मच्छ, मच्छलियो को खा जाने का विचार तो करता है, परन्तु मारता नही है। इसमें द्रव्य हिंसा तो नही हुई, किन्तु भावहिंसा अवश्य हुई। हिंसा का तीसरा भग और चौथा भंग स्पष्ट ही है।

११ नयान्तर-नैगम, संग्रह आदि सात नय है। इनके संक्षेप में दो भेद है-१ द्रव्यार्थिक और २ पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से जो वस्तु नित्य है, वही वस्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि-एक ही वस्तु में नित्यता और अनित्यता ये दो विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं ?

इस शंका का समाधान यह है कि-एक ही वस्तु में नित्यता और अनित्यता, ये दोनो भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से घटित होती है। अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य है और पर्याय की अपेक्षा वस्तु अनित्य है। एक ही समय मे एक ही वस्तु में भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से विरुद्ध धर्मों का समावेश होता है। यह बात लोक में भी प्रसिद्ध है कि-एक ही आदमी अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहलाता है और अपने पुत्र की अपेक्षा वह पिता कहलाता है। इसलिए अपेक्षा भेद से वस्तु मे विरुद्ध धर्म रह सकते हैं। इसमें शंका की कोई बात नहीं है।

१२ नियमान्तर-नियम का अर्थ है-'अभिग्रह'। इसमे इस प्रकार शंका हो सकती है कि-एक ही नियम करना, फिर दूसरे नियम करने की क्या आवश्यकता है ? जैसे-जब साधुपन अंगीकार कर लिया तब सब प्रकार के सावद्य योग का प्रत्याख्यान कर लिया है, फिर पोरिसी, दोपोरिसी आदि का पच्चक्खाण क्यो किया जाता है ? सर्वविरति सामायिक करने मे सब गुण आ चुके, फिर शास्त्र मे पोरिसी आदि का त्याग क्यो बतलाया गया है ?

इस शका का समाधान यह है कि-सर्व विरति सामायिक होने पर भी पोरिसी आदि का पच्चक्खाण करना ठीक ही है। क्योंकि सर्वविरति सामायिक कर लेने पर भी प्रमाद का नाश करने वाले और अप्रमाद गुण की वृद्धि करने वाले पोरिसी आदि पच्च-



क्खाण करना ही चाहिए। जैसा कि कहा है-

सामाइए वि हु सावज्जचागरूवे उ गुणकरं एयं।
अप्पमायवुड्ढिजणगत्तणेणं आणाओ विण्णेयं ॥

अर्थ-सर्व सावद्य त्याग रूप सामायिक के होने पर भी पोरिसी आदि का पच्चक्खाण करना गुणकारक है। क्योंकि ऐसे नियम अप्रमत्त गुण को बढ़ाने वाले है। अत: ये जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा में हैं।

सामायिक मे अवगुण ग्रहण करने का त्याग किया है, गुण ग्रहण करने का त्याग नही किया है। अत: गुण ग्रहण करने के जितने भी नियम धारण किये जांय, अच्छा ही है।

१३ प्रमाणान्तर-शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान-ये चार प्रमाण माने गये हैं। इनमें शंका इस प्रकार होती है कि-प्रत्यक्ष भी प्रमाण है और आगम भी प्रमाण है। किन्तु इन दोनों में विरोध प्रतीत होता है, जैसा कि आगम में कहा है कि-सूर्य सुमेरु पर्वत की समतल भूमि से आठ सौ योजन ऊपर घूमता है। किन्तु प्रत्यक्ष में सूर्य पृथ्वी से निकलता हुआ दिखाई देता है। इन दोनो में कौनसा प्रमाण सच्चा है?

इसका समाधान यह है कि-जिस तरह से हम सूर्य को पृथ्वी से निकलता हुआ देखते है। यह प्रत्यक्ष सत्य नही है, भ्रांत है, क्योंकि दूर की वस्तु बहुत छोटी दिखाई देती है और उसके विषय में भ्रांति भी हो सकती है। सूर्य हमसे बहुत दूर है। इसलिए उसके विषय में भ्रांति होजाना संभवित है। आगम में कही हुई बात सत्य है।

इन सब कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय का वेदन करते है। यद्यपि कांक्षा-मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय है और श्रमण निर्ग्रन्थों में मिथ्यात्व नही होता है, इसलिए उन्हें दो ही क्रिया लगती है,-१ आरम्भिकी और २ मायाप्रत्यया। तथापि उनके दर्शन-मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से सम्यक्त्व तो है, और क्षयोपशम में मिथ्यात्व मोहनीय के प्रदेशों का किञ्चित् उदय भी रहता है, इससे कांक्षामोहनीय का वेदन होना सहज है। कांक्षा-मोहनीय के वेदन रूप शंका आदि होने पर उनका समाधान कर लेना चाहिए। यदि किसी समय शंका का समाधान करने वाला न मिले, तो ऐसा विचार करना चाहिए कि-'जिनेन्द्र भगवान् ने जो फरमाया है वह सत्य और नि:शंक है'। ऐसा विचार कर तदनुसार आच-रण करने वाला जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

॥ प्रथम शतक का तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक १ उद्देशक ४

कर्म प्रकृतियाँ

१४६ प्रश्न-कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

१४६ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, कम्मप्पगडीए पढमो उद्देसो नेयव्वो जाव-अणुभागो सम्मत्तो । गाहाः-

कइ पयडी ? कह बंधइ ? कइहिं च ठाणेहिं बंधइ पयडी ।
कइ वेदेइ य पयडी ? अणुभागो कइविहो कस्स ?

विशेष शब्दों के अर्थ-कम्मप्पगडीओ-कर्मप्रकृतियाँ, कइ-कितनी, कह-कैसे ।

भावार्थ-१४६ प्रश्न-हे भगवन् ! कर्म प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?

१४६ उत्तर-हे गौतम ! कर्म प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं । यहाँ पर पन्नवणा सूत्र के कर्म प्रकृति नामक तेईसवें पद का पहला उद्देशक यावत् अनुभाग तक कहना चाहिए ।

गाथा का अर्थ-१ कितनी कर्म प्रकृतियाँ हैं ? २ जीव किस प्रकार बंध करता है ? ३ कितने स्थानों से कर्म प्रकृतियों को बाँधता है ? ४ कितनी प्रकृतियों को वेदता है ? ५ किस प्रकृति का कितने प्रकार का अनुभाग (रस) है ?

विवेचन-कर्मों की उदीरणा और वेदन के सम्बन्ध मे तीसरे उद्देशक में कहा गया है । इस उद्देशक मे कर्मों के भेद आदि बतलायें जाते हैं-

गौतम स्वामी ने कर्म प्रकृतियों की संख्या के सम्बन्ध में प्रश्न किया है । उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-कर्म प्रकृतियाँ आठ हैं ।

यहाँ पर पन्नवणा सूत्र के कर्मप्रकृति नामक तेईसवें पद का पहला उद्देशक कहना चाहिए । वहाँ पूछा है कि-

प्रश्न-हे भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी है ?

उत्तर-हे गौतम ! कर्म प्रकृतिया आठ हैं। यथा-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि।

प्रश्न-हे भगवन् ! जीव कर्म प्रकृतियो को किस प्रकार बाँधता हे ?

उत्तर-हे गौतम ! कर्म ही कर्म को बाँधता है अर्थात् जिस जीव मे कर्म है, उसी को कर्म का बध होता है। जिस जीव में कर्म नही है, उसको कर्म का बन्ध नही होता है। कर्म जीव के साथ अनादि काल से लगे हुए हैं। आत्मा कर्मो का कर्त्ता है और अनादि काल से वह कर्मो को उपार्जन कर रहा है। हाँ, यह अवश्य है कि कोई भी एक कर्म अनादिकालीन नही है और न अनन्त काल तक आत्मा के साथ रह सकता है, किन्तु एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार नदी के जल-प्रवाह के समान कर्म आते जाते रहते है।

कर्म किस प्रकार बँधते हैं ? इसका उत्तर यह है कि-ज्ञानावरणीय कर्म जो आत्मा ने पहले उपार्जन किया है, उसका उदय होने पर दर्शनावरणीय कर्म का भी उदय होता है। जब दर्शनावरणीय कर्म का उदय होता है, तो दर्शनमोहनीय कर्म अनुभव मे आता है। दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से जीव मिथ्यात्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार जीव आठ कर्मो को बांधता है। यह कर्म बन्ध का प्रवाह अनादि काल का है।

पन्नवणा सूत्र में आगे इस प्रकार प्रश्नोत्तर हैं-

प्रश्न-हे भगवन् ! जीव कितने स्थानो द्वारा ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है ?

उत्तर-हे गौतम ! राग और द्वेष, इन दो स्थानों द्वारा जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है।

प्रश्न-हे भगवन ! जीव कितनी कर्म प्रकृतियो को वेदता है ?

उत्तर-हे गौतम ! कोई वेदता है और कोई नही वेदता है।

प्रश्न- हे भगवन् ! क्या जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदता है ?

उत्तर-हे गौतम ! कोई जीव वेदता और कोई जीव नही वेदता है। केवली भगवान् ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय कर चुके हैं, इसलिए वे नही वेदते है।

प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक ज्ञानावरणीय कर्म वेदते है ?

उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म अवश्य वेदते हैं।

प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म का रस कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-हे गौतम ! दस प्रकार का कहा गया है। यथा-श्रोत्रावरण, श्रोत्रविज्ञानावरण आदि। श्रोत्र आदि पांच द्रव्येन्द्रियों का आवरण और श्रोत विज्ञान आदि पांच भावेन्द्रियो का आवरण।

इस तरह पन्नवणा सूत्र के 'कर्मप्रकृति' पद के अनुसार वर्णन करना चाहिए।

उपस्थान-परलोक की क्रिया

१४७ प्रश्न-जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं उवट्ठाएज्जा ?

१४७ उत्तर-हंता, उवट्ठाएज्जा।

१४८ प्रश्न-से भंते ! किं वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

१४८ उत्तर-गोयमा ! वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो अवीरिएत्ताए उवट्ठाएज्जा।

१४९ प्रश्न-जइ वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, किं बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

१४९ उत्तर-गोयमा ! बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।

विशेष शब्दों के अर्थ-उवट्ठाएज्जा-उपस्थान (परलोक की क्रिया) करता है, वीरियत्ताए-वीर्य से, अवीरियत्ताए-अवीर्य से।

भावार्थ-१४७ प्रश्न-हे भगवन् ! जब मोहनीय कर्म उदय में आया हुआ हो तब क्या जीव उपस्थान-परलोक की क्रिया करता है ?

१४७ उत्तर-हाँ, गौतम ! उपस्थान करता है।

१४८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव वीर्य से उपस्थान करता है, या अवीर्य से ?

१४८ उत्तर-हे गौतम ! जीव वीर्य से उपस्थान करता है, अवीर्य से नहीं करता है।

१४९ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वीर्य से उपस्थान करता है, तो क्या बालवीर्य से करता है, या पण्डित वीर्य से अथवा बालपण्डित वीर्य से ?

१४९ उत्तर-हे गौतम ! बालवीर्य से ही उपस्थान करता है, किन्तु पण्डितवीर्य और बालपण्डित वीर्य से उपस्थान नहीं करता है।

विवेचन-कर्मप्रकृतियों के विषय में सामान्य रूप से विचार करने के पश्चात् मोहनीय कर्म के विषय मे विचार किया गया है। गौतम स्वामी ने पूछा है कि-हे भगवन् ! जीव ने जो मोहनीय कर्म किया है, वह जब उदय में आया हो, तब क्या जीव परलोक साधन के लिए क्रिया करता है ? उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हाँ, गौतम करता है। यहाँ-साधारण मोहनीय कर्म का कथन नही है, किन्तु मिथ्यात्वमोहनीय का कथन है।

मोहनीय कर्म का उदय होने पर भी जीव परलोक की क्रिया करता है और वह वीर्य से करता है, अवीर्य से नहीं। वह वीर्य तीन प्रकार का है-१ बालवीर्य, २ पडित-वीर्य और ३ बाल-पण्डित वीर्य। जिस जीव मे अर्थ का सम्यक् बोध न हो और सद्बोध के फलस्वरूप विरति न हो (क्योकि सम्यग्ज्ञान का फल विरति-चारित्र है) अर्थात् जो मिथ्यादृष्टि हो उसे 'बाल' कहते है। बाल जीव का वीर्य (पुरुषार्थ) बालवीर्य कहलाता है। जो जीव सर्व पापों का त्यागी होता है, उसे पण्डित कहते है। जिसने शुष्क ज्ञान पढा और पापो का त्याग नही किया, उसका ज्ञान निष्फल है। कहा भी है-

तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति राग गणः।
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ॥

अर्थात्-ज्ञान के सद्भाव में भी राग द्वेष पाये जावें, वह ज्ञान नही हो सकता। ज्ञान का फल, राग द्वेष को टालना है। जिस ज्ञान से यह फल प्राप्त न हो सका, वह ज्ञान ज्ञान नही कहा जा सकता, क्योंकि जाज्वल्यमान सूर्य की किरणों के सामने ठहरने की शक्ति अन्धकार मे कहां है ? अर्थात् सूर्य का प्रकाश फैलने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। अतः

जिसके फैलने पर अन्धकार बना रहे, उसे सूर्य का प्रकाश कैसे कहा जा सकता है ? इसी प्रकार ज्ञान के होने पर राग द्वेष का नाश होना चाहिए। । यदि राग द्वेष का नाश न हो, तो उसे ज्ञान ही नही कहा जा सकता । तात्पर्य यह है कि जो सर्व विरत हो, उसे 'पण्डित' कहते हैं । पण्डित जीव का वीर्य 'पण्डित वीर्य' कहलाता है।

बाल पण्डित-जिन जिन त्याज्य कामों (पापो) को त्यागा नही है, उतने अंश में 'बालपन' है और जितने जितने त्याज्य कामों को त्यागा है, वह 'पण्डितपन' है । अर्थात् देशविरति वाले श्रावक को 'बालपण्डित' कहते हैं । बालपण्डित जीव का वीर्य 'बाल-पण्डित वीर्य' कहलाता है ।

जब मिथ्यात्व का उदय होता है, तब जीव मिथ्यादृष्टि गिना जाता है । जब जीव मिथ्यादृष्टि वाला होता है तब वह 'बालवीर्य' वाला होता है । बालवीर्य से ही जीव उप-स्थान-परलोक की क्रिया करता है । बालपण्डितवीर्य और पण्डित वीर्य से जीव उपस्थान नही करता है ।

अपक्रमण-पतन

१५० प्रश्न-जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं अवक्कमेज्जा ?

१५० उत्तर-हंता, अवक्कमेज्जा ।

१५१ प्रश्न-से भंते ! जाव-बालपंडियवीरियत्ताए अवक्क-मेज्जा ?

१५१ उत्तर-गोयमा ! बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, नो पंडि-यवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, सिय बालपंडियवीरियत्ताए अवक्क-मेज्जा । जहा उदिण्णेणं दो आलावगा तहा उवसंतेण वि दो आलावगा भाणियव्वा; नवरं-उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए, अवक्क-

मेज्जा, बालपंडियवीरियत्ताए ।

१५२ प्रश्न-से भंते ! किं आयाए अवक्कमइ, अणायाए अवक्कमइ ?

१५२ उत्तर-गोयमा ! आयाए अवक्कमइ, णो अणायाए अवक्कमइ ।

१५३ प्रश्न-मोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे से कहमेयं भंते ! एवं ?

१५३ उत्तर-गोयमा ! पुव्विं से एयं एवं रोयइ, इयाणिं से एयं एवं नो रोयइ; एवं खलु एयं एवं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-उवक्कमेज्जा-अपक्रमण करता है, उदिण्णेणं-उदीर्ण=उदय में आया हुआ, उवसंतेण-उपशान्त, आयाए-आत्मा से, अणयाए-अनात्मा से ।

भावार्थ-१५० प्रश्न-हे भगवन् ! उपार्जन किया हुआ मोहनीय कर्म जब उदय में आया हो, तो क्या जीव अपक्रमण करता है अर्थात् उत्तम गुणस्थानक से हीन गुणस्थानक में जाता है ?

१५० उत्तर-हाँ, गौतम ! अपक्रमण करता है ।

१५१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव बालवीर्य से अपक्रमण करता है ? या पण्डितवीर्य से अथवा बालपण्डितवीर्य से ?

१५१ उत्तर- बालवीर्य से अपक्रमण होता है और कदाचित् बालपण्डित वीर्य से भी अपक्रमण होता है, किन्तु पण्डित वीर्य से नहीं होता । जैसे 'उदय में आये हुए' पद के साथ दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार 'उपशान्त' पद के साथ भी दो आलापक कहना चाहिए । विशेषता यह है कि यहाँ पण्डितवीर्य से उपस्थान होता है और बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण होता है ।

१५२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अपक्रमण आत्मा से होता है, या अनात्मा से ?

१५२ उत्तर-हे गौतम ! अपक्रमण आत्मा से होता है, अनात्मा से नहीं ।

१५३ प्रश्न—हे भगवन् ! मोहनीय कर्म को वेदता हुआ यह इस प्रकार क्यों होता है ?

१५३ उत्तर—हे गौतम ! पहले उसे इस प्रकार रुचता है और अब उसे इस प्रकार नहीं रुचता है। इस कारण यह इस प्रकार होता है।

विवेचन—उपस्थान का विपक्ष अपक्रमण है। इसलिए उपस्थान के पश्चात् अपक्रमण का प्रश्न किया गया है। मोहनीय कर्म जब उदय मे आता है तब जीव अपक्रमण करता है, अर्थात् उन्नत गुणस्थान से गिर कर नीचे हीन गुणस्थान में आता है। यह अपक्रमण बालवीर्यता से होता है और कदाचित् बालपण्डित वीर्यता से भी होता है, परन्तु पण्डितवीर्यता से नही होता। जब मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होता है, तब जीव सम्यक्त्व से, सयम से या देशसंयम से गिरकर मिथ्यादृष्टि हो जाता है। पण्डित वीर्यता अपक्रमण का कारण नही है। इसलिए पण्डितवीर्यता में अपक्रमण का निषेध किया गया है। कदाचित् चारित्र मोहनीय का उदय हो, तो सर्वविरति सयम से पतित होकर बालपण्डित वीर्यता (देशविरति) में आ जाता है।

यहां पाठान्तर भी है—'बालवीरियत्ताए णो पण्डितवीरियत्ताए, णो बालपण्डितवीरियत्ताए' अर्थात्—जब मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होता है तब सिर्फ बालवीर्य ही होता है, पडितवीर्य और बालपंडितवीर्य नही होता है।

उदीर्ण—उदय का विपक्षभूत 'उपशम' है। इसलिए अब 'उपशम' के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया है। उपशम सम्बन्धी प्रश्नोत्तर उदय के समान ही समझना चाहिए। विशेषता यह है कि जब मोहनीय कर्म सर्वथा उपशान्त होता है, तब पण्डितवीर्य से क्रिया में उपस्थान होता है। क्योकि जब मोह उपशान्त हो जाता है उस अवस्था मे सिर्फ पडितवीर्य ही होता है, शेष दो वीर्य नही होते।

वृद्धपुरुषो ने तो किसी एक वाचना का आश्रय लेकर इस प्रकार कथन किया है कि—जब मोहनीय कर्म उपशान्त होता है, तब जीव मिथ्यादृष्टि नही होता, किन्तु सर्वविरत (साधु) या देशविरत (श्रावक) होता है।

अपक्रमण सम्बन्धी प्रश्नोत्तर मे इस प्रकार समझना चाहिए कि जब मोहनीय कर्म उपशान्त होता है, तब बालपण्डितवीर्य के चलते सयतपने से गिर कर देश-संयत होता है। क्योकि उसका मोहोपशम अमुक अंश मे होता है। परन्तु वह मिथ्यादृष्टि नही होता है, क्योकि मोहनीय कर्म का उदय होने पर ही मिथ्यादृष्टि होता है। यहां तो मोह के उपशम

का प्रकरण है। इसलिए मोहोपशम सम्बन्धी बात बताई गई है।

आगे प्रश्न किया गया है कि-अपक्रमण आत्मा द्वारा होता है या अनात्मा द्वारा, अर्थात् दूसरों के द्वारा होता है ? इसका उत्तर दिया गया कि अपक्रमण आत्मा द्वारा ही होता है, अनात्मा द्वारा नहीं। मिथ्यात्व मोहनीय या चारित्रमोहनीय को वेदता हुआ जीव (अर्थात् जिस के मोहनीय कर्म उदय मे आया हुआ है ऐसा संयत जीव) पहले पण्डितरुचि होकर फिर मिश्ररुचि या मिथ्यात्वरुचि हो जाता है। इसमें आत्मा ही कारण है, दूसरा कारण नहीं है।

फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! मोहनीय कर्म को वेदते हुए जीव के अपक्रमण किस प्रकार होता है ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! अपक्रमण होने से पहले वह जीव, जीवादि नौ पदार्थों को मानता था, उन पर श्रद्धा रखता था और यह भी मानता था कि धर्म का मूल अहिंसा है। जिनेन्द्र भगवान् ने जैसा तत्त्व प्रतिपादन किया है, वह वैसा ही है। इस प्रकार धर्म के प्रति उसकी रुचि और श्रद्धा थी। किंतु अब उसे पहले रुचने वाली बातें अरुचिकर लगती है। जब उसे जिनधर्म की बातें रुचती थी तब वह सम्यग्दृष्टि था। जब नहीं रुचती है, तो उसका कारण मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का वेदन है। इस अरुचि के फल स्वरूप मिथ्यात्व मोहनीय कर्म वेदता है और ऊपर के गुणस्थानों से गिर जाता है।

कर्मक्षय से मोक्ष

१५४ प्रश्न-से णूणं भंते ! नेरइयस्स वा, तिरिक्खजोणियस्स वा, मणूस्स वा, देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे, नत्थि तस्स अवेइयत्ता मोक्खो ?

१५४ उत्तर-हंता, गोयमा ! नेरइयस्स वा, तिरिक्ख-मणु-देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे, नत्थि तस्स अवेइत्ता मोक्खो।

१५५ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नेरइयस्स वा जाव-

मोक्खो ?

१५५ उत्तर-एवं खलु मए गोयमा ! दुविहे कम्मे पन्नत्ते। तं जहाः-पएसकम्मे य, अणुभागकम्मे य, तत्थ णं जं तं पएसकम्मं तं नियमा वेएइ, तत्थ णं जं तं अणुभागकम्मं तं अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं णो वेएइ, णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विन्नायमेयं अरहया-इमं कम्मं अयं जीवे अब्भोवगमियाए वेयणाए वेदेस्सइ, इमं कम्मं अयं जीवे उवक्कामियाए वेदणाए वेदेस्सइ, अहाकम्मं, अहानिगरणं जहा जहा तं भगवया दिट्ठं तहा तहा तं विप्परिणमिस्सतीति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! नेरइयस्स वा जाव-मुक्खे।

विशेष शब्दों के अर्थ-अवेईअत्ता-भोगेविना, मोक्खो-मोक्ष=छुटकारा, पएसकम्मे-प्रदेशकर्म, अणुभागकम्मे-अनुभागकर्म, अब्भोवगमियाए-आभ्युपगमिक-स्वेच्छा से स्वीकृत, उवक्कमियाए-औपक्रमिक-अज्ञान पूर्वक सही जानेवाली वेदना, अहाकम्मं-बांधे हुए कर्म के अनुसार, अहानिगरणं-निकरणो के अनुसार अर्थात् देश कालादि की मर्यादा के अनुसार।

भावार्थ-१५४ प्रश्न-हे भगवन् ! जो पापकर्म किया है, क्या उसे भोगे बिना नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव का मोक्ष नहीं होता है ?

१५४ उत्तर-हाँ, गौतम ! किये हुए कर्म को भोगे बिना नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव का मोक्ष नहीं होता।

१५५ प्रश्न-हे भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं कि कृतकर्मों को भोगे बिना नारकी यावत् देव किसी का भी मोक्ष नहीं होता ?

१५५ उत्तर-हे गौतम ! यह निश्चित है कि-मैंने कर्म के दो भेद बताये हैं। वे इस प्रकार हैं-१ प्रदेशकर्म और २ अनुभाग कर्म। इनमें जो प्रदेश कर्म है वह अवश्य भोगना पड़ता है और जो अनुभाग कर्म है, वह कुछ वेदा

जाता है और कुछ नहीं भी वेदा जाता है। यह अरिहन्त भगवान् द्वारा ज्ञात है, स्मृत है और विज्ञात है कि-यह जीव इस कर्म को आभ्युपगमिक (स्वेच्छा से स्वीकृत) वेदना से वेदेगा और यह जीव इस कर्म को औपक्रमिक (अनिच्छा-पूर्वक) वेदना से वेदेगा। बांधे हुए कर्म के अनुसार, निकरणों के अनुसार, जैसा जैसा भगवान् ने देखा है वैसे वैसे वह विपरिणाम पायेगा। इसलिए हे गौतम ! इस कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि किये हुए कर्मों को भोगे बिना नारकी, तिर्यंच, मनुष्य या देव किसी का भी मोक्ष नहीं है।

विवेचन-अब सामान्य कर्म के सम्बन्ध मे विचार किया जाता है। नरकादि चारो गतियों के जीवो ने जो पापकर्म किये हैं, उन्हे भोगे बिना मोक्ष नही हो सकता।

यहाँ 'पापकर्म' शब्द से शुभ और अशुभ सभी कर्मो का ग्रहण किया गया है, क्योकि सभी कर्म मोक्ष प्राप्ति मे व्याघात रूप होने से 'पाप' रूप ही हैं।

मूल पाठ में जो यह कहा है कि-मए दुविहे कम्मे पण्णत्ते' अर्थात् मैंने दो प्रकार के कर्म बतलाए हैं। 'मैंने' शब्द के प्रयोग का अभिप्राय यह है कि-केवली किसी की कही हुई बात सुन कर नही कहते है, किन्तु स्वयं जान कर एवं देखकर प्ररूपणा करते है। अर्थात् सर्वज्ञ की वाणी स्वतन्त्र होती है।

जीव के प्रदेशों मे ओतप्रोत हुए कर्मपुद्गलों को प्रदेश कर्म कहते है, अर्थात् जो पुद्गल आत्मा के साथ दूध पानी की तरह एकमेक हो गये है, उन्हे 'प्रदेशकर्म' कहते है। उन प्रदेशो का अनुभव में आने वाला रस 'अनुभाग' कर्म कहलाता है।

प्रदेश कर्म निश्चय ही भोगे जाते है। विपाक अर्थात्-अनुभव न होने पर भी प्रदेश कर्म का भोग होता ही है। आत्मप्रदेश उन कर्म प्रदेशो को अवश्य गिराता है-अलग करता है।

अनुभाग कर्म कोई वेदा जाता है और कोई नही वेदा जाता है। यथा-जब आत्मा मिथ्यात्व का क्षयोपशम करता है, तब प्रदेश से तो वेदता है, किन्तु अनुभाग से नही वेदता है। यही बात अन्य कर्मो के विषय मे भी समझनी चाहिए। चारो गति के जीव किये हुए कर्म को अवश्य भोगते है, परन्तु किसी कर्म को विपाक से भोगते है और किसी को प्रदेश से भोगते हैं।

प्रदेश कर्म और अनुभाग कर्म का वेदन जिस प्रकार होता है, उसे अरिहन्त भगवान्

जानते है। छद्मस्थ इसे नही जान पाते। ये दोनों प्रकार के कर्म, किस दो प्रकार से भोगे जाते है-यह बात भगवान् ने जानी है और जैसा जाना है वैसा ही दूसरों को बताया है-स्मरण किया है, और देश काल आदि के भेद से विविध प्रकार से एवं विशेष रूप से भी जाना है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि स्मृति (स्मरण) मतिज्ञान का भेद है और मतिज्ञान केवली मे नहीं होता, इसलिए स्मृति भी उनमे नही हो सकती, फिर यहाँ केवली का 'स्मरण करना' क्यों कहा है ?

इसका समाधान यह है कि-केवली में स्मृति का अभाव है, उन्हे किसी वस्तु का स्मरण नहीं करना पड़ता है, क्योकि उनके लिए सब पदार्थ प्रत्यक्ष मे प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। फिर भी यहाँ जो 'स्मरण करना' कहा गया है उसका कारण यह है कि भगवान् के ज्ञान के साथ स्मरण का अव्यभिचार के रूप मे सादृश्य है। इसलिए 'सुयमेयं अरहया' इस पद से भगवान् मे स्मृति का अस्तित्व नही समझना चाहिए।

भगवान् अपने केवलज्ञान से साक्षात् देखते हैं कि-'यह कर्म है और यह जीव है।' दोनो के स्वरूप और सम्बन्ध को भगवान् केवलज्ञान से स्पष्ट जानते हैं। भगवान् केवलज्ञान से भूतकाल को भी देखते हैं, वर्तमान काल को भी देखते है और भविष्य काल को भी देखते है।

प्रदेश कर्म और अनुभाग कर्म दो प्रकार से भोगे जाते हैं-आभ्युपगमिक वेदना से और औपक्रमिक वेदना से। भगवान् प्रत्यक्ष देखते है कि अमुक जीव अमुक कर्म को आभ्युपगमिक वेदना से वेदेगा और अमुक कर्म को औपक्रमिक वेदना से वेदेगा।

स्वेच्छापूर्वक, ज्ञानपूर्वक कर्मफल को भोगना 'आभ्युपगमिक वेदना' कहलाती है। जैसे-प्रव्रज्या लेकर ब्रह्मचर्य पालना, भूमि पर सोना, केशलोच करना, परीषह सहना तथा विविध प्रकार का तप करना, इत्यादि वेदना जो ज्ञानपूर्वक स्वीकार की जाती है, वह 'आभ्युपगमिकी' वेदना है। केवली यह जानते हैं कि-यह जीव दीक्षा लेकर अपने कर्मो का क्षय इस प्रकार करेगा। जो कर्म अपना अबाधा काल पूर्ण होने पर स्वयं ही उदय में आते हैं अथवा जिनकी उदीरणा की जाती है उनका फल भोगना 'औपक्रमिकी' वेदना कहलाती है। अरिहन्त भगवान् जानते है कि-इस प्रकार जिस रूप से कर्म बांधे हैं उसी रूप से जीव उन्हे भोगेगा।

'अहाकम्म' का अर्थ है-यथाकर्म अर्थात् जिस रूप में कर्म बांधा है उसी रूप से

भोगना। 'अहानिगरण' का अर्थ है-'यथा निकरण' अर्थात् विपरिणाम के कारणभूत नियत देश काल आदि कारणों की मर्यादा का उल्लंघन न करके अर्थात् देश काल आदि की मर्यादा के अनुसार जो कर्म जिस रूप में भगवान् ने देखा होगा, वह उसी रूप में परिणत होगा।

चारों गतियों के जीवों ने जो कर्म बांधे हैं, उनको भोगे बिना मोक्ष नहीं हो सकता। 'जीव उनको किस प्रकार भोगेगा' यह विशेषतः सर्वज्ञ भगवन्तों देखा ने है।

पुद्गल का नित्यत्व

१५६ प्रश्न-एस णं भंते! पोग्गले अतीतं अणंतं, सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया?

१५६ उत्तर-हंता, गोयमा! एस णं पोग्गले अतीतं अणंतं, सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया।

१५७ प्रश्न-एस णं भंते! पोग्गले पडुप्पण्णं, सासयं समयं भवतीति वत्तव्वं सिया?

१५७ उत्तर-हंता, गोयमा! तं चेव उच्चारेयव्वं।

१५८ प्रश्न-एस णं भंते! पोग्गले अणागयं, अणंतं, सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया?

१५८ उत्तर-हंता, गोयमा! तं चेव उच्चारेयव्वं। एवं खंधेण वि तिण्णि आलावगा। एवं जीवेण वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा।

विशेष शब्दों के अर्थ-अतीतं-भूतकालीन, पडुप्पण्णं-वर्तमानकालीन, अणागयं-भविष्यकालीन।

भावार्थ-१५६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या यह पुद्गल अतीत अनन्त शाश्वत काल में था-ऐसा कहा जा सकता है ?

१५६ उत्तर-हाँ, गौतम ! यह रहित शाश्वत-पुद्गल परिमाण अतीतकाल में था, ऐसा कहा जा सकता है।

१५७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या यह पुद्गल वर्तमान शाश्वतकाल में है ? ऐसा कहा जा सकता है ?

१५७ उत्तर-हाँ, गौतम ! ऐसा कहा जा सकता है (पहले उत्तर के समान ही उच्चारण करना चाहिए)

१५८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या यह पुद्गल अनन्त और शाश्वत भविष्य काल में रहेगा-ऐसा कहा जा सकता है ?

१५६ उत्तर-हाँ, गौतम ! ऐसा कहा जा सकता है (पहले के उत्तर के समान ही उच्चारण करना चाहिए) इसी प्रकार स्कन्ध के साथ तीन आलापक और जीव के साथ भी तीन अलापक कहना चाहिए।

विवेचन-इससे पहले के सूत्र मे कर्म का विचार किया गया है। कर्म पुद्गल रूप है। कार्मण वर्गणा के पुद्गल आत्मा के साथ चिपक कर 'कर्म' कहलाने लगते हैं। यहाँ 'पुद्गल' का अर्थ 'परमाणु' लिया गया है। स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु, ये चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। स्कन्ध के विषय में अलग प्रश्न किया गया है और स्कन्ध से अलग हो जाने पर केवल 'परमाणु' ही रहता है। इसलिए यहाँ 'परमाणु' के विषय में ही प्रश्न किया गया है।

यहाँ 'अतीत' काल को अनन्त और शाश्वत कहा गया है। अतीत काल सदा से है, उसकी आदि (प्रारंभ) नही है, इस कारण वह परिमाण रहित है। परिमाण रहित होने के कारण वह अनन्त है और 'अतीत' काल सदा ही रहता है, कभी ऐसा अवसर नहीं आ सकता कि लोक मे अतीत काल न हो। इस कारण से अतीत काल को शाश्वत कहा है। वर्तमान काल भी शाश्वत है और भविष्यत्काल भी शाश्वत है। कभी ऐसा अवसर नही आ सकता कि लोक मे वर्तमान काल न हो तथा भविष्यत् काल न हो।

परमाणु और स्कन्ध की तरह जीव भी अनन्त और शाश्वत भूतकाल मे था, वर्तमान काल मे है और भविष्यकाल में रहेगा।

छद्मस्थादि की मुक्ति

१५९ प्रश्न—छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से अतीतं, अणंतं, सासयं समयं केवलेणं संजमेणं, केवलेणं संवरेणं, केवलेणं बंभचेरवासेणं, केवलाहिं पवयणमाईहिं सिज्झिसु, बुज्झिसु, जाव–सव्वदुक्खाणं अंतं करिंसु ?

१५९ उत्तर—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

१६० प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते , एवं वुच्चइ—तं चेव जाव–अंतं करेंसु ?

१६० उत्तर—गोयमा ! जे केइ अंतकरा, अंतिमसरीरिया वा सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा सव्वे ते उप्पण्णणाण-दंसणधरा, अरहा, जिणा, केवली भवित्ता, तओ पच्छा सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा; से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव–सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु; पडुप्पन्ने वि एवं चेव, नवरं–'सिज्झंति' भाणियव्वं, अणागये वि एवं चेव, नवरं–'सिज्झिस्संति' भाणियव्वं । जहा छउमत्थो तहा आहोहिओ वि, तहा परमाहोहिओ वि; तिण्णि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा ।

१६१ प्रश्न—केवली णं भंते ! मणूसे अतीतं, अणंतं, सासयं

समयं जाव-अंतं करेंसु ?

१६१ उत्तर-हंता, सिज्झिंसु, जाव-अंतं करेंसु, एते तिन्नि आलावगा भाणियव्वा छउमत्थस्स जहा, नवरं-सिज्झिंसु, सिज्झंति, सिज्झिस्संति ।

१६२ प्रश्न-से णूणं भंते ! अतीतं, अणंतं, सासयं समयं; पडुप्पण्णं वा सासयं; समयं अणागयं अणंतं वा सासयं समयं जे केइ अंतकरा वा, अंतिमसरीरिया वा, सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा; सव्वे ते उप्पन्नणाण-दंसणधरा, अरहा, जिणा, केवली भवित्ता, इओ पच्छा सिज्झंति, जाव-अंतं करेस्संति वा ?

१६२ उत्तर-हंता गोयमा ! अतीतं, अणंतं, सासयं जाव-अंतं करेस्संति वा ।

१६३ प्रश्न-से णूणं भंते ! उप्पण्णणाण-दंसणधरा, अरहा, जिणे केवली, 'अलमत्थु' त्ति वत्तव्वं सिया ?

१६३ उत्तर-हंता, गोयमा ! उप्पण्णणाण दंसणधरे, अरहा, जिणे, केवली 'अलमत्थु' त्ति वत्तव्वं सिया ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पवयणमाईहिं-प्रवचन माता के द्वारा, सिज्झिसु-सिद्ध हुए, बुज्झिसु-बुद्ध हुए, आहोहिओ-आधोवधिक, परमाहोहिओ-परमाधोवधिक, अलमत्थु-पूर्ण ।

भावार्थ-१५६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या बीते हुए अनन्त शाश्वत् काल में छद्मस्थ मनुष्य केवल संयम से, केवल संवर से, केवल ब्रह्मचर्यवास से और केवल प्रवचन-माता से सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् समस्त दुःखों का नाश करने वाला हुआ है ?

१५६ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१६० प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा फरमाते है ?

१६० उत्तर-हे गौतम ! जो कोई जीव कर्मों का अन्त करने वाले और चरमशरीरी हुए हैं, वे सब उत्पन्न-ज्ञान दर्शनधारी, अरिहन्त, जिन और केवली होकर फिर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए है, निर्वाण को प्राप्त हुए हैं और उन्होंने समस्त दुःखों का नाश किया है, वैसे केवली ही मुक्त होते है और होंगे। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा है कि यावत् समस्त दुःखों का अन्त किया। वर्तमान काल में भी इसी प्रकार जानना। विशेष यह है कि 'सिद्ध होते-है' ऐसा कहना चाहिए। तथा भविष्य काल में भी इसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि 'सिद्ध होंगे' ऐसा कहना चाहिए। जैसा छद्मस्थ के विषय में कहा है वैसा ही आधोवधिक और परमाधोवधिक के विषय मे समझना चाहिए और उसके तीन आलापक कहना चाहिए।

१६१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या बीते हुए अनन्त शाश्वत् काल में केवली मनुष्य ने यावत् समस्त दुःखों का अन्त किया है ?

१६१ उत्तर-हाँ, गौतम ! वह सिद्ध हुआ यावत् उसने सब दुखों का अन्त किया। यहाँ छद्मस्थ के समान तीन आलापक कहना चाहिए। विशेष यह है कि सिद्ध हुआ, सिद्ध होता है और सिद्ध होगा, इस प्रकार के तीन आलापक कहना चाहिए।

१६२ प्रश्न-हे भगवन् ! बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में, वर्तमान शाश्वत काल मे और अनन्त शाश्वत भविष्यत्काल में जिन अन्तकरों ने, चरम शरीर वालों ने सब दुःखों का नाश किया है, करते है और करेंगे, क्या वे सब

उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त, जिन और केवली होकर फिर सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का नाश करेंगे ?

१६२ उत्तर-हाँ, गौतम ! बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

१६३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वे उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त जिन केवली 'अलमस्तु' अर्थात् पूर्ण है, ऐसा कहना चाहिए ?

१६३ उत्तर-हां, गौतम ! वे उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त, जिन, केवली पूर्ण हैं-ऐसा कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! ऐसा ही है। हे भगवन् ! ऐसा ही है ।

विवेचन-पहले सूत्र मे परमाणु आदि जड़ पदार्थ का और जीव का अस्तित्व प्रकट किया था । यहाँ यह बतलाया गया है कि-यदि जीव अनादि है, तो वह कभी भवबन्ध से छूटता है, या नही ?

पहले छद्मस्थ मनुष्य के लिए प्रश्न किया है। जिन्हे केवलज्ञान नही हुआ है वे सब छद्मस्थ कहलाते हैं-यहां ऐसा नही समझना चाहिए, किन्तु यहाँ जिसमें अवधि ज्ञान नही है-ऐसा छद्मस्थ लिया गया है, क्योकि आगे अवधिज्ञानी के लिए अलग प्रश्न किया गया है । यदि यहाँ 'छद्मस्थ' पद से अवधिज्ञानी भी ले लिया जाय, तो अगला प्रश्न निरर्थक हो जायगा ।

'केवल' शब्द का अर्थ इस प्रकार है-

केवलमेगं सुद्धं वा, सगलमसाहारणं अणंतं च ।

अर्थात्-केवल=अकेला, शुद्ध, सम्पूर्ण, असाधारण और अनन्त, इन अर्थों में 'केवल' शब्द का प्रयोग होता है ।

सयम-पृथ्वीकाय, अप्काय, आदि छह काय जीवों की सम्यक् प्रकार से यतना करना 'सयम' कहलाता है । यहाँ 'केवल संयम' कहा है । इसका अर्थ है कि-दूसरे की सहायता न रखने वाला संयम, अथवा शुद्ध संयम, अथवा परिपूर्ण संयम, अथवा असाधारण संयम ।

सयम के बाद 'केवल संवर' शब्द है । इन्द्रियों को और कषायों को रोकना 'संवर' कहलाता है । 'केवल' शब्द का अर्थ वही है जो पहले बताया जा चुका है ।

ब्रह्मचर्यवास और प्रवचन-माता (पांच समिति और तीन गुप्ति) इन पदों का अर्थ स्पष्ट ही है।

'उपशान्त-मोहनीय' नामक ग्यारहवें गुणस्थान में संयमादि सब विशुद्ध होते हैं और विशुद्ध संयमादि ही मुक्ति के साधन हैं। वह विशुद्ध संयमादि उपशान्त मोह वाले मे मौजूद है और वह छद्मस्थ है, तो क्या वह उसी गुणस्थान से मोक्ष प्राप्त कर लेता है ? इसी प्रकार बारहवें 'क्षीण-मोहनीय' गुणस्थान में विशुद्ध संयमादि हैं, किन्तु उस गुणस्थान वाला मनुष्य छद्मस्थ है, तो क्या वह उसी गुणस्थान से मुक्ति प्राप्त कर सकता है ?

'अन्तकर' शब्द का अर्थ है-भव का नाश करने वाला। लम्बे समय में जन्मान्तर में भव का नाश करने वाला भी 'अन्तकर' कहलाता है, किन्तु यहाँ उसका ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसके साथ दूसरा विशेषण दिया है-'अतिम सरीरिया', जिसका अर्थ है- 'अन्तिमशरीरी-चरमशरीरी' अर्थात् जिनका वर्तमान शरीर ही अन्तिम शरीर है, वर्तमान शरीर को छोड़ने के बाद फिर दूसरा शरीर प्राप्त नही करेंगे।

भगवान् ने फरमाया कि छद्मस्थ मनुष्य सिद्ध नहीं होता है, यावत् सब दु.खों का अन्त नही करता है, नही करेगा और नही किया है। क्योकि जितने मनुष्य संसार का अर्थात् जन्म मरण रूप सब दु:खों का अन्त करने वाले हुए हैं, वे सब चरमशरीरी ही थे, वे सब उत्पन्न ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले अर्हन्त जिन, केवली होकर ही सिद्ध, बुद्ध, और मुक्त हुए है, होते हैं, और होंगे। जिन्हें अनादि सिद्ध ज्ञान नहीं, किन्तु जो उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले है, उन्हे 'उत्पन्न ज्ञान दर्शनधर' कहते है। इस विशेषण से 'अनादि मुक्तात्मा' मानने वाले मत का निराकरण किया गया है।

जो इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्य हो-उसे 'अर्हन्त' कहते है। जिसने रागद्वेष आदि आत्मिक विकारों पर विजय प्राप्त करली हो-वह वीतराग पुरुष 'जिन' कहलाता है।

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! छद्मस्थ मोक्ष नही गये, न जाते हैं और न जावेंगे, किन्तु जो उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक, अर्हन्त जिन केवली वे होते है, ही मोक्ष गये है, जाते है और जायेंगे।

छद्मस्थ के विषय में प्रश्न करने के पश्चात् गौतम स्वामी ने अवधिज्ञानी के विषय में प्रश्न किया है। अवधि का अर्थ है-मर्यादा। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा के अनुसार उत्पन्न होने वाले और मन तथा इन्द्रियों की सहायता के बिना ही रूपी पदार्थों को

जानने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। परमावधि ज्ञान से हलका अवधिज्ञान 'आधोवधि' ज्ञान कहलाता है। इस 'आधोवधि' ज्ञान से उत्कृष्ट अवधि ज्ञान को 'परमाधोवधि' अथवा 'परमावधि' कहते हैं। इन ज्ञानो के धारक को क्रमश. 'आधोवधिक' और परमाधोवधिक या 'परमावधिक' कहते हैं। परमअवधिज्ञानी समस्त रूपी द्रव्यों को, अलोक में लोक प्रमाण असंख्यात खण्डों को तथा असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी को जानने की शक्ति वाला होता है।

ऐसा अवधिज्ञानी पुरुष भी छद्मस्थ है। वह उसी अवस्था में मोक्ष नही जा सकता है। यों तो जिस पुरुष को लोकाकाश को लांघ कर अलोक के एक प्रदेश को भी जानने की शक्ति वाला ज्ञान प्राप्त हो जाय वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जाता है, किन्तु जाता 'केवली' होकर के ही है। 'केवली' हुए बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता। 'केवली' के विषय में भी तीन काल सम्बन्धी तीन आलापक कहने चाहिए। यथा-केवली ही मोक्ष गये है, केवली ही मोक्ष जाते हैं और केवली ही मोक्ष जायेंगे।

उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर, अर्हन्त, जिन, केवली को 'अलमस्तु' कहते हैं। 'अलमस्तु' का अर्थ है-'पूर्ण'। जिन्होने प्राप्त करने योग्य सब ज्ञानादि गुण प्राप्त कर लिये है। जिनके लिए प्राप्त करने योग्य कुछ भी अवशेष नही रहा है, वे 'अलमस्तु' अर्थात् 'पूर्ण' कहलाते हैं।

अन्त में गौतम स्वामी ने कहा कि-'सेवं भंते ! सेवं भंते !' अर्थात्-हे भगवन् ! आप पूर्णज्ञानी हैं, अतएव आपका कथन सत्य है। आपके कथन में किसी प्रकार की शंका नही है।

॥ प्रथम शतक का चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥



शतक १ उद्देशक ५

नरकावास

१६४ प्रश्न-कइ णं भंते पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

१६४ उत्तर-गोयमा ! सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ, तं जहाः-रयणप्पभा जाव-तमतमा।

१६५ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए कति निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

१६५ उत्तर-गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

गाहाः-

तीसा य पन्नवीसा पन्नरस दसेव या सयसहस्सा;
तिन्नेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा निरया।

विशेष शब्दों के अर्थ-णिरयावास-नरकावास, सयसहस्सा-लाख, अणुत्तरा-प्रधान।

भावार्थ-१६४ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं ?

१६४ उत्तर-हे गौतम ! पृथ्वियां सात कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं-रत्नप्रभा यावत् तमस्तमाप्रभा।

१६५ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने लाख नरकावास-अर्थात् नैरयिकों के रहने के स्थान, कहे गये हैं ?

१६५ उत्तर-हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे तीस लाख नरकावास कहे गये है।

सब पृथ्वियों में नरकावासों की संख्या बतलाने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है-पहली पृथ्वी में तीस लाख, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह



लाख, चौथी मे दस लाख, पाँचवीं में तीन लाख, छठी मे पाँच कम एक लाख और सातवीं पृथ्वी में सिर्फ पांच नरकावास कहे गये हैं ।

विवेचन-चौथे उद्देशक के अन्त मे अर्हन्त का वर्णन किया था । अर्हन्त इसी पृथ्वी पर होते है अथवा पृथ्वी अर्थात् नरक से निकल कर मनुष्य भव पाकर ही अर्हन्त-सर्वज्ञ होते हैं । अतः पृथ्वी का वर्णन किया जाता है तथा प्रथम शतक की संग्रह गाथा में 'पुढवी' -यह पद कहा गया है । इसलिए इस उद्देशक के प्रारम्भ मे 'पृथ्वी' का वर्णन किया जाता है।

गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी है ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! पृथ्वियाँ सात है । यथा-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा ।

रत्नप्रभा के तीन काण्ड हैं-रत्नकाण्ड, जलकाण्ड और पङ्ककाण्ड । रत्नकाण्ड में नरकावास की जगह को छोड़ कर शेष जगह में अनेक प्रकार के इन्द्रनीलादि रत्न होते है, जिनकी प्रभा-कान्ति पड़ती रहती है । इस कारण से पहली पृथ्वी का नाम 'रत्नप्रभा' पड़ा है । इसी प्रकार शेष पृथ्वियों के नामों की भी उपपत्ति समझ लेना चाहिए । सातवीं पृथ्वी में घोर अन्धकार है, इसलिए उसका नाम तमस्तमःप्रभा या महातमःप्रभा है ।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी पूछते है कि हे भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी मे कितने लाख नरकवास-नैरयिकों के रहने के स्थान है ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! तीस लाख नरकवास है । इसी प्रकार दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दस लाख, पाँचवी मे तीन लाख, छठी मे पाँच कम एक लाख और सातवी में सिर्फ पाँच नरकावास है ।

सातों नरको के सब मिला कर चौरासी लाख नरकावास होते है ।

असुरकुमारों के आवास

१६६ प्रश्न-केवइया णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नता ?

१६६ उत्तर-एवं:-



चउसट्ठी असुराणं चउरासीई य होइ नागाणं,
बावत्तरिं सुवण्णाणं वाउकुमाराण छन्नउई।
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणिमय-ग्गीणं,
छण्हं पि जुयलयाणं छावत्तरिमो सयसहस्सा।

भावार्थ-१६६ प्रश्न-हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने लाख आवास कहे गये हैं?

१६६ उत्तर-हे गौतम! इस प्रकार हैं-असुरकुमारों के चौंसठ लाख, नागकुमारों के चौरासी लाख, सुवर्णकुमारों के बहत्तर लाख, वायुकुमारों के छ्यानवें लाख आवास कहे गये हैं और द्वीपकुमार, दिक्कुमार (दिशाकुमार) उदधिकुमार-विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार, इन छह युगलिकों के छहत्तर छहत्तर लाख आवास कहे गये हैं।

विवेचन-'रत्नप्रभा' आदि पृथ्वियों में प्रस्तर और अन्तर कहे गये हैं। नैरयिक जीवों के रहने के स्थान को प्रस्तर कहते हैं और एक प्रस्तर से दूसरे प्रस्तर के बीच की जगह को अन्तर कहते हैं। रत्नप्रभा में तेरह प्रस्तर और बारह अन्तर हैं। बारह अन्तरों में ऊपर के दो अन्तरों को छोड़ कर शेष दस अन्तरों में क्रमशः दस प्रकार के भवनवासी देव रहते हैं। भवनवासी देव मेरु से दक्षिण में और उत्तर में रहते हैं। दक्षिण दिशा में और उत्तर दिशा में रहने वाले भवनवासी देवों के आवासों की संख्या इस प्रकार है-

	दक्षिण दिशा में	उत्तर दिशा मे
१ असुरकुमारों के	३४ लाख	३० लाख
२ नागकुमारों के	४४ लाख	४० लाख
३ सुवर्णकुमारों के	३८ लाख	३४ लाख
४ वायुकुमारों के	५० लाख	४६ लाख
५ द्वीपकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
६ दिशाकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
७ उदधिकुमारों के	४० लाख	३६ लाख

	दक्षिण दिशा में	उत्तर दिशा मे
८ विद्युत्कुमारों के	४० लाख	३६ लाख
९ स्तनितकुमारो के	४० लाख	३६ लाख
१० अग्निकुमारो के	४० लाख	३६ लाख
	४०६०००००	३६६०००००

कुल ७७२००००० भवन हैं।

मूल में जो 'छण्हं जुयलयाणं' शब्द दिया है, इसका आशय यह है कि 'द्वीपकुमार-से लेकर अग्निकुमार' तक छह भवनपति देवो के युगल अर्थात् उत्तर दिशा और दक्षिण दिशा दोनों के छहत्तर छहत्तर लाख आवास हैं।

उत्तर दिशा के और दक्षिण दिशा के आवासों की संख्या बतलाने के लिए टीका-कार ने दो गाथाएं दी है। यथा-

चउतीसा चउचत्ता अट्ठतीसं च सयसहस्साओ।
पण्णा चत्तालीसा दाहिणओ हुंति भवणाइं ॥

अर्थात्-दक्षिण दिशा के असुरकुमारो के ३४ लाख, नागकुमारों के ४४ लाख, सुवर्णकुमारों के ३८ लाख और वायुकुमारों के ५० लाख तथा शेष छह द्वीपकुमार आदि प्रत्येक के चालीस चालीस लाख भवन हैं।

तीसा चत्तालीसा चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं।
छायाला छत्तीसा उत्तरओ होंति भवणाइं ॥

अर्थ-उत्तर दिशा के असुरकुमारों के ३० लाख, नागकुमारो के ४० लाख, सुवर्ण-कुमारों के ३४ लाख, वायुकुमारों के ४६ लाख और शेष द्वीपकुमारादि छह के प्रत्येक के छत्तीस लाख, छत्तीस लाख भवन है।

रहने के स्थान को 'आवास' कहते है। भवनपति देवों के आवासों को 'भवन' कहते हैं और वैमानिक देवो के आवासो को 'विमान' कहते है।

पृथ्वीकायादि के आवास

१६७ प्रश्न-केवइया णं भंते! पुढविक्काईयावाससयसहस्सा पन्नत्ता?

१६७ उत्तर-गोयमा! असंखेज्जा पुढविक्काइयावाससयसहस्सा पन्नत्ता, जाव असंखिज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता।

१६८ प्रश्न-सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवईया विमाणावासा पन्नत्ता ?

१६८ उत्तर-गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता एवं:-

बत्तीस-ट्ठावीसा बारस-अट्ठ-चउरो सयसहस्सा,
पन्ना-चत्तालीस छच्च सहस्सा सहस्सारे।
आणय-पाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरण-च्चुए तिण्णी,
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु।
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं सयं च मज्झमए,
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा।

विशेष शब्दों के अर्थ-केवइया-कितने।

भावार्थ-१६७ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने लाख आवास कहे गये हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवास कहे गये हैं और इसी प्रकार यावत् ज्योतिष्क देवों के असंख्यात लाख विमानावास कहे गये हैं।

१६८ प्रश्न-हे भगवन् ! सौधर्मकल्प में कितने विमानावास कहे गये हैं ?

१६८ उत्तर-हे गौतम ! वहाँ बत्तीस लाख विमानावास कहे गये हैं। इस प्रकार-क्रमशः बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चार

लाख, पचास हजार, चालीस हजार विमानावास जानना चाहिए। सहस्रार कल्प में छह हजार विमानावास हैं। आणत और प्राणत कल्प में चार सौ, आरण और अच्युत में तीन सौ, इस तरह चारों में मिल कर सात सौ विमान हैं। अधस्तन (नीचले) ग्रैवेयक त्रिक में एक सौ ग्याह, मध्यतन (बीच के) ग्रैवेयक त्रिक में एक सौ सात और उपरितन (ऊपर के) ग्रैवेयक त्रिक में एक सौ विमानावास हैं। अनुत्तर विमान पाँच ही हैं।

विवेचन--पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पांच स्थावर जीव हैं। इनके असंख्यात लाख, आवास (रहने के स्थान) कहे गये हैं इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्यों के भी असंख्य लाख आवास हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई की ऊपर की ठीकरी में वाणव्यन्तर देवों के असंख्य निवास स्थान हैं।

ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा--ये पांच जाति के ज्योतिषी देव हैं। इनके भी असंख्य लाख विमानावास हैं।

ज्योतिषी चक्र के ऊपर 'सौधर्म' नामक पहला देवलोक है। उसमें बत्तीस लाख विमान हैं। दूसरे ईशान देवलोक में अट्ठाईस लाख विमान है। तीसरे सनत्कुमार देवलोक मे बारह लाख, चौथे माहेन्द्र देवलोक में आठ लाख, पांचवे ब्रह्म देवलोक में चार लाख, छठे लान्तक देवलोक में पचास हजार, सातवें शुक्र देवलोक में चालीस हजार, आठवें सहस्रार देवलोक में छह हजार, नौवें आणत देवलोक में और दसवें प्राणत देवलोक मे चार सौ, ग्यारहवे आरण देवलोक में और बारहवें अच्युत देवलोक मे तीन सौ विमान हैं। इनके ऊपर नौ ग्रैवेयक विमान है। उनके तीन त्रिक (तीन तीन के तीन विभाग) हैं। पहले त्रिक में एक सौ ग्यारह, दूसरे त्रिक मे एक सौ सात और तीसरे त्रिक में एक सौ विमान हैं। इन तीन त्रिकों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं--अधस्तन, मध्यतन और उपरितन। इनके ऊपर अनुत्तर विमान हैं, वे पांच हैं। इस प्रकार सब मिला कर चौरासी लाख सत्तानवें हजार, तेईस विमान हैं।

स्थिति-स्थान

संगहो:--पुढवी ट्ठिति-ओगाहण-सरीर-संघयणमेव संठाणे,

लेस्सा-दिट्ठी-णाणे जोगु-वओगे य दस ट्ठाणा ।

१६९ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ठितिट्ठाणा पन्नत्ता ?

१६९ उत्तर-गोयमा असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहाः- जहण्णिया ठिती, समयाहिया, जहण्णिया ठिई, दुसमयाहिया, जाव-असंखेज्जसमयाहिया जहण्णिया ठिती । तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिती ।

१७० प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहण्णियाए ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

१७० उत्तर-गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा कोहोवउत्ता य । अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य । अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य । अहवा कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ते य । अहवा कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ता य । अहवा कोहोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य । अहवा कोहोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य । अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते य । कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ता य । कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्तेय ।

कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य । एवं कोह-माण-लोभेण वि चउ । एवं कोह-माया-लोभे चउ । एवं १२ । पच्छा माणेण, मायाए, लोभेण य कोहो भइयव्वो । ते कोहं अमुंचता । एवं सत्तावीसं भंगा णेयव्वा ।

१७१ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि समयाहियाए जहन्नट्ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

१७१ उत्तर-गोयमा ! कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ते य । कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य । अहवा कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ते य । अहवा कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ता य । एवं असीति भंगा नेयव्वा । एवं जाव-संखेज्जसमयाहिया ठिई, असंखेज्जसमयाहिया ठिई; तप्पाउग्गुक्कोसियाए ठिईए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा ।

विशेष शब्दों के अर्थ-ओगाहण-अवगाहना, संघयण-संहनन, संठाणे-संस्थान, ठिइट्ठाणा-स्थिति स्थान, तप्पाउग्गुक्कोसिया-उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति, कोहोवउत्ता-क्रोधोपयुक्त, माणोवउत्ता-मानोपयुक्त, मायोवउत्ता-मायोपयुक्त, लोभोवउत्ता-लोभोपयुक्त ।

भावार्थ-संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है-नरकावासादि में स्थिति, अवगाहना, शरीर, संहनन, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग और उपयोग, इन दस बातों का विचार करना है ।

१६९ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों

में के एक एक नरकावास में रहने वाले नारक जीवों के कितने स्थिति स्थान कहे गये है ? अर्थात् एक एक नरकावास के नारकियों की कितनी कितनी उम्र है ?

१६९ उत्तर-हे गौतम ! उनके असंख्य स्थिति स्थान कहे गये हैं । वे इस प्रकार हैं-जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, वह एक समय अधिक, दो समय अधिक, इस प्रकार यावत् असंख्यात् समय अधिक जघन्य स्थिति तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति (ये सब मिल कर असंख्यात स्थिति-स्थान होते हैं)।

१७० प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावास में जघन्य (कम से कम) स्थिति में वर्त्तमान नारकी क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त है ? मायोपयुक्त है ? या लोभोपयुक्त है ?

१७० उत्तर-हे गौतम ! वे सभी क्रोधोपयुक्त होते हैं ।

अथवा-बहुत क्रोधी और एक मानी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी और बहुत मानी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी और एक मायी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी और बहुत मायी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी और एक लोभी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी और बहुत लोभी होते हैं ।

अथवा-बहुत क्रोधी, एक मानी और एक मायी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी, एक मानी और बहुत मायी होते हैं । अथवा बहुत क्रोधी, बहुत मानी और एक मायी होते है । अथवा बहुत क्रोधी, बहुत मानी और बहुत मायी होते है । इसी तरह क्रोध, मान और लोभ के चार भंग कहना चाहिए । इसी तरह क्रोध, माया और लोभ के चार भंग कहना चाहिए । फिर क्रोध, मान, माया और लोभ-ये चार संयोगी आठ भंग कहना चाहिये । इस तरह क्रोध को नहीं छोड़ते हुए ये सत्ताईस भंग बनते हैं ।

१७१ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावास में एक समय अधिक जघन्य स्थिति में वर्त्तमान नारकी क्या क्रोधोपयुक्त है ? मनोपयुक्त है ? मायोपयुक्त है ? या लोभोपयुक्त है ?

१७१ उत्तर-हे गौतम ! कभी एक क्रोधोपयुक्त । कभी एक मानोपयुक्त ।

कभी एक मायोपयुक्त। कभी एक लोभोपयुक्त। कभी बहुत क्रोधोपयुक्त। कभी बहुत मानोपयुक्त। कभी बहुत मायोपयुक्त। कभी बहुत लोभोपयुक्त होते है।

अथवा एक क्रोधोपयुक्त और एक मानोपयुक्त। अथवा एक क्रोधोपयुक्त और बहुत मानोपयुक्त। अथवा बहुत क्रोधोपयुक्त और एक मानोपयुक्त। अथवा बहुत क्रोधोपयुक्त और बहुत मानोपयुक्त। इत्यादि प्रकार से अस्सी भंग समझना चाहिए। इसी प्रकार यावत् संख्येय समयाधिक स्थिति वाले नारकियों के लिए समझना चाहिए। असंख्येय समयाधिक स्थिति वालों में तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों मे सत्ताईस भंग कहना चाहिए।

विवेचन-गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! पहली रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नरकावास है, उनमे रहने वाले जीवो की स्थिति स्थान कितने कितने हैं ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! एक एक नरकावास मे रहने वाले जीवों की स्थिति के स्थान भिन्न भिन्न है। किसी की जघन्य स्थिति है, किसी की मध्यम और किसी की उत्कृष्ट स्थिति है। इस पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के पहले प्रतर मे रहने वाले नारक जीवों की आयु कम से कम दस हजार वर्ष की है और अधिक से अधिक नव्वे हजार वर्ष की है। कम से कम आयु 'जघन्य' कहलाती है और अधिक से अधिक आयु 'उत्कृष्ट' कहलाती है। जघन्य और उत्कृष्ट के बीच की आयु को 'मध्यम' कहते है। मध्यम आयु जघन्य और उत्कृष्ट के समान एक प्रकार की नही है। जघन्य आयु से एक समय की अधिक की आयु भी मध्यम कहलाती है, दो समय अधिक की आयु भी मध्यम कहलाती है, इसी प्रकार सख्यात और असख्यात समय अधिक की आयु भी मध्यम ही कहलाती है। इस प्रकार मध्यम आयु के अनेक विकल्प है। अत. कोई नारकी दस हजार वर्ष की आयु वाला, कोई एक समय अधिक दस हजार वर्ष की आयु वाला, कोई दो समय अधिक दस हजार वर्ष की आयु वाला, इसी प्रकार कोई असख्यात समय अधिक दस हजार वर्ष की आयु वाला है, कोई उत्कृष्ट आयु वाला है। इसलिए नारकी जीवो के स्थितिस्थान असंख्य है।

काल का वह सूक्ष्मतम अश, जो निरश है जिसका दूसरा अंश संभव नही है, वह 'समय' कहलता है। जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति है, उससे एक एक समय अधिक करते हुए उत्कृष्ट नव्वे हजार वर्ष की स्थिति तक असख्य विभाग (स्थिति स्थान) हो

जाते हैं। जघन्य स्थिति वालों में २७ भंग होते हैं, जो कि पहले बता दिये गये हैं।

फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! एक समयाधिक जघन्य स्थिति वाले वे नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त होते है ? मानोपयुक्त होते हैं ? मायोपयुक्त होते है ? या लोभोपयुक्त होते हैं ?

इसके उत्तर में भगवान् ने अस्सी भंग बतलाये हैं। वे इस प्रकार हैं-

असंयोगी ८ भंग—

१. क्रोधी एक, २. मानी एक, ३. मायी एक, ४. लोभी एक, ५. क्रोधी बहुत, ६. मानी बहुत, ७. मायी बहुत, ८. लोभी बहुत।

द्विक संयोगी २४ भंग—

१. क्रोधी एक और मानी एक, २. क्रोधी एक और मानी बहुत, ३. क्रोधी बहुत और मानी एक, ४. क्रोधी बहुत और मानी बहुत, ५. क्रोधी एक और मायी एक, ६. क्रोधी एक और मायी बहुत, ७. क्रोधी बहुत और मायी एक, ८. क्रोधी बहुत और मायी बहुत, ९. क्रोधी एक और लोभी एक, १०. क्रोधी एक और लोभी बहुत, ११. क्रोधी बहुत और लोभी एक, १२. क्रोधी बहुत और लोभी बहुत, १३. मानी एक और मायी एक, १४. मानी एक और मायी बहुत, १५. मानी बहुत और मायी एक, १६. मानी बहुत और मायी बहुत, १७. मानी एक और लोभी एक, १८. मानी एक और लोभी बहुत, १९. मानी बहुत, और लोभी एक, २०. मानी बहुत और लोभी बहुत, २१. मायी एक और लोभी एक, २२. मायी एक और लोभी बहुत, २३. मायी बहुत और लोभी एक, २४. मायी बहुत और लोभी बहुत।

त्रिक संयोगी ३२ भंग—

१. क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, २. क्रोधी एक, मानी एक, मायी बहुत, ३. क्रोधी एक, मानो बहुत, मायी एक, ४. क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी बहुत, ५. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, ६. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, ७. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, ८. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, ९. क्रोधी एक, मानी एक, लोभी एक, १०. क्रोधी एक, मानो एक, लोभी बहुत, ११ क्रोधी एक, मानी बहुत, लोभी एक, १२. क्रोधी एक, मानी बहुत, लोभी बहुत, १३. क्रोधी बहुत, मानी एक, लोभी एक, १४. क्रोधी बहुत, मानी एक, लोभी बहुत, १५. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी एक, १६. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी बहुत, १७. क्रोधी एक, मायी एक, लोभी

एक, १८. क्रोधी एक, मायी एक, लोभी बहुत, १९. क्रोधी एक, मायी बहुत, लोभी एक, २०. क्रोधी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत, २१. क्रोधी बहुत, मायी एक, लोभी एक, २२. क्रोधी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत, २३. क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक, २४. क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत, २५. मानी एक, मायी एक, लोभी एक, २६. मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत, २७. मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक, २८. मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत, २९. मानी बहुत, मायी एक, लोभी एक, ३०. मानी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत, ३१. मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक, ३२. मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत ।

चतुःसंयोगी १६ भंग—

१. क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, लोभी एक, २. क्रोधी एक, मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत, ३. क्रोधी एक, मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक, ४. क्रोधी एक, मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत, ५ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी एक, लोभी एक, ६ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत, ७. क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक, ८ क्रोधी एक, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत, ९. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोभी एक, १० क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत, ११. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक, १२. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत, १३. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, लोभी एक, १४. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत, १५. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक, १६. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत ।

जिन जिन स्थानो वाले नारक जीव शाश्वत मिलते हैं उनमें २७ भंग होते हैं । १ असयोगी, ६ द्विक सयोगी, १२ त्रिक संयोगी, ८ चतु.संयोगी, ये कुल २७ भंग होते है । वे इस प्रकार है—

असंयोगी १ भंग—

१ सब क्रोधी ।

द्विक संयोगी ६ भंग—

१. क्रोधी बहुत, मानी एक, २. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, ३. क्रोधी बहुत, मायी एक, ४. क्रोधी बहुत, मायी बहुत, ५. क्रोधी बहुत, लोभी एक, ६. क्रोधी बहुत, लोभी बहुत ।



त्रिक संयोगी १२ भंग--

१. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, २. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, ३. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, ४. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, ५. क्रोधी बहुत, मानी एक, लोभी एक, ६. क्रोधी बहुत, मानी एक, लोभी बहुत, ७. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी एक, ८. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, लोभी बहुत, ९. क्रोधी बहुत, मायी एक, लोभी एक, १०. क्रोधी बहुत, मायी एक, लोभी बहुत, ११. क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक, १२. क्रोधी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत ।

चतुःसंयोगी ८ भंग--

१. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोभी एक, २. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी एक, लोभी बहुत, ३. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोभी एक, ४. क्रोधी बहुत, मानी एक, मायी बहुत, लोभी बहुत, ५. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक, लोभी एक, ६. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी एक लोभी बहुत, ७ क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी एक, ८. क्रोधी बहुत, मानी बहुत, मायी बहुत, लोभी बहुत ।

प्रत्येक नरक में जघन्य स्थिति वाले नैरयिक सदा पाये जाते हैं और उनमें क्रोधोपयुक्त नैरयिक बहुत ही होते हैं। अतः इन में ये उपर्युक्त २७ भंग पाये जाते है। इन सत्ताईस ही भंगों में 'क्रोध' बहुवचनान्त ही रहेगा।

एक समय अधिक जघन्य स्थिति से लेकर संख्यात समय अधिक जघन्य स्थितिवाले नैरयिकों में पूर्वोक्त अस्सी भंग होते है। इस स्थिति वाले नैरयिक कभी मिलते है और कभी नहीं मिलते है। अतः उनमें क्रोधादि उपयुक्त नैरयिको की संख्या एक और अनेक होती है।

असंख्यात समय अधिक की स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में तो पूर्वोक्त २७ भंग पाये जाते हैं। इस स्थिति वाले नैरयिक सदा काल पाये जाते है और वे बहुत होते हैं।

इसी प्रकार नरक और देवों के जिन जिन स्थानों में सत्ता की अपेक्षा विरह न हो वहाँ २७ भंग और जहाँ विरह हो वहाँ अस्सी भंग होते हैं। औदारिक के दस दण्डकों में जो बोल निरन्तर मिलते हैं, वहाँ अभंग और जो निरन्तर नहीं मिलते हैं उनमें अस्सी भंग होते हैं।

अवगाहना स्थान

१७२ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावास सयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ओगाहणाठाणा पन्नत्ता ?

१७२ उत्तर-गोयमा ! असंखेज्जा ओगाहणाठाणा पन्नत्ता। तं जहा:-जहण्णिया ओगाहणा। पदेसाहिया जहन्निया ओगाहणा। दुप्पएसाहिया जहन्निया ओगाहणा जाव-असंखिज्ज पएसाहिया जहण्णिया ओगाहणा। तप्पाउग्गुक्कोसिया ओगाहणा।

१७३ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि णिरयावासंसि जहण्णियाए ओगाहणाए वट्टमाणा णेरइया किं कोहोवउत्ता० ?

१७३ उत्तर-गोयमा ! असीइभंगा भाणियव्वा, जाव-संखिज्जपएसाहिया जहन्निया ओगाहणा, असंखेज्जपएसाहियाए जहण्णियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं, तप्पाउग्गुक्कोसियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं नेरइयाणं दोसु वि सत्तावीसं भंगा।

विशेष शब्दों के अर्थ-ओगाहणा ठाणा-अवगाहना स्थान, पएसाहिया-एक प्रदेशाधिक।

भावार्थ-१७२ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावास में रहनें वाले नारकियों के अवगाहना स्थान कितनें कहे गये है ?

१७२ उत्तर--हे गौतम ! उनके अवगाहनास्थान असंख्यात कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं--जघन्य अवगाहना (अंगुल के असंख्यातवें भाग) एक प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना, दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना, यावत् असंख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना तथा उसके योग्य उत्कृष्ट अवगाहना।

१७३ प्रश्न--हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावास में जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ?

१७३ उत्तर--हे गौतम ! जघन्य अवगाहना वालों में अस्सी भंग कहना चाहिए यावत् संख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना वालों में भी अस्सी भंग कहना चाहिए। असंख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना में वर्तने वाले और उसके योग्य उत्कृष्ट अवगाहना में वर्तने वाले, इन दोनों प्रकार के नारकियों में सत्ताईस भंग कहना चाहिए।

विवेचन--जिसमें जीव ठहरता है, वह अवगाहना है, अर्थात् जीव की लम्बाई चौड़ाई अवगाहना कहलाती है। जिस जीव का जो शरीर होता है, वह उसकी अवगाहना है। जिस क्षेत्र में जीव रहता है उस परिमाण क्षेत्र को भी अवगाहना कहते हैं।

सब नरकावासों मे जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण है। जिस विवक्षित नरकावास के योग्य जो उत्कृष्ट अवगाहना होती है, वह उसकी 'तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अवगाहना कहलाती है। जैसे कि पहली रत्नप्रभा नरक में उत्कृष्ट अवगाहना सात धनुष तीन हाथ छह अगुल होती है। अर्थात् उत्सेधांगुल से उसकी अवगाहना सवा इकतीस हाथ होती है। इससे आगे की नारकों में दुगुनी दुगुनी अवगाहना होती है। अर्थात् शर्कराप्रभा में पन्द्रह धनुष दो हाथ बारह अंगुल उत्कृष्ट अवगाहना होती है। तीसरी बालुकाप्रभा में इकतीस धनुष एक हाथ, चौथी पंकप्रभा में बाँसठ धनुष दो हाथ, पांचवी धूमप्रभा में एक सौ पच्चीस धनुष, छठी तमःप्रभा में ढाई सौ धनुष, सातवी तमस्तमाःप्रभा में पांच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना होती है। यह भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

एक एक नरकावास में बसने वाले जीवों के अवगाहना स्थान असंख्य है। जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग बाराबर होती है। इस जघन्य अवगाहना से एक प्रदेश अधिक, दो प्रदेश अधिक, इस प्रकार असंख्यात प्रदेश अधिक तक की अवगाहना वाले

होते हैं और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अवगाहना वाले होते है। अतः अवगाहना स्थान असंख्यात है।

फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले जीव क्या क्रोधी है ? मानी है ? मायी है ? या लोभी है ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! यहाँ भी अस्सी भंग जानने चाहिए। एक प्रदेशाधिक से लेकर संख्यात प्रदेशाधिक तक इसी तरह जानना चाहिए। जघन्य अवगाहना से असंख्य प्रदेश अधिक तथा उत्कृष्ट अवगाहना वालों के सत्ताईस भग होते हैं।

यहाँ यह आशका होती है कि जघन्य स्थिति में सत्ताईस भंग कहे है, फिर यहाँ जघन्य अवगाहना मे अस्सी भंग कहने का क्या कारण है ?

इस शंका का समाधान यह है कि जघन्य स्थिति वाले नैरयिक जबतक जघन्य अवगाहना वाले रहते हैं, तबतक उनकी अवगाहना के अस्सी भंग ही होते हैं। जघन्य स्थिति वाले जिन नैरयिको के सत्ताईस भंग कहे हैं वे जघन्य अवगाहना को उल्लंघन कर चुके हैं। उनकी अवगाहना जघन्य नहीं होती। इसलिए सताईस ही भग कहे गये हैं।

जघन्य अवगाहना से लेकर सख्यात प्रदेश की अधिक अवगाहना वाले जीव नरक मे निरन्तर नही मिलते है, इसलिए उनमे अस्सी भग कहे गये है और जघन्य अवगाहना से असंख्यात प्रदेश अधिक की अवगाहना वाले जीव, नरक में अधिक ही पाये जाते हैं, इसलिए उनमें सत्ताईस भग होते है।

नारकों के शरीर

१७४ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव-एगमेगंसि निरायावासंसि नेरइयाणं कइ सरीरया पन्नत्ता ?

१७४ उत्तर-गोयमा ! तिन्नि सरीरया पन्नत्ता। तं जहा:- वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

१७५ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! जाव-वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा

१७७ उत्तर-हे गौतम ! यहाँ सत्ताईस भंग कहना चाहिए।

१७८ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में के प्रत्येक नरकावास में रहने वाले नैरयिकों के शरीर किस संस्थान वाले हैं ?

१७८ उत्तर-हे गौतम ! उन नारकियों का शरीर दो प्रकार का कहा गया है। यथा-भवधारणीय (जीवन पर्यन्त रहने वाला) और उत्तर वैक्रिय। उनमें जो भवधारणीय शरीर हैं, वे हुण्ड संस्थान वाले कहे गये हैं और जो शरीर उत्तर वैक्रिय रूप हैं, वे भी हुण्ड संस्थान वाले कहे गये हैं।

१७९ प्रश्न-इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में के प्रत्येक नरकावास में बसने वाले हुण्ड संस्थान में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ?

उत्तर-हाँ गौतम ! यहाँ सत्ताईस भंग कहना चाहिए।

विवेचन-जिसमें व्याप्त होकर आत्मा रहती है, अथवा जिसका क्षण क्षण में नाश होता रहता है उसे 'शरीर' कहते हैं। नारकी जीवों के तीन शरीर होते हैं-वैक्रिय, तैजस और कार्मण। 'कार्मण शरीर' कर्मों का खजाना है। आहार को पचाकर खल भाग और रस भाग में विभक्त करना और रस को शरीर के अंगों में यथास्थान पहुँचाना 'तैजस शरीर' का काम है। 'वैक्रिय शरीर' के दो भेद है-भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय।

गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! वैक्रिय शरीर वाले नारकी जीव क्या क्रोधी हैं ? मानी हैं ? मायी हैं ? या लोभी हैं ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! इस विषय में सत्ताईस भंग समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई समय नहीं होता जब वैक्रिय शरीर वाले जीव नरक में न हों। वैक्रिय शरीर वाले जीव नरक में बहुत होते हैं, इसलिए सत्ताईस भंग ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार तीनों शरीरों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि वैक्रिय शरीर वालों के सत्ताईस भंग तो बतला दिये गये हैं। फिर मूल पाठ में 'एएणं गमेणं तिण्णि सरीरया भाणियव्वा' अर्थात् इसी प्रकार तीनों शरीरों के सम्बन्ध में जानना चाहिए। इसमें तीन शरीरों का कथन क्यों किया ? क्योंकि शेष दो ही शरीर बचे हैं। इसलिए उन्हीं के सम्बन्ध में कहना चाहिए ?

इस शंका का समाधान यह है कि-यहाँ तैजस और कार्मण शरीर अलग नहीं लिये

गये है, क्योंकि यदि तैजस और कार्मण शरीरों को वैक्रिय से अलग कर दिया जाय तो अस्सी भग प्राप्त होगे। क्योंकि वे विग्रह गति में ही पाये जाते हैं। यहाँ पर केवल तैजस कार्मण की चर्चा नही है, किन्तु वैक्रिय सहित तैजस कार्मण की है। इसलिए सत्ताईस ही भग मिलेंगे। यही बात सूचित करने के लिए 'तीनो शरीरों के सम्बन्ध में जानना चाहिए'-ऐसा कथन किया गया है।

'वज्रऋषभनाराच' आदि छह संहननों में से नारकी जीवो के शरीर में कोई संहनन नही होता है। क्योंकि हड्डियों के ढाँचे को सहनन कहते हैं। नारकी जीवों के शरीर में हाड़, शिरा, (नस) स्नायु नही है, किन्तु जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनोहर होते हैं, वे नारकी जीवो के शरीर रूप में परिणत होते है, उन पुद्गलों का यह स्वभाव है कि छेदने पर वे अलग हो जाते है और वापिस मिल जाते हैं। इस प्रकार असंहननी शरीर में रहने वाले नारकी जीवों में सत्ताईस भंग पाये जाते हैं।

एक नारकी जीव दूसरे जीव को कष्ट देने आदि के लिए जो शरीर बनाता है वह 'उत्तरवैक्रिय' कहलाता है और भवपर्यन्त रहने वाला शरीर 'भवधारणीय' कहलाता है। नारकी के दोनों प्रकार क शरीरों का संस्थान (आकार) हुण्डक ही होता है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि नारक जीव उत्तर वैक्रिय शरीर का संस्थान हुण्डक क्यों बनाते है ? सुन्दर क्यों नही बनाते ?

इसका समाधान यह है कि-उनमें शक्ति की मन्दता है। अतः वे सुन्दर आकार बनाना चाहते हुए भी बना नही सकते अर्थात् सुन्दर आकार बनाना चाहते हुए भी बेढंगा ही बनता है। ऐसे नारकी जीवों में क्रोधी आदि के सत्ताईस भंग होते हैं।

नैरयिकों की लेश्या दृष्टि आदि

१८० प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं कति लेस्साओ पन्नत्ता ?

१८० उत्तर-गोयमा ! एगा काउलेस्सा पन्नत्ता।

१८१ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव-काउलेस्साए

वट्टमाणा....?

१८१ उत्तर-गोयमा ! सत्तावीसं भंगा।

१८२ प्रश्न-इमीसे णं जाव-किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्म-मिच्छादिट्ठी ?

१८२ उत्तर-तिन्नि वि।

१८३ प्रश्न-इमीसे णं जाव-सम्मदंसणे वट्टमाणा नेरइया....?

१८३ उत्तर-सत्तावीसं भंगा। एवं मिच्छादंसणे वि। सम्मा-मिच्छादंसणे असीति भंगा।

१८४ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! जाव-किं णाणी, अण्णाणी ?

१८४ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि, अन्नाणी वि; तिण्णि णाणाइं नियाम, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

१८५ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! जाव-आभिणिबोहियण्णाणे वट्टमाणा....?

१८५ उत्तर-सत्तावीसं भंगा। एवं तिण्णि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भाणियव्वाइं।

१८६ प्रश्न-इमीसे णं जाव-किं मणजोगी, वइजोगी, काय-जोगी ?

१८६ उत्तर-तिन्नि वि।

१८७ इमीसे णं जाव-मणजोए वट्टमाणा कोहोवउत्ता....?

१८७ उत्तर-सत्तावीसं भंगा । एवं वइजोए, एवं कायजोए ।

१८८ प्रश्न-इमीसे णं जाव-नेरइया किं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता ?

१८८ उत्तर-गोयमा ! सागरोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि ।

१८६ प्रश्न-इमीसे णं जाव-सागारोवयोगवट्टमाणा किं कोहोवउत्ता ?

१८६ उत्तर-सत्तावीसं भंगा । एवं अणागारोवउत्ता वि सत्तावीसं भंगा । एवं सत्त वि पुढवीओ नेयव्वाओ, णाणत्तं लेसासु । गाहा:—

काऊ य दोसु, तइयाए मीसिया, नीलिया चउत्थीए,
पंचमीयाए मीसा, कण्हा तत्तो परमकण्हा ।

विशेष शब्दों के अर्थ-लेस्साओ-लेश्या काउलेस्सा-कापोत लेश्या, आभिणिबोहियणाणे-आभिनिबोधिक ज्ञान, वइजोए-वचन योग, सागारोवउत्ता-साकारोपयुक्त, अणागारोवउत्ता-अनाकारोपयुक्त, कण्हा-कृष्ण लेश्या, परमकण्हा-परमकृष्ण लेश्या ।

भावार्थ-१८० प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नैरयिकों में कितनी लेश्याएँ कही गई है ?

१८० उत्तर-हे गौतम ! एक कापोत लेश्या कही गई है ।

१८१ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले कापोत लेश्या वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त है ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ?

१८१ उत्तर-हे गौतम ! इनमें सत्ताईस भंग कहना चाहिए ।

१८२ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नारकी क्या

सम्यग्दृष्टि हैं ? मिथ्यादृष्टि है ? या सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) हैं ?

१८२ उत्तर—हे गौतम ! तीनों प्रकार के हैं।

१८३ प्रश्न—हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? लोभोपयुक्त हैं ?

१८३ उत्तर—हे गौतम ! सत्ताईस भंग कहना चाहिए। इसी तरह मिथ्यादृष्टि में भी कहना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि में अस्सी भंग कहना चाहिए।

१८४—प्रश्न—हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नारकी जीव क्या ज्ञानी है ? या अज्ञानी है ?

१८४ उत्तर—हे गौतम ! उनमें ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं उनमें नियमपूर्वक तीन ज्ञान होते हैं और जो अज्ञानी है उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

१८५ प्रश्न—हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले और आभिनिबोधिक ज्ञान में बर्तने वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त है ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ?

१८५ उत्तर—हे गौतम ! यहाँ सत्ताईस भंग कहना चाहिए और इसी प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान में कहना चाहिए।

१८६ प्रश्न—हे भगनन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नारकी जीव क्या मनयोगी हैं ? वचनयोगी हैं ? या काययोगी हैं ?

१८६—उत्तर—हे गौतम ! वे प्रत्येक तीनों प्रकार के है अर्थात् सभी नारकी जीव मन, वचन और काया, इन तीनों योगों वाले हैं।

१८७ प्रश्न—हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले और मन योग में बर्तने वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त है ? मायोपयुक्त है ? या लोभोपयुक्त हैं ?

१८७ उत्तर—हे गौतम ! सत्ताईस भंग कहना चाहिए और इसी प्रकार वचनयोगी और काय योगी में भी कहना चाहिये।

१८८ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले नारकी जीव क्या साकारोपयोग से युक्त हैं ? या अनाकारोपयोग से युक्त हैं ?

१८८ उत्तर-हे गौतम ! साकारोपयोग युक्त भी हैं और अनाकारोपयोग युक्त भी हैं।

१८९ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले और साकारोपयोग में बर्तने वाले नारको जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं या लोभोपयुक्त हैं ?

१८९ उत्तर-हे गौतम ! इनमें सत्ताईस भंग कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाकारोपयोग युक्त में भी कहना चाहिए।

रत्नप्रभा में कहा उसी तरह से सातों पृथ्वियों के विषय में कहना चाहिए। लेश्याओं में विशेषता है। वह इस प्रकार है-पहली और दूसरी नरक में कापोत लेश्या है। तीसरी में मिश्र अर्थात् कापोत और नील, ये दो लेश्या हैं। चौथी में नील लेश्या है। पाँचवीं में मिश्र अर्थात् नील और कृष्ण, ये दो लेश्या हैं ? छठी में कृष्ण लेश्या है और सातवी में परम कृष्ण लेश्या है।

विवेचन-रत्नप्रभा के तीस लाख नरकावासों में के जीवों मे सिर्फ एक कापोत लेश्या होती है। इनमें क्रोधादि के सत्ताईस भग कहने चाहिए।

इसके बाद दृष्टि द्वार का कथन किया गया है। वहाँ तीनो दृष्टि वाले जीव होते हैं। उनमें सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि मे क्रोधादि के सत्ताईस भंग कहने चाहिए। मिश्र-दृष्टि में अस्सी भंग होते हैं। इसका कारण यह है कि मिश्रदृष्टि जीव अल्प हैं और उनका सद्भाव भी काल की अपेक्षा अल्प है अर्थात् वे कभी मिलते हैं और कभी नही भी मिलते है। इसलिए मिश्रदृष्टि नारक में क्रोधादि के अस्सी भग पाये जाते है।

अब ज्ञान द्वार के विषय में कहा जाता है-जो जीव नरक मे सम्यक्त्व सहित उत्पन्न होते हैं उन्हे जन्मकाल के प्रथम समय से लेकर भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। अत: वे नियम पूर्वक तीन ज्ञान वाले ही होते हैं। जो मिथ्यादृष्टि जीव नरक में उत्पन्न होते हैं वे यहाँ से संज्ञी जीवो मे से अथवा असंज्ञी जीवों मे से गये हुए होते हैं। उनमें से जो जीव यहाँ से संज्ञी जीवो मे से जाकर नरक मे उत्पन्न होते हैं उनको जन्मकाल से ही

विभंग (विपरीत अवधि) ज्ञान होता है, इसलिए वे तीन अज्ञान वाले होते हैं। जो असंज्ञी जीवों मे से आकर नरक में उत्पन्न होते है उनको जन्मते समय दो अज्ञान (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान) होते है, और एक अन्तर्मुहूर्त बीत जाने पर विभग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब उन्हे तीन अज्ञान हो जाते है। इसीलिए तीन अज्ञान 'भजनापूर्वक' कहे गये है। किसी समय उनमें दो अज्ञान होते हैं और किसी समय उनमें तीन अज्ञान होते है। जैसा कि निम्न लिखित दो गाथाओं में कहा है-

> सण्णी णेरइएसु उरलपरिच्चायणंतरे समये।
> विब्भंग ओहिं वा अविग्गहे विग्गहे लहइ ॥१॥
> असण्णी णरएसु पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं।
> नाणा तिण्णेव तओ अण्णाणा दोण्णि तिण्णेव ॥२॥

अर्थ-औदारिक शरीर को छोड़कर जो संज्ञी जीव नरक में उत्पन्न होते हैं, वे तत्काल अविग्रह गति में अथवा विग्रह गति में विभंग ज्ञान अथवा अवधिज्ञान को प्राप्त करते है।

यहाँ से जो असंज्ञी जीव मर कर नरक में उत्पन्न होते हैं वे पर्याप्त अवस्था को प्राप्त होने के पश्चात् विभंग ज्ञान को प्राप्त होते है। इसलिए नरक में ज्ञान तो नियम पूर्वक तीन ही होते है और अज्ञान दो भी होते हैं और तीन भी होते हैं।

पहले के तीन ज्ञान और तीन अज्ञान मे सत्ताईस भंग पाये जाते हैं। यहाँ मूलपाठ मे आभिनिबोधिक ज्ञान अलग कह कर फिर 'एवं तिण्णि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं' ऐसा कहा है। सो यहाँ दो कहना चाहिए, किन्तु जो 'तीन' कहा है, इसका कारण यह है कि आभिनिबोधिक सहित तीन ज्ञान और तीन अज्ञान लिये गये हैं।

जहाँ तीन अज्ञान का कथन किया गया है वहाँ विभंग ज्ञान होने से पहले जो मति-अज्ञान श्रुतअज्ञान होते हैं, उस समय अस्सी भंग होते है, क्योंकि दो अज्ञान वाले जीव थोड़े होते हैं। किन्तु ये दो अज्ञान वाले जीव जघन्य अवगाहना वाले होते है, इसलिए उनमें जघन्य अवगाहना की अपेक्षा ही अस्सी भंग लिये गये हैं।

अब योगद्वार के विषय में कहा जाता है। यहाँ यद्यपि अकेले 'कार्मण काययोग' में अस्सी भंग सभव है तथापि यहाँ पर उसकी विवक्षा नही की है, किन्तु सामान्य काययोग की विवक्षा की गई है, इसलिए सत्ताईस भंग कहे गये हैं।

उपयोगद्वार के विषय मे कहा जाता है-उपयोग के दो भेद हैं-साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। विशेष ग्रहण करने की शक्ति को 'आकार' कहते हैं। उस 'आकार'

सहित जो हो उसे साकारोपयोग कहते हैं और सामान्य अंश को ग्रहण करने वाले उपयोग को अनाकारोपयोग कहते है। अर्थात् ज्ञानोपयोग को 'साकारोपयोग' कहते हैं और दर्शनोपयोग को 'अनाकारोपयोग' कहते है। इन दोनों उपयोगो में सत्ताईस भंग होते हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के सम्बन्ध में दस बातों की पृच्छा की गई है। रत्नप्रभा की तरह सातों नरको के जीवो की पृच्छा है। सिर्फ लेश्या में अन्तर है -पहली और दूसरी नरक में कापोत लेश्या है। तीसरी वालुकाप्रभा के उपरितन नरकावासों में कापोत लेश्या है और अधस्तन नरकावासों में नील लेश्या है। इसलिए तीसरी नरक में दो लेश्याएँ हैं। चौथी नरक मे नील लेश्या है। पांचवी मे नील और कृष्ण ये दो लेश्याएँ हैं। छठी नरक में कृष्ण लेश्या और सातवी नरक में परम-कृष्ण लेश्या है।

असुरकुमारों के स्थिति स्थान आदि

१९० प्रश्न-चउसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं केवइया ठिइट्ठाणा पन्नत्ता ?

१९० उत्तर-गोयमा ! असंखेज्जा ठिइट्ठाणा पण्णत्ता। जहण्णिया ठिई जहा नेरइया तहा, नवरं-पडिलोमा भंगा भाणियव्वा। सव्वे वि ताव होज्ज लोभोवउत्ता। अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ते य, अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ता य। एएणं गमेणं णेयव्वं जाव-थणियकुमाराणं, नवरं णाणत्तं जाणियव्वं।

विशेष शब्दों के अर्थ-चउसट्ठीए-चौसठ, पडिलोमा-प्रतिलोम-उल्टा, णाणत्तं-नानात्व-भिन्नपना।

भावार्थ-१९० प्रश्न-हे भगवन् ! चौसठ लाख असुरकुमारावासों में के

एक एक असुरकुमारावास में बसने वाले असुरकुमारों के कितने स्थिति स्थान कहे गये हैं ?

१६० उत्तर-हे गौतम ! उनके स्थिति स्थान असंख्यात कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं-जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्य स्थिति, इत्यादि वर्णन नारकियों के समान जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनमें जहां सत्ताईस भंग आते हैं वहां प्रतिलोम-उल्टे समझना चाहिए। वे इस प्रकार हैं-समस्त असुरकुमार लोभोपयुक्त होते हैं। अथवा बहुत से लोभोपयुक्त और एक मायोपयुक्त होता है। अथवा बहुत से लोभोपयुक्त और बहुत से मायोपयुक्त होते हैं। इत्यादि रूप से जानना चाहिए। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए। विशेषता यह है कि संहनन संस्थान लेश्या आदि में भिन्नता जाननी चाहिए।

विवेचन-नरक गति के जीवों का वर्णन करने के पश्चात् देवगति का वर्णन किया जाता है। भवनों में रहने वाले देव 'भवनपति' कहलाते हैं। उनके असुरकुमारादि दस भेद है। उनके स्थितिस्थान के असंख्य भेद है। उनमें क्रोधादि के सत्ताईस और अस्सी भंग पाये जाते हैं। जहाँ नारकियो में २७ भंग-क्रोध, मान, माया, लोभ इस क्रम से कहे गये हैं, वहां देवो में इससे उल्टे कहना चाहिए अर्थात् लोभ, माया, मान, क्रोध, इस रीति से कहना चाहिए। देवो मे पाये जाने वाले सत्ताईस भंग इस प्रकार हैं।

असंयोगी १ भंग—

१. सभी लोभी

द्विक संयोगी ६ भंग—

१. लोभी बहुत, मायी एक, २. लोभी बहुत, मायी बहुत, ३. लोभी बहुत, मानी एक, ४. लोभी बहुत, मानी बहुत, ५. लोभी बहुत, क्रोधी एक, ६. लोभी बहुत, क्रोधी बहुत।

त्रिक संयोगी १२ भंग—

१. लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, २. लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत,

३. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, ४. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, ५ लोभी बहुत, मायी एक, क्रोधी एक, ६ लोभी बहुत, मायी एक, क्रोधी बहुत, ७. लोभी बहुत, मायी बहुत, क्रोधी एक, ८. लोभी बहुत, मायी बहुत, क्रोधी बहुत, ९. लोभी बहुत, मानी एक, क्रोधी एक, १०. लोभी बहुत, मानी एक, क्रोधी बहुत, ११. लोभी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी एक, १२. लोभी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी बहुत ।

चतुःसंयोगी ८ भंग—

१. लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, क्रोधी एक, २. लोभी बहुत, मायी एक, मानी एक, क्रोधी बहुत, ३. लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत, क्रोधी एक, ४. लोभी बहुत, मायी एक, मानी बहुत, क्रोधी बहुत, ५. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, क्रोधी एक, ६. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी एक, क्रोधी बहुत, ७. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी एक, ८. लोभी बहुत, मायी बहुत, मानी बहुत, क्रोधी बहुत ।

इन सत्ताईस ही भगो मे 'लोभ' शब्द को बहुवचनान्त ही रखना चाहिए ।

नारकी जीवो मे और असुरकुमारादि में जो भेद है उसको जानकर प्रश्नसूत्र और उत्तरसूत्र कहना चाहिए । असुरकुमारादि असहननी-सहनन रहित हैं । उनके शरीर संघात रूप से जो पुदगल परिणमते है, वे इष्ट और सुन्दर होते हैं । उनके भवधारणीय शरीर का संस्थान 'समचतुरस्र' होता है और उत्तरवैक्रिय रूप शरीर किसी एक सस्थान में संस्थित होता है । असुरकुमारादि मे कृष्ण, नील, कापोत और तेजो ये चार लेश्याएँ होती है ।

असुरकुमारादि के भवनो की सख्या पहले बताई जा चुकी है । असुरकुमारो के चौसठ लाख भवन हैं, नागकुमारो के चौरासी लाख भवन हैं । सुवर्णकुमारों के बहत्तर लाख भवन हैं । विद्युतकुमार आदि छह के प्रत्येक के छहत्तर लाख छहत्तर लाख भवन है और पवनकुमारो के छयानवे लाख भवन है । तदनुसार ही प्रश्नसूत्र और उत्तरसूत्र कहना चाहिए ।

पृथ्वीकायिक के स्थितिस्थानादि

१६१ प्रश्न-असंखिज्जेसु णं भंते ! पुढविक्काइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविक्काइयाणं केवइया

ठितिट्ठाणा पन्नत्ता ?

१९१ उत्तर-गोयमा ! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पन्नत्ता। तं ज़हाः-जहन्निया ठिई जाव-तप्पाउग्गुकोसिया ठिई।

१९२-असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविक्काइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविक्काइयावासंसि जहण्णियाए ठितिए वट्टमाणा पुढविक्काइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

१९२ उत्तर-गोयमा ! कोहोवउत्ता वि, माणोवउत्ता वि, मायोवउत्ता वि, लोभोवउत्ता वि। एवं पुढविक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं। नवरं-तेउलेस्साए असीतिभंगा, एवं आउक्काइया वि। तेउक्काइया, वाउक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं। वणस्सइकाइया जहा पुढविक्काइया।

विशेष शब्दों के अर्थ-असंखिज्जेसु-असख्यात में।

भावार्थ-१९१ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवासों में से एक एक आवास में बसने वाले पृथ्वीकायिकों के कितने स्थितिस्थान कहे गये हैं ?

१९१ उत्तर-हे गौतम ! उनके असंख्य स्थितिस्थान कहे गये हैं। यथा-उनकी जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्य स्थिति, दो समय अधिक जघन्य स्थिति, इत्यादि यावत् उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति।

१९२ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के असंख्यात लाख आवासों में से एक एक आवास में बसने वाले और जघन्य स्थिति में वर्तमान पृथ्वीकायिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त है ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ?

१६२ उत्तर-हे गौतम ! वे क्रोधोपयुक्त भी हैं, मानोपयुक्त भी है, मायोपयुक्त भी है और लोभोपयुक्त भी हैं। इस प्रकार पृथ्वीकायिकों के सब स्थानों में अभंगक है। विशेष यह है कि तेजोलेश्या में अस्सी भंग कहना चाहिए। इसी प्रकार अप्काय के लिये भी जानना चाहिये। तेउकाय और वायुकाय के सब स्थानों में अभंगक हैं। वनस्पतिकायिक को पृथ्वीकायिक के समान समझना चाहिए।

विवेचन-एक एक कषाय में उपयुक्त बहुत से पृथ्वीकायिक होते है, इसलिए स्थितिस्थान आदि दस ही द्वारो में 'अभंगक' समझना चाहिए। पृथ्वीकायिक सम्बन्धी लेश्या द्वार मे तेजोलेश्या मे अस्सी भंग कहना चाहिए। क्योकि जब कोई एक देव या बहुत से देव, देवलोक से चव कर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होते है तब पृथ्वीकायिक जीवो में तेजोलेश्या होती है और उनके एकत्वादि के कारण अस्सी भग होते हैं।

पृथ्वीकायिकों के स्थितिस्थान द्वार का कथन ऊपर किया गया है। बाकी द्वारों का वर्णन नारकियों की तरह कहना चाहिए, किन्तु शरीरादि सात द्वारों मे भेद है, वह इस प्रकार है-पृथ्वीकायिक जीवों के तीन शरीर होते हैं-औदारिक, तैजस् और कार्मण। पृथ्वीकायिक जीवो के शरीर सघात रूप मे मनोज्ञ और अमनोज्ञ दोनो प्रकार के पुद्गल परिणमते हैं। उनका सस्थान हुण्डक होता है। नैरयिको मे भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय ऐसे शरीर के दो भेद कहे थे, वे पृथ्वीकायिकों मे नही कहना चाहिए। पृथ्वीकायिकों में कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या, ये चार लेश्याएँ होती हैं। तीन लेश्याओ में अभंगक समझना चाहिये और तेजोलेश्या मे अस्सी भग होते है। पृथ्वीकायिक जीव एकान्त मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होते हैं, उनमे मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान, ये दो अज्ञान पाये जाते हैं। पृथ्वीकायिकों मे सिर्फ एक काययोग होता है। उनमें मनयोग और वचन योग नहीं होता है।

पृथ्वीकायिको के समान अप्कायिको का कथन कहना चाहिए। दस ही द्वारों में वे अभंगक हैं, एक तेजोलेश्या मे अस्सी भग होते हैं, क्योकि अप्काय में भी देव उत्पन्न होते है।

तेउकाय और वायुकाय का कथन पृथ्वीकाय के समान कहना चाहिए। इनमें दस ही द्वारों में अभंगक कहना चाहिए। इनमे देव उत्पन्न नही होते, इसलिए तेजोलेश्या नहीं

होती और तत्सम्बन्धी अस्सी भंग भी नहीं होते है। वायुकाय के चार शरीर होते हैं-औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

वनस्पतिकाय का वर्णन पृथ्वीकाय के समान कहना चाहिए। ये दस ही द्वारो मे अभंगक है। इनमें देव आकर उत्पन्न होते है, इसलिए तेजोलेश्या पाई जाती है और तत्सम्बन्धी अस्सी भग भी पाये जाते है।

यहां यह शंका की जा सकती है कि कर्मग्रन्थ के मतानुसार पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, इन तीनो में 'सास्वादन सम्यक्त्व' माना गया है। जब इनमें सास्वादन सम्यक्त्व माना गया है, और इसके साथ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान भी माना गया है, तब इनमें सम्यग्दृष्टि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मे अस्सी भंग भी होगे, उनका कथन यहाँ पर क्यो नही किया गया है ?

समाधान-उपर्युक्त शंका ठीक नही है, क्योंकि पृथ्वीकायादि स्थावरकाय मे सास्वादन सम्यक्त्व नही होता है। इसलिए यहाँ उसका उल्लेख नही किया गया है। कहा भी है-

उभयाभावो पुढवाइएसु। विगलेसु होज्ज उववण्णो त्ति।।

अर्थात्-पृथ्वीकायादि तीन मे उभयाभाव होता है अर्थात् प्रतिपद्यमान और पूर्व प्रतिपन्न, इस दोनो सम्यक्त्व का अभाव होता है। विकलेन्द्रियो में पूर्वोपपन्नक होते हैं। तात्पर्य यह है कि पृथ्वीकायादि में रहा हुआ कोई भी जीव सम्यक्त्व को प्राप्त नही करता और पूर्व प्राप्त सम्यक्त्व को साथ लेकर भी कोई जीव वहाँ उत्पन्न नही होता। विकलेन्द्रियों मे रहा हुआ जीव, पूर्व प्राप्त सम्यक्त्व को साथ लेकर आता है, इसलिए वह पूर्वोपपन्नक कहलाता है।‡

बेइन्द्रियादि के स्थिति आदि

१९३ – बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं जेहिं ठाणेहिं नेरइ-

‡ यद्यपि टीकाकार ने यह बात कही है कि 'पृथ्वीकायिकादि मे सास्वादन सम्यक्त्व आदि अत्यन्त स्वल्प समय होता है, किन्तु यह बात शास्त्र संगत नही है। जैसाकि—'उभयाभावो पुढवाइएसु' गाथा से स्पष्ट है। और मूलपाठ तथा श. २४ उ. १२ और प्रज्ञापनादि के मूल पाठ से भी यही सिद्ध होता है। अतएव पृथ्व्यादि स्थावरकाय मे सास्वादन सम्यक्त्व मानना उचित नही है।

याणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं असीइं चेव। नवरं-अब्भहिया सम्मत्ते, आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे य एएहिं असीइभंगा। जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं।

विशेष शब्दों के अर्थ-अब्भहिया-अधिक।

भावार्थ-१९३-जिन स्थानों में नैरयिक जीवों के अस्सी भंग कहे गये हैं, उन स्थानों में बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों के भी अस्सी भंग होते हैं। विशेषता यह है कि सम्यक्त्व, आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) और श्रुतज्ञान, इन तीन स्थानों में भी बेइन्द्रियादि जीवों के अस्सी भंग होते हैं, यह बात नैरयिक जीवों से अधिक है। तथा जिन स्थानों में नारकी जीवों में सत्ताईस भंग कहे गये हैं, उन सभी स्थानों में यहाँ अभंगक है अर्थात् कोई भंग नहीं होते हैं।

विवेचन-नारकी जीवो के प्रकरण मे संख्यात समय अधिक तक जघन्य स्थिति मे, जघन्य अवगाहना में, सख्यात प्रदेश अधिक तक जघन्य अवगाहना मे और मिश्रदृष्टि में अस्सी भंग कहे हैं। यहाँ विकलेन्द्रियों (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवो) के सम्बन्ध मे भी इन स्थानो मे अस्सी भग ही समझना चाहिये, क्योकि विकलेन्द्रिय जीव अल्प होते हैं, अतएव उनमे एक एक जीव भी कदाचित् क्रोधादि उपयुक्त हो सकता है। मिश्रदृष्टि वाली के अस्सी भंग यहाँ नही कहना चाहिए, इसका कारण यह है कि विकलेन्द्रियो में मिश्रदृष्टि जीव नही होते।

दृष्टिद्वार और ज्ञानद्वार मे नारकी जीवो के सत्ताईस भग कहे गये हैं, किन्तु यहाँ अधिक अर्थात् अस्सी भग कहना चाहिए। क्योकि बहुत थोड़े विकलेन्द्रियो को सास्वादन सम्यक्त्व होता है और बहुत थोड़े होने के कारण एकत्व सम्भव है। इस प्रकार एकत्व संभव होने के कारण अस्सी भंग कहे गये है। यही बात आभिनिवोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) और श्रुतज्ञान के लिए भी समझना चाहिए, इनमें भी अस्सी भंग कहना चाहिए।

नारकी जीवो के सम्बन्ध मे जिन जिन स्थानों मे सत्ताईस भंग बतलाये गये हैं, उन उन स्थानो मे विकलेन्द्रियो के सम्बन्ध मे अभंगक अर्थात् भंगो का अभाव कहना चाहिए। अभगक कहने का कारण यह है कि विकलेन्द्रिय जीवों मे क्रोधादि उपयुक्त जीव एक साथ

बहुत पाये जाते है।

विकलेन्द्रिय सम्बन्धी कथन पृथ्वीकायिक की तरह कहना चाहिए, परन्तु लेश्या द्वार मे तेजोलेश्या नही कहना चाहिए। विकलेन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होते है। सम्यग्दृष्टि में अस्सी भंग कहना चाहिए। विकलेन्द्रिय जीव मिश्रदृष्टि नही होते। विकलेन्द्रिय जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनों तरह के होते है। ज्ञानी में मतिज्ञान और श्रुत-ज्ञान ये दो ज्ञान पाये जाते है और इनमें अस्सी भंग होते है। अज्ञानी में मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान होते है और इनमें अभंगक है।

विकलेन्द्रियो में काययोग और वचनयोग ये दो योग होते है, मनोयोग नही होता। बाकी सब पहले की तरह कहना चाहिए।

१९४–पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया तहा भाणि-यव्वा। नवरं–जेहिं सत्तावीसं भंगा तेहिं अभंगयं कायव्वं। जत्थ असीति तत्थ असीतिं चेव।

विशेष शब्दों के अर्थ–पंचिदियतिरिक्ख जोणिया–पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक।

भावार्थ–१९४–जैसा नारकी जीवों के विषय में कहा गया है, वैसा ही पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों के विषय में भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि नारकी जीवों के सम्बन्ध में जिन जिन स्थानों में सत्ताईस भंग कहे गये हैं, उन उन स्थानों में यहाँ अभंगक कहना चाहिए और जिन स्थानों में अस्सी भंग कहे गये है, उन स्थानों में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों में भी अस्सी भंग कहना चाहिए।

विवेचन–तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों के विषय में नारकी जीवों के समान प्ररूपणा समझना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि नैरयिकों में जिन स्थानो में सत्ताईस भग कहे गये हैं, उन स्थानों मे यहाँ अभंगक कहना चाहिए। क्योंकि क्रोधादि उपयुक्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च एक ही साथ बहुत पाये जाते हैं। नारकी जीवों मे जहाँ अस्सी भग कहे हैं वहाँ इनमें भी अस्सी भंग कहना चाहिए।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवो मे चार शरीर होते है–औदारिक, वैक्रियक, तैजस, और

कार्मण। उनमें वज्रऋषभनाराचादि छह संहनन, समचतुरस्र आदि छह संस्थान और कृष्णादि छहों लेश्याएँ होती हैं।

मनुष्य के स्थिति आदि

१६५-मणुस्सा वि जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीतिभंगा तेहिं ठाणेहिं मणुस्साणं वि असीतिभंगा भाणियव्वा। जेसु ठाणेसु सत्ता-वीसा तेसु अभंगयं। नवरं-मणुस्साणं अब्भहियं जहण्णियठिइए, आहारए य असीतिभंगा।

विशेष शब्दों के अर्थ-अब्भहियं-अधिक।

भावार्थ-१६५-नारकी जीवों में जिन जिन स्थानों में अस्सी भंग कहे गये हैं, उन उन स्थानों में मनुष्यों में भी अस्सी भंग कहना चाहिए। नारकी जीवों में जिन जिन स्थानों में सत्ताईस भंग कहे गये है उन उन स्थानों में मनु-ष्यों में अभंगक कहना चाहिए। विशेषता यह है कि मनुष्यों में जघन्य स्थिति में और आहारक शरीर में अस्सी भंग कहना चाहिए।

विवेचन-पहले नारकी जीवो का दस द्वारो से वर्णन किया जा चुका है। उनमें से जिन जिन द्वारों में नारकियों के अस्सी भंग कहे हैं, उन उन द्वारों में मनुष्य के सम्बन्ध में भी अस्सी भग ही समझना चाहिए। एक समय अधिक जघन्य स्थिति से लेकर संख्यात समय अधिक तक की जघन्य स्थिति में, जघन्य अवगाहना में, तथा एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना से लेकर संख्यात प्रदेश अधिक तक की जघन्य अवगाहना में और मिश्रदृष्टि में जिस प्रकार नारकी जीवों के विषय मे अस्सी भंग कहे हैं, उसी प्रकार इन द्वारो में मनुष्यों के विषय मे भी अस्सी ही भंग समझना चाहिए, क्योकि ऐसे मनुष्य कम होते हैं।

नारकी जीव और मनुष्य सम्बन्धी प्ररूपणा में इतना अन्तर है कि-जिन स्थानों में नारकियो के सत्ताईस भग बतलाए हैं, वहां मनुष्य में अभंगक समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि नारकी जीवो में अधिकांशत. क्रोध का ही उदय होता है, इस कारण नारकियो में सत्ताईस भंग कहे गये हैं, किन्तु मनुष्य क्रोधादि सभी कषायों में उपयुक्त बहुत जीव पाये जाते हैं और उनके कषायोदय मे कोई खास विशेषता नहीं है, इसलिए

मनुष्य के सम्बन्ध में अभंगक (भंगों का अभाव) बतलाया गया है।

मनुष्य की प्ररूपणा मे इतनी बात नैरयिको से अधिक समझना चाहिए; -नारकियो के जघन्य स्थिति मे सत्ताईस भंग होते है, किन्तु मनुष्यों की जघन्य स्थिति में अस्सी भंग होते है। मनुष्यो में आहारक शरीर मे अस्सी भंग होते हैं, क्योकि आहारक शरीर वाले मनुष्य कम ही होते है और नैरयिक जीवो मे तो आहारक शरीर होता ही नही।

मनुष्यो के छह संहनन, छह संस्थान, और छह लेश्याएँ होती है। मनुष्यो मे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान, ये पांचों ज्ञान होते है। इनमें से चार ज्ञानो में अभंगक कहना चाहिए। केवलज्ञान मे किसी भी कषाय का उदय नही होता है।

वाणव्यन्तरादि के स्थिति आदि

१९६-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा भवणवासी। णवरं-णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स, जाव-अणुत्तरा।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव-विहरइ।

॥ पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-वाणमंतर-वाणव्यन्तर देव, जोइस-ज्योतिषी देव, वेमाणिया -वैमानिक देव।

भावार्थ-१९६-वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का कथन भवनपति देवों के समान समझना चाहिए, विशेषता यह है कि-जिसकी जो भिन्नता है वह जानना चाहिए, यावत् अनुत्तर विमान तक कहना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-पहले भवनपति देवो का वर्णन दस द्वारो से किया गया है, उसी वर्णन के अनुसार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का वर्णन समझना चाहिए। भवन-

पति देवों में जहाँ अस्सी भंग कहे है, वहाँ अस्सी भंग और जहाँ सत्ताईस भंग कहे है, वहाँ सत्ताईस भंग वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिको मे भी समझना चाहिए।

भवनपति और वाणव्यन्तर देवों का वर्णन एक समान है, किन्तु ज्योतिषी और वैमानिकों में कुछ अन्तर है। यह बात प्रकट करने के लिए ही कहा गया है कि-जिसमें जहाँ जो विशेषता हो वह जानना चाहिए, जैसे कि-लेश्या द्वार मे ज्योतिषी देवों में केवल एक तेजोलेश्या ही पाई जाती है। ज्ञान द्वार में नियमपूर्वक तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान पाये जाते है। क्योकि असंज्ञी जीव ज्योतिषी देवों में उत्पन्न नही होते, अतएव वहाँ अपर्याप्त अवस्था में भी विभंग ज्ञान होता है।

वैमानिक देवो में भी लेश्याद्वार में भवनपति देवों से कुछ भिन्नता है। वैमानिक देवों में तेजो, पद्म और शुक्ल, ये तीन शुभ लेश्याएँ ही पाई जाती है। इसी प्रकार ज्ञान द्वार में नियम पूर्वक तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान कहना चाहिए।

॥ प्रथम शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १ उद्देशक ६

सूर्य के उदयास्त दृश्य की दूरी

१९७ प्रश्न-जावइयाओ य णं भंते ! उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, अत्थमंते वि य णं सूरिए तावतियाओ चेव उवासंतराओ चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति ?

१९७ उत्तर-हंता, गोयमा ! जावइयाओ णं उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं...., अत्थमंते वि सूरिए जाव-हव्व-मागच्छति ।

१९८ प्रश्न-जावइया णं भंते ! खित्तं उदयंते सूरिए आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ; अत्थमंते वि य णं सूरिए तावइयं चेव खित्तं आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ ?

१९८ उत्तर-हंता, गोयमा ! जावतियं णं खेत्तं जाव-पभासेइ ।

१९९ प्रश्न-तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेइ, अपुट्ठं ओभासेइ ?

१९९ उत्तर-जाव-छद्दिसिं ओभासेति । एवं उज्जोवेइ, तवेइ, पभासेइ, जाव-नियमा छद्दिसिं ।

२०० प्रश्न-से णूणं भंते ! सव्वं ति सव्वावंति फुसमाणकाल-

समयंसि जावतियं खेत्तं फुसइ तावतियं 'फुसमाणे पुट्ठे' त्ति वत्तव्वं सिया ?

२०० उत्तर-हंता, गोयमा ! सव्वं ति जाव वत्तव्वं सिया ।

२०१ प्रश्न-तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ अपुट्ठं फुसई ?

२०१ उत्तर-जाव-नियमा छद्दिसिं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-उवासंतराओ-अवकाशान्तर से, उदयंते-उदय होता हुआ, चक्खुफासं-चक्षु.स्पर्श-नजर आना, आयवेणं-आतप से-धूप से, ओभासेइ-प्रकाशित करता है, उज्जोएइ-उद्योत करता है, तवेइ-तपता है, पभासेइ-खूब तपाता है, अत्थमंते-अस्त होता हुआ, पुट्ठं-स्पृष्ट, अपुट्ठं-अस्पृष्ट, छद्दिसिं-छह दिशाएँ, फुसइ-स्पर्श करता है ।

भावार्थ-१९७ प्रश्न-हे भगवन् ! जितने अवकाशान्तर से अर्थात् जितनी दूरी से उगता हुआ सूर्य शीघ्र आँखों से देखा जाता है, क्या उतनी ही दूरी से अस्त होता हुआ सूर्य भी शीघ्र दिखाई देता है ?

१९७ उत्तर-हाँ, गौतम ! जितनी दूरी से उगता हुआ सूर्य शीघ्र दिखाई देता है, उतनी ही दूरी से अस्त होता हुआ सूर्य भी शीघ्र आँखों से दिखाई देता है ।

१९८ प्रश्न-हे भगवन् ! उगता हुआ सूर्य अपने ताप द्वारा जितने क्षेत्र को सब प्रकार चारों ओर से सभी दिशाओं और विदिशाओं में प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और खूब तपाता है । क्या उतने ही क्षेत्र को अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने ताप द्वारा सभी दिशाओं और सभी विदिशाओं को प्रकाशित करता है ? उद्योतित करता है ? तपाता है ? खूब उष्ण करता है ?

१९८ उत्तर-हाँ, गौतम ! उगता हुआ सूर्य जितने क्षेत्र को प्रकाशित करता है, उतने ही क्षेत्र को अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने ताप द्वारा प्रकाशित करता है यावत् खूब उष्ण करता है ?

१९९ प्रश्न-हे भगवन् ! सूर्य जिस क्षेत्र को प्रकाशित करता है, क्या वह क्षेत्र सूर्य से स्पृष्ट-स्पर्श किया हुआ होता है या अस्पृष्ट होता है ?

१९९ उत्तर-हे गौतम ! वह क्षेत्र सूर्य से स्पृष्ट होता है और यावत् उस क्षेत्र को छहों दिशाओं में प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और खूब तपाता है। यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं में खूब तपाता है।

२०० प्रश्न-हे भगवन् ! सूर्य स्पर्श करने के काल-समय से सूर्य के साथ सम्बन्ध रखने वाले जितने क्षेत्र को सब दिशाओं में सूर्य स्पर्श करता है, क्या वह क्षेत्र 'स्पृष्ट' कहा जा सकता है ?

२०० उत्तर-हाँ, गौतम ! सर्व यावत् 'वह स्पृष्ट है' ऐसा कहा जा सकता है।

२०१ प्रश्न-हे भगवन् ! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है ? या अस्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है ?

२०१ उत्तर-हे गौतम ! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है, यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं में स्पर्श करता है।

विवेचन-पांचवें उद्देशक के अन्त में आँखों से दिखाई देने वाले ज्योतिषी देवों के विमानावासों का वर्णन किया था। अब उन्हीं से सम्बन्धित बात को बतलाते हुए तथा इस शतक की प्रथम संग्रह गाथा में 'जावंते' यह पद आया है इसको बतलाते हुए छठे उद्देशक का प्रारम्भ किया गया है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि-हे भगवन् ! उगता हुआ सूर्य जितनी दूर से आंखों से दिखाई देता है, क्या डूबता हुआ सूर्य भी उतनी ही दूर से आंखों से दिखाई देता है ? भगवान् ने फरमाया कि-हाँ, गौतम ! उगता हुआ सूर्य जितनी दूर से आंखों से दिखाई देता है, डूबता हुआ सूर्य भी उतनी ही दूरी से आँखों से दिखाई देता है।

सूर्य के १८४ मण्डल कहे गये है। कर्क की संक्रान्ति में सूर्य सर्वाभ्यन्तर (सब से पीछे वाले) मण्डल में भ्रमण करता है। उस समय वह भरत क्षेत्र में रहने वालों को साधिक ४७२६३ योजन दूरी से दिखता है। मूलपाठ में 'चक्खुफासं' शब्द दिया गया है, जिसका सीधा शब्दार्थ है-'चक्षु का स्पर्श होना'। किन्तु इसका अर्थ है-'चक्षु द्वारा दिखाई देना'। चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी है। वह अपने विषय 'रूप' को छुए बिना ही दूर से देख लेती है। स्पर्श होने पर तो वह अपने में रहे हुए काजल को भी नहीं देख पाती, फिर

औरो की तो बात ही क्या है ? चक्षु इन्द्रिय के सिवाय शेष चार इन्द्रियां प्राप्यकारी है। वे अपने ग्राह्य विषय को प्राप्त करके ही जानती हैं।

उगता हुआ सूर्य जितने लम्बे चौड़े ऊंचे और गहरे क्षेत्र को प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और खूब तपाता है, उतने ही क्षेत्र को डूबता हुआ सूर्य भी प्रकाशित आदि करता है।

इस प्रश्नोत्तर में 'ओभासइ, उज्जोएइ, तवेइ और पभासेइ' ये चार क्रियापद आये है। जिनका अर्थ यह है-'ओभासइ-अवभासयति अर्थात्-थोड़ा प्रकाशित होता है। प्रातःकाल में पहले सूर्य को थोड़ी सी ललाई नजर आती है, उस समय सूर्य का मण्डल दिखाई नही देता है। सूर्य के उस प्रकाश को 'अवभास' कहते हैं। उस समय स्थूलतर वस्तुएँ ही दिखाई देती हैं। सुबह और शाम के जिस प्रकाश में स्थूल (बड़ी बड़ी) वस्तुएँ ही दिखाई देती है, सूर्य के उस प्रकाश को 'उद्योत' कहते है। उस समय बड़ी बड़ी वस्तुओं का प्रकाशित होना उद्योतित होना कहलाता है। 'तवेइ' का अर्थ है-तपता है, शीत को दूर करता है, अथवा यह ताप ऐसा होता है जिससे चीटी आदि छोटे छोटे प्राणी भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'पभासेइ-प्रभासयति' अर्थात् खूब तपता है, अत्यन्त ताप होने से शीत को विशेष रूप से दूर करता है तथा यह ताप ऐसा होता है जिससे छोटी से छोटी वस्तु भी दिखाई देती है।

सूर्य जिस क्षेत्र को अवभासित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है, खूब तपाता है, उस क्षेत्र को स्पर्श करके अवगाहन करके अवभासित आदि करता है। अनन्तरावगाढ़ को अवभासित आदि करता है, किन्तु परम्परावगाढ को नही। अणु, बादर, ऊपर, नीचे, तिरछा, आदि, मध्य और अन्त आदि सब क्षेत्र को अवभासित आदि करता है। वह स्वविषय मे अवभासित होता है, परविषय मे नही, क्रमपूर्वक अवभासित होता है, अक्रम-पूर्वक नही। वह छहो दिशाओ को अवभासित आदि करता है। सूर्य जिस क्षेत्र को स्पर्श करने लगा, तब 'चलमाणे चलिए' के सिद्धान्तानुसार 'स्पृष्टस्पर्श किया हुआ' ऐसा कहा जा सकता है।



लोकान्त स्पर्शना आदि

२०२ प्रश्न-लोयंते भंते ! अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं

फुसइ ?

२०२ उत्तर-हंता, गोयमा ! लोयंते अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं फुसइ ।

२०३ प्रश्न-तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ, अपुट्ठं फुसइ ?

२०३ उत्तर-जाव-नियमा छद्दिसिं फुसइ ।

२०४ प्रश्न-दीवंते भंते ! सागरंतं फुसइ, सागरंते वि दीवंतं फुसइ ?

२०४ उत्तर-हंता, जाव-नियमा छद्दिसिं फुसइ ।

२०५ प्रश्न-एवं एएणं अभिलावेणं-उदयंते पोयंतं फुसइ, छिद्दन्ते दूसंतं, छायंते आयवंतं....?

२०५ उत्तर-जाव-नियमा छद्दिसिं फुसइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-फुसइ-स्पर्श करता है, लोयंते-लोकान्त, अलोयंते-अलोकान्त. पुट्ठं-स्पृष्ट, दीवंते-द्वीपान्त, अभिलावेणं-अभिलाप से,उदयते-उदकान्त, जल का अन्तिम भाग, पोयंते-पोतान्त=जहाज का अन्तिम भाग, छिद्दंते-छिद्रान्त=छेद का अन्त, दूसंतं-वस्त्र का अन्त, छायंते-छाया का अन्त, आयवंतं-आतपान्त=धूप का अन्तिम भाग ।

भावार्थ-२०२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या लोक का अन्त (किनारा) अलोक के अन्त को स्पर्श करता है ? क्या अलोक का अन्त लोक के अन्त को स्पर्श करता है ?

२०२ उत्तर-हे गौतम ! लोक का अन्त, अलोक के अन्त को और अलोक का अन्त, लोक के अन्त को स्पर्श करता है ।

२०३ प्रश्न-हे भगवन् ! जो स्पर्श किया जा रहा है क्या वह स्पृष्ट है ? या अस्पृष्ट है ?

२०३ उत्तर-हे गौतम ! यावत् छहों दिशाओं में स्पृष्ट होता है।

२०४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या द्वीप का अन्त (किनारा) समुद्र के अन्त को और समुद्र का अन्त, द्वीप के अन्त को स्पर्श करता है ?

२०४ उत्तर-हां, गौतम ! यावत् नियम से छहों दिशाओं को स्पर्श करता है।

२०५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या इसी प्रकार इसी अभिलाप से पानी का किनारा, पोत (नौका-जहाज) के किनारे को स्पर्श करता है ? क्या छेद का किनारा, वस्त्र के किनारे को स्पर्श करता है ? और क्या छाया का किनारा, आतप (धूप) के किनारे को स्पर्श करता है ?

२०५ उत्तर-हाँ, गौतम ! यावत् नियम पूर्वक छहों दिशाओं को स्पर्श करता है।

विवेचन-गौतमस्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! क्या लोक के अन्त ने अलोक को और अलोक के अन्त ने लोक को स्पर्श कर रखा है ? भगवान् ने फरमाया कि-हां, गौतम ! स्पर्श कर रखा है और छहो दिशाओं मे स्पर्श कर रखा है।

जिस आकाश के साथ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय, ये चारो अस्तिकाय होते है, उसे लोक कहते है और जिस आकाश के साथ ये चारो नही है, किन्तु केवल आकाश ही आकाश है वह अलोक है। तात्पर्य यह है कि पूर्ण ज्ञानियो ने आकाश सहित पांचो अस्तिकाय जहां विद्यमान देखें, उसे 'लोक' संज्ञा दी और जहा केवल आकाश देखा, उस भाग को 'आलोक' सज्ञा दी। काल का व्यवहार भी लोक मे ही होता है अलोक मे नही।

लोक और अलोक दोनो की सीमा मिली हुई है अर्थात् दोनों का अन्त एक दूसरे को स्पर्श करता है। इस प्रकार लोक का अन्त, अलोक के अन्त से और अलोक का अन्त, लोक के अन्त से छहो दिशाओ में स्पृष्ट है।

सागर का अन्त, द्वीप के अन्त को और द्वीप का अन्त, सागर के अन्त को स्पर्श करता है। जैसे-जम्बूद्वीप का अन्त, लवण समुद्र से और लवण समुद्र, जम्बूद्वीप के अन्त से मिला हुआ है। इसी प्रकार सब द्वीप समुद्रो का परस्पर स्पर्श है और वह स्पर्श छहों दिशाओ से है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि द्वीप और समुद्रों का अन्त छहों दिशाओं में कैसे स्पर्श करता है ? इसका समाधान यह है कि-सब द्वीपों की और सब समुद्रों की गहराई एक हजार योजन होती है। इसलिए द्वीपों और समुद्रों का अन्त एक दूसरे से नीचे भी स्पर्श करता है, बीच में भी स्पर्श करता है और ऊपर भी स्पर्श करता है। चारों तरफ चारों दिशाओं की स्पर्शना तो स्पष्ट ही है। इस प्रकार छहों दिशाओं में स्पर्शना होती है।

इस विषय में धूप और छाया, वस्त्र और छिद्र आदि के दृष्टान्त भी दिये गये हैं। धूप का अन्त, छाया के अन्त को और छाया का अन्त, धूप के अन्त को स्पर्श करता है। इसी प्रकार वस्त्र का अन्त, छिद्र के अन्त को और छिद्र का अन्त, वस्त्र के अन्त को स्पर्श करता है और वह छहों दिशाओं में स्पर्श करता है।

क्रिया विचार

२०६ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाए णं किरिया कज्जइ ?

२०६ उत्तर-हंता, अत्थि।

२०७ प्रश्न-सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?

२०७ उत्तर-जाव-निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं।

२०८ प्रश्न-सा भंते ! किं कडा कज्जइ ? अकडा कज्जइ ?

२०८ उत्तर-गोयमा ! कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ।

२०९ प्रश्न-सा भंते ! किं अत्तकडा कज्जइ ? परकडा कज्जइ ? तदुभयकडा कज्जइ ?

२०९ उत्तर-गोयमा ! अत्तकडा कज्जइ, णो परकडा कज्जइ,

नो तदुभयकडा कज्जइ ।

२१० प्रश्न-सा भंते ! किं आणुपुव्विं कडा कज्जइ ? अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ ?

२१० उत्तर-गोयमा ! आणुपुव्विं कडा कज्जइ, णो अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ । जा य कडा कज्जइ, जा य कज्जिस्सइ सव्वा सा आणुपुव्विकडा, णो अणाणुपुव्विकड त्ति वत्तव्वं सिया ।

२११ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं पाणाइवायकिरिया कज्जइ ?

२११ उत्तर-हंता, अत्थि ।

२१२ प्रश्न-सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?

२१२ उत्तर-जाव-नियमा छद्दिसिं कज्जइ ।

२१३ प्रश्न-सा भंते ! किं कडा कज्जइ ? अकडा कज्जइ ?

२१३ उत्तर-तं चेव जाव-णो अणाणुपुव्विं कड त्ति वत्तव्वं सिया ।

२१४-जहा णेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्वा जाव-वेमाणिया । एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्वा ।

२१५-जहा पाणाइवाए तहा मुसावाए, तहा अदिण्णादाणे, मेहुणे, परिग्गहे, कोहे जाव-मिच्छादंसणसल्ले । एवं एए अट्ठारस चउवीसं दंडगा भाणियव्वा । सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं

गोयमे समणं भगवं जाव-विहरइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पाणाइवाए-प्राणातिपात, णिव्वाघाएणं-निर्व्याघात रूप से, पडुच्च-प्रतीत्य=अपेक्षा से, अत्तकडा-आत्मकृत, परकडा-परकृत, आणुपुव्वि-आनुपूर्वी=अनुक्रम से, अणाणुपुव्वि-अनानुपूर्वी=अनुक्रम के बिना, वत्तव्वं सिया-कहना चाहिए, मुसावाए-मृषावाद, अदिण्णादाणे-अदत्तादान, मेहुणे-मैथुन, मिच्छादंसणसल्ले-मिथ्यादर्शन शल्य।

भावार्थ-२०६ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीवों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है?

२०६ उत्तर-हाँ, गौतम! की जाती है।

२०७ प्रश्न-हे भगवन्! की जाने वाली वह क्रिया क्या स्पृष्ट है? या अस्पृष्ट है?

२०७- उत्तर हे गौतम! यावत् व्याघात न हो, तो छहों दिशाओं को और व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं को, कदाचित् चार दिशाओं को और कदाचित् पांच दिशाओं को स्पर्श करती है।

२०८ प्रश्न-हे भगवन्! की जाने वाली क्रिया क्या 'कृत' है? या 'अकृत' है?

२०८ उत्तर-हे गौतम! वह क्रिया कृत है, अकृत नहीं।

२०९ प्रश्न-हे भगवन्! की जाने वाली क्रिया क्या आत्मकृत है? या परकृत है? या तदुभयकृत है?

२०९ उत्तर-हे गौतम! वह आत्मकृत है, किन्तु परकृत या उभयकृत नहीं है।

२१० प्रश्न-हे भगवन्! जो क्रिया की जाती है क्या वह अनुक्रम पूर्वक कृत है या बिना अनुक्रम से कृत है?

२१० उत्तर-हे गौतम! वह अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु बिना अनुक्रम-कृत नहीं है। जो क्रिया की जा रही है तथा की जायगी वह सब अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु बिना अनुक्रमपूर्वककृत नहीं है। ऐसा कहना चाहिए।

२११ प्रश्न-हे भगवन्! क्या नैरयिकों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की

जाती है ?

२११ उत्तर-हाँ, गौतम ! की जाती है।

२१२ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिकों द्वारा जो क्रिया की जाती है, क्या वह स्पृष्ट है ? या अस्पृष्ट है ?

२१२ उत्तर-हे गौतम ! वह क्रिया यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं में की जाती है।

२१३ प्रश्न-हे भगवन् ! जो क्रिया की जाती है, क्या वह कृत है ? या अकृत है ?

२१३ उत्तर-हे गौतम ! वह पहले की तरह जानना चाहिये यावत् वह अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु अननुक्रमपूर्वक कृत नहीं है। ऐसा कहना चाहिए।

२१४-नैरयिकों के समान एकेन्द्रिय को छोड़ कर यावत् वैमानिक तक सब दण्डकों में कहना चाहिए। एकेन्द्रियों का कथन औधिक जीवों की तरह कहना चाहिए।

२१५-प्राणातिपात के समान मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य तक अठारह ही पापों के विषय में कहना चाहिए। इस तरह अठारह पापस्थानों का कथन चौवीस ही दण्डकों में कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर भगवान् गौतम, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके यावत् विचरते हैं।

विवेचन-स्पर्शना का अधिकार चल रहा है, इसलिए अब प्राणातिपात आदि पापस्थानकों से उत्पन्न होने वाली कर्म सम्बन्धी स्पर्शना के विषय में कहा जाता है।

क्रिया शब्द का अर्थ इस प्रकार है-'क्रियते इति क्रिया-कर्म'। जो की जाय उसे क्रिया कहते हैं और क्रिया को 'कर्म' कहते हैं। यह क्रिया (कर्म) 'कृत' (की हुई) होती है किन्तु 'अकृत' (विना की हुई) नहीं होती है। वह भी आत्मकृत होती है, किन्तु परकृत और तदुभयकृत नहीं होती है। वह भी आनुपूर्वीकृत होती है, किन्तु अनानुपूर्वीकृत नहीं होती है।

अनुक्रम से गिनना आनुपूर्वी कहलाती है,जैसे कि-एक, दो, तीन,चार,पांच इत्यादि।

इस क्रम को एक दम उल्टा कर देना पश्चानुपूर्वी कहलाती है। जैसे कि-पांच, चार, तीन, दो एक। एक दम उल्टा या एक दम सुल्टा क्रम न होना 'अनानुपूर्वी' कहलाती है, जैसे कि-दो, पांच, एक, चार, तीन आदि *।

यह प्राणातिपात क्रिया का समुच्चय विचार हुआ। नैरयिक जीवों के सम्बन्ध में सब प्रश्नोत्तर पूर्वोक्त सामान्य जीव के समान ही समझना चाहिए। किन्तु नारकी जीवों के सम्बन्ध में छहो दिशाओं का स्पर्श कहना चाहिए, क्योंकि त्रसनाड़ी मे होने के कारण अलोक के अन्तर का व्याघात यहाँ नही होता है।

एकेन्द्रिय जीवो के पांच दण्डको को छोड़ कर शेष सब दण्डको के सम्बन्ध में नारकी जीवो के समान ही कथन समझना चाहिए। एकेन्द्रिय जीवों मे समुच्चय जीव की तरह छह दिशाओं का और तीन आदि दिशाओं का स्पर्श कहा गया है। एकेन्द्रिय जीवों को कदाचित् तीन दिशा की क्रिया भी लगती है, कदाचित् चार दिशा की और कदाचित् पाँच दिशा की भी क्रिया लगती है तथा उत्कृष्ट छह दिशा की क्रिया लगती है।

जिस प्रकार प्राणातिपात से क्रिया लगती है, उसी प्रकार मृषावाद, अदत्तान आदि अठारह ही पापस्थानो से क्रिया लगती है। अठारह पापों में क्रोध, मान, माया लोभ का नामोल्लेख कर देने पर भी राग और द्वेष का कथन अलग किया गया है। इसका कारण यह है कि जिस अप्रीति में क्रोध और मान दोनों का समावेश हो जाता है वह द्वेष कहलाता है। जिस प्रेम (आसक्ति) में माया और लोभ दोनो का समावेश हो जाता है वह 'राग' कहलाता है।

मोहनीय कर्म के उदय से चित्त मे जो उद्वेग होता है, उसे 'अरति' कहते हैं और मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न विषयानुराग को 'रति' कहते है। लड़ाई झगड़े को 'कलह' कहते है। असद्भूत दोषों को प्रकट रूप में जाहिर करना 'अभ्याख्यान' कहलाता है। असद्भूत दोषो को गुप्त रूप से जाहिर करना, किसी की पीठ पीछे दोष प्रकट करना 'पैशुन्य' कहलाता है। दूसरे की बुराई करना, निन्दा करना 'परपरिवाद' कहलाता है। माया पूर्वक झूठ बोलना 'मायामृषावाद' है। दो दोषों के सयोग से यह पापस्थानक माना गया है।

* नवकार मन्त्र की जो आनुपूर्वी पुस्तिका है उसमे १२० भग (कोष्ठक) है। उनमे पहला भग आनुपूर्वी है, जो कि इस प्रकार है- | १ | २ | ३ | ४ | ५ | सब से अन्तिम अर्थात् एक सौ बीसवाँ भग (कोष्ठक) पश्चानुपूवी है। जो कि इस प्रकार है- | ५ | ४ | ३ | २ | १ | इन दो भगो को छोड कर शेष ११८ भग अनानुपूर्वी हैं। पहले भग की अपेक्षा लेकर इसका नाम 'आनुपूर्वी' पुस्तिका है।

इसी प्रकार मान और मृषा इत्यादि के सयोग से होनेवाले पापों का भी इसी में अन्तर्भाव समझना चाहिए। वेष बदल कर लोगो को ठगना 'मायामृषा' है ऐसा भी इसका अर्थ किया जाता है। मिथ्यादर्शनशल्य' श्रद्धा का विपरीत होना 'मिथ्यादर्शन' है। जैसे शरीर में चुभा हुआ शल्य सदा कष्ट देता है, इसी प्रकार मिथ्यादर्शन भी आत्मा को दुःखी बनाये रखता है। इसीलिए 'मिथ्यादर्शन' को शल्य कहा है।

इस प्रकार गौतमस्वामी ने अठारह ही पापो के विषय में प्रश्न किये और भगवान् ने सब के उत्तर दिये अपने हृदय का समाधान करके गौतमस्वामी 'सेवं भते ! सेवं भंते ! !', कहकर और भगवान् को वन्दना नमस्कार करके तप संयम में लीनता युक्त विचरण करने लगे।

आर्य रोह के प्रश्न

ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णामं अणगारे पगइभद्दए, पगइमउए, पगइविणीए, पगइउवसंते, पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभे, मिउमद्दवसंपन्ने, अलीणे, भद्दए, विणीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणु, अहोसिरे, झाणकोट्ठोवगए संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से रोहे अणगारे जायसड्ढे जाव-पज्जुवासमाणे एवं वदासीः-

२१६ प्रश्न-पुव्विं भंते ! लोए, पच्छा अलोए? पुव्विं अलोए, पच्छा लोए ?

२१६ उत्तर-रोहा ! लोए य, अलोए य, पुव्विं पेते, पच्छा पेते-दो वि एए सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

२१७ प्रश्न-पुव्विं भंते ! जीवा, पच्छा अजीवा ? पुव्विं अजीवा पच्छा जीवा ?

२१७ उत्तर-जहेव लोएय, अलोए य; तहेव जीवा य, अजीवा य। एवं भवसिद्धिया य, अभवसिद्धिया य, सिद्धि, असिद्धि। सिद्धा, असिद्धा।

२१८ प्रश्न-पुव्विं भंते ! अंडए, पच्छा कुक्कुडी ? पुव्विं कुक्कुडी, पच्छा अंडए ? 'रोहा ! से णं अंडए कओ ?' 'भयवं ! कुक्कुडीओ।' 'सा णं कुक्कुडी कओ ?' 'भंते ! अंडयाओ।'

२१८ उत्तर-एवामेव रोहा ! से य अंडए, सा य कुक्कुडी पुव्विं पेते, पच्छा पेते-दुवेते सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

२१९ प्रश्न-पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा अलोयंते ? पुव्विं अलोयंते पच्छा लोयंते ?

२१९ उत्तर-रोहा ! लोयंते य, अलोयंते य; जाव-अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

२२० प्रश्न-पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा सत्तमे उवासंतरे ? पुच्छा।

२२० उत्तर-रोहा ! लोयंते य, सत्तमे उवासंतरे; पुव्विं पि दो वि एते, जाव-अणाणुपुव्वी एसा रोहा ! एवं लोयंते य, सत्तमे य तणुवाए, एवं घणवाए, घणोदही, सत्तमा पुढवी। एवं लोयंते

एक्केक्केणं संजोएयव्वे इमेहिं ठाणेहिं, तं जहाः—

उवास-वाय-घणउदहि-पुढवी-दीवा य सागरा वासा,
नेरइयाई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ ॥१॥
दिट्ठी दंसण णाणा सण्णा सरीरा य जोग-उवओगे,
दव्वपएसा पज्जव अद्धा किं पुव्विं लोयन्ते ॥२॥

२२१ प्रश्न–पुव्विं भंते! लोयंते, पच्छा सव्वद्धा?

२२१ उत्तर–जहा लोयंतेणं संजोइया सव्वे ठाणा एते। एवं अलोयंतेण वि संजोएयव्वा सव्वे।

२२२ प्रश्न–पुव्विं भंते! सत्तमे उवासंतरे, पच्छा सत्तमे तणुवाए?

२२२ उत्तर–एवं सत्तमं उवासंतरं सव्वेहिं समं संजोएयव्वं, जाव–सव्वद्धाए।

२२३ प्रश्न–पुव्विं भंते! सत्तमे तणुवाए, पच्छा सत्तमे घणवाए?

२२३ उत्तर–एयं पि तहेव नेयव्वं, जाव–सव्वद्धा। एवं उवरिल्लं एक्केक्कं संजोयंतेणं जो जो हिट्ठिल्लो, तं तं छड्डंतेणं नेयव्वं, जाव–अतीय-अणागयद्धा, पच्छा सव्वद्धा, जाव–अणाणुपुव्वी एसा रोहा!

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव–विहरइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पगइभद्दए-प्रकृति से भद्र, पगइमउए-प्रकृति से कोमल, पगइविणीए-प्रकृति से विनीत, पगइउवसंते-प्रकृति से उपशान्त, अलीणे-गुरु महाराज के पास रहने वाला, अदूरसामंते-न अत्यन्त दूर और न अत्यन्त नजदीक, उड्ढं जाणू-ऊर्ध्व जानु=दोनों घुटने खड़े रखकर, अहोसिरे-शिर को नीचे की तरफ झुकाये हुए, झाण-कोट्ठोवगए-ध्यान रूपी कोठे में प्राप्त, जायसड्ढे-जातश्रद्ध=जिनको श्रद्धा उत्पन्न हुई है, सासया भावा-शाश्वत भाव, अंडए-अण्डा, कुक्कुडी-कुर्कटी=मुर्गी, उवासंतरे-अवकाशान्तर, वास-वर्ष=क्षेत्र, पज्जव-पर्याय, अद्धा-काल, संजोएयव्वं-जोड़ना चाहिए, सव्वद्धा-सर्वकाल।

भावार्थ-उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य रोह नामक अनगार थे। वे स्वभाव से भद्र, स्वभाव से कोमल, स्वभाव से विनीत,, स्वभाव से शान्त, अल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, अत्यन्त निरभिमानी, गुरु के समीप रहने वाले, किसी को कष्ट न पहुंचाने वाले और गुरुभक्त थे। वे रोह अनगार ऊर्ध्वजानु और नीचे की तरफ शिर झुकाये हुए ध्यान रूपी कोठे में प्रविष्ट, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप विचरते थे। तत्पश्चात् वे रोह अनगार जातश्रद्ध आदि होकर यावत् भगवान् की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-

२१६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले लोक है और पीछे अलोक है ? या पहले अलोक है और पीछे लोक है ?

२१६ उत्तर-हे रोह ! लोक और अलोक पहले भी हैं और पीछे भी हैं। ये दोनों ही शाश्वत भाव हैं। हे रोह ! इन दोनों में 'यह पहला और यह पिछला' ऐसा क्रम नहीं है।

२१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले जीव और पीछे अजीव है ? या पहले अजीव और पीछे जीव है ?

२१७ उत्तर-हे रोह ! जैसा लोक और अलोक के विषय में कहा है वैसा ही जीव और अजीव के सम्बन्ध में समझना चाहिए। इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, सिद्धि और असिद्धि तथा सिद्ध और संसारी के

विषय में भी जानना चाहिए।

२१८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले अण्डा और पीछे मुर्गी है ? या पहले मुर्गी और पीछे अण्डा है ?

२१८ उत्तर-हे रोह ! वह अण्डा कहाँ से आया ? हे भगवन् ! वह मुर्गी से आया। हे रोह ! वह मुर्गी कहाँ से आई ? हे भगवन् ! मुर्गी अण्डे से हुई।

इसी प्रकार हे रोह ! मुर्गी और अण्डा पहले भी है और पीछे भी है। ये दोनों शाश्वत भाव है। हे रोह ! इन दोनों में पहले और पीछे का क्रम नहीं है।

२१९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले लोकान्त है और पीछे अलोकान्त है ? या पहले अलोकान्त है और पीछे लोकान्त है ?

२१९ उत्तर-हे रोह ! लोकान्त और अलोकान्त, इन दोनों में यावत् कोई क्रम नहीं है।

२२० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले लोकान्त है और पीछे सातवाँ अवकाशान्तर है ? या पहले सातवाँ अवकाशान्तर है और पीछे लोकान्त है ?

२२० उत्तर-हे रोह ! लोकान्त और सातवाँ अवकाशान्तर, ये दोनों पहले भी हैं और पीछे भी हैं। इस प्रकार यावत् हे रोह ! इन दोनों में पहले पीछे का क्रम नहीं है। इसी प्रकार लोकान्त और सातवाँ तनुवात, इसी प्रकार घनवात, घनोदधि और सातवीं पृथ्वी के लिए समझना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक के साथ लोकान्त को निम्न लिखित स्थानों के साथ जोड़ना चाहिए-

अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर, वर्ष (क्षेत्र) नारकी आदि जीव, चौवीस दण्डक, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्य, प्रदेश, पर्याय और काल, क्या पहले है और लोकान्त पीछे है ?

२२१ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या लोकान्त पहले और सर्वाद्धा (सर्व काल) पीछे है ?

२२१ उत्तर-हे रोह ! जैसे लोकान्त के साथ सभी स्थानों का संयोग किया, उसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। और इसी प्रकार इन स्थानों को भी अलोकान्त के साथ जोड़ना चाहिए।

२२२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले सातवाँ अवकाशान्तर है और पीछे सातवाँ तनुवात है ?

२२२ उत्तर-हे रोह ! इसी प्रकार सातवें अवकाशान्तर को पूर्वोक्त सब के साथ जोड़ना चाहिए। इसी प्रकार सर्वाद्धा तक समझना चाहिए।

२२३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या पहले सातवाँ तनुवात है ? और पीछे सातवाँ घनवात है ?

२२३ उत्तर-हे रोह ! यह भी उसी प्रकार जानना चाहिए, यावत् सर्वाद्धा तक। इस प्रकार एक एक का संयोग करते हुए और जो जो नीचे का हो उसे छोड़ते हुए पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् अतीत और अनागतकाल और फिर सर्वाद्धा, यावत् हे रोह ! इनमें कोई क्रम नहीं है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कर कह रोह अनगार तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के 'रोह' नाम के एक शिष्य थे। वे प्रकृति से भद्र थे अर्थात् स्वाभाविक रूप से ही वे परोपकार करने के स्वभाव वाले थे। वे प्रकृति-स्वभाव से ही मृदु अर्थात् कोमल थे। इसीलिए वे प्रकृति से विनीत थे। प्रकृति भद्रता और मृदुता कारण है और 'विनय' उनका कार्य है। वे प्रकृति से ही उपशान्त थे अर्थात् उन्हें क्रोध का उदय नही होता था। यदि कदाचित् क्रोधादि कषाय का उदय हो भी जाय, तो भी उनका परिणाम (फल) न होने से उनके क्रोधादि कषाय पतले थे। वे मृदु मार्दव सम्पन्न थे अर्थात् गुरु के उपदेश से उन्होंने अहंकार पर विजय प्राप्त किया था। वे निरभिमानी थे। वे अलीन थे अर्थात् वे गुरु के आश्रय में रहने वाले थे एव गुप्तेन्द्रिय थे। वे भद्र थे अर्थात् किसी को सताप उपजाने वाले नहीं थे। वे विनीत थे अर्थात् गुरु सेवा के गुण से विनयवान् थे। इस प्रकार के गुणों से युक्त रोह अनगार भगवान् से न बहुत दूर और न बहुत नजदीक गोदुहासन से बैठे हुए थे, उनके दोनों घुटने ऊपर और सिर नीचे की ओर था। इस प्रकार उत्कुटुकासन से बैठे हुए रोह अनगार ध्यान के कोठे में तल्लीन

हो रहे थे और तत्त्व विचार कर रहे थे कि उनके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि-पहले लोक है या पहले अलोक है ? अर्थात् इन दोनो मे कौन पहले और कौन पीछे है ?

इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होने पर रोह अनगार अपने स्थान से उठे और भगवान् के निकट पहुचे। उन्होने तीन बार भगवान् को प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके रोह अनगार ने भगवान् से पूछा कि-हे भगवन् ! मैंने आप से लोक और अलोक, ये दो पदार्थ सुने है, परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि-पहले लोक है या अलोक है ? पहले लोक बना है, या अलोक बना है ?

रोह अनगार के प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-"हे रोह ! लोक और अलोक पहले भी है और पीछे भी है। इन दोनों मे पहले पीछे का क्रम नही है, क्योकि ये दोनो शाश्वत भाव है।"

इसके बाद रोह अनगार ने जीव और अजीव के विषय मे प्रश्न किया, जिसका उत्तर भगवान् ने वही फरमाया कि-"हे रोह ! जीव और अजीव मे पहले पीछे का क्रम नही है, क्योकि ये दोनो शाश्वत भाव हैं। इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक तथा सिद्धि और असिद्धि एव सिद्ध और असिद्ध (ससारी) के लिए भी समझना चाहिए।" फिर रोह अनगार ने मुर्गी और अण्डे के विषय मे प्रश्न किया है। इस पर भगवान् ने फरमाया कि-"हे रोह ! बोलते समय तो कोई भी क्रम बनाया जा सकता है, किन्तु वस्तु में क्रम नही है। यदि अण्डा पहले माना जाय और मुर्गी पीछे मानी जाय, तो मैं पूछता हूँ कि-अण्डा कहाँ से आया ?

रोह-हे भगवन् ! मुर्गी से आया।

भगवान्-हे रोह ! मुर्गी कहाँ से आई ?

रोह-हे भगवन् ! मुर्गी अण्डे से हुई।

भगवान्-तो हे रोह ! मुर्गी और अण्डे में पहले और पीछे किसे कहा जाय ? वस्तुत. न कोई पहले है, न पीछे है। दोनो में पहले पीछे का क्रम नही है। ये दोनो प्रवाह की अपेक्षा अनादि हैं। -

इसी प्रकार सात अवकाशान्तर, सात तनुवात, सात घनवात, सात घनोदधि, सात नरक पृथ्वी, असख्य द्वीप समुद्र, भरतादि सात क्षेत्र, नरकादि चौवीस दण्डक, पांच अस्तिकाय, काल विभाग, आठ कर्म, छह लेश्या, तीन दृष्टि, चार दर्शन, पांच ज्ञान, चार संज्ञा, पांच शरीर, तीन योग, दो उपयोग छह द्रव्य, अनन्त प्रदेश, अनन्त पर्याय तथा भूत, भविष्य

आदि के प्रश्नोत्तर समझ लेना चाहिए।

ये सब शाश्वत भाव हैं, इसलिए इनमें पहले पीछे का क्रम नहीं है।

लोक स्थिति

२२४ प्रश्न-'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं जाव-एवं वयासी कइविहा णं भंते ! लोयट्ठिती पन्नत्ता ?

२२४ उत्तर-गोयमा ! अट्ठविहा लोयट्ठिती पन्नत्ता। तंजहाः-आगासपइट्ठिए वाए। वायपइट्ठिए उदही, उदही पइट्ठिया पुढवी। पुढविपइट्ठिया तसा थावरा पाणा। अजीवा जीवपइट्ठिया। जीवा कम्मपइट्ठिया। अजीवा जीवसंगहिया। जीवा कम्मसंगहिया।

२२५ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'अट्ठविहा जाव-जीवा कम्मसंगहिया' ?

२२५ उत्तर-गोयमा ! से जहाणामए केई पुरिसे बत्थिमाडोवेइ, बत्थिमाडोवेत्ता उप्पिं-सितं बंधइ, बंधइत्ता; मज्झेणं गंठिं बंधइ, बंधइत्ता; उवरिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता; उवरिल्लं देसं वामेइ, उवरिल्लं देसं वामेत्ता; उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेइ, पूरित्ता उप्पिंसितं बंधइ, बंधित्ता मज्झिल्लगंठिं मुयइ, मुइत्ता; से णूणं गोयमा ! से आउयाये तस्स वाउयायस्स उप्पिं उवरिमतले चिट्ठइ ? हंता, चिट्ठइ। से तेणट्ठेणं जाव-'जीवा कम्मसंगहिया'। से जहा वा केइ

पुरिसे वत्थिं आडोवेइ, आडोवित्ता कडीए बंधइ, बंधित्ता अत्थाह-मतार मपोरसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा। से णूणं गोयमा! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ? हंता, चिट्ठइ। एवं वा अट्ठविहा लोयट्ठिइ पन्नत्ता, जाव-जीवा कम्मसंगहिया।

विशेष शब्दों के अर्थ-लोयट्ठिई-लोक स्थिति, वत्थि-वस्ति=चमड़े की मशक, आडोवेइ-वायु से फुलावे, उप्पि-ऊपरी भाग, मुयइ-छोड़ता है, वामेइ-खोल देता है, कम्म-संगहिया-कर्म संग्रहीत=कर्मों ने जीवों का संग्रह कर रखा है, कडीए-कटि प्रदेश में=कमर मे, अत्थाहमतारमपोरसियंसि-अथाह, दुस्तर और पुरुषपरिमाण से अधिक अर्थात् जिसमें पुरुष मस्तक तक डूब जाय, उससे भी अधिक, उदगंसि-पानी में।

भावार्थ-२२४ प्रश्न-हे भगवन्! ऐसा कह कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से यावत् इस प्रकार कहा-हे भगवन्! लोक की स्थिति कितने प्रकार की कही गई है?

२२४ उत्तर-हे गौतम! लोक की स्थिति आठ प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है-आकाश के आधार पर वायु टिका हुआ है। वायु के आधार पर उदधि है। उदधि के आधार पर पृथ्वी है। त्रस और स्थावर जीव पृथ्वी के आधार पर हैं। जीवों के आधार पर अजीव है, कर्म के आधार पर जीव (सकर्मक) हैं। अजीवों ने जीवों को संग्रह कर रखा है और जीवों को कर्मों ने संग्रह कर रखा है।

२२५ प्रश्न-हे भगवन्! इस प्रकार कहने का क्या कारण है कि-लोक की स्थिति आठ प्रकार की है और यावत् जीवों को कर्मों ने संग्रह कर रखा है?

२२५ उत्तर-हे गौतम! जैसे कोई पुरुष चमड़े की मशक को वायु से फुलावे। फिर उस मशक का मुख बांध दे। फिर मशक के बीच के भाग में गांठ बांधे। फिर मशक का मुंह खोल दे और उसके भीतर की हवा निकाल दे। फिर उस मशक के ऊपर के खाली भाग में पानी भरे। फिर मशक का

मुंह बन्द कर दे। फिर उस मशक की बीच की गांठ खोल दे, तो हे गौतम ! वह भरा हुआ पानी उस हवा के ऊपर ही ऊपर के भाग में रहेगा ?

हाँ, भगवन् ! रहेगा।

इसलिए हे गौतम ! मै कहता हूँ कि यावत् कर्मों ने जीवों का संग्रह कर रखा है।

अथवा--हे गौतम ! कोई पुरुष उस चमड़े की मशक को हवा से फुला कर अपनी कमर पर बाँध ले। फिर वह पुरुष अथाह, दुस्तर और पुरुष परिमाण से अधिक अर्थात् जिसमें पुरुष मस्तक तक डूब जाय, उससे भी अधिक पानी में प्रवेश करे, तो हे गौतम ! क्या वह पुरुष पानी की ऊपरी सतह पर ही रहेगा ?

हाँ, भगवन् ! रहेगा।

हे गौतम ! इस प्रकार लोक की स्थिति आठ प्रकार की कही गई है, यावत् कर्मों नें जीवों को संगृहीत कर रखा है।

विवेचन--पहले लोकान्त आदि का वर्णन किया गया है, अतः अब लोक स्थिति का वर्णन किया जाता है।

गौतम स्वामी ने पूछा कि--हे भगवन् ! लोक स्थिति कितने प्रकार की है ? भगवान् ने फरमाया कि--हे गौतम ! आठ प्रकार की है। वह किस प्रकार है ? सो बतलाया जाता है--यद्यपि पृथ्वियां आठ हैं। सात पृथ्वियाँ नीचे हैं और ईषत्प्राग्भारा (सिद्ध शिला) ऊपर है। वह सिर्फ आकाश के आधार पर रही हुई है। यहाँ अभी उसका विचार न करते हुए पहले सात पृथ्वियों का विचार किया गया है। इस पृथ्वी के नीचे सब से पहले आकाश है। वह आकाश किस पर ठहरा है ? यह प्रश्न नही हो सकता, क्योकि आकाश स्वप्रतिष्ठित है--वह अपने आप पर ही ठहरा हुआ है। उसके लिए अन्य आधार की आवश्यकता नही होती। आकाश पर तनुवात (पतली हवा) है और तनुवात पर घनवात (गाढ हवा, ठोस हवा) है। घनवात पर घनोदधि (जमा हुआ गाढ़ा पानी) है। घनोदधि पर यह पृथ्वी ठहरी हुई है। पृथ्वी के आधार पर त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुए है। अजीव, जीव पर प्रतिष्ठित है और जीव, कर्म प्रतिष्ठित हैं अर्थात् कर्म पर अवलम्बित हैं। अजीव

को जीव ने संग्रह किया है और जीव को कर्म ने संग्रह किया है-ग्रहण किया हुआ है।

इसके लिए उदाहरण देकर समझाया गया है कि-जैसे कोई मनुष्य हाथ मे चमड़े की मशक लिये हुए है। उस मशक में वह वायु भरे और मशक का मुंह बांध दे। फिर बीच में एक रस्सी बाध कर मशक की हवा को दो भागों में बांट दे। इसके बाद मशक का मुह खोल कर ऊपर के हिस्से की हवा बाहर निकाल दे और उस खाली हिस्से में पानी भर दे और मशक का मुंह बन्द करके फिर बीच की रस्सी भी खोल दे। ऐसा करने पर एक ही मशक के नीचे के भाग मे हवा होगी और ऊपर के भाग में पानी होगा। हे गौतम! वह मशक का पानी मशक में भरी हुई हवा पर ठहरेगा या नहीं? अवश्य ठहरेगा। हवा सूक्ष्म है और पानी उससे स्थूल है, फिर भी हे गौतम! हवा के आधार पर पानी रहेगा या नही? गौतम ने कहा-हाँ, भगवन्! रहेगा।

हे गौतम! इस न्याय से पहले कही हुई बात सहज ही समझ में आ सकती है कि हवा पर पानी रहता है।

अब भगवान् एक दृष्टान्त और देते है कि-हे गौतम! जैसे कोई एक पुरुष नदी पार करना चाहता है, परन्तु वह तैरना नही जानता। अतएव उसने एक मशक ली, उसमें हवा भरी और उसका मुंह बांध दिया। इसके बाद उसने उस मशक को कमर पर मजबूत बांध लिया और फिर वह मनुष्य अथाह जल मे जावे। अब हे गौतम! क्या वह पुरुष जल के ऊपरी भाग पर रहेगा?

गौतम स्वामी ने कहा-हे भगवन्! वह जल के ऊपरी भाग पर रहेगा।

हे गौतम! वायु सूक्ष्म है, फिर भी वायु मनुष्य का भार वहन करती है, जिस प्रकार इसमे सन्देह को अवकाश नही है, उसी प्रकार हे गौतम! आठ प्रकार की लोक स्थिति में भी सन्देह करने का कोई कारण नही है।

'त्रस और स्थावर प्राणी पृथ्वी के आधार पर रहे हुए हैं'-यह प्रायिक वचन है, क्यों कि पृथ्वी के सिवाय दूसरी जगह भी आकाश, पर्वत, विमान आदि के आधार पर जीव रहे हुए है। शरीरादि अजीव रूप पुद्गल जीव के आधार पर रहे हुए हैं, क्योंकि वे जीव मे स्थित हैं। जीव कर्म के आधार पर रहे हुए है, क्योकि संसारी जीवों का आधार कर्म पुद्गलो का समुदाय है। किन्ही आचार्यों का अभिप्राय है कि-जीव कर्म के आधार रहे हुए है अर्थात् जीव नारकादि भाव से रहे हुए हैं।

अजीवों को जीवो ने संगृहित कर रखा है, क्योकि मन और भाषा आदि के पुद्गलों

को जीवों ने संगृहीत कर रखा है।

शंका-'अजीव, जीवों के आधार रहे हुए हैं' और 'अजीवो को जीवों ने संगृहीत कर रखा है,' इन दोनों वाक्यों के अर्थ में क्या अन्तर है ?

समाधान-'अजीव, जीवों के आधार रहे हुए हैं' इस प्रथम वाक्य में आधार आधेय भाव का कथन किया गया है। 'अजीवों को जीवों ने सगृहीत कर रखा है' इस दूसरे वाक्य में संग्राह्य संग्राहक भाव का कथन किया गया है। यह दोनो वाक्यों के अर्थ में भिन्नता है। दूसरे वाक्य में आधार आधेय भाव भी है, क्योंकि जो सग्राह्य होता है वह अधेय भी होता है। जैसे कि मालपुए के द्वारा तेल संग्राह्य है, तो तेल संग्राह्य भी है और आधेय भी है। इसी तरह यहां भी समझना चाहिए। तथा 'जीवों को कर्मो ने संग्रहीत कर रखा है, क्योंकि संसारी जीव उदयप्राप्त कर्म के अधीन रहे हुए हैं। जो जिसके वश रहा हुआ होता है, वह उसमें रहा हुआ होता है, जैसे कि घड़े के रूपादि घड़े के वश हैं, इसलिए वे घड़े मे रहे हुए हैं। इसी तरह 'अजीवों ने जीवों को संगृहीत कर रखा है'। इस वाक्य मे भी आधार आधेय भाव समझना चाहिए।

जिस प्रकार मशक के दृष्टान्त से यह बतलाया गया है कि पानी का आधार वायु है। उसी प्रकार आकाश और तनु वातादि में भी आधार आधेय भाव समझ लेना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि-कर्मयुक्त संसारी जीव में और अजीव मे आधार आधेय भाव है और इसी से संसार की स्थिति है।

जीव पुद्गल सम्बन्ध

२२६ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! जीवा य, पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा, अन्नमन्नपुट्ठा, अन्नमन्नओगाढा, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा, अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

२२६ उत्तर-हंता, अत्थि।

२२७ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! जाव-चिट्ठंति ?

२२७ उत्तर-गोयमा ! से जहाणामए हरदे सिया, पुण्णे, पुण्णप्पमाणे, वोलट्टमाणे, वोसट्टमाणे, समभरघडत्ताए चिट्ठइ। अहे णं केई पुरिसे तंसि हरदंसि एगं महं नावं सयासवं, सयछिद्दं ओगाहेज्जा। से णूणं गोयमा ! सा णावा तेहिं आसवदारेहिं आपूरमाणी, आपूरमाणी पुण्णा, पुण्णप्पमाणा, वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा, समभरघडत्ताए चिट्ठइ ? हंता, चिट्ठइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! अत्थि णं जीवा य जाव-चिट्ठंति।

विशेष शब्दों के अर्थ-अण्णमण्ण बद्धा-परस्पर बद्ध, अण्णमण्णपुट्ठा-परस्पर स्पृष्ट, अण्णमण्णमोगाढा-परस्पर एक दूसरे में मिले हुए, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा-परस्पर स्नेह =चिकनाई से प्रतिबद्ध, अण्णमण्णघडत्ताए-परस्पर घटित होकर, हरदे-तालाब, वोलट्टमाणे-पानी से भरा हुआ, वोसट्टमाणे-पानी से लबालब भरा हुआ, सयासवं-शताश्रव=सौ छेदों वाली।

भावार्थ-२२६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव और पुद्गल परस्पर संबद्ध है ? परस्पर गाढ़ संबद्ध है ? परस्पर एक दूसरे में मिले हुए हैं ? परस्पर स्नेह (चिकनाई) से प्रतिबद्ध हैं ? और परस्पर घटित होकर रहे हुए हैं ?

२२६ उत्तर- हाँ, गौतम ! रहे हुए है।

२२७ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि-यावत् जीव और पुद्गल इस प्रकार रहे हुए है ?

२२७ उत्तर-हे गौतम ! जैसे कोई एक तालाब है। वह पानी से भरा हुआ है, पानी से लबालब भरा हुआ है, पानी से छलक रहा है, पानी से बढ़ रहा है, और वह पानी से भरे हुए घड़े के समान परिपूर्ण है। उस तालाब में कोई पुरुष एक ऐसी बड़ी नाव, जिसमें सौ छोटे छेद हों और सौ बड़े छेद हों उसे डाल दे तो, हे गौतम ! वह नाव, छेदों द्वारा पानी से भरती हुई, खूब भरती हुई, छलकती हुई, पानी से बढ़ती हुई, क्या भरे हुए घड़े के समान हो जायगी ?

हाँ, भगवन् हो जायगी।

इसलिए हे गौतम ! मै कहता हूँ-यावत् जीव और पुद्गल परस्पर घटित होकर रहे हुए हैं।

विवेचन-लोक स्थिति का अधिकार होने से अथवा 'अजीवा जीवपइट्ठिया' इन चार पदों का विवेचन करने के लिए गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! क्या जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध है ? एक दूसरे से मिले हुए है ? भगवान् ने फरमाया कि-हाँ, गौतम ! जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध हैं यावत् परस्पर एक दूसरे से मिले हुए हैं। इसका कारण यह है-

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य, रेणुना श्लिष्यते यथा।
गात्रं रागद्वेषक्लिन्नस्य, कर्मबन्धो भवत्येवम् ॥

अर्थात्-जिस प्रकार कोई पुरुष शरीर पर तेल चुपड़ कर आंधी मे बैठ जाय, तो उसका शरीर रेत से भर जाता है, उसी प्रकार जो पुरुष रागद्वेष युक्त होता है, उसके कर्मों का बन्ध होता है।

जैसे तेल लगे शरीर पर रज लग कर मैल रूप हो जाती है, वैसेही जीव मे रागद्वेष रूपी चिकनाई है और कर्मरज सर्वत्र भरी हुई है ही, इसीसे वह जीव के साथ चिपक जाती है। सिद्ध भगवान् मे रागद्वेष की चिकनाई नही है, अतएव उनको कर्मरज नहीं लगती।

इसी बात को दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है-जैसे कोई पुरुष जल से परिपूर्ण यावत् लबालब भरे हुए किसी तालाव में छिद्रों वाली एक नाव डाले, तो उन छिद्रो से पानी आते आते वह नाव पानी में डूब जाती है और तालाब के तल-भाग मे जाकर बैठ जाती है। फिर जिस तरह नाव और तालाब का पानी एकमेक होकर रहता है, उसी तरह जीव और पुद्गल परस्पर सबद्ध, प्रतिबद्ध यावत् एकमेक होकर रहते हैं।

सिद्धों के शरीर नही है। शरीर कर्म से होता है और सिद्धो में कर्म नही है। अत-एव शरीर भी नही है।

स्नेहकाय

२२८ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! सया समियं सुहुमे सिणेहकाये

पवडइ ?

२२८ उत्तर-हंता, अत्थि ।

२२९ प्रश्न-से भंते ! किं उड्ढे पवडइ, अहे पवडइ, तिरिए पवडइ ?

२२९ उत्तर-गोयमा ! उड्ढे वि पवडइ, अहे वि पवडइ, तिरिए वि पवडइ ।

२३० प्रश्न-जहा से बायरे आउयाए अन्नमन्नसमाउत्ते चिरं पि, दीहकालं चिट्ठइ तहा णं से वि ?

२३० उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे । से णं खिप्पं एव विद्धंसं आगच्छइ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

छट्ठो उद्देसो सम्मत्तो ।

विशेष शब्दों के अर्थ-समियं-समित=परिमित, खिप्पं-शीघ्र, विद्धंसं-नाश, सिणेहकाये-स्नेहकाय=एक प्रकार का जल ।

भावार्थ-२२८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सूक्ष्म स्नेहकाय सदा परिमित पड़ता है ?

२२८ उत्तर-हाँ, गौतम ! पड़ता है ।

२२९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वह सूक्ष्म स्नेहकाय ऊपर पड़ता है ? नीचे पड़ता है ? या तिरछा पड़ता है ?

२२९ उत्तर-हे गौतम ! वह ऊपर भी पड़ता है, नीचे भी पड़ता है और तिरछा भी पड़ता है ।

२३० प्रश्न—हे भगवन् ! क्या वह सूक्ष्म स्नेहकाय स्थूल जलकाय की भांति परस्पर समायुक्त होकर बहुत समय तक रहता है ?

२३० उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्योंकि वह सूक्ष्म स्नेहकाय शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी ! तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

विवेचन—गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! क्या सूक्ष्म स्नेहकाय (अप्काय) निरन्तर पडता रहता है ? भगवान् ने फरमाया कि—हाँ, गौतम ! सदा पड़ता रहता है और वह प्रमाणयुक्त ही पड़ता है। बादर अप्काय की तरह अपरिमित नही पड़ता है। जैसे बादर अप्काय कही पड़ता है और कही नहीं पड़ता है, कभी पड़ता है और कभी नही पड़ता है, यह बात सूक्ष्म स्नेहकाय के विषय मे नही है। सूक्ष्म स्नेहकाय सदा पड़ता है और सब जगह पड़ता है। सूक्ष्म स्नेहकाय का अर्थ—यहाँ 'सूक्ष्म' का अर्थ 'सूक्ष्म नाम कर्म वाले जीव' नहीं समझना चाहिये, किन्तु यह बादर अप्काय ही है, परन्तु चर्म चक्षुओ के अगोचर होने से इन्हे 'सूक्ष्म' कहा है।

यह सूक्ष्म स्नेहकाय दिन में तो सूर्य के ताप से ऊपर ही नष्ट हो जाता है, किन्तु रात्रि के समय नीचे तक आता है। अतः साधारणतः मुनियो को सूर्यास्त के बाद बिना छाये हुए स्थान मे नही रहना चाहिये। यदि लघुनीत आदि परठने के लिये जाना पड़े, तो शरीर और सिर को ढक लेना चाहिये। उघाड़े शरीर और सिर रखकर खुले में नही जाना चाहिये।

इस विषय में टीकाकार कहते हैं कि शिशिरऋतु (शीतकाल) में दिन के पहले और चौथे पहर मे तथा ग्रीष्मऋतु में सूर्योदय और सूर्यास्त के समय आधा आधा पहर स्नेह काय की रक्षा के लिये लेप वाले पात्र को बाहर न रखना चाहिये।

टीकाकार का उपरोक्त कथन शास्त्र से मेल नही खाता है, क्योंकि दशाश्रुतस्कन्ध की सातवी दशा मे पडिमाधारी मुनि के लिये ऐसा वर्णन आया है कि—"जहाँ सूर्यास्त हो जाय, वही उसे ठहर जाना चाहिये और सूर्योदय होते ही विहार कर सकते हैं।"

यदि पहले और चौथे पहर मे सूक्ष्म स्नेहकाय नीचे तक आता होता, तो अग्नि और सिंह के उपद्रव से भी अपना बचाव नही करनेवाले उन पडिमाधारी मुनियों के लिये सूक्ष्म स्नेहकाय की विराधना के प्रसग पर विहार करने का विधान कैसे होता ? इससे स्पष्ट होता है कि सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक सूक्ष्म स्नेहकाय यहाँ नीचे तक नही पहुँचता है। अतः टीकाकार का उपर्युक्त कथन सगत नही है।

इस प्रसग को लेकर कई नवीन विचारक मुनियो का कहना है कि-रात्रि को अछाये (बिना ढके) हुए स्थान में पूजना नहीं चाहिये, पूंजने से उन सूक्ष्म स्नेहकाय के जीवो की विराधना होती है। किन्तु यह बात आगम विरुद्ध है, क्योकि दशाश्रुतस्कन्ध की पहली दशा मे और समवायांग बीसवें समवाय मे बतलाया है कि बिना पूंजे चलना 'असमाधि स्थान' है। यदि पूजने से जीव विराधना का कारण होता, तो यह शास्त्र विधान कैसे होता ?

किसी का ऐसा कथन भी है कि 'जिस तरह 'धूंअर' (महिका) मकान के अन्दर भी आ जाती है, इसी तरह सूक्ष्म स्नेहकाय, जो कि धूअर से भी सूक्ष्म है, वह भी मकान के अन्दर आजायगी. फिर छाये हुए स्थान मे और अछाये हुए स्थान मे अन्तर ही क्या रहेगा ? मुनि कही भी सोये, बैठे, तो क्या ?' किन्तु यह कथन भी शास्त्र संगत नही है। क्योकि दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा मे, रात्रि के समय छाये हुए स्थान को 'स्थल' और अछाये हुए स्थान को 'जल' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि सूक्ष्म स्नेहकाय छाये हुए स्थान मे नही आता है, क्योंकि उस पर वायु का असर नही होता है।

यह सूक्ष्म स्नेहकाय ऊर्ध्वलोक में अर्थात् गोल वेताढच पर्वत आदि पर, अधोलोक में अर्थात् अधोलोक के ग्रामादि में और तिर्छेलोक मे गिरता है और ज्यों ही गिरता है, त्यो ही विध्वंस हो जाता है-सूख जाता है।

॥ प्रथम शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक १ उद्देशक ७

नारक जीवों का आहार

२३१ प्रश्न—नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं देसेणं देसं उववज्जइ, देसेणं सव्वं उववज्जइ, सव्वेणं देसं उववज्जइ, सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?

२३१ उत्तर—गोयमा ! नो देसेणं देसं उववज्जइ, नो देसेणं सव्वं उववज्जइ, नो सव्वेणं देसं उववज्जइ, सव्वेणं सव्वं उववज्जइ; जहा नेरइए, एवं जाव—वेमाणिए ।

२३२ प्रश्न—नेरइया णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं देसेणं देसं आहारेइ, देसेणं सव्वं आहारेइ, सव्वेणं देसं आहारेइ, सव्वेणं सव्वं आहारेइ ?

२३२ उत्तर—गोयमा ! नो देसेणं देसं आहारेइ, नो देसेणं सव्वं आहारेइ, सव्वेणं वा देसं आहारेइ, सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ । एवं जाव—वेमाणिया ।

२३३ प्रश्न—नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उववट्टमाणे किं देसेणं देसं उववट्टइ ?

२३३ उत्तर—जहा उववज्जमाणे तहेव उववट्टमाणे वि दंडगो भाणियव्वो ।

२३४ प्रश्न-नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उववट्टमाणे किं देसेणं-देसं आहारेइ ?

२३४ उत्तर-तहेव जाव-सव्वेणं वा देसं आहारेइ, सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ । एवं जाव-वेमाणिए ।

२३५ प्रश्न-नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववन्ने किं देसेणं देसं उववन्ने ?

२३५ उत्तर-एसो वि तहेव, जाव-सव्वेणं सव्वं उववण्णे । जहा उववज्जमाणे, उववट्टमाणे य चत्तारि दंडगा, तहा उववन्नेणं, उव्वट्टेण वि चतारि दंडगा भाणियव्वा । सव्वेणं सव्वं उववण्णे । सव्वेणं वा देसं आहारेइ । सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ एएणं अभिलावेणं उववन्ने वि, उव्वट्टेण वि नेयव्वं ।

२३६ प्रश्न-नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ, अद्धेणं सव्वं उववज्जइ, सव्वेणं अद्धं उववज्जइ, सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?

२३६ उत्तर-जहा पढमिल्लेणं अट्ठ दंडगा तहा अद्धेण वि अट्ठ दंडगा भाणियव्वा । नवरं-जहिं देसेणं देसं उववज्जइ, तहिं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ इति भाणियव्वं । एयं णाणत्तं, एते सव्वे वि सोलस दंडगा भाणियव्वा ।

विशेष शब्दों के अर्थ-उववज्जमाणे-उत्पन्न होता हुआ, आहारेइ-आहार करता है,

उववट्टमाणे-उद्वर्तता हुआ=निकलता हुआ,उववण्णे-उत्पन्न, पढमिल्लेणं-पहले के साथ ।

भावार्थ-२३१ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीवों में उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव, क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या एक भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भाग से सर्व भागों का आश्रय करके उत्पन्न होता है ?

२३१ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव, एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता, एक भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता और सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके भी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है । नारकी जीव के समान वैमानिकों तक इसी प्रकार समझना चाहिए ।

२३२ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीवों में उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव, क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है ? या एक भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार करता है ? या सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है ? अथवा सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार करता है ?

२३२ उत्तर-हे गौतम ! नारकियों में उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव, एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता, एक भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता, किन्तु सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, या सर्व भागों से सर्व भागों को आश्रित करके आहार करता है ।

२३३ प्रश्न-हे भगवन् ! नारकियों में से उद्वर्तता हुआ-निकलता हुआ नारकी जीव क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके निकलता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न करना चाहिए ।

२३३ उत्तर-हे गौतम ! जैसे-उत्पन्न होते हुए के विषय में कहा है वैसा ही उद्वर्तन के विषय में दण्डक कहना चाहिए ।



२३४ प्रश्न-हे भगवन् ! नारकियों में से उद्वर्तता हुआ नारकी जीव, क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न करना चाहिए।

२३४ उत्तर-हे गौतम ! पहले की तरह जानना चाहिए यावत् सर्व भागों से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, या सर्व भागों से सर्व भागों को आश्रित करके आहार करता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिए।

२३५ प्रश्न-हे भगवन् ! नारकियों में उत्पन्न हुआ नारकी जीव, क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न करना चाहिए।

१३५ उत्तर-हे गौतम ! यह कथन भी उसी प्रकार जानना चाहिए यावत् सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न हुआ है। जिस प्रकार उत्पद्यमान (उत्पन्न होता हुआ) और उद्वर्तमान (उद्वर्तता हुआ = निकलता हुआ) के विषय में चार दण्डक कहे, वैसे ही उत्पन्न और उद्वृत्त के विषय में भी चार दण्डक कहना चाहिए। 'सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न' 'सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार, और सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार'-इन शब्दों द्वारा उत्पन्न और उद्वृत्त के विषय में भी समझना लेना चाहिए।

२३६ प्रश्न-हे भगवन् ! नारकियों में उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव, क्या अर्द्ध भाग से अर्द्ध भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या अर्द्ध भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भाग से अर्द्ध भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है ?

२३६ उत्तर-हे गौतम ! जैसे-पहले वालों के साथ आठ दण्डक कहे हैं, उसी प्रकार अर्द्ध के साथ भी आठ दण्डक कहना चाहिए। विशेषता इतनी है

कि–जहाँ 'एक भाग से एक भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है' ऐसा पाठ आया है वहाँ पर 'अर्द्ध भाग से अर्द्ध भाग को आश्रित करके उत्पन्न होता है' ऐसा पाठ बोलना चाहिए। बस यही भिन्नता है। ये सब मिल कर सोलह दण्डक होते हैं।

विवेचन–पहले की संग्रह गाथा मे 'णेरइए' यह पद दिया था। इसलिए अब सातवे उद्देशक के प्रारम्भ में नारकी जीवो का वर्णन किया गया है।

गौतम स्वामी पूछते है कि–हे भगवन् ! नारकी जीव, नरक मे उत्पन्न होता है तब क्या यहा के एक देश (एक भाग) से वहां का एक देश उत्पन्न होता है ? या यहा के एक देश से वहां का सर्व, अथवा यहां के सर्व से वहां का एक देश, या यहां के सर्व से वहां का सर्व, इस प्रकार उत्पन्न होता है ? गौतम स्वामी के इस प्रश्न का उत्तर भगवान् फरमाते है कि–हे गौतम ! नरक में जीव देश से देश उत्पन्न नही होता, देश से सर्व उत्पन्न नही होता, सर्व से देश उत्पन्न नही होना, किन्तु सर्व से सर्व उत्पन्न होता है।

यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि–इस प्रश्नोत्तर मे 'णेरइए णेरइएसु उववज्जमाणे' अर्थात् 'नैरयिक, नरक में उत्पन्न होता है।' तो नैरयिक का नरक में उत्पन्न होना कैसे कहा गया है ? क्योकि यह शास्त्र प्रसिद्ध बात है कि नैरयिक मर कर नरक में उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य और तिर्यञ्च ही मर कर नरक में उत्पन्न हो सकते है। अर्थात् नरक में मनुष्यगति और तिर्यञ्च गति से मर कर ही उत्पन्न होता है, अन्य गति से नही। फिर इस प्रश्नोत्तर में यह कथन कैसे किया गया है ?

इस शंका का समाधान यह है कि 'चलमाणे चलिए' सिद्धांत के अनुसार जो जीव नरक में उत्पन्न होने वाला है, अभी नरक में पहुँचा नही है, किन्तु विग्रह गति में चल रहा है, उसे नैरयिक ही कहते है, क्योकि वह जीव मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति का आयुष्य समाप्त कर चुका है और उसके नरकायु का उदय हो चुका है। नरकायु का उदय होते ही उस जीव को नैरयिक कहा जा सकता है। यदि ऐसा न माना जाय, तो फिर उसे किस गति का जीव कहा जायगा ? मनुष्य या तिर्यञ्च की आयु तो समाप्त हो चुकी है, अतः मनुष्य या तिर्यञ्च तो कह नही सकते। और नरक में पहुचा नही है, इस कारण यदि उसे नैरयिक भी न कहा जाय, तो फिर उसे किस गति का जीव कहा जाय ? वह नरक के मार्ग में है, उसके नरकायु का उदय हो चुका है, इसलिए नरक मे उत्पन्न न होने पर भी उसे नरक का जीव ही कहना उचित है।

नरक मे उत्पन्न होने के विषय मे चार विकल्प किये हैं–एक देश (भाग) से एक

देश, एक देश से सर्व, सर्व से एक देश और सर्व से सर्व। इसमे चौथा विकल्प स्वीकार किया गया है। इसका कारण यह है कि-जब उपादान पूर्ण होता है तब वस्तु भी पूर्ण ही उत्पन्न होती है। इसलिए जीव भी सर्व से सर्व उत्पन्न होता है।

उत्पन्न होने के पश्चात् आहार की आवश्यकता रहती है, इसलिए गौतमस्वामी ने आहार के विषय मे प्रश्न किया है। भगवान् ने उत्तर फरमाया कि-हे गौतम ! सर्व भाग से एक देशाश्रित आहार करते है और सर्व भाग से सर्व भागाश्रित आहार करते है। यही बात वैमानिको तक समझनी चाहिए ।

जीव जिस समय उत्पन्न होता है उस समय में-जन्म के प्रथम समय में, अपने सर्व आत्मप्रदेशो के द्वारा सर्व आहार को ग्रहण कर लेता है। जैसे-तपी हुई तेल की कडाई में छोड़ा हुआ मालपूआ प्रथम क्षण मे लेने योग्य तेल को सर्व रूप से ग्रहण करता है-खीचता है। इसलिए जीव की उत्पत्ति के प्रथम समय में 'सव्वेण सव्व आहारेइ' विकल्प घटित होता है। उत्पत्ति के बाद वह जीव कितनेक पुद्गलो का आहार करता है और कितनेक पुद्गलो को छोड देता है। जैसे कि-तपी हुई तेल की कडाई में मालपूआ डाल देने के बाद वह मालपूआ कुछ तेल को चूसता है और कुछ को नही चूसता। इसलिए उत्पत्ति के बाद 'सव्वेणं देस आहारेइ' विकल्प घटित होता है ।

उत्पाद का प्रतिपक्षी उद्वर्तन है। इसलिए गौतम स्वामी ने इस विषय मे पूछा कि-हे भगवन् ! जब जीव की नरकस्थिति पूरी हो जाती है, तब वह वहाँ से उद्वर्तता =निकलता है, तो किस प्रकार निकलता है ? क्या देश से देश ? या देश से सर्व ? या सर्व से देश ? या सर्व से सर्व निकलता है ? भगवान ने फरमाया कि-हे गौतम ! जिस प्रकार उत्पाद के विषय मे कहा है उसी प्रकार उद्वर्तन-निकलने के विषय में भी समझना चाहिए।

तब गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! नरक से निकलता हुआ नारकी, क्या देश से देश का आहार करता है ? या देश से सर्व, या सर्व से देश, या सर्व से सर्व का आहार करता है ? भगवान् ने फरमाया कि-इस विषय में भी पहले की तरह ही समझना चाहिए अर्थात् देश से देश का नही और देश से सर्व का आहार नही करता, किंतु सर्व से देश का और सर्व से सर्व का आहार करता है।

जिस प्रकार 'उत्पन्न होता है और उद्वृत होता है' यह वर्तमान काल को लेकर प्रश्नोत्तर किये गये हैं, उसी तरह 'उत्पन्न हुआ और उद्वृत्त हुआ', इस भूतकाल को लेकर भी प्रश्नोत्तर किये गये है। इस तरह यहाँ आठ दण्डक (आलापक-भंग) बने है। यथा-

(१) उत्पन्न होता हुआ, (२) उत्पन्न होता हुआ आहार लेता है, (३) उद्वर्तता (निकलता) हुआ, (४) उद्वर्तता हुआ आहार लेता है (५) उत्पन्न हुआ, (६) उत्पन्न हुआ आहार लेता है, (७) उद्वर्ता (निकला) हुआ, (८) उद्वर्ता (निकला) हुआ आहार लेता है।

देश और सर्व के द्वारा जीव के उत्पादादि के विषय में विचार करने से आठ दण्डक (आलापक, भंग, विकल्प) बने हैं, जो ऊपर बतलाये गये हैं। इसी तरह, अर्द्ध से अर्द्ध, अर्द्ध से सर्व, सर्व से अर्द्ध, और सर्व से सर्व, इन चार के द्वारा जीव के उत्पादादि के विषय में विचार करने पर पूर्वोक्त प्रकार से आठ दण्डक बनते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त आठ और ये आठ दण्डक मिल कर सब सोलह दण्डक होते हैं।

शंका-पहले 'एक देश' सम्बन्धी प्रश्न किया जा चुका है, फिर यहाँ 'आधे' के संबंध में प्रश्न क्यों किया गया? 'देश' और 'आधे' (अर्द्ध) में क्या अन्तर है?

समाधान-'देश' तो आधा, पौन, पाव तथा इसी तरह इससे कम और ज्यादा आदि अनेक विभाग हो सकते हैं, किन्तु बीचोबीच से दो टुकड़े होना 'आधा' कहलाता है। इस प्रकार जीव के दो टुकड़े हो और एक टुकड़ा (आधा भाग) उत्पन्न हो और दूसरा टुकड़ा (आधा भाग) उत्पन्न न हो, यह नहीं हो सकता है। यही बतलाने के लिए ये प्रश्नोत्तर किये गये हैं कि आत्मा का देश (विभाग) या अर्द्ध विभाग उत्पन्न नहीं हो सकता है। जीव के प्रदेश उत्पत्ति स्थान पर इलिका गति से धीरे धीरे जाते हुए भी वे सब एक ही स्थान पर जायेंगे, दो तीन आदि विभागों से भिन्न भिन्न स्थानों पर उत्पन्न नहीं होगा।

विग्रह गति

२३७ प्रश्न-जीवे णं भंते ! किं विग्गहगइसमावण्णए, अविग्गहगइसमावन्नए ?

२३७ उत्तर-गोयमा ! सिय विग्गहगइसमावन्नगे, सिय अविग्गहगइसमावन्नगे। एवं जाव-वेमाणिए।

२३८ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नया, अवि-

ग्गहगइसमावन्नगा ?

२३८ उत्तर-गोयमा ! विग्गहगइसमावन्नगा वि, अविग्गह-गइसमावन्नगा ।

२३९ प्रश्न-नेरइया णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नया, अवि-ग्गहगतिसमावन्नगा ?

२३९ उत्तर-गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्ज अविग्गहगति-समावन्नगा । अहवा अविग्गहगतिसमावन्नगा, विग्गहगतिसमा-वन्नगे य । अहवा अविग्गहगतिसमावन्नगा य, विग्गहगइसमा-वन्नगा य । एवं जीव-एगिंदियवज्जो तियभंगो ।

२४० प्रश्न-देवे णं भंते ! महड्ढिए, महज्जुइए, महब्बले, महा-यसे, महेसक्खे,महाणुभावे अविउक्कंतियं चयमाणे किंचकालं हिरि-वत्तियं, दुगुंछावत्तियं, परिसहवत्तियं आहारं नो आहारेइ । अहे णं आहारेइ आहारिज्जमाणे आहारिए, परिणामिज्जमाणे परिणामिए, पहीणे य आउए भवइ । जत्थ उववज्जइ तं आउयं पडिसंवेदेइ । तंजहा-तिरिक्खजोणियाउयं वा, मणुस्साउयं वा ?

२४० उत्तर-हंता, गोयमा ! देवे णं महड्ढीए जाव-मणुस्साउयं वा ।

विशेष शब्दों के अर्थ-विग्गहगइसमावण्णए-विग्रहगति समापन्न=विग्रहगति में रहा रहा हुआ, सिय-कदाचित्, महड्ढिए-महर्द्धिक=महान् ऋद्धि वाला, महज्जुइए-महान् द्युति

वाला, महब्बले-महान् बल वाला, महायसे-महायशस्वी, महाणुभावे-महानुभाव, हिरि-वत्तियं-लज्जा के कारण, दुगुंछावत्तियं-घृणा के कारण।

भावार्थ-२३७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव विग्रहगति समापन्न-विग्रह गति को प्राप्त है, या अविग्रह गति समापन्न-अविग्रह गति को प्राप्त है ?

२३७ उत्तर-हे गौतम ! जीव कभी विग्रह गति को प्राप्त है और कभी अविग्रह गति को प्राप्त है। इसी प्रकार वैमानिक तक जानना चाहिए।

२३८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या बहुत जीव विग्रह गति को प्राप्त हैं या अविग्रह गति को प्राप्त हैं ?

२३८ उत्तर-हे गौतम ! बहुत जीव विग्रह गति को भी प्राप्त हैं और अविग्रह गति को भी प्राप्त हैं।

२३९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नारकी जीव विग्रह गति को प्राप्त हैं या अविग्रह गति को प्राप्त हैं ?

२३९ उत्तर-हे गौतम ! (१) सभी अविग्रह गति को प्राप्त हैं। (२) अथवा बहुत से अविग्रह गति को प्राप्त हैं और कोई एक विग्रह गति को प्राप्त है। (३) अथवा बहुत से अविग्रह गति को प्राप्त हैं और बहुत से विग्रह गति को प्राप्त हैं। इसी प्रकार सब जगह तीन तीन भंग समझना चाहिए। सिर्फ जीव (सामान्य जीव) और एकेन्द्रिय में तीन भंग नहीं कहना चाहिए।

२४० प्रश्न-हे भगवन् ! महाऋद्धि वाला, महाद्युति वाला, महाबल वाला, महायशस्वी, महासामर्थ्य वाला, मरण काल में च्यवने वाला महेश नामक देव अथवा महासौख्य वाला देव लज्जा के कारण, घृणा के कारण, परीषह के कारण, कुछ समय तक आहार नहीं करता, फिर आहार करता है, और ग्रहण किया हुआ आहार परिणत भी होता है, अन्त में उस देव को वहाँ की आयु समाप्त हो जाती है। इसलिए वह देव जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ की आयु भोगता है। तो हे भगवन् ! वह कौनसा आयु समझना चाहिए ? तिर्यञ्च का आयु समझना चाहिए या मनुष्य का आयु समझना चाहिए ?

२४० उत्तर-हे गौतम ! उस महाऋद्धि वाले देव का यावत् च्यवन के

बाद (मृत्यु के बाद) तिर्यञ्च का आयु अथवा मनुष्य का आयु समझना चाहिए।

विवेचन-गौतम स्वामी पूछते है कि-हे भगवान् ! जीव विग्रह गति वाला होता है या अविग्रह गति वाला होता है ? भगवन् ने फरमाया कि-हे गौतम ! जीव विग्रह गति वाला भी होता है और अविग्रह गति वाला भी होता है। अर्थात् जीव में दोनों प्रकार की अवस्थाए हो सकती हैं।

विग्रह का अर्थ है-मोड़खाना-मुड़ना। जीव जब एक शरीर छोड़ कर दूसरा नया शरीर धारण करने के लिए गति करता है, तो उसकी गति दो प्रकार की हो सकती है। कोई एक जीव, एक आदि बार मुड़ कर उत्पत्ति स्थान पर पहुचता है और कोई जीव बिना मुडे, सीधा ही अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुंच जाता है। जब उत्पत्ति स्थान पर जाने के लिए मोड़ खाना पड़ता है तब वह गति 'विग्रह गति' कहलाती है। जब जीव बिना मुड़े, सीधा ही चला जाता है तब उस गति को 'अविग्रह गति' कहते है तथा जब जीव ठहरा हुआ हो, गति नही कर रहा हो, तब भी उसे अविग्रह गति वाला समझना चाहिए। अविग्रह गति के ये दोनो अर्थ यहाँ विवक्षित है, ऐसा टीकाकार कहते है। यद्यपि प्राचीन टीकाकार ने अविग्रह गति का अर्थ सिर्फ सिधी (विना मोड़ वाली) गति ही लिया है, किन्तु सिर्फ ऐसा अर्थ लेने से और अविग्रह का अर्थ 'ठहरा हुआ' न करने से नारकी जीवों मे अविग्रह गति वालो की जो बहुलता बतलाई है, वह सगत नही बैठ सकेगी। इसलिए 'अविग्रह गति' का अर्थ यहा पर 'सिधी गति' और 'गति न करता हुआ-ठहरा हुआ' ये दोनो अर्थ लेना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि-एक गति का आयुष्य समाप्त होने पर दूसरी गति में जाते समय मार्ग मे जो गति होती है (वाटे वहना) उसे विग्रह गति कहते है। जो मार्ग में नहीं चल रहा है (वाटे नही बहता हुआ) किन्तु किसी भी गति में स्थित है, उसे 'अविग्रह गति' कहते है। एक अर्थ यह है ‡। दूसरा अर्थ यह है-मोड़ वाली गति को विग्रह गति कहते है। बिना मोड़ वाली-सीधी गति को तथा 'ठहरा रहने' को अविग्रह गति कहते हैं।

एक जीव की अपेक्षा वह कभी विग्रह गति समापन्न होता है और कभी अविग्रह गति समापन्न होता है।

बहुत जीवो की अपेक्षा बहुत जीव विग्रह गति समापन्न भी है और बहुत जीव अविग्रह गति समापन्न भी हैं। क्योकि जीव अनन्त हैं, इसलिए प्रति समय बहुत जीव विग्रह गति वाले भी होते हैं और बहुत जीव अविग्रह गति वाले भी होते है। जीव सामान्य की

‡ यह अर्थ भगवती सूत्र शतक १४ उद्देशक ५ के मूल पाठ और टीका से स्पष्ट होता है।

तरह एकेन्द्रिय जीवों के विषय में भी समझना चाहिए, क्योंकि एकेन्द्रिय जीव भी (वनस्पति की अपेक्षा) अनन्त है।

सामान्य जीवों की अपेक्षा नारक जीव थोड़े हैं। अतः उनमें तीन भंग पाये जाते है। १ कभी उनमे विग्रह गति वाला एक भी जीव नही पाया जाता है, सभी अविग्रह गति समापन्न होते है। २ अथवा कभी कोई एक विग्रह गति समापन्न होता है और बहुत जीव अविग्रह गति समापन्न होते हैं। ३ अथवा कभी बहुत जीव विग्रह गति समापन्न और बहुत जीव अविग्रह गति समापन्न होते हैं। नारकियों की तरह सभी दण्डको में ये तीन भंग पाये जाते है, किन्तु एकेन्द्रियों में और जीव सामान्य मे ये तीन भंग नही पाये जाते हैं।

गति का प्रकरण होने से च्यवन सूत्र कहा गया है-विमान और परिवार की अपेक्षा महाऋद्धि वाला, शरीर और आभूषणो की अपेक्षा महाकान्ति वाला, महाबलशाली, महायशस्वी महा सुख वाला, अनेक प्रकार का रूप करने की शक्ति वाला कोई देव, जब देवायु समाप्त होने से च्यवने वाला होता है, तब वह अपने उत्पत्ति स्थान (स्त्री अथवा तिर्यञ्चिनी के गर्भाशय) को देखकर लज्जित होता है, क्योंकि वह स्थान, देवस्थान की अपेक्षा हीन और अशुचिमय अपवित्र होता है। अपने उत्पत्ति स्थान में रज और वीर्य रूप गन्दगी को देखकर घृणा उत्पन्न होती है। उसे अरति रूप परीषह (बेचैनी) उत्पन्न होता है, इसलिए वह कुछ समय तक आहार भी नही करता है। तदनन्तर आहरादि करता है। देवायु समाप्त होने पर वह मनुष्यगति में अथवा तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है। क्योंकि देव मरकर मनुष्यगति अथवा तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होता है, किन्तु देवगति या नरकगति में उत्पन्न नही होता है।

✓ गर्भ विचार

२४१ प्रश्न-जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे किं सइंदिए वक्कमइ, अणिंदिए वक्कमइ?

२४१ उत्तर-गोयमा! सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ।

२४२ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२४२ उत्तर-गोयमा ! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ, भाविंदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ । से तेणट्ठेणं....।

२४३ प्रश्न-जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ, असरीरी वक्कमइ ?

२४३ उत्तर-गोयमा ! सिय ससरीरी वक्कमइ, सिय असरीरी वक्कमइ ।

२४४ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२४४ उत्तर-गोयमा ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारयाइं पडुच्च असरीरी वक्कमइ । तेया-कम्माइं पडुच्च ससरीरी वक्कमइ, से तेणट्ठेणं गोयमा !....।

२४५ प्रश्न-जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे तप्पढमयाए किं आहारं आहारेइ ?

२४५ उत्तर-गोयमा ! माउओयं, पिउसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं, किव्विसं तप्पढमयाए आहारं आहारेइ ।

२४६ प्रश्न-जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे किं आहारं आहारेइ ?

२४६ उत्तर-गोयमा ! जं से माया नाणाविहाओ रसविगईओ आहारं आहारेइ, तदेकदेसेणं ओयं आहारेइ ।

२४७ प्रश्न—जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा, पासवणे इ वा, खेले इ वा, सिंघाणे इ वा, वंते इ वा, पित्ते इ वा ?

२४७ उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे ।

२४८ प्रश्न—से केणट्ठेणं ?

२४८ उत्तर—गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारेइ तं चिणाइ, तं सोइंदियत्ताए जाव—फासिंदियत्ताए, अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, से तेणट्ठेणं....।

२४९ प्रश्न—जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ?

२४९ उत्तर—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

२५० प्रश्न—से केणट्ठेणं ?

२५० उत्तर—गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ, सव्वओ उस्ससइ, सव्वओ निस्ससइ; अभिक्खणं आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ, अभिक्खणं उस्ससइ, अभिक्खणं निस्ससइ, आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ, आहच्च उस्ससइ, आहच्च नीससइ; माउजीवरसहरणी, पुत्तजीव-रसहरणी, माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवफुडा तम्हा आहारेइ, तम्हा परिणामेइ; अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा

चिणाइ, तम्हा उवचिणाइ; से तेणट्ठेणं जाव-नो पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए।

विशेष शब्दों के अर्थ-वक्कममाणे-उत्पन्न होता हुआ, माउओयं-माता का ओज=रज, पिउसुक्कं-पिता का शुक्र=वीर्य, तदुभयसंसिट्ठं-परस्पर एक दूसरे मे मिले हुए, उच्चारे-विष्ठा=मल, पासवणे-मूत्र, खेले-श्लेष्म=कफ, सिंघाणे-नाक का मैल, वंते-वमन, पित्ते-पित्त, अट्ठि-अस्थि=हड्डी, अट्ठिमिंज-अस्थिमज्जा, केस-केश, मंसु-श्मश्रू=दाढ़ी, रोम-रोम, णहत्ताए-नख रूप से, कावलियं आहारं-कवलाहार, आहच्च-कदाचित्, पुत्तजीव पडिबद्ध-पुत्र के जीव से प्रतिबद्ध, माउजीवफुडा-माता के जीव से स्पृष्ट।

भावार्थ-२४१ प्रश्न-हे भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव, क्या इन्द्रिय वाला उत्पन्न होता है, या बिना इन्द्रिय का उत्पन्न होता है ?

२४१ उत्तर-हे गौतम ! इन्द्रिय वाला भी उत्पन्न होता है और बिना इन्द्रिय का भी उत्पन्न होता है।

२४२ प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से ?

२४२ उत्तर-हे गौतम ! द्रव्येन्द्रियों की अपेक्षा बिना इन्द्रियों का उत्पन्न होता है और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियां सहित उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है।

२४३ प्रश्न-हे भगवन् ! गर्भ में उपजता हुआ जीव क्या, शरीर सहित उत्पन्न होता है, या शरीर रहित उत्पन्न होता है ?

२४३ उत्तर-हे गौतम ! शरीर सहित भी उत्पन्न होता है और शरीर रहित भी उत्पन्न होता है।

२४४ प्रश्न-हे भगवन् ! सो किस कारण से ?

२४४ उत्तर-हे गौतम ! औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों की अपेक्षा शरीर रहित उत्पन्न होता है और तैजस कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीर सहित उत्पन्न होता है। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा है।

२४५ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव गर्भ में उत्पन्न होते ही सर्व प्रथम क्या आहार करता है ?

२४५ उत्तर-हे गौतम ! आपस में एक दूसरे से मिला हुआ माता का आर्तव और पिता का वीर्य, जो कलुष है और किल्विष है, उसका जीव, गर्भ में उत्पन्न होते ही आहार करता है।

२४६ प्रश्न-हे भगवन् ! गर्भ में गया हुआ जीव क्या खाता है ?

२४६ उत्तर-हे गौतम ! गर्भ में गया हुआ (उत्पन्न हुआ) जीव, माता द्वारा खाये हुए अनेक प्रकार के रसविकारों के एक भाग के साथ माता का आर्त्तव खाता है।

२४७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या गर्भ में गये हुए जीव के मल, मूत्र, कफ, नाक का मैल, वमन और पित्त होता है ?

२४७ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, गर्भ में रहे हुए जीव के मल मूत्रादि नहीं होते हैं।

२४८ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ?

२४८ उत्तर-हे गौतम ! गर्भ में जाने पर जीव जो आहार खाता है, जिस आहार का चय करता है, उस आहार को श्रोत के रूप मे यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में, हड्डी के रूप में, मज्जा के रूप में, बाल के रूप में, दाढ़ी के रूप में, रोमों के रूप में और नखों के रूप में परिणत करता है। इसलिए हे गौतम ! गर्भ में गये हुए जीव के मल मूत्रादि नहीं होते हैं।

२४९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या गर्भ में उत्पन्न हुआ जीव,मुख द्वारा कवलाहार (ग्रास रूप आहार) करने में समर्थ है ?

२४९ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है-ऐसा नहीं हो सकता है।

२५० प्रश्न-हे भगवन् ! यह किस कारण से ?

२५० उत्तर-हे गौतम ! गर्भ में गया हुआ जीव, सर्व आत्म (सारे शरीर) से आहार करता है, सर्व आत्म से परिणमाता है, सर्व आत्म से उच्छ्वास लेता है, सर्व आत्म से निःश्वास लेता है, बारबार आहार करता है, बार बार परिणमाता है, बार बार उच्छ्वास लेता है, बारबार निःश्वास लेता है, कदा-

चित् आहार करता है, कदाचित् परिणमाता है, कदाचित् उच्छ्वास लेता है, कदाचित् निःश्वास लेता है, तथा पुत्रजीव को रस पहुंचाने में कारणभूत और माता के रस लेने में कारणभूत जो 'मातृजीवरस' हरणी नाम की नाड़ी है, वह माता के जीव के साथ संबद्ध है और पुत्र के जीव के साथ स्पृष्ट-जुड़ी हुई है, उस नाड़ी द्वारा पुत्र का जीव आहार लेता है और आहार को परिणमाता है। एक दूसरी और नाड़ी है जो पुत्र के जीव के साथ संबद्ध है और माता के जीव से स्पृष्ट -जुड़ी हुई होती है, उससे पुत्र का जीव आहार का चय करता है, और उपचय करता है। हे गौतम ! इस कारण गर्भ में गया हुआ जीव, मुख द्वारा कवलाहार लेनें में समर्थ नहीं है।

विवेचन-इन्द्रिय के दो भेद हैं-द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। पौद्गलिक रचना विशेष को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इसके दो भेद है-निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय और उपकरण द्रव्येन्द्रिय। इन्द्रियों की बाहरी आकृति को 'निर्वृति' कहते हैं और उसके सहायक को 'उपकरण' कहते हैं। भावेन्द्रिय के भी दो भेद है-लब्धि और उपयोग। 'लब्धि' का अर्थ है-शक्ति, जिसके द्वारा आत्मा शब्दादि का ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ होता है, उसे लब्धिइन्द्रिय कहते हैं। उपयोग का अर्थ है-ग्रहण करने का व्यापार।

(जब जीव, एक गति का आयुष्य समाप्त कर दूसरी गति में माता के गर्भ में उत्पन्न होता है, तब वह भावेन्द्रिय सहित (द्रव्येन्द्रिय रहित) उत्पन्न होता है।)

शरीर के पांच भेद है-औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण। इनमें से औदारिक, वैक्रिय और आहारक, ये तीन शरीर 'स्थूल शरीर' है और तैजस्, कार्मण ये दो शरीर 'सूक्ष्म शरीर' हैं। तैजस् और कार्मण, ये दो शरीर अनादिकालीन हैं और सभी संसारी जीवों के होते हैं। खाये हुए आहार को पचाना और शरीर मे ओज उत्पन्न करने का गुण तैजस् शरीर का है। कर्मों का खजाना कार्मण शरीर कहलाता है। यही शरीर जन्म जन्मान्तर का कारण है। जब जीव गर्भ में आता है, तब तैजस और कार्मण के साथ आता है। इन दोनो शरीरो की अपेक्षा जीव शरीर सहित गर्भ में आता है और औदारिक, वैक्रिय, आहारक, इन तीन शरीरो की अपेक्षा जीव शरीर रहित गर्भ मे आता है।

गर्भ मे पहुँचने के प्रथम समय में जीव माता के आर्तव (ऋतु सम्बन्धी रज) और पिता के वीर्य का जो सम्मिश्रण होता है उसे ग्रहण करता है। तत्पश्चात् माता द्वारा ग्रहण

किये हुए रस-विकारों का एक भाग ओज के साथ ग्रहण करता है। गर्भगत जीव के मल, मूत्र, कफ, नाक का मैल, वमन, पित्त नहीं होते हैं, किन्तु वह उस आहार को श्रोत्रेन्द्रिय आदि रूप से परिणमाता है। वह कवलाहार नहीं करता, किन्तु सर्वात्म रूप से आहार करता है। एक 'मातृजीव-रसहरणी' नाड़ी होती है। रसहरणी का अर्थ है-नाभिका नाल। इस नाल द्वारा माता के जीव का रस ग्रहण किया जाता है। यह नाड़ी, माता के जीव के साथ प्रतिबद्ध (गाढ रूप से बद्ध) होती है और पुत्र के जीव के साथ मात्र स्पृष्ट होती है। दूसरी एक नाड़ी और है जिसे 'पुत्रजीवरसहरणी' नाड़ी कहते है। यह पुत्र के जीव के साथ प्रतिबद्ध (गाढ़ रूप से बद्ध) होती है और माता के जीव के साथ स्पृष्ट होती है। इस नाड़ी द्वारा पुत्र का जीव, आहार का चय, उपचय करता है। इससे गर्भस्थ जीव पुष्टि प्राप्त करता है।

गर्भगत जीव के अङ्गादि

२५१ प्रश्न-कइ णं भंते ! माइअंगा पन्नत्ता ?

२५१ उत्तर-गोयमा ! तओ माइयंगा पन्नत्ता। तं जहाः- मंसे, सोणिए, मत्थुलुंगे।

२५२ प्रश्न-कइ णं भंते ! पिइयंगा पन्नत्ता ?

२५२ उत्तर-गोयमा ! तओ पिइयंगा पन्नत्ता। तं जहाः- अट्ठिं, अट्ठिमिंजा, केस-मंस-रोम-नहे।

२५३ प्रश्न-अम्मापिइए णं भंते ! सरीरए केवइयं कालं संचिट्ठइ ?

२५३ उत्तर-गोयमा ! जावइयं से कालं भवधारणिज्जे सरीरए अव्वावन्ने भवइ एवतियं कालं संचिट्ठइ। अहे णं समए, समए,

वोयसिज्जमाणे, वोयसिज्जमाणे चरमकालसमयंसि वोच्छिन्ने भवइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-माइअंगा-माता के अंग, पिइयंगा-पिता के अंग, अव्वावण्णे -अविनाश।

भावार्थ-२५१ प्रश्न-हे भगवन् ! माता के कितने अंग कहे गये हैं ?

२५१ उत्तर-हे गौतम ! माता के तीन अंग कहे गये हैं। वे इस प्रकार है-मांस, रक्त, और मस्तक का भेजा (मेज्जक)।

२५२ प्रश्न-हे भगवन् ! पिता के कितने अंग कहे गये हैं ?

२५२ उत्तर-हे गौतम ! पिता के तीन अंग कहे गये हैं। वे इस प्रकार है-हड्डी, मज्जा और केश, दाढ़ी, रोम तथा नख।

२५३ प्रश्न-हे भगवन् ! माता पिता के अंग सन्तान के शरीर में कितने काल तक रहते हैं ?

२५३ उत्तर-हे गौतम ! सन्तान का भवधारणीय शरीर जितने समय तक रहता है उतने समय तक वे अंग रहते हैं और जब भवधारणीय शरीर समय समय पर हीन होता हुआ अन्त में नष्ट हो जाता है, तब माता पिता के अंग भी नष्ट हो जाते हैं।

विवेचन-जिन अंगो मे माता के आर्तव का भाग अधिक होता है, वे माता के अंग कहे जाते हैं और जिन अंगो मे पिता के वीर्य का भाग अधिक होता है वे पिता के अंग कहे जाते है। माता के तीन अंग है-मांस, रक्त और मस्तुलुंग। मस्तुलुंग का अर्थ है-मस्तक का भेजा। कुछ आचार्य 'मस्तुलुंग' का अर्थ 'चर्बी, फेफसा आदि' कहते है। पिता के तीन अंग है-हड्डी, हड्डी की मज्जा (हड्डी के बीच का भाग) और केश रोम नख आदि। इनके सिवाय शेष सब अंग माता और पिता दोनो के पुद्गलो से बने हुए हैं। जब तक सन्तान का भवधारणीय शरीर (जो शरीर उस भव मे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त रहता है) रहता है, तब तक माता पिता के पुद्गल उस शरीर मे कायम रहते हैं। समय समय पर वे पुद्गल हीन होते जाते है, जब वे समाप्त हो जाते है तब सन्तान का वह भवधारणीय शरीर भी समाप्त हो जाता है।

गर्भस्थ जीव की नरकादि गति

२५४ प्रश्न-जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जेज्जा ?

२५४ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ।

२५५ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२५५ उत्तर-गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए, वेउव्वियलद्धीए पराणीएणं आगयं सोच्चा, निसम्म पएसे निच्छुभइ, निच्छुभित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता चाउरंगिणिं सेन्नं विउव्वइ, चाउरंगिणिं सेन्नं विउवित्ता चाउरंगिणीए सेणाए पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ । से णं जीवे अत्थकामए, रज्जकामए, भोगकामए, कामकामए; अत्थकंखिए, रज्जकंखिए, भोगकंखिए, कामकंखिए; अत्थपिवासए, रज्जपिवासए, भोगपिवासए, कामपिवासए; तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणभाविए; एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज नेरइएसु उववज्जइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव-अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ।

२५६ प्रश्न-जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोगेसु

उववज्जेज्जा ?

२५६ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

२५७ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२५७ उत्तर-गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए एगमपि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा, निसम्म तओ भवइ संवेगजायसड्ढे, तिव्वधम्माणुरागरत्ते, से णं जीवे धम्मकामए, पुन्नकामए, सग्गकामए, मोक्खकामए; धम्मकंखिए, पुन्नकंखिए, सग्गकंखिए, मोक्खकंखिए; धम्मपिवासए पुन्नपिवासए, सग्ग-मोक्खपिवासए; तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज देवलोगेसु उववज्जइ। से तेणट्ठेणं गोयमा !....।

विशेष शब्दों के अर्थ-वीरियलद्धीए-वीर्य लब्धि के द्वारा, वेउव्वियलद्धीए-वैक्रिय लब्धि के द्वारा, पराणीएणं-परानीक-शत्रु की सेना, णिच्छुभइ-आत्मप्रदेशों को बाहर निकालता है, चाउरंगिणि-चतुरंगिनी सेना, अत्थकामए-अर्थ का कामी-इच्छुक, अत्थकंखिए-अर्थ का कांक्षी, अत्थपिवासिए-अर्थ पिपासित, तदज्झवसिए-उसमें अध्यवसाय रखने वाला, तत्तिव्वज्झवसाणे-उसमे तीव्र अध्यवसान-प्रयत्न करने वाला, तदट्ठोवउत्ते-उस अर्थ में उपयुक्त-सावधानता वाला, तदप्पियकरणे-तदर्पितकरण अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ और कृत, कारित अनुमोदन उसी मे लगे हुए हैं वह, अंतरंसि-बीच मे, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा-तथा रूप के श्रमण माहण अर्थात् साधु के योग्य वेष और साधु के उचित गुणों को धारण करने वाले साधु का तथा माहन अर्थात् श्रावक का, संवेगजायसड्ढे-सवेग से जिसे

धर्म में श्रद्धा उत्पन्न हुई है अर्थात् धर्म श्रद्धालु, तिव्वधम्माणुरागरत्ते-तीव्र धर्मानुरागरक्त, पुण्ण-पुण्य, सग्ग-स्वर्ग ।

भावार्थ-२५४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव, नरक में उत्पन्न होता है ?

२५४ उत्तर-हे गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता है।

२५५ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२५५ उत्तर-हे गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और सब पर्याप्तियों से पर्याप्त जीव, वीर्य-लब्धि द्वारा, वैक्रिय-लब्धि द्वारा, शत्रु की सेना को आई हुई सुनकर, अवधारण करके अपने आत्मप्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है, बाहर निकालकर वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर चतुरंगिनी सेना की विक्रिया करता है। चतुरंगिनी सेना की विक्रिया करके उस सेना से शत्रु की सेना के साथ युद्ध करता है। वह अर्थ (धन) का कामी, राज्य का कामी, भोग का कामी, काम का कामी, अर्थ में लंपट, राज्य में लंपट, भोग में लंपट तथा काम में लंपट, अर्थ का प्यासा, राज्य का प्यासा, भोग का प्यासा और काम का प्यासा, उन्हीं में चित्त वाला, उन्हीं में मन वाला, उन्हीं में आत्म परिणाम वाला, उन्हीं में अध्यवसित, उन्हीं में प्रयत्न वाला, उन्हीं में सावधानता वाला, उन्हीं के लिए क्रिया करने वाला और उन्हीं के संस्कार वाला जीव, यदि उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो, तो नरक में उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! कोई जीव नरक मे जाता है और कोई नहीं जाता है।

२५६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या गर्भ मे रहा हुआ जीव, देवलोक में जाता है ?

२५६ उत्तर-हे गौतम ! कोई जीव जाता है और कोई नहीं जाता है।

२५७ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२५७ उत्तर-हे गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और सब पर्याप्तियों से पर्याप्त (पूर्ण) जीव, तथारूप के श्रमण या माहन के पास एक भी

धार्मिक आर्य वचन सुनकर, हृदय में धारण करके तुरन्त ही संवेग से धर्म में श्रद्धालु बनकर, धर्म के तीव्र अनुराग में रक्त होकर, वह धर्म का कामी, पुण्य का कामी, स्वर्ग का कामी, मोक्ष का कामी, धर्म में आसक्त, पुण्य में आसक्त, स्वर्ग में आसक्त, मोक्ष में आसक्त, धर्म का प्यासा, पुण्य का प्यासा, स्वर्ग का प्यासा, मोक्ष का प्यासा, उसी में चित्त वाला, उसी में मनवाला, उसी में आत्मपरिणाम वाला, उसी में अध्यवसित, उसी में तीव्र प्रयत्न वाला, उसी में सावधानता वाला, उसी के लिए क्रिया करने वाला और उसी संस्कार वाला जीव, यदि ऐसे समय में मृत्यु को प्राप्त हो, तो देवलोक में उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! कोई जीव देवलोक में जाता है और कोई नहीं जाता है।

विवेचन-गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! गर्भ मे रहा हुआ कोई जीव, नरक मे जाता है और कोई नही जाता है। इसका कारण यह है कि-कोई जीव राजवश आदि मे, गर्भ मे आया हुआ है और उस समय सयोगवश उसका कोई शत्रु राजा, उसके राज्य को हड़पने के लिए सेना लेकर चढ़ आया। सेना आई हुई सुनकर अपने राज्य की रक्षा के लिए उसमे धन, राज्य और कामभोगों की इच्छा लालसा, पिपासा और तीव्रता पैदा होती है, जिससे वह वैक्रिय-लब्धि द्वारा अपने आत्म प्रदेशो को गर्भ से बाहर निकालकर वैक्रिय-समुद्घात करता है। वैक्रिय-समुद्घात करके वह गर्भस्थ बालक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल, यह चतुरगिनी सेना बनाता है और आई हुई शत्रु की सेना से लड़ाई करता है। उस समय उसका चित्त धन, राज्य और कामभोगों मे आसक्त रहता है और ऐसी कलुषित तीव्र भावना रहती है कि-सामने वाले शत्रु राजा को मार डालू और अपना राज्य बचा लूं। ऐसे समय में यदि उसकी मृत्यु हो जाय, तो वह मरकर नरक मे चला जाता है।

इसी प्रकार कोई गर्भस्थ जीव मरकर स्वर्ग में भी चला जाता है। इसका कारण यह है कि गर्भस्थ सज्ञी पञ्चेन्द्रिय, सब पर्याप्तियों से पर्याप्त जीव, आगमानुसार व्रतों का पालन करने वाले श्रमण (साधु) या माहण (देशविरत-श्रमणोपासक) के पास एक भी धार्मिक आर्य वचन सुनकर उसे हृदय में धारण करता है और धर्मश्रद्धालु वन जाता है। वह धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष का इच्छुक वनकर उसी में तल्लीन वन जाता है। ऐसे समय में शुभ अध्यवसायो में यदि उसकी मृत्यु हो जाय, तो वह देवलोक मे जाता है।

मूल पाठ में श्रमण माहन के लिए 'तथा रूप' यह विशेषण लगाया है। इसका मतलब यह है कि-'शास्त्रोक्त गुणसम्पन्न'। अर्थात् शास्त्र में 'श्रमण माहन' के जो गुण कहे है उन गुणों को तथा तदनुरूप वेश को धारण करने वाले महात्मा 'तथा रूप' के श्रमण माहन कहलाते हैं। जो समभाव में लीन रहते हैं एवं शत्रु मित्र पर समभाव रखते हैं तथा निरन्तर तप में लीन रहते हैं, उन्हें 'श्रमण' कहते है। 'मा हन' अर्थात् 'मत मार' जो ऐसा उपदेश देता है अर्थात् जो स्वयं स्थूल हिंसा नही करता और दूसरों को भी हिंसा से निवृत्त होने का उपदेश देता है, वह 'माहन' कहलाता है। 'ब्राह्मण' को भी 'माहन' कहते हैं। अर्थात् देशतः ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्रह्मचारी को और देश विरत-श्रमणोपासक को भी 'माहन' कहते हैं।

गर्भ में जीव की स्थिति

२५८ प्रश्न-जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा, पासिल्लए वा, अंबखुज्जए वा, अच्छेज्जए वा, चिट्ठेज्जए वा, निसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, माउए सुवमाणीए सुवइ, जागरमाणीए जागरइ, सुहियाए सुहिए भवइ, दुहियाए दुहिए भवइ ?

२५८ उत्तर-हंता गोयमा ? जीवे णं गब्भगए समाणे जाव-दुहियाए दुहिए भवइ, अहे णं पसवणकालसमयंसि सीसेण वा, पाएहिं वा आगच्छति, सम्मं आगच्छइ, तिरियं आगच्छइ, विणिहायं आवज्जइ, वन्नवज्झाणि य से कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं, निहत्ताइं, कडाइं, पट्ठवियाइं, अभिनिविट्ठाइं अभिसमन्नागयाइं, उदिन्नाइं, नो उवसंताइं भवंति, तओ भवइ दुरूवे, दुवन्ने दुग्गंधे, दुरसे, दुफासे, अणिट्ठे, अकंते, अप्पिए, असुभे, अमणुन्ने, अमणामे; हीणस्सरे;

दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे, अकंतस्सरे, अप्पियस्सरे, असुभस्सरे, अमणुन्नस्सरे, अमणामस्सरे; अणाएज्जवयणे, पच्चायाए या वि भवइ। वण्णवज्झाणि य से कम्माइं नो बद्धाइं, पसत्थं णेयव्वं जाव-आदिज्जवयणे पच्चायाए या वि भवइ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो।

विशेष शब्दों के अर्थ-उत्ताणए-उत्तानक-चित लेटा हुआ, पासिल्लए-पसवाड़े से, अंबखुज्जए-आम्रकुब्ज-आम की तरह कुबड़ा, अच्छेज्जए-सामान्य अवस्था में रहा हुआ, चिट्ठेज्ज-खडा हुआ, णिसीएज्ज-बैठा हुआ, तुयट्टेज्ज-सोता हुआ, पसवणकालसमयंसि-प्रसव के समय, विणिहायं विनिघात=मृत्यु वण्णवज्झाणि-श्लाघा रहित-अशुभ, णिहत्ताइं-निधत्त, पच्चायाए-उत्पन्न हुआ, आदिज्जवयणे-आदेय वचन वाला।

भावार्थ-२५८ प्रश्न-हे भगवन् ! गर्भ में रहा हुआ जीव, क्या उत्तानक -चित लेटा हुआ होता है ? या करवट वाला होता है ? आम के समान कुबड़ा होता है ? खड़ा होता है ? बैठा होता है, या पड़ा हुआ-सोता हुआ होता है ? तथा जब माता सोती हुई हो तो वह भी सोता है ? जब माता जागती हो तो जागता है, माता के सुखी होने पर सुखी होता है और माता के दुःखी होने पर दुःखी होता है ?

२५८ उत्तर-हाँ, गौतम ! गर्भ में रहा हुआ जीव यावत् जब माता दुःखी हो, तो दुःखी होता है। यदि वह गर्भ का जीव मस्तक द्वारा या पैरों द्वारा बाहर आवे तब तो ठीक तरह आता है। यदि टेढा (आड़ा) हो कर आवे, तो मर जाता है। यदि उस जीव के कर्म अशुभ रूप में बंधे हों, स्पृष्ट हों, निधत्त हों, कृत हों, प्रस्थापित हों, अभिनिविष्ट हों, अभिसमन्वागत हों, उदीर्ण हों और उपशान्त न हों, तो वह जीव कुरूप, कुवर्ण (खराब वर्णवाला), खराब गन्ध वाला,

शतक १ उद्देशक ८

बाल पंडितादि का आयुबन्ध

रायगिहे समोसरणं। जाव-एवं वयासीः—

२५९ प्रश्न-एगंतबाले णं भंते! मणुस्से किं णेरइयाउयं पकरेइ, तिरिक्खाउयं पकरेइ, मणुस्साउयं पकरेइ, देवाउयं पकरेइ? णेरइयाउयं किच्चा णेरइएसु उववज्जइ, तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववजइ, मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जइ, देवाउयं किच्चा देवलोगेसु उववज्जइ?

२५९ उत्तर-गोयमा! एगंतबाले णं मणुस्से णेरइयाउयं पि पकरेइ, तिरियाउयं पि पकरेइ, मणुस्साउयं पि पकरेइ, देवाउयं पि पकरेइ। णेरइयाउयं पि किच्चा णेरइएसु उववज्जइ, तिरियाउयं पि किच्चा तिरिएसु उववज्जइ, मणुस्साउयं पि किच्चा मणुएसु उववज्जइ, देवाउयं पि किच्चा देवलोगेसु उववज्जइ।

२६० प्रश्न-एगंतपंडिए णं भंते! मणुस्से किं णेरइयाउयं पकरेइ, जाव-देवाउयं किच्चा देवलोएसु उववज्जइ?

२६० उत्तर-गोयमा! एगंतपंडिए णं मणूसे आउयं सिय पकरेइ, सिय णो पकरेइ; जइ पकरेइ णो णेरइयाउयं पकरेइ, णो तिरियाउयं पकरेइ, णो मणुस्साउयं पकरेइ, देवाउयं पकरेइ।

णो णेरइयाउयं किच्चा णेरइएसु उववज्जति, णो तिरिया उयं किच्चा तिरिएसु उववज्जति, णो मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जइ, देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति।

२६१ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति?

२३१ उत्तर-गोयमा! एगंतपंडियस्स णं मणूसस्स केवलं एव दो गईओ पण्णायंति, तं जहाः-अंतकिरिया चेव, कप्पोववत्तिया चेव। से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव-देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति।

२६२ प्रश्न-बालपंडिए णं भंते! मणुस्से किं णेरइयाउयं पकरेइ, जाव-देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ?

२६२ उत्तर-गोयमा! णो णेरइयाउयं पकरेइ, जाव-देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ।

२६३ प्रश्न-से केणट्ठेणं, जाव-देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जइ?

२६३ उत्तर-गोयमा! बालपंडिए णं मणुस्से तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए एगमपि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा, णिसम्म देसं उवरमइ, देसं णो उवरमइ; देसं पच्चक्खाइ, देसं णो पच्चक्खाइ। से तेणट्ठेणं देसोवरम-देसपच्चक्खाणेणं णो णेरइयाउयं पकरेइ, जाव-देवाउयं किच्चा देवेसु उवज्जइ। से तेणट्ठेणं जाव-देवेसु उववज्जति।

विशेष शब्दों के अर्थ-किच्चा-करके, एगंतबाले-एकान्त बाल, एगंतपंडिए-एकान्त

पण्डित, अंतकिरिया-अन्तक्रिया=मोक्ष गमन की क्रिया, कप्पोववत्तिया-कल्पोपपत्तिका= वैमानिक देवों में उत्पन्न होने की क्रिया, देसं उवरमइ-एक देशतः पाप से निवृत्त होता है।

भावार्थ-राजगृह नगर में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण हुआ और यावत् इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए--

२५९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या एकान्त-बाल (मिथ्यादृष्टि) मनुष्य, नरक की आयु बांधता है ? या तिर्यञ्च की आयु बाँधता है ? या मनुष्य की आयु बाँधता है ? या देव की आयु बाँधता है ? क्या नरक की आयु बाँध कर नारकियों में उत्पन्न होता है ? क्या तिर्यञ्चों की आयु बांधकर तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है ? मनुष्य की आयु बाँध कर मनुष्य में उत्पन्न होता है ? या देव की आयु बाँध कर देवलोक में उत्पन्न होता है ?

२५९ उत्तर-हे गौतम ! एकान्त-बाल मनुष्य, नरक की भी आयु बांधता है, तिर्यञ्च की भी आयु बाँधता है, और देव की भी आयु बाँधता है। नरकायु बाँध कर नैरयिकों में उत्पन्न होता है। तिर्यञ्चायु बाँध कर तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है। मनुष्यायु बाँध कर मनुष्यों में उत्पन्न होता है और देवायु बाँध कर देवलोक में उत्पन्न होता है।

२६० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या एकान्त-पण्डित मनुष्य, नरकायु बाँधता है ? यावत् देवायु बाँधता है ? और यावत् देवायु बाँध कर देवलोक में उत्पन्न होता है ?

२६० उत्तर-हे गौतम ! एकान्त-पण्डित मनुष्य, कदाचित् आयु बाँधता है और कदाचित् आयु नहीं बाँधता है। यदि आयु बांधता है तो देवायु बाँधता है, किन्तु नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु नहीं बाँधता है। वह नरकायु न बाँधने से नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार तिर्यञ्चायु न बाँधने से तिर्यञ्चों में उत्पन्न नहीं होता और मनुष्यायु न बाँधने से मनुष्यों में भी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु देवायु बाँध कर देवों में उत्पन्न होता है।

२६१ प्रश्न-भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् देवायु बांध कर

देवों में उत्पन्न होता है ?

२६१ उत्तर-हे गौतम ! एकान्त पण्डित मनुष्य की केवल दो गतियां कही गई हैं। वें इस प्रकार हैं-अन्तक्रिया और कल्पोपपत्तिका। इस कारण हे गौतम ! एकान्त पण्डित मनुष्य देवायु बाँध कर देवों में उत्पन्न होता है।

२६२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या बाल-पण्डित मनुष्य नरकायु बाँधता है यावत् देवायु बाँधता है ? और यावत् देवायु बाँध कर देवलोक में उत्पन्न होता है ?

२६२ उत्तर-हे गौतम ! वह नरकायु नहीं बाँधता और यावत् देवायु बाँध कर देवों में उत्पन्न होता है।

२६३ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि-बाल-पण्डित मनुष्य यावत् देवायु बाँध कर देवों में उत्पन्न होता है ?

२६३ उत्तर-हे गौतम ! बाल-पण्डित मनुष्य तथारूप के श्रमण या माहन के पास से एक भी धार्मिक आर्य वचन सुनकर, धारण करके एक देश से विरत होता है और एक देश से विरत नहीं होता। एक देश से प्रत्याख्यान करता है और एक देश से प्रत्याख्यान नहीं करता। इसलिए हे गौतम ! देशविरति और देशप्रत्याख्यान के कारण वह नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का बन्ध नहीं करता और यावत् देवायु बाँध कर देवों में उत्पन्न होता है। इसीलिए हे गौतम ! पूर्वोक्त कथन किया गया है।

विवेचन-सातवें उद्देशक मे गर्भ और जन्म का अधिकार कहा गया है, किन्तु गर्भ और जन्म, आयुष्य के बन्ध बिना नही हो सकते। इसलिए आठवें उद्देशक में आयु का विचार किया जाता है। इसके सिवाय संग्रह गाथा में आठवें उद्देशक में बाल जीवों के वर्णन करने की प्रतिज्ञा की थी। अतएव आयु के साथ बाल जीवों का भी वर्णन किया जाता है।

संसार में तीन प्रकार के जीव होते हैं-बाल, पण्डित और बाल पण्डित। मिथ्यादृष्टि और अविरत को 'एकान्त-बाल' कहते हैं। वस्तु तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जान कर तदनुसार आचरण करने वाला 'पण्डित' कहलाता है। जो वस्तु तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है, किन्तु आंशिक (एक देश) आचरण करता है उसे 'बालपण्डित' कहते हैं।

मूलपाठ में 'एगत बाले-एकान्त बाल' ऐसा कहा है। 'बाल' शब्द के साथ 'एकान्त'

विशेषण लगाया है, इससे 'मिथ्यादृष्टि' और अविरत जीव का ही ग्रहण किया गया है, 'मिश्रदृष्टि' का नही।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम! 'बाल' जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारों गतियों में जाता है।

यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि 'एकान्तबाल' जीवों का एकान्तबालकपन (मिथ्यात्व) तो सरीखा है। फिर वह चारो गति का आयुष्य बांधता है। इसका क्या कारण है?

समाधान-इस शका का समाधान यह है कि-आयुष्य बन्ध के कारण अलग अलग हैं। इसलिए एकान्तबालजीव भी उन उन कारणों से अलग अलग आयुष्य बांधते हैं। जो एकान्त बाल (मिथ्यादृष्टि) जीव महाआरम्भ, महापरिग्रहादि वाले होते हैं तथा असत्य मार्ग का उपदेश देकर लोगो को कुमार्ग मे प्रवृत्त करते है और इसी प्रकार के दूसरे पापमय कार्य करते हैं, वे नरक अथवा तिर्यञ्च का आयुष्य बाँधते हैं। जो एकान्त बाल जीव अल्पकषायी होते हैं, अकाम निर्जरा आदि करते हैं, वे मनुष्य अथवा देव का ही आयुष्य बांधते है। 'एकान्तबाल' शब्द समान होते हुए भी अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य तो देवायु ही बांधता है।

एकान्त पण्डित जीव साधु ही होते हैं। उनके सम्यक्त्व सप्तक (अनन्तानुबन्धी चार कषाय और मोहनीय त्रिक, ये सात प्रकृतियाँ) के क्षय होजाने के पश्चात् वे आयुष्य का बन्ध नही करते, अपितु उसी भव में मोक्ष चले जाते हैं। यदि उपर्युक्त सात प्रकृतियों के क्षय होने से पहले आयुष्य बन्ध हो, तो सिर्फ एक वैमानिक देव का ही होता है। इसी लिए पण्डित पुरुष के लिए कहा गया है कि-वह कदाचित् आयुष्य का बन्ध करता है और कदाचित् नही करता है।

वस्तु तत्त्व का यथार्थ स्वरूप समझ कर जो आंशिक रूप से पापो का प्रत्याख्यान करता है और जितने अंश में त्याग नही कर सका है, उसके लिए अपनी कमजोरी स्वीकार करता है, वह 'बाल-पण्डित' कहलाता है। वह देशविरत श्रमणोपासक श्रावक भी कहलाता है। वह देवायु का ही बन्ध करता है। नरक, तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्य नही बांधता है, क्योंकि वह शुद्ध संयम के पालक श्रमण-माहन के पास धार्मिक वचन सुनकर एक देशतः आरम्भ परिग्रहादि का त्याग कर देता है। उस त्याग के प्रताप से वह जीव तीन गतियों से बच जाता है और सिर्फ देवगति का ही आयुष्य बांधता है।

मृगघातकादि को लगने वाली क्रिया

२६४ प्रश्न-पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा, दहंसि वा,उदगंसि वा, दवियंसि वा, वलयंसि वा, नूमंसि वा, गहणंसि वा, गहणविदुग्गंसि वा, पव्वयंसि वा, पव्वतविदुग्गंसि वा, वणंसि वा, वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता 'एते मिए' त्ति काउं अण्णयरस्स मियस्स वहाए कूडपासं उद्दाति, तओ णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए पन्नत्ते ?

२६४ उत्तर-गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे कच्छंसि वा, जाव-कूडपासं उद्दाइ, तावं च णं से पुरिसे सिय तिकिरिए, सिय चतुकिरिए, सिय पंचकिरिए ।

२६५ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वच्चइ-'सिय तिकिरिए, सिय चतुकिरिए, सिय पंचकिरिए' ?

२६५ उत्तर-गोयमा ! जे भविए उद्दवणयाए, णो बंधणयाए, णो मारणयाए, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए-तिहिं किरियाहिं पुट्ठे । जे भविए उद्दवणयाए वि, बंधणयाए वि, णो मारणयाए, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे । जे भविए उद्दवणयाए वि, बंधणयाए वि, मारणयाए वि, तावं च णं से पुरिसे

काइयाए, अहिगरणिआए, पाउसियाए, जाव-पाणाइवायकिरियाए -पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेणट्ठेणं जाव-पंचकिरिए।

विशेष शब्दो के अर्थ-कच्छंसि-कच्छ में=नदी के पानी से घिरे हुए झाड़ियो वाले स्थान में, दहंसि-द्रह मे, उदगंसि-जलाशय में, दवियंसि-घास के ढेर में, वलयंसि-वलय अर्थात् गोलाकार पानी आदि के स्थान मे, णूमंसि-अन्धकार वाले स्थान में, गहणंसि-गहन स्थान मे, गहण विदुग्गंसि-पर्वत के एक भागवर्ती वन में, पव्वयंसि-पर्वत में, पव्वय विदुग्गंसि- पर्वतों के समुदाय में, वणंसि-वन में,वणविदुग्गंसि-अनेक जाति के वृक्षो के समुदाय मे, मियवित्तीए-मृगों को मार कर आजीविका चलाने वाला, मियसंकप्पे-मृग मारने का सकल्प वाला, मियपणिहाणे-मृग को मारने मे एकाग्र चित्त वाला, कूडपासं-कूटपाश, उद्दाइ-रचता है।

भावार्थ-२६४ प्रश्न-हे भगवन् ! मृगों से आजीविका चलाने वाला, मृगों का शिकारी, और मृगों के शिकार में तल्लीन कोई पुरुष, मृग को मारने के लिए कच्छ में, द्रह में, जलाशय में, घास आदि के समूह में, वलय में (गोलाकार अर्थात् नदी आदि के पानी से आड़ेटेड़े स्थान में) अन्धकार वाले प्रदेश में, गहन में (वृक्ष, बेल, आदि के समुदाय में) पर्वत के एक भागवर्ती वन में, पर्वत में, पर्वत वाले प्रदेश में, वन में और अनेक जाति के वृक्षों वाले वन में जाकर 'ये मृग हैं', ऐसा सोच कर किसी मृग को मारने के लिए कूटपाश रचे अर्थात् गड्ढा बनावे या जाल फैलावे, तो हे भगवन् ! वह पुरुष कितनी क्रियाओं वाला कहा गया है ? अर्थात् उसे कितनी क्रिया लगती है ?

२६४ उत्तर-हे गौतम ! वह पुरुष, कच्छ में यावत् जाल फैलावे तो कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है।

२६५ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि-वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है ?

२६५ उत्तर-हे गौतम ! जबतक वह पुरुष जाल को धारण करता है और मृगों को बांधता नहीं है तथा मृगों को मारता नहीं है, तबतक वह पुरुष-कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट है अर्थात् तीन क्रिया वाला होता है। जबतक वह जाल को धारण किये हुए है और मृगों को बांधता है, किन्तु मारता नहीं, तबतक वह पुरुष-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी, इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट है। जब वह पुरुष जाल को धारण किये हुए है, मृगों को बांधता है और मारता है, तब वह-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट है अर्थात् पांच क्रिया वाला है। इस कारण हे गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला है।

विवेचन-यहाँ क्रिया के पाँच भेद बताये हैं—

(१) कायिकी-काया द्वारा होने वाला सावद्य व्यापार-कायिकी क्रिया है।

(२) आधिकरणिकी-हिंसा के साधन=शस्त्रादि जुटाना-आधिकरणिकी क्रिया कहलाती है।

(३) प्राद्वेषिकी-हिंसा प्रद्वेष अर्थात् किसी पर दुष्ट भाव होने से लगने वाली क्रिया-प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है।

(४) पारितापनिकी-किसी जीव को पीड़ा पहुँचाना-पारितापनिकी क्रिया कहलाती है।

(५) प्राणातिपातिकी-जिस जीव को मारने का संकल्प किया था उसे मार डालना-प्राणातिपातिकी क्रिया कहलाती है।

गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! मृग मारकर अपनी आजीविका चलाने वाला कोई शिकारी मृग मारने के सकल्प से जंगल मे गया। उसने वहाँ मृग को फँसाने के लिए जाल फैलाया। तो हे भगवन् ! उसको कितनी क्रियाएँ लगी ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ? केवल जाल फैलाने पर उसे तीन क्रियाएँ लगीं। मृग के फँसने पर चार क्रियाएँ लगीं और मृग को मारडालने पर पांच क्रियाएँ लगीं।

२६६ प्रश्न-पुरिसे णं भंते! कच्छंसि वा, जाव-वणविदुग्गंसि वा तणाइं ऊसविय, ऊसविय अगणिकायं णिसिरइ। तावं च णं से भंते! पुरिसे कतिकिरिए?

२६६उत्तर-गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

२६७ प्रश्न-से केणट्ठेणं?

२६७ उत्तर-गोयमा! जे भविए उस्सवणयाए तिहिं। उस्सवणयाए वि, णिसिरणयाए वि, णो दहणयाए चउहिं। जे भविए उस्सवणयाए वि, णिसिरणयाए वि, दहणयाए वि, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव-पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। से तेणट्ठेणं गोयमा ०।

तणाइं-तृण, ऊसविय-इकट्ठे करके, दहणयाए-जलावे।

२६६ प्रश्न-हे भगवन्! कच्छ में यावत् वनविदुर्ग (अनेक जाति के वृक्षों वाले वन) में कोई पुरुष घास के तिनके इकट्ठे करके उनमें आग डाले तो वह पु ष कितनी क्रिया वाला होता है?

२६६ उत्तर-हे गौतम! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

२६७ प्रश्न-हे भगवन्! इसका क्या कारण है?

२६७ उत्तर-हे गौतम! जबतक वह पुरुष तिनके इकट्ठे करता है, तबतक वह तीन क्रिया वाला होता है। जब वह तिनके इकट्ठे कर लेता है और उनमें आग डालता है, किन्तु जलाता नहीं है, तब तक वह चार क्रिया

वाला होता है। और जब वह तिनके इकट्ठे करता है, आग डालता है और जलाता है, तब वह पुरुष, कायिकी आदि पाँच क्रिया वाला होता है। इसलिए हे गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है।

विवेचन-इसी तरह तिनके-घास फूस इकट्ठे करके उनमें आग डालने वाले पुरुष के सम्बन्ध मे भी क्रिया का विचार किया गया है।

२६८ प्रश्न-पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा, जाव-वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता 'एते मिय' त्ति काउं अण्णयरस्स मियस्स वहाए उसुं णिसिरति, तओ णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

२६८ उत्तर-गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

२६९ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२६९ उत्तर-गोयमा ! जे भविए णिसिरणयाए, नो विद्धसणयाए वि, नो मारणयाए वि तिहिं। जे भविए णिसिरणयाए वि, विद्धंसणयाए वि, णो मारणयाए चउहिं। जे भविए णिसिरणयाए वि, विद्धंसणयाए वि, मारणयाए वि, तावं च णं से पुरिसे जाव-पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। से तेणट्ठेणं गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

विशेष शब्दों के अर्थ-अण्णतरस्स-किसी एक को, उसुं-बाण को।

भावार्थ-२६८ प्रश्न-हे भगवन् ! मृगों से आजीविका चलाने वाला, मृगों का शिकारी और मृगों के शिकार में तल्लीन कोई पुरुष,मृगों को मारने के लिए कच्छ में यावत् वनविदुर्ग में जाकर 'ये मृग हैं' ऐसा सोचकर मृग को मारने के लिए बाण फेंकता है, तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है, अर्थात् उसे कितनी क्रिया लगती है ?

२६८ उत्तर-हे गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है।

२६९ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२६९ उत्तर-हे गौतम ! जबतक वह पुरुष बाण फेंकता है, परन्तु मृग को बेधता नहीं तथा मृग को मारता नहीं है तबतक वह पुरुष तीन क्रिया वाला होता है। जब वह बाण फेंकता है और मृग को बेधता है परन्तु मृग को मारता नहीं है, तबतक वह चार क्रिया वाला होता है। जब वह बाण फेंकता है, मृग को बेधता है, और मृग को मारता है, तब वह पुरुष पाँच क्रिया वाला होता है। इसलिए हे गौतम ! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

विवेचन-मृग को मारने के लिए धनुष पर बाण चढ़ा कर तैयार खड़े हुए पुरुष का मस्तक किसी ने पीछे से आकर काट दिया और उस मारने वाले के धनुष से छूटे हुए बाण से मृग मर गया, तो जिसके बाण से मृग मरा वह मृग-घातक है और जिसने मनुष्य को मारा है वह मनुष्य-घातक है, क्योंकि 'चलमाणे चलिए, कज्जमाणे कडे'-यह सिद्धान्त सर्वत्र लागू होता है। *

२७० प्रश्न-पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा, जाव-अण्णयरस्स मियस्स वहाए आययकण्णाययं उसुं आयामेत्ता चिट्ठेज्जा, अण्णे य (अन्नयरे) पुरिसे मग्गओ आगम्म सयपाणिणा, असिणा

* इस विवेचन का सम्बन्ध नीचे के सूत्र २७० के विवेचन से है। सूत्र २६८, २६९ का विवेचन पूर्व के सूत्रों के अनुसार जानना चाहिए। सलग सूत्रों और विवेचन का विभाग करने में यह भूल हुई है-डोशी

सीसं छिंदेज्जा, से य उसू ताए चेव पुव्वायामणयाए तं मियं विंधेज्जा, से णं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे ? पुरिसवेरेणं पुट्ठे ?

२७० उत्तर–गोयमा ! जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे। जे पुरिसं मारेइ, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे।

२७१ प्रश्न–से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–'जाव–से पुरिसवेरेणं पुट्ठे' ?

२७१ उत्तर–से णूणं गोयमा ! कज्जमाणे कडे, संधिज्जमाणे संधित्ते, णिवत्तिज्जमाणे निव्वत्तिते, निसरिज्जमाणे णिसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ? "हंता, भगवं ! कज्जमाणे कडे, जाव–णिसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया"। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे। जे पुरिसं मारेइ, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे। अंतोछण्हं मासाणं मरइ। काइयाए, जाव–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। बाहिंछण्हं मासाणं मरइ, काइयाए, जाव–पारियावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे।

विशेष शब्दों के अर्थ–आयतकण्णायतं–कान तक खींच कर, पुव्वायामणयाए–पूर्व के खीचाव से, णिसिट्ठे-फेंकने, संधिज्जमाणे–सन्धान करता हुआ, णिवत्तिज्जमाणे–निर्वर्तित करता हुआ=तय्यार करता हुआ। निसरिज्जमाणे–फेंका जाता हुआ।

भावार्थ–२७० प्रश्न–हे भगवन् ! कोई पुरुष, कच्छ में यावत् किसी मृग का वध करने के लिए कान तक लम्बे किये हुए बाण को प्रयत्न पूर्वक खींच कर खड़ा हो और दूसरा कोई पुरुष पीछे से आकर उस खड़े हुए पुरुष का मस्तक अपने हाथ से तलवार द्वारा काट डाले। वह बाण पहले के खींचाव से उछल



कर उस मृग को बेध डाले, तो हे भगवन् ! क्या वह पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है या पुरुष के वैर से स्पृष्ट है ?

२७० उत्तर-हे गौतम ! जो पुरुष मृग को मारता है वह मृग के वैर से स्पृष्ट है और जो पुरुष, पुरुष को मारता है वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट है।

२७१ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् वह पुरुष, पुरुष के वैर से स्पृष्ट है ?

२७१ उत्तर-हे गौतम ! यह निश्चित है कि 'कज्जमाणे कडे' अर्थात् जो किया जा रहा है वह 'किया हुआ' कहलाता है। जो मारा जा रहा है वह 'मारा हुआ' कहलाता है। जो जलाया जा रहा है वह 'जलाया हुआ' कहलाता है और जो फेंका जा रहा है वह 'फेंका हुआ' कहलाता है ?

हाँ, भगवन् ! जो किया जा रहा है वह किया हुआ कहलाता है और यावत् जो फेंका जा रहा है वह फेंका हुआ कहलाता है।

इसलिए हे गौतम ! इसी कारण से जो मृग को मारता है वह मृग के वैर से स्पृष्ट कहलाता है और यदि मरने वाला छह मास के भीतर मरे, तो मारने वाला कायिकी आदि यावत् पांच क्रियाओं से स्पृष्ट कहलाता है और यदि मरने वाला छह मास के बाद मरे, तो मारने वाला पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी, इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट कहलाता है।

विवेचन-जिस पुरुष का बाण मृगादि को लगा है, यदि वह मृगादि छह मास के अन्दर मर जाय, तो उनके मरण मे वह प्रहार निमित्त माना जाता है। अतः उस पुरुष को प्राणातिपातिकी तक पाँचों क्रियाएं लगती है। यदि वह मृगादि छह मास के बाद मरता है, तो उसके मरण मे वह प्रहार निमित्त नही माना जाता है, इसलिए उसको प्राणातिपातिकी क्रिया नही लगती है, किन्तु पारितापनिकी तक चार क्रियाए ही लगती है। यह व्यवहारनय से कथन किया गया है, अन्यथा उस प्रहार के निमित्त से जब कभी भी मरण हो, तो उसे पाचो क्रियाएँ लगती है।

२७२ प्रश्न-पुरिसे णं भंते! पुरिसं सत्तीए समभिधंसेज्जा, सयपाणिणा वा, से असिणा सीसं छिंदेज्जा तओ णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

६७२ उत्तर-गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तं पुरिसं सत्तीए समभिधंसेइ, सयपाणिणा वा, से असिणा सीसं छिंदइ, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, जाव-पाणाइवायकिरियाए-पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। आसण्णवहएण य अणवकंखणवत्तीए णं पुरिसवेरेणं पुट्ठे।

विशेष शब्दों के अर्थ-सत्तीए-शक्ति से=भाले से, सयपाणिणा-अपने हाथ से, असिणा -तलवार से।

२७२ प्रश्न-हे भगवन् ! कोई पुरुष, किसी पुरुष को बरछी से मारे अथवा अपने हाथ से तलवार द्वारा उस पुरुष का मस्तक काट डाले, तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है ?

२७२ उत्तर-हे गौतम ! जब वह पुरुष, उसे बरछी द्वारा मारता है अथवा अपने हाथ से तलवार द्वारा उस पुरुष का मस्तक काटता है, तब वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी यावत् प्राणातिपातिकी, इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है और आसन्नवधक एवं दूसरे के प्राणों की परवाह न करने वाला वह पुरुष, पुरुष वैर से स्पृष्ट होता है।

विवेचन-बरछी से मारने वाले एवं तलवार से मस्तक काटने वाले पुरुष को पांच क्रियाएं लगती हैं और वह पुरुष वैर से स्पृष्ट होता है और वह आसन्नवधक होता है अर्थात् उस वैर के कारण वह उसी पुरुष द्वारा अथवा दूसरे द्वारा उसी जन्म में अथवा जन्मान्तर में मारा जाता है। जैसा कि कहा है-

"वह-मारण-अब्भक्खाणदाण-परधण-विलोवणाइं ।
सव्वजहण्णो उदयो, दसगुणिओ एक्कसि कयाणं" ॥

अर्थात्-वध, मारण, अभ्याख्यान (कूडा आल देना, झूठा दोषारोपण करना), और परधन चुराना, एक बार किये हुए इन अपकृत्यों का कम से कम दस गुणा उदय होता है।

हार जीत का कारण

२७३ प्रश्न-दो भंते ! पुरिसा सरिसया, सरित्तया, सरिव्वया, सरिसभंड-मत्तोवगरणा अण्णमण्णेणं सद्धिं संगामं संगामेंति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणइ, एगे पुरिसे पराइज्जइ; से कहमेयं भंते ! एवं ?

२७३ उत्तर-गोयमा ! एवं वुच्चइ-सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ ।

२७४ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-पराइज्जइ ?

२७४ उत्तर-गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं णो बद्धाइं, णो पुट्ठाइं, जाव-णो अभिसमण्णागयाइं, णो उदिण्णाइं, उवसंताइं भवंति; से णं पराइणइ। जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं, जाव-उदिण्णाइं, णो उवसंताइं भवंति; से णं पुरिसे पराइज्जइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'सविरिए पराइणइ, अविरिए पराइज्जइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-सरिसया-एक सरीखे, सरित्तया-एक समान त्वचा=चमड़ी वाले, सरिव्वया-एक समान उम्र वाले, सरिसभंडमत्तोवगरणा-एक समान उपकरण=शस्त्र वाले, अण्णमण्णेणं-एक दूसरे के साथ=परस्पर, संगामं-संग्राम, पराइणइ-जीतता है, पराइज्जइ-हारता है सवीरिए-सवीर्य, अवीरिए-अवीर्य ।

भावार्थ-२७३ प्रश्न-हे भगवन् ! एक सरीखे, सरीखी चमड़ी वाले, सरीखी उम्र वाले, सरीखे उपकरण (शस्त्र) आदि वाले कोई दो पुरुष, आपस में एक दूसरे के साथ संग्राम करें, तो उनमें से एक पुरुष जीतता है और एक पुरुष हारता है। हे भगवन् ! ऐसा क्यों होता है ?

२७३ उत्तर-हे गौतम ! जो पुरुष सवीर्य (वीर्य वाला) होता है वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है वह हारता है।

२७४ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् वीर्यहीन हारता है ?

२७४ उत्तर-हे गौतम ! जिसने वीर्य व्याघातक कर्म नहीं बांधे है, नहीं स्पर्श किये हे यावत् नहीं प्राप्त किये हैं और उसके वे कर्म उदय में नहीं आये हैं, परन्तु उपशान्त हैं, वह पुरुष जीतता है। जिसने वीर्य व्याघातक कर्म बांधे हैं, स्पर्श किये हैं यावत् उसके वे कर्म उदय में आये हे परन्तु उपशान्त नहीं है, वह पुरुष पराजित होता है। इसलिए हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा है कि वीर्य वाला पुरुष जीतता है और वीर्यहीन पुरुष हारता है।

विवेचन-समान त्वचा वाले, समान उम्र वाले और समान शस्त्रादि वाले दो पुरुष लड़ें, तो उनमें से निर्वीर्य (वीर्य व्याघातक कर्म वाला) पुरुष हारता है और सवीर्य (वीर्य व्याघातक कर्म रहित) पुरुष जीतता है।

वीर्य विचार

२७५ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं सवीरिया, अवीरिया ?

२७५ उत्तर-गोयमा ! सवीरिया वि, अवीरिया वि।

२७६ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२७६ उत्तर-गोयमा ! जीवा दुविहा पन्नत्ता। तं जहा:-

संसारसमावण्णगा य, असंसारसमावण्णगा य; तत्थ णं जे ते असं-सारसमावण्णगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अवीरिया । तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पन्नत्ता । तं जहाः-सेलेसिपडिवण्णगा य, असेलेसिपडिवण्णगा य; तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरियेणं सवीरिया, करणवीरियेणं अवीरिया । तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णया ते णं लद्धिवीरियेणं सवीरिया, करणवीरियेणं सवीरिया वि, अवीरिया । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'जीवा दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सवीरिया वि, अवीरिया वि' ।

२७७ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं सवीरिया, अवीरिया ?

२७७ उत्तर-गोयमा ! णेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करण-वीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि ।

२७८ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२७८ उत्तर-गोयमा ! जेसि णं णेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे; ते णं णेरइया लद्धिवीरिएणं वि सवीरिया, करणवीरिएण वि सवीरिया । जेसि णं णेरइयाणं णत्थि उट्ठाणे, जाव-परक्कमे; ते णं णेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करण-वीरिएणं अवीरिया । से तेणट्ठेणं० ।

२७९-जहा णेरइया, एवं जाव-पंचिंदियतिरिक्खजोणिया ।

मणूसा जहा ओहिया जीवा। णवरं-सिद्धवज्जा भाणियव्वा। वाण-मंतर-जोइस-वेमाणिया जहा णेरइया।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव-विहरइ।

अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो।

विशेष शब्दों के अर्थ-सवीरिया-सवीर्य, अवीरिया-अवीर्य, लद्धिवीरियेणं-लब्धि वीर्य से, करणवीरियेणं-करण वीर्य से।

भावार्थ-२७५ प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीव, सवीर्य (वीर्य वाले) है? या अवीर्य (वीर्य रहित) है?

२७५ उत्तर-हे गौतम! जीव सवीर्य भी है और अवीर्य भी है।

२७६ प्रश्न-हे भगवन्! इसका क्या कारण है?

२७६ उत्तर-हे गौतम! जीव दो प्रकार के हैं-संसारसमापन्नक (संसारी) और असंसारसमापन्नक (सिद्ध)। इनमें जो असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध जीव हैं, वे अवीर्य (वीर्य रहित) हैं (जो जीव संसारसमापन्नक हैं, वे दो प्रकार के हैं-शैलेशी-प्रतिपन्न और अशैलेशी-प्रतिपन्न। इनमें जो शैलेशी-प्रतिपन्न हैं, वे लब्धि-वीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं। जो अशैलेशी-प्रतिपन्न हैं, वे लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं, किन्तु करणवीर्य से सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। इसलिए हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि-जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

२७७ प्रश्न-हे भगवन्! क्या नारकी जीव, सवीर्य हैं या अवीर्य हैं?

२७७ उत्तर-हे गौतम! नारकी जीव, लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं और करण-वीर्य से सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

२७८ प्रश्न-हे भगवन्! इसका क्या कारण है?

२७८ उत्तर-हे गौतम! जिन नारकियों में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम है, वे नारकी जीव, लब्धिवीर्य और करणवीर्य से भी सवीर्य

हैं और जो नारकी जीव, उत्थान कर्म बल वीर्य, पुरुषकार पराक्रम से रहित हैं, वे लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं और करणवीर्य से अवीर्य हैं। इसलिए हे गौतम! इस कारण से पूर्वोक्त कथन किया गया है।

२७९-जिस प्रकार नारकी जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि तक के जीवों के लिए समझ लेना चाहिए। मनुष्यों के विषय में सामान्य जीवों के समान समझना चाहिए, विशेषता यह है कि सिद्धों को छोड़ देना चाहिए। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का कथन नारकी जीवों के समान समझना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-एक प्रकार का आत्मबल 'वीर्य' कहलाता है। जब वह आत्मबल किसी प्रकार की क्रिया नहीं करता, तब वह लब्धिवीर्य कहलाता है और जब वह क्रिया में संलग्न होता है तब 'करण वीर्य' कहलाता है।

जीवो के दो भेद हैं-सिद्ध और ससारी। सिद्ध जीव अवीर्य है, क्योंकि वे कृतकार्य हो चुके हैं, उन्हे कोई भी कार्य करना अवशेष नही रहा है। संसारी जीवो मे जो शैलेशी प्रतिपन्न हैं, वे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली हैं, उनकी स्थिति पांच ह्रस्व लघु अक्षर उच्चारण करने जितनी है, वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं, किन्तु करणवीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं। अशैलेशी प्रतिपन्न जीव लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य है और करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

नारकी जीव लब्धिवीर्य और करणवीर्य दोनो की अपेक्षा सवीर्य हैं, किन्तु किसी में करणवीर्य कभी होता है और कभी नही भी होता है।

जिस प्रकार नारकी जीवो का कथन किया है उसी प्रकार मनुष्यो को छोड़ कर शेष सभी जीवो का कथन करना चाहिए। मनुष्यों के विषय में सामान्य जीवो के समान समझना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि सिद्ध जीवों को छोड़ देना चाहिए। क्योंकि औधिक (सामान्य) जीवों में तो सिद्ध सम्मिलित हैं, किन्तु मनुष्य में सिद्ध सम्मिलित नही हैं।

॥ प्रथम शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १ उद्देशक ६

जीवादि का गुरुत्व लघुत्व

२८० प्रश्न–कहं णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति ?

२८० उत्तर–गोयमा ! पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं,परिग्गहेणं, कोह-माण-माया-लोभ-पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न-अरतिरति-परपरिवाय-मायामोस- मिच्छादंसण-सल्लेणं; एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति ।

२८१ प्रश्न–कहं णं भंते ! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति ?

२८१ उत्तर–गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं, जाव–मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति ।

२८२–एवं संसारं आउलीकरेंति, एवं परित्तीकरेंति, एवं दीहीकरेंति, एवं हस्सीकरेंति, एवं अणुपरियट्टंति, एवं वीइवयंति । पसत्था चत्तारि । अप्पसत्था चत्तारि ।

विशेष शब्दों के अर्थ–गरुयत्तं–गुरुत्व=भारीपन, लहुयत्तं–लघुत्व=हलकापन, हव्वं–शीघ्र, आउलीकरेंति–संसार को बढ़ाते हैं, परित्तीकरेंति–संसार को परित्त=परिमित करते हैं, दीहीकरेंति–ससार को दीर्घ=लम्बे काल का करते हैं, हस्सीकरेति–ह्रस्व=अल्पकाल का करते हैं, अणुपरियट्टंति–ससार में बार बार परिभ्रमण करते हैं, वीइवयंति–ससार को उल्लघन कर जाते हैं ।

भावार्थ-२८० प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, किस प्रकार गुरुत्व-भारीपन को प्राप्त होते हैं ?

२८० उत्तर-हे गौतम ! प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्तादान से, मैथुन से, परिग्रह से, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, प्रेम (राग) से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य (चुगली) से, अरतिरति से, परपरिवाद से, मायामृषावाद से और मिथ्यादर्शन शल्य से, इन अठारह पापों का सेवन करने से जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं।

२८१ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, किस प्रकार लघुत्व को प्राप्त होते हैं ?

२८१ उत्तर-हे गौतम ! प्राणातिपात के त्याग से यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य के त्याग से जीव शीघ्र लघुत्व को प्राप्त होते हैं।

२८२-इस प्रकार जीव प्राणातिपात आदि पापों का सेवन करनें से संसार को बढ़ाते हैं, लम्बे काल का करते हैं, और बारबार भव भ्रमण करते हैं तथा प्राणातिपात आदि पापों का त्याग करनें से जीव संसार को घटाते हैं, अल्प-कालीन करते हैं और संसार लांघ जाते हैं। इनमें से चार प्रशस्त हैं और चार अप्रशस्त हैं।

विवेचन-आठवें उद्देशक के अन्त में वीर्य का कथन किया है। वीर्य से जीव गुरुत्व आदि को प्राप्त करते है तथा प्रथम शतक के आरम्भ मे जो सग्रह गाथा आई उसमे 'गरुए' शब्द दिया है। इसलिए इस नवमे उद्देशक में जीवो के 'गुरुत्व' आदि का विचार किया जाता है।

गुरुत्व अर्थात् भारीपन। नीच गति में जाने योग्य अशुभ कर्मों का उपार्जन करना 'गुरुत्व' है। प्राणातिपात आदि अठारह पापों के सेवन से जीव गुरुत्व को प्राप्त होते हैं। वे अठारह पाप इस प्रकार है-१ प्राणातिपात-प्रमादपूर्वक प्राणों का अतिपात करना अर्थात् आत्मा से उन्हें अलग कर देना 'प्राणातिपात'-(हिंसा) कहलाता है। २ मृषावाद-झूठ बोलना। ३ अदत्तादान-चोरी करना। ४ मैथुन-कुशील सेवन करना। ५ परिग्रह-धन धान्यादि बाह्य वस्तुओ पर मूर्च्छा=ममत्व रखना। ६ क्रोध-कोप। ७ मान-अहंकार। ८ माया-कपटाई, कुटिलता। ९ लोभ-लालच, तृष्णा। १० राग-माया और लोभ-जिसमें

अप्रकट रूप से विद्यमान हो ऐसा आसक्ति रूप जीव का परिणाम। ११ द्वेष-क्रोध और मान जिसमे अप्रकट रूप से विद्यमान हो ऐसा अप्रीति रूप जीव का परिणाम। १२ कलह -झगडा, राड़ करना। १३ अभ्याख्यान-झूठा दोषारोपण करना। १४ पैशुन्य-चुगली। १५ पर परिवाद-निन्दा करना। १६ अरतिरति-मोहनीय कर्म के उदय से प्रतिकूल विषयो की प्राप्ति होने पर जो उद्वेग होता है वह 'अरति' है और इसी के उदय से अनुकूल विषयो के प्राप्त होने पर चित्त में जो आनन्द रूप परिणाम उत्पन्न होता है वह 'रति' है। तथा धार्मिक कार्यों में उदासीनता 'अरति' कहलाती है। और धार्मिक कार्यों मे रुचि होना 'रति' कहलाती है। जब जीव को एक विषय मे 'रति' होती है तब दूसरे विषय मे स्वतः 'अरति' हो जाती है। यही कारण है कि एक वस्तु विषयक रति को ही दूसरे विषय की अपेक्षा से अरति कहते है। इसलिए दोनों को एक पाप-स्थानक गिना है। १७ मायामृषा-माया पूर्वक झूठ बोलना। १८ मिथ्यादर्शन शल्य-श्रद्धा का विपरीत होना। इन अठारह पापों का सेवन करने से जीव कर्मो का संचय कर भारी बनता है। और इनका त्याग करने से जीव हलका होता है।

इनमे चार (हलकापन, ससार को घटाना, छोटा करना और उल्लघ जाना) प्रशस्त है। और चार (भारीपन, संसार को बढाना, लम्बा करना और संसार परिभ्रमण करना) अप्रशस्त हैं।

२८३ प्रश्न-सत्तमे णं भंते ! उवासंतरे किं गरुए, लहुए, गरुयलहुए, अगरुयलहुए ?

२८३ उत्तर-गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, णो गरुयलहुए, अगरुलहुए ।

२८४ प्रश्न-सत्तमे णं भंते ! तणुवाए किं गरुए, लहुए, गरुयलहुए, अगरुयलहुए ?

२८४ उत्तर-गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए, णो

अगरुयलहुये। एवं सत्तमे घणवाए, सत्तमे घणोदही, सत्तमा पुढवी, उवासंतराइं सव्वाइं जहा सत्तमे उवासंतरे, जहा तणुवाए, गरुयलहुए एवं घणवाय, घणउदहि, पुढवी, दीवा य, सायरा, वासा।

विशेष शब्दों के अर्थ-उवासंतरे-अवकाशान्तर, तणुवाए-तनुवात, घणवाए-घनवात, घणोदही-घनोदधि, पुढवी-पृथ्वी, दीवा-द्वीप, सायरा-सागर, वासा-वर्ष=क्षेत्र।

भावार्थ-२८३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सातवां अवकाशान्तर गुरु है ? या लघु है ? या गुरुलघु है ? या अगुरुलघु है ?

२८३ उत्तर-हे गौतम ! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु नहीं है, किन्तु अगुरुलघु है।

२८४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या सातवां तनुवात गुरु है ? या लघु है ? या गुरुलघु है ? अथवा अगुरुलघु है ?

२८४ उत्तर-हे गौतम ! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु है, अगुरुलघु नहीं है। इसी प्रकार सातवां घनवात, सातवां घनोदधि, और सातवीं पृथ्वी के विषय में भी कहना चाहिए। जैसा सातवें अवकाशान्तर के विषय में कहा है वैसा ही सब अवकाशान्तरों के विषय में जानना चाहिए। तनुवात के विषय में जैसा कहा है उसी प्रकार सभी घनवात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र और क्षेत्रों के विषय में भी जानना चाहिए।

विवेचन-यह लोक चौदह राजू परिमाण है। यह पुरुषाकार है। नीचे की ओर सात नरक पृथ्वियाँ है। पहली पृथ्वी (नरक) के नीचे घनोदधि है, उसके नीचे घनवात है, घनवात के नीचे तनुवात है और तनुवात के नीचे आकाश है। इसी क्रम से सातो नरको के नीचे है। ये आकाश ही सात अवकाशान्तर कहलाते हैं। ये अवकाशान्तर अगुरुलघु हैं, गुरु नही हैं, लघु नही है और गुरुलघु भी नही हैं। तनुवात गुरुलघु हैं। तनुवात के समान ही घनवात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर और क्षेत्र भी गुरुलघु हैं। तात्पर्य यह है कि अवकाशान्तर मे चौथा भंग (अगुरुलघु) पाया जाता है और शेष सब मे तनुवात की तरह तीसरा भग पाया जाता है। क्योकि ये हलके भारी रूप दोनो अवस्था मे हैं।

व्यवहार में भारी वस्तु वह है जो पानी पर रखने से डूब जाती है, जैसे-पत्थर आदि। हलकी वह है जो ऊर्ध्वगामी हो अर्थात् ऊपर की ओर जाय, जैसे-धूँआ। तिरछी जाने वाली वस्तु गुरुलघु कहलाती है, जैसे वायु। जो इधर उधर नहीं जाता है वह अगुरु-लघु है, जैसे-आकाश। निश्चय नय की अपेक्षा कोई भी वस्तु एकान्त भारी या एकान्त हलकी नहीं है। जैसा कि कहा है-

> **णिच्छयओ सव्वगुरुं सव्वलहुं वा ण विज्जए दव्वं ।**
> **ववहारओ उ जुज्जइ बायरखंधेसु ण अण्णेसु ॥१॥**
> **अगुरुलहू चउफासा अरूविदव्वा य होंति णायव्वा ।**
> **सेसाओ अट्ठफासा गुरुलहुया णिच्छयणयस्स ॥२॥**

अर्थात्-निश्चय नय की अपेक्षा से कोई भी द्रव्य एकान्त भारी, या एकान्त हलका नहीं है। व्यवहार नय की अपेक्षा बादर स्कन्धों मे भारीपन या हलकापन होता है, अन्य किसी स्कन्ध मे नहीं।

जो द्रव्य चार स्पर्श वाले या अरूपी होते हैं, वे सब अगुरुलघु होते है और आठ स्पर्श वाले जितने द्रव्य हैं, वे सब गुरुलघु होते है।

वास्तव मे हलकापन और भारीपन, आदि सब सापेक्ष है अर्थात् एक को दूसरे की अपेक्षा रहती है। अपेक्षा से ही हलका और भारी होता है।

२८५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं गरुया जाव-अगरुयलहुया ?

२८५ उत्तर-गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया वि, अगरुयलहुया वि।

२८६ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२८६ उत्तर-गोयमा ! विउव्विय-तेयाइं पडुच्च णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया; णो अगरुयलहुया। जीवं च, कम्मं च पडुच्च णो गरुया, णो लहुया, णो गरुयलहुया, अगरुयलहुया। से

तेणट्ठेणं, एवं जाव-वेमाणिया । णवरं-णाणत्तं जाणियव्वं सरीरेहिं धम्मत्थिकाए, जाव-जीवत्थिकाए चउत्थपएणं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-गरुयलहुया-भारी और हलका, अगरुयलहुया-न तो भारी और न हलका, चतुत्थपएणं-चतुर्थपद=चौथे भेद ।

भावार्थ-२८५ प्रश्न-क्या नारकी जीव गुरु हैं ? या लघु हैं ? या गुरु-लघु हैं ? या अगुरुलघु हैं ?

२८५ उत्तर-हे गौतम ! गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं, किन्तु गुरुलघु हैं और अगुरुलघु भी हैं ।

२८६ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२८६ उत्तर-हे गौतम ! नारकी जीव, वैक्रिय और तैजस् शरीर की अपेक्षा गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं, अगुरुलघु भी नहीं हैं, किन्तु गुरुलघु हैं। नारकी जीव, जीव और कर्म की अपेक्षा गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं, गुरुलघु नहीं हैं, किंतु अगुरुलघु हैं । इसलिए हे गौतम ! पूर्वोक्त कथन किया गया है । इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि शरीरों में भिन्नता है । धर्मास्तिकाय यावत् जीवास्तिकाय चौथे पद से जानना चाहिए अर्थात् इन्हें अगुरुलघु समझना चाहिए ।

विवेचन-अब नैरयिक जीवों का गुरुत्व लघुत्व की अपेक्षा विचार किया जाता है। इसके चार पद हैं-१ गुरुत्व (भारीपन) २ लघुत्व (हलकापन) ३ गुरुलघुत्व (भारी और हलकापन) और ४ अगुरुलघुत्व (न भारी और न हलकापन) नैरयिक जीवों के तीन शरीर होते हैं-वैक्रिय, तैजस और कार्मण । इनमें से वैक्रिय और तैजस् शरीर की अपेक्षा नैरयिक जीव, गुरुलघु हैं, क्योंकि ये दोनों शरीर वैक्रिय और तैजस् वर्गणा से बने हुए हैं और ये दोनों वर्गणाएँ गुरुलघु हैं । जैसा कि कहा है-

'ओरालियवेउव्विय-आहारगतेय गुरुलहुदव्वं' त्ति ।

अर्थात्-औदारिक वर्गणा, वैक्रिय वर्गणा, आहारक वर्गणा और तैजस वर्गणा, ये गुरुलघु हैं ।

जीव और कार्मण शरीर की अपेक्षा नैरयिक जीव अगुरुलघु है, क्योकि जीव अरूपी है, इसलिए अगुरुलघु है। कार्मण-शरीर कार्मण-वर्गणा का बना हुआ है और कार्मण-वर्गणा चौफरसी है, इसलिए कार्मण-शरीर भी अगुरुलघु है। जैसा कि कहा है-

'कम्मगमण भासाई एयाइं अगुरुलहुआइं'

अर्थात्-कार्मण वर्गणा, मनोवर्गणा और भाषावर्गणा (शब्द) ये अगुरुलघु है।

असुरकुमार आदि का वर्णन नैरयिक जीवो की तरह कहना चाहिए। पृथ्वीकाय अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकाय इनके तीन शरीर होते है-औदारिक, तैजस् और कार्मण। वायुकाय के चार शरीर होते है-औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण। विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय) के औदारिक, तैजस् और कार्मण, ये तीन शरीर होते है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो के औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर होते है। इनमें वैक्रिय शरीर किसी किसी को प्राप्त हो सकता है, सबको सदा प्राप्त नही रहता। पञ्चेन्द्रिय मनुष्य के तीन शरीर तो होते ही है, वैक्रिय और आहारक शरीर भी हो सकता है। मनुष्यो को आहारक शरीर भी प्राप्त हो सकता है और लब्धि के निमित्त से वैक्रिय शरीर भी हो सकता है। देवों मे नारकी जीवो के समान वैक्रिय, तैजस् और कार्मण ये तीन शरीर होते है। इस प्रकार शरीरों मे विभिन्नता होने पर भी गुरुलघु के प्रश्न में सब जीव दो ही विभागो मे समा जाते है। क्योकि सिर्फ गुरु या सिर्फ लघु तो कोई वस्तु है ही नही। कार्मण शरीर को छोड़ कर शेष चार शरीरो की अपेक्षा चौवीस दण्डकों के सभी जीव गुरुलघु है और जीव तथा कार्मण शरीर की अपेक्षा सभी जीव अगुरुलघु है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये चारो पदार्थ अगुरुलघु है। ये चारो अरूपी होने से इनमे गुरुता या लघुता नही है। जीव द्रव्य भी यद्यपि स्वरूपत अरूपी है, किन्तु शरीर सहित जीव रूपी है और इसी कारण से उसे गुरुलघु कहा गया है। सिद्ध जीव अशरीरी होने से अरूपी हैं, अतएव अगुरुलघु है।

२८७ प्रश्न-पोग्गलत्थिकाए णं भंते! किं गरुए, लहुए, गरुयलहुए, अगरुयलहुए?

२८७ उत्तर-गोयमा! णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए वि, अगरुयलहुए वि।

२८८ प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२८८ उत्तर-गोयमा ! गरुयलहुयदव्वाइं पडुच्च णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए, णो अगरुयलहुए । अगरुयलहुयदव्वाइं पडुच्च णो गरुए, णो लहुए, णो गरुयलहुए, अगरुयलहुए । समया, कम्माणि य चउत्थपएणं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पोग्गलत्थिकाए-पुद्गलास्तिकाय=वह अजीव तत्त्व जो वर्णादि सहित है ।

२८७ प्रश्न-हे भगवन्! क्या पुद्गलास्तिकाय गुरु है ? या लघु है ? या गुरुलघु है ? या अगुरुलघु है ?

२९७ उत्तर-हे गौतम ! पुद्गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किंतु गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी है ।

२८८ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२८८ उत्तर-हे गौतम ! गुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, अगुरुलघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु है । अगुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु नहीं है, किन्तु अगुरु-लघु है । समयों को और कर्मों को चौथे पद से जानना चाहिए अर्थात् समय और कर्म अगुरुलघु है ।

विवेचन-पुद्गलास्तिकाय न तो सर्वथा गुरु(भारी)है और न सर्वथा लघु(हलका) है । यह गुरुलघु है और अगुरुलघु है । जो पुद्गल आठ स्पर्श वाले स्थूल हैं, वे गुरुलघु (भारी और हलके)है और जो चार स्पर्श वाले सूक्ष्म पुद्गल हैं वे अगुरुलघु(न तो भारी और न हलके) हैं ।

२८९ प्रश्न-कण्हलेस्सा णं भंते ! किं गरुया, जाव-अगरुय-लहुया ?

२८९ उत्तर-गोयमा! णो गरुया, णो लहुया, गयरुलहुया वि, अगरुयलहुया वि।

२९० प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

२९० उत्तर-गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च ततियपएणं, भावलेस्सं पडुच्च चउत्थपएणं, एवं जाव-सुक्कलेस्सा।

विशेष शब्दों के अर्थ-ततियपएणं-तृतीय पद=तीसरे भेद।

२८९ प्रश्न-हे भगवन्! क्या कृष्णलेश्या गुरु है ? या लघु है ? या गुरुलघु है ? या अगुरुलघु है ?

२८९ उत्तर-हे गौतम ! कृष्णलेश्या गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी है।

२९० प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

२९० उत्तर-हे गौतम ! द्रव्य लेश्या की अपेक्षा तीसरे पद से जानना चाहिए अर्थात् द्रव्य लेश्या की अपेक्षा से कृष्णलेश्या गुरुलघु है। भावलेश्या की अपेक्षा से चौथे पद से जानना चाहिए अर्थात् भावलेश्या की अपेक्षा कृष्णलेश्या अगुरुलघु है। इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक जानना चाहिए।

विवेचन-"लिश्यते श्लिश्यते आत्मा कर्मणा सह अनया सा लेश्या" अर्थात् जिससे आत्मा कर्मों से लिप्त होता है उसको लेश्या कहते हैं। लेश्या के मूल भेद दो है-द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। द्रव्य लेश्या गुरुलघु है और भाव लेश्या अगुरुलघु है।

२९१-दिट्ठी-दंसण-णाण-ऽण्णाण-सन्नाओ चउत्थपदेणं णेयव्वाओ। हेट्ठिल्ला चत्तारि सरीरा णेयव्वा तइएणं पदेणं। कम्मया चउत्थएणं पदेणं। मणजोगो, वइजोगो चउत्थएणं पदेणं; कायजोगो तइएणं पदेणं। सागारोवओगो, अणागारोवओगो चउत्थपदेणं।

सव्वदव्वा, सव्वपएसा, सव्वपज्जवा जहा पोग्गलत्थिकाओ। तीयद्धा; अणागयद्धा, सव्वद्धा चउत्थेणं पदेणं।

विशेष शब्दों के अर्थ-तीयद्धा-अतीतकाल, अणागयद्धा-अनागतकाल, सव्वद्धा-सर्वकाल।

२९१-दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान और संज्ञा को चौथे पद से (अगुरुलघु) जानना चाहिए। औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् इन चार शरीरों को तीसरे पद से (गुरुलघु) जानना चाहिए। कर्मण शरीर अगुरुलघु है। मनयोग और वचन योग चतुर्थपद (अगुरुलघु) है। काययोग तृतीयपद (गुरुलघु) है। साकारोपयोग और अनाकारोपयोग चतुर्थपद (अगुरुलघु) है। सर्व द्रव्य, सर्व प्रदेश और सर्व पर्याय, पुद्गलास्तिकाय के समान समझना चाहिए। अतीत काल, अनागत (भविष्य) काल और सर्वकाल चौथे पद से अर्थात् अगुरुलघु जानना चाहिए।

विवेचन-तीन दृष्टि, चार दर्शन, पांच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार संज्ञा, ये सब अगुरुलघु है। द्रव्य, प्रदेश और पर्याय का कथन पुद्गलास्तिकाय के समान कहना चाहिए। अर्थात् उन्हे गुरुलघु और अगुरुलघु कहना चाहिए। जो द्रव्य, सूक्ष्म (चतु.स्पर्शी) है और जो अमूर्त्त है, वे अगुरुलघु है। जो द्रव्य बादर हैं, वे गुरुलघु है। प्रदेश और पर्याय तो द्रव्य के ही होते हैं। इसलिए उनका कथन द्रव्य के समान है।

तात्पर्य यह है कि अमूर्त्त और सूक्ष्म चतुःस्पर्शी पुद्गल अगुरुलघु है। इनमें चौथा भग पाया जाता है। इनके सिवाय शेष समस्त पदार्थ गुरुलघु हैं। इनमें तीसरा भग पाया जाता है। पहला और दूसरा भग शून्य है अर्थात् ये दोनो भंग किसी भी पदार्थ में नही पाये जाते हैं।

निर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त

२९२ प्रश्न-से णूणं भंते ! लाघवियं, अप्पिच्छा, अमुच्छा, अगेही, अपडिबद्धया समणाणं णिग्गंथाणं पसत्थं ?

२९२ उत्तर-हंता, गोयमा ! लाघवियं, जाव-पसत्थं ।

२९३ प्रश्न-से णूणं भंते ! अकोहत्तं, अमाणत्तं, अमायत्तं, अलोभत्तं समणाणं णिग्गंथाणं पसत्थं ?

२९३ उत्तर-हंता, गोयमा ! अकोहत्तं, अमाणत्तं; जाव-पसत्थं ।

२९४ प्रश्न-से णूणं भंते ! कंखपदोसे णं खीणे समणे णिग्गंथे अंतकरे भवति ? अंतिमसरीरिए वा ? बहुमोहे वि य णं पुव्विं विहरित्ता, अह पच्छा संवुडे कालं करेइ, तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, जाव-अंतं करेइ ?

२९४ उत्तर-हंता, गोयमा ! कंखपदोसे खीणे, जाव-अंतं करेइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-लाघवियं-लाघव, अप्पिच्छा-अल्प इच्छा, अमुच्छा-अमूर्च्छा, अगेही-अगृद्धि-अनासक्ति, अपडिबद्धया-अप्रतिबद्धता, अकोहत्तं-क्रोधरहितता, अमाणत्तं-अमानत्व-मानरहितता, अमायत्तं-मायारहितता, अलोभत्तं-अलोभत्व-लोभरहितता, कंख-पदोसे-कांक्षाप्रद्वेष, संवुडे-संवृत=संवरवाला ।

भावार्थ-२९२ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या लाघव, अल्पइच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता, ये श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं ?

२९२ उत्तर-हाँ, गौतम ! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं ।

२९३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्रोधरहितता, मानरहितता, मायारहितता और निर्लोभता, ये सब क्या श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं ?

२९३ उत्तर-हाँ, गौतम ! क्रोध रहितता यावत् निर्लोभता, ये सब श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं ।

२९४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कांक्षाप्रदोष क्षीण होने पर श्रमण निर्ग्रन्थ, अन्तकर और अन्तिम शरीरी होता है ? अथवा पूर्व की अवस्था में बहुत मोह वाला होकर विहार करे और फिर संवर वाला होकर काल करे, तो क्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

२९४ उत्तर-हाँ, गौतम ! कांक्षाप्रदोष नष्ट हो जाने पर यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ।

विवेचन-शास्त्र मर्यादा से अधिक उपधि न रखना तथा उसमे भी कमी करना 'लाघव' है । आहारादि मे अल्प इच्छा रखना 'अल्पेच्छा' है । अपने पास रही हुई उपधि मे भी ममत्व न रखना 'अमूर्च्छा' है । आसक्ति का अभाव अर्थात् अनासक्ति को 'अगृद्धि' कहते है । स्नेह और राग के बन्धन को काट डालना 'अप्रतिबद्धता' है। ये पांचों बाते श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए प्रशस्त हैं । इन पांचो के साथ क्रोध, मान, माया और लोभ के अभाव का अविनाभाव सम्बन्ध है । इन चारो कषायो का अभाव भी श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए प्रशस्त है ।

वीतराग प्ररूपित धर्म से भिन्न दूसरे मत के आग्रह एवं आसक्ति को 'कांक्षा प्रदोष' कहते हैं । अथवा कांक्षा का अर्थ है-राग और प्रदोष का अर्थ है-प्रद्वेष । इसीलिए 'कांक्षा-प्रदोष' का दूसरा नाम 'कांक्षाप्रद्वेष' भी है । जिस किसी बात को पकड़ रखा है, उसके विरुद्ध बात पर द्वेष होना 'कांक्षाप्रद्वेष' है । कांक्षाप्रद्वेष का सर्वथा विनाश होने पर जीव का मोक्ष हो जाता है ।

अन्य-मत और आयुष्य का बन्ध

२९५ प्रश्न-अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति-एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति । तं जहाः-इहभवियाउयं च, पर-भवियाउयं च; जं समयं इहभवियाउयं पकरेति, तं समयं परभवियाउयं पकरेति; जं समयं परभवियाउयं पकरेति, तं समयं इहभवियाउयं

पकरेइ; इहभवियाउयस्स पकरणयाए परभवियाउयं पकरेइ, परभवियाउयस्स पकरणयाए इहभवियाउं पकरेइ; एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति। तं जहाः-इहभवियाउयं च, परभवियाउयं च। से कहमेयं भंते! एवं?

२९५ उत्तर-गोयमा! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति, जाव-परभवियाउयं च। जे ते एव माहंसु मिच्छा ते एवमाहिंसु। अहं पुण गोयमा! एवं आइक्खामि, जाव-परूवेमि। एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेइ, तं जहाः-इहभवियाउयं वा, परभवियाउया वा; जं समयं इहभवियाउयं पकरेइ, णो तं समयं परभवियाउयं पकरेइ; जं समयं परभवियाउयं पकरेइ; णो तं समयं इहभवियाउयं पकरेइ; इहभवियाउयस्स पकरणयाए णो परभवियाउयं पकरेइ, परभवियाउयस्स पकरणयाए णो इहभवियाउयं पकरेइ; एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेइ। तं जहाः-इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा, सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे जाव-विहरति।

विशेष शब्दों के अर्थ-आहंसु-कहा है,आइक्खामि-कहता हूँ।

भावार्थ-२९५ प्रश्न-हे भगवन्! अन्य तीर्थिक इस प्रकार कहते हैं,इस प्रकार विशेष रूप से कहते हैं, इस प्रकार जतलाते हैं और इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि एक जीव, एक समय में दो आयुष्य करता है। वह इस प्रकार कि-इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य। जिस समय इस भव का आयुष्य

करता है, उस समय परभव का आयुष्य करता है और जिस समय परभव का आयुष्य करता है उस समय इस भव का आयुष्य करता है। इस भव का आयुष्य करने से परभव का आयुष्य करता है और परभव का आयुष्य करने से इस भव का आयुष्य करता है। इस प्रकार एक जीव एक समय में दो आयुष्य करता है-इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य। हे भगवन्! क्या यह इसी प्रकार है?

२६५ उत्तर-हे गौतम! अन्य तीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् इस भव का आयुष्य और परभव का आयुष्य। उन्होंने जो ऐसा कहा है वह मिथ्या कहा है। हे गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि एक जीव एक समय में एक आयुष्य करता है और वह इस भव का आयुष्य करता है अथवा परभव का आयुष्य करता है। जिस समय इस भव का आयुष्य करता है, उस समय परभव का आयुष्य नहीं करता है और जिस समय परभव का आयुष्य करता है उस समयइस भव का आयुष्य नहीं करता। इस भव का आयुष्य करने से परभव का आयुष्य नहीं करता और परभव का आयुष्य करने से इस भव का आयुष्य नहीं करता। इस प्रकार एक जीव, एक समय में एक आयुष्य करता है-इस भव का आयुष्य, अथवा परभव का आयुष्य।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर भगवान् गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन-कांक्षाप्रदोष वाले को वस्तु मे विपरीतता मालूम होती है। वे विपरीत बात की प्ररूपणा करते हैं। इसी बात को बतलाने के लिए गौतम स्वामी ने पूछा है कि-हे भगवन्! अन्ययूथिक यह बात कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि-एक जीव, एक समय मे दो आयुष्य करता है। इस भव का आयुष्य भी करता है और परभव का आयुष्य भी करता है। जिस समय इस भव का आयुष्य बांधता है, उसी समय परभव का आयुष्य भी बाधता है। और जिस समय परभव का आयुष्य बांधता है, उसी समय इस भव का आयुष्य भी बाधता है। परभव का आयुष्य बाधता हुआ इस भव का आयुष्य बाधता है और इस भव का आयुष्य बाधता हुआ परभव का आयुष्य भी बाधता है। हे भगवन्! क्या अन्य

मतावलम्बियो का यह कथन ठीक है ?

भगवान् ने फरमाया-हे गौतम ! एक समय में एक जीव के दो आयुष्य बांधने की बात गलत है, क्योकि एक समय में एक जीव, एक ही आयुष्य का बन्ध करता है।

यदि यह कहा जाय कि जैसे-जीव, सम्यक्त्व और ज्ञान दोनों पर्यायों का एक साथ अनुभव करता है, उसी प्रकार एक समय मे दो आयु बांधे, तो क्या बाधा है ?

इसका समाधान यह है कि-जिस प्रकार सिद्धत्व और संसारित्व, ये दोनो पर्याये परस्पर विरुद्ध है, जिस समय जीव, सिद्धत्व पर्याय का अनुभव करता है उसी समय वह जीव संसारित्व पर्याय का अनुभव नही कर सकता और जिस समय संसारित्व पर्याय का अनुभव करता है, उसी समय वह जीव, सिद्धत्व पर्याय का अनुभव नही कर सकता। इसी प्रकार एक जीव, एक समय में दो आयुष्य का बन्ध नही कर सकता।

अन्ययूथिकों के उपर्युक्त कथन का प्राचीन टीकाकार ने तो यह अर्थ किया है कि-जीव, जिस समय इस भव के आयुष्य को वेदता है उसी समय परभव का आयुष्य बांधता है।

यह कथन भी ठीक नही है, क्योकि उत्पन्न होते ही जीव परभव का आयुष्य बाध लेता हो, तो दान धर्मादि सब व्यर्थ हो जायेंगे। इसलिए अन्ययूथिकों का यह कथन ठीक नही है, टीकाकारों ने जो अन्ययूथिकों के मत का खण्डन किया है, वह बन्ध काल को छोड़कर अन्य समय की अपेक्षा से किया है। अन्यथा आयुष्य बन्ध के समय जीव इस भव के आयुष्य को वेदता है और परभव के आयुष्य को बांधता है।

गौतम स्वामी 'सेवं भंते, सेवं भंते' अर्थात् 'हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह यथार्थ है। ऐसा कह कर अपनी आत्मा को तप संयम से भावित करते हुए विचरने लगे।

स्थविरों से कालास्यवेषि के प्रश्नोत्तर

२९६-ते णं काले णं, ते णं समए णं पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते एवं वयासी:-थेरा सामाइयं न याणंति;

थेरा सामाइयस्स अट्ठं ण याणंति; थेरा पच्चक्खाणं ण याणंति, थेरा पच्चक्खाणस्स अट्ठं न याणंति; थेरा संजमं न याणंति, थेरा संजमस्स अट्ठं न याणंति; थेरा संवरं ण याणंति, थेरा संवरस्स अट्ठं न याणंति; थेरा विवेगं न याणंति, थेरा विवेगस्स अट्ठं ण याणंति; थेरा विउस्सग्गं ण याणंति, थेरा विउस्सग्गस्स अट्ठं न याणंति। तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासीः- जाणामो णं अज्जो ! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठं, जाव-जाणामो णं अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठं।

विशेष शब्दों के अर्थ-पासावच्चिज्जे-पार्श्वापत्य=पार्श्वनाथ भगवान् के सन्तानिये, विउस्सग्गस्स-व्युत्सर्ग=काया के प्रति अनासक्ति याणंति-जानते।

भावार्थ-२९६ प्रश्न-उस काल उस समय में पार्श्वापत्य अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये-शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्र नामक अनगार जहाँ स्थविर भगवान् थे वहाँ गये। वहाँ जाकर उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा कि-हे स्थविरों ! आप सामायिक को नहीं जानते हैं, सामायिक के अर्थ को नहीं जानते हैं। आप प्रत्याख्यान को नहीं जानते हैं, आप प्रत्याख्यान के अर्थ को नहीं जानते हैं। आप संयम को नहीं जानते हैं, आप संयम के अर्थ को नहीं जानते हैं। आप संवर को नहीं जानते हैं, संवर के अर्थ को नहीं जानते हैं। आप विवेक को नहीं जानते हैं, विवेक के अर्थ को नहीं जानते हैं। आप व्युत्सर्ग को नहीं जानते हैं और व्युत्सर्ग के अर्थ को नहीं जानते हैं।

तब स्थविर भगवन्तों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि-हे आर्य ! हम सामायिक को जानते हैं, सामायिक के अर्थ को जानते हैं यावत् हम व्युत्सर्ग को जानते हैं और व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते हैं।

विवेचन-उस काल उस समय में अर्थात् जब भगवान् पार्श्वनाथ मोक्ष प्राप्त कर चुके थे और उनके २५० वर्ष बाद जब भगवान् महावीर का शासन चल रहा था, उस समय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्र अनगार विचर रहे थे। उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षा ली थी। उसी समय भगवान् महावीर के शासन के स्थविर भी विचर रहे थे।

स्थविर के तीन भेद कहे गये है-

१ जाति स्थविर (वय स्थविर)-जिनकी उम्र साठ वर्ष की होगई है।

२ श्रुतस्थविर-स्थानांग सूत्र और समवायांग सूत्र के ज्ञाता।

३ प्रव्रज्या स्थविर (दीक्षा स्थविर-पर्याय स्थविर)-जिनकी दीक्षा बीस वर्ष की होगई है।

कालास्यवेषि पुत्र अनगार ने स्थविर भगवंतो से प्रश्न किये।

२९७ प्रश्न-तते णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे ते थेरे भगवंते एवं वयासीः-जइ णं अज्जो! तुब्भे जाणह सामाइयं, जाणह सामाइयस्स अट्ठं, जाव-जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं। किं भे अज्जो! सामाइए, किं भे अज्जो! सामाइयस्स अट्ठे। जाव-किं भे विउस्सग्गस्स अट्ठे?

२९७ उत्तर-तए णं थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासीः-आया णे अज्जो! सामाइए, आया णे अज्जो! सामाइयस्सअट्ठे, जाव-विउस्सग्गस्स अट्ठे।

२९८ प्रश्न-तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासीः-जइ भे अज्जो! आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे, एवं जाव-आया विउस्सग्गस्स अट्ठे, अवहट्टु कोह माण-माया-



लोभे किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?

२९८ उत्तर-कालासवेसियपुत्त ! संजमट्ठयाए ।

२९९ प्रश्न-से भंते ! किं गरहा संजमे ? अगरहा संजमे ?

२९९ उत्तर-कालासवेसियपुत्त ! गरहा संजमे, णो अगरहा संजमे । गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं बालियं परिण्णाए । एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवचिए भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिए भवइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-अज्जो-हे आर्य, आया-आत्मा, अवहट्टु-छोड़कर, गरहा-निंदा, पविणइ-नष्ट करना, बालियं-बालपन=मिथ्यात्व अविरति, परिण्णाए-ज्ञानपूर्वक जानकर, उवट्ठिए-उपस्थित=स्थापित ।

२९७ प्रश्न-तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा कि-हे आर्यो ! यदि आप सामायिक को और सामायिक के अर्थ को यावत् व्युत्सर्ग और व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते है, तो बतलाइये कि सामायिक क्या है ? सामायिक का अर्थ क्या है ? यावत् व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है ?

२९७ उत्तर-तब स्थविर भगवन्तों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि-हे आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी आत्मा सामायिक का अर्थ है यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है और हमारी आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है ।

२९८ प्रश्न-तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा कि-हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही सामायिक का अर्थ है और इसी प्रकार यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग है एवं आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो आप क्रोध, मान, माया और लोभ का त्याग करके क्रोध

आदि की निन्दा गर्हा किस लिए करते हैं ?

२९८ उत्तर-हे कालास्यवेषिपुत्र ! संयम के लिए हम क्रोध आदि की निन्दा करते हैं।

२९९ प्रश्न-तो हे भगवन् ! क्या गर्हा संयम है ?या अगर्हा संयम है ?

२९९ उत्तर-हे कालास्यवेषिपुत्र ! गर्हा संयम है, अगर्हा संयम नहीं है। गर्हा सब दोषों को दूर करती है। आत्मा सर्व मिथ्यात्व को जान कर गर्हा द्वारा सब दोषों का नाश करती है। इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में पुष्ट होती है और इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है।

विवेचन-कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन श्रुतवृद्ध स्थविरो से पूछा कि-सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम, सवर, विवेक और व्युत्सर्ग को आप जानते है ? और क्या इनके अर्थ को भी आप जानते है ? यदि आप जानते है, तो इनका अर्थ कहिये ।

कालास्यवेषिपुत्र से स्थविरों ने कहा कि-हे मुने ! हम इन छह पदों को और इनके अर्थ को जानते हैं। आत्मा ही सामायिक है और 'आत्मा' ही सामायिक का अर्थ है। इसी प्रकार व्युत्सर्ग पर्यन्त सभी बातो का अर्थ 'आत्मा' ही है। प्रत्याख्यान, संयम, सवर विवेक और व्युत्सर्ग भी आत्मा ही है और इनका अर्थ भी आत्मा ही है।

स्थविर भगवन्तों ने यह निश्चय नय की दृष्टि से उत्तर दिया। व्यवहार नय की अपेक्षा इनका अर्थ इस प्रकार है-शत्रु मित्र पर समभाव रखना 'सामायिक' है। नवीन कर्मों का बन्ध न करना और पुराने कर्मों की निर्जरा कर देना सामायिक का अर्थ-प्रयोजन है। पौरिसी आदि का नियम करना 'प्रत्याख्यान' है और आस्रव आने के मार्गों को रोक देना प्रत्याख्यान का प्रयोजन है। पृथ्वीकाय आदि जीवो की यतना करना, इत्यादि सतरह प्रकार का 'सयम' है और आस्रव रहित होना संयम का प्रयोजन है। पांच इन्द्रियाँ और मन को अपने वश मे रखना 'सवर' है और इनकी प्रवृत्ति को रोक कर आस्रव रहित होना संवर का प्रयोजन है। विशिष्ट बोध-ज्ञान को 'विवेक' कहते है। विशेष बोध द्वारा हेय, ज्ञेय और उपादेय पदार्थो को जान कर हेय(छोड़ने लायक)पदार्थो को छोड़ना और उपादेय (ग्रहण करने लायक) पदार्थो का ग्रहण करना, यह विवेक का प्रयोजन है। शरीर के हलन चलन को बन्द करके उस पर से ममत्व हटा लेना 'व्युत्सर्ग' कहलाता है। इसका दूसरा नाम 'कायोत्सर्ग' है। सभी प्रकार के सग से रहित हो जाना इसका प्रयोजन है।

इसके बाद कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने पूछा कि--हे स्थविर भगवन्तो ! जैसा कि आप फरमाते है कि आत्मा ही सामायिक यावत् व्युत्सर्ग है, तो फिर आप क्रोधादिक का त्याग करके क्रोधादि की निन्दा किस लियें करते हैं ? क्योकि सामायिक आदि मे क्रोधादि पापो का त्याग हो जाता है, फिर उनकी निन्दा कैसे की जा सकती है ?

स्थविर भगवन्तो ने फरमाया कि--हे कालास्यवेषिपुत्र अनगार ! हम लोग संयम के लिए पाप की निन्दा करते है, क्योकि पाप की निन्दा करने से संयम होता है। इसी प्रकार गर्हा भी संयम मे हेतु रूप होने से तथा कर्म बन्धन में कारण रूप न होने से गर्हा सयम है। इतना ही नहीं बल्कि मिथ्यात्व अविरति आदि को विवेक पूर्वक जान कर छोड़ने से गर्हा, राग द्वेष आदि समस्त पापो का विनाश करने वाली है। इस तरह आत्मा सयम मे स्थापित होती है एव आत्म रूप संयम प्राप्त होता है। संयम के विषय मे आत्मा पुष्ट होती है एवं आत्मरूप संयम पुष्ट होता है।

३००--एत्थ णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदइ, णमंसइ, णमंसित्ता एवं वयासीः--एएसि णं भंते ! पयाणं पुव्विं अन्नाणयाए, असवणयाए, अबोहियाए, अणभिगमेणं, अदिट्ठाणं, असुयाणं, अस्सुयाणं, अविन्नायाणं, अव्वोगडाणं, अवोच्छिन्नाणं, अणिज्जूढाणं, अणुवधारियाणं एयमट्ठं नो सद्दहिए। णो पत्तइए, णो रोइए, इयाणिं भंते ! एएसिं पयाणं जाणणयाए, सवणयाए, बोहिए, अभिगमेणं, दिट्ठाणं, सुयाणं, सुयाणं, विन्नायाणं, वोगडाणं, वोच्छिन्नाणं, णिज्जूढाणं, उवधारियाणं, एयमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, एवमेयं से जहेयं तुब्भे वदह। तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासीः--सद्दहाहि अज्जो ! पत्तियाही अज्जो ! रोएहि अज्जो ! से जहेयं अम्हे वदामो। तए

णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, नमं-
सित्ता एवं वयासीः-इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ
धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विह-
रित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ।

विशेष शब्दो के अर्थ-संबुद्धे-समझे, पयाणं-पदों को, अणभिगमेणं-विस्तार पूर्वक नही जानने से, अदिट्ठाणं-नही देखने से, अस्सुआणं-नहीं सुनने से, अन्नाणयाए-नही जानने से, अविन्नाणयाए-विशेष नही जानने से, अव्वोगडाणं-अव्याकृत-अस्पष्ट, अवोच्छिण्णाणं-अनिर्णीत होने से, अणिज्जुढाणं-उघ्दृत नही किये हुए, उवधारियाणं-अवधारित, पत्तइए-प्रीति करना, रोइए-रुचि करना, पत्तियामि-प्रीति-प्रीतीति करता हूं, रोएमि-रुचि करता हूं, चाउज्जामाओ-चारयामरूप, उवसंपज्जित्ताणं-प्राप्त करके, स्वीकार करके, अहासुहं-यथासुख-जिसमें सुख हो वैसा, पडिबंधं-व्याघात-विलंब ।

३००-स्थविर भगवन्तों का उत्तर सुन कर वे कालास्यवेषिपुत्र अनगार बोध को प्राप्त हुए और तब उन्होंने स्थविर भगवन्तों को वन्दना नमस्कार किया । फिर कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने इस प्रकार कहा कि-हे भगवन् ! इन पूर्वोक्त पदों को न जानने से, पहले सुने हुए न होने से, बोध न होने से, अभिगम (ज्ञान) न होने से, दृष्ट न होने से, विचार न होने से, सुने हुए न होने से, विशेष रूप से न जानने से, कहे हुए न होने से, अनिर्णीत होने से, उद्धृत न होने से और ये पद धारण किये हुए न होने से, इस अर्थ में श्रद्धा नहीं थी, प्रतीति नहीं थी, रुचि नहीं थी, किन्तु हे भगवन् ! अब इनको जान लेने से, सुन लेने से, बोध होने से, अभिगम होने से, दृष्ट होने से, चिन्तित होने से, श्रुत होने से, विशेष जान लेने से, कथित होने से, निर्णीत होने से, उद्धृत होने से और इन पदों का अवधारण करने से, इस अर्थ में मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ । हे भगवन् ! आप जो यह कहते हैं वह यथार्थ है, वह इसी प्रकार है ।

तब उन स्थविर भगवन्तों ने कालास्यवेषिपुत्र अनगार से इस प्रकार

कहा कि-हे आर्य ! हम जैसा कहते हैं वैसी ही श्रद्धा रखो, प्रतीति रखो, रुचि रखो।

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों को वन्दना की, नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! मैंने पहले चार महाव्रत वाला धर्म स्वीकार कर रखा है, अब मैं आपके पास प्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत वाला धर्म स्वीकार करके विचरने की इच्छा करता हूँ।

तब स्थविर भगवन्त बोले-हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो, विलम्ब न करो।

विवेचन-स्थविर भगवन्तों के उत्तर से कालास्यवेषिपुत्र अनगार को बोध हो गया। यह विशिष्ट बोध प्राप्त होने से उन्होने स्थविर भगवान् को भक्तिभाव पूर्वक वन्दन नमस्कार किया और निवेदन किया कि-आपने इन पदो का जो अर्थ बतलाया, वह मैंने पहले नही जाना था। यह अर्थ मैने पहले नही सुना था। इसी प्रकार मैंने इन पदों का अर्थ आपसे व्याकरण पूर्वक,स्वपक्ष विपक्ष पूर्वक, उद्धरण पूर्वक और विशेष अर्थ पूर्वक सुना है। मै आपके बताये अर्थो की श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, आपके बताये अर्थो में मेरी रुचि हुई है। आपने कहा वह सत्य है। इसलिए अब मै आपकी आज्ञा में विचरण करना चाहता हूँ। भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में चतुर्याम (चार महाव्रत वाला) धर्म था। अर्थात् सर्वथा प्रकार से प्राणातिपात का त्याग, मृषावाद का त्याग, अदत्तादान का त्याग और बहिद्धादान का त्याग होता था। 'बहिद्धादान' मे मैथुन और परिग्रह का समावेश कर लिया गया है। भगवान् महावीर के शासन मे इसी चतुर्याम को पंचयाम रूप से कहा है अर्थात् मैथुन विरमणव्रत और परिग्रह विरमणव्रत, इस तरह अलग अलग कथन किया है। चतुर्याम धर्म और पचयाम धर्म मे तात्त्विक दृष्टि से कुछ भी अन्तर नही है। संक्षेप और विस्तार का ही भेद है।

कालास्यवेषिपुत्र अनगार की बात सुन कर स्थविर भगवान् ने कहा कि-हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं

सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ । तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे, मुंडभावे, अण्हाणयं, अदंतधुवणयं, अच्छत्तयं, अणोवाहणयं, भूमिसेज्जा, फलहसेज्जा, कट्ठसेज्जा, केसलोओ, बंभचेरवासो, परघरप्पवेसो, लद्धावलद्धी; उच्चावया, गामकंटगा, बावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति । तं अट्ठं आराहेइ, आराहित्ता, चरिमेहिं उस्सास-नीसासेहिं सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिनिव्वुडे, सव्वदुक्खप्पहीणे ।

विशेष शब्दों के अर्थ—सामन्नपरियागं—श्रमण पर्याय, साधुपना, पाउणइ—प्राप्त किया, अणोवाहणयं—उपानह=पगरखी रहित, लद्धावलद्धि—मिले या नही मिले, गामकंटगा—इन्द्रियों के लिए काटे के समान बाधक, अहियासिज्जंति—सहन किया, अण्हाणयं—स्नान नही करना, फलह सेज्जा—पटिये पर सोना, कट्ठसेज्जा—लकड़ी पर सोना, उच्चावया—अनुकूल प्रतिकूल ।

भावार्थ—तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने स्थविर भगवन्तों को वन्दना की, नमस्कार किया और चार महाव्रत धर्म से प्रतिक्रमण सहित पांच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार कर के विचरने लगे ।

इसके बाद कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और जिस प्रयोजन के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान न करना, दतौन न करना, छत्र न रखना, जूते न पहनना, जमीन पर सोना (शयन करना) पाट पर सोना, काष्ठ पर सोना, केश लोच करना, ब्रह्मचर्य पालन करना, भिक्षा के लिए गृहस्थों के घर जाना, लाभ और अलाभ सहना अर्थात् अभीष्ट भिक्षा मिल जाने पर हर्षित न होना और भिक्षा न मिलने पर खेदित न होना, इन्द्रियों के लिए कांटे के समान चुभने वाले कठोर शब्दादि को सहन करना, अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों को सहन करना, इन सब बातों का उन्होंने सम्यक् रूप

से पालन किया, अभीष्ट प्रयोजन का सम्यक् रूप से आराधन किया। अन्तिम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, परिनिवृत्त हुए और सब दुःखों से रहित हुए।

विवेचन-तब कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने स्थविर भगवन्तो को वन्दना नमस्कार करके चतुर्याम के स्थान पर पंचयाम (पाच महाव्रत वाला) सप्रतिक्रमण धर्म स्वीकार किया।

इसके पश्चात् कालास्यवेषिपुत्र अनगार ने बहुत वर्षों तक साधुपन पाला और जिस उद्देश्य के लिए उन्होने संयम स्वीकार किया था उसको पूर्ण किया। अन्तिम श्वासोच्छ्वास द्वारा वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए और सर्व दुःखो से रहित हुए।

अप्रत्याख्यान क्रिया

३०१ प्रश्न-'भंते'! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासीः-से णूणं भंते! सेट्ठियस्स य, तणुयस्स य, किवणस्स य, खत्तियस्स य समं चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ?

३०१ उत्तर-हंता, गोयमा! सेट्ठियस्स य, जाव-अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ।

३०२ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते?

३०२ उत्तर-गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-सेट्ठियस्स य, तणुयस्स य, जाव-कज्जइ।

विशेष शब्दो के अर्थ-सेट्ठियस्स-सेठ का, तणुयस्स-दरिद्री का, किवणस्स-कृपण =कंजूस का, खत्तियस्स-क्षत्रिय का, अपच्चक्खाण किरिया-अप्रत्याख्यान क्रिया, अविरइं-

अविरति को।

भावार्थ-३०१ प्रश्न-'भगवन्' ऐसा कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले-हे भगवन् ! सेठ, दरिद्र, कृपण और क्षत्रिय (राजा) क्या इन सब के अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है ?

३०१ उत्तर-हे गौतम ! हाँ, सेठ यावत् क्षत्रिय इन सब के अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है।

३०२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३०२ उत्तर-हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा ऐसा कहा गया है कि-सेठ, दरिद्र, कृपण और क्षत्रिय इन सब के अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है।

विवेचन-एक समय गौतमस्वामी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि एक तरफ सेठ है, दूसरी तरफ एक दरिद्र है, एक तरफ एक कृपण है, दूसरी तरफ एक राजा है, क्या इन सब को अप्रत्याख्यान की क्रिया एक सरीखी लगती है, या कुछ न्यूनाधिकता है ? इस शंका से प्रेरित होकर उन्होने भगवान् से प्रश्न किया। इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा से अप्रत्याख्यान की क्रिया इन सब को बराबर लगती है। क्योंकि जबतक इच्छा नहीं छूटी, तबतक अव्रत की क्रिया लगती ही है।

आधाकर्म भोगने का फल

३०३ प्रश्न-आहाकम्मं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ, किं पकरेइ, किं चिणाइ, किं उवचिणाइ ?

३०३ उत्तर-गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ, जाव-अणुपरियट्टइ।

३०४ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-अणुपरियट्टइ ?

३०४ उत्तर-गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आयाए धम्मं अइक्कमइ, आयाए धम्मं अइक्कममाणे पुढविकाइयं णावकंखइ, जाव-तसकायं णावकंखइ; जेसिं पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारं आहारेइ ते वि जीवे नावकंखइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-आहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ, जाव-अणुपरियट्टइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-आहाकम्मं-आधाकर्म दोषयुक्त, अइक्कमइ-अतिक्रमण करता है=उल्लंघन करता है, आयाए-आत्मा का, चिणइ-चय करता है=बढ़ाता है, उवचिणइ-उपचय करता है=विशेष बढ़ाता है ।

भावार्थ-३०३ प्रश्न-हे भगवन् ! आधाकर्म दोषयुक्त आहारादि भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ, क्या बांधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ?

३०३ हे गौतम ! आधाकर्म दोष युक्त आहारादि भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ, आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की शिथिल बन्धी हुई कर्म-प्रकृतियों को दृढ़ बन्धन से बन्धी हुई करता है यावत् संसार में बारबार परिभ्रमण करता रहता है ।

३०४ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् वह संसार में बारबार परिभ्रमण करता है ?

३०४ उत्तर-हे गौतम ! आधाकर्म दोषयुक्त अहारादि को भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ, अपने आत्मधर्म का उल्लंघन करता है । अपने आत्मधर्म का उल्लंघन करता हुआ पृथ्वीकाय के जीवों की अपेक्षा (परवाह) नहीं करता

और त्रसकाय के जीवों की चिन्ता (परवाह) नहीं करता और जिन जीवों के शरीरों का वह भोग करता है, उन जीवों की भी चिन्ता नहीं करता। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि आधाकर्म दोषयुक्त आहारादि भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ, आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की शिथिल बांधी हुई प्रकृतियों को मजबूत बांधता है यावत् संसार में बारबार परिभ्रमण करता रहता है।

विवेचन-'आहाकम्मे' अर्थात् 'आधाकर्म' यह जैन सिद्धान्त का पारिभाषिक शब्द है। टीकाकार ने इस शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है-

"आधया साधुप्रणिधानेन यत् सचेतनमचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, चीयते वा गृहादिकम्, व्यूयते वा वस्त्रादिकम्, तद् आधाकर्म।"

अर्थात्-साधु के लिए सचित्त वस्तु को अचित्त की जाय अर्थात् सजीव वस्तु को निर्जीव बनाया जाय, अचित्त वस्तु को पकाया जाय, घर मकान आदि बंधवाये जायँ, वस्त्रादि बुनवाये जायँ, इसे आधाकर्म कहते हैं।

आधाकर्म दोष युक्त केवल आहार ही नहीं होता, किन्तु मकानादि भी होते हैं। जो मकान, साधु के लिये बनवाया जाय, वह आधाकर्म दोष-दूषित कहलाता है। इसी प्रकार वस्त्र, पात्र, पुस्तक, शास्त्र आदि के विषय में भी समझना चाहिए। ये सब मुनि के लिये अकल्पनीय है, अतएव ग्रहण करने-योग्य नहीं हैं।

जो श्रमण निर्ग्रन्थ, आधाकर्म दोष-दूषित आहारादि का सेवन करता है, वह क्या करता है ? इस प्रश्न के उत्तर मे चार क्रिया पद दिये गये हैं-'बंधइ, पकरइ, चिणइ, उवचिणइ' 'बंधइ' पद प्रकृति-बन्ध की अपेक्षा से अथवा स्पृष्ट अवस्था की अपेक्षा से है अर्थात् शिथिल बन्ध से बन्धी हुई कर्म प्रकृतियों को गाढ बन्धन वाली करता है अथवा कर्म प्रकृतियों को स्पृष्ट करता है। "पकरइ" पद 'स्थितिबन्ध' अथवा बद्ध अवस्था की अपेक्षा से है अर्थात् अल्प काल की स्थिति वाली प्रकृतियो को दीर्घ काल की स्थिति वाली करता है अथवा उन प्रकृतियों को 'बद्ध' अवस्था वाली करता है। 'चिणइ' पद 'अनुभाग' बन्ध की अपेक्षा से अथवा 'निधत्त' अवस्था की अपेक्षा से है अर्थात् मन्द रस वाली प्रकृतियो को तीव्र रस वाली करता है अथवा उन्हे 'निधत्त' अवस्था वाली करता है। 'उवचिणइ' पद प्रदेश-बन्ध की अपेक्षा अथवा निकाचित अवस्था की अपेक्षा से है अर्थात् अल्प प्रदेश

वाली प्रकृतियो को बहुत प्रदेश वाली करता है अथवा उन्हें 'निकाचित' अवस्था वाली करता है।

स्पृष्ट, बद्ध, निधत्त और निकाचित इन कर्मबन्ध की चार अवस्थाओं को समझाने के लिए सुइयों का दृष्टान्त दिया गया है। जैसे–एक पर एक सुइयां रखी हुई हो वह सुइयों का पुज है, परन्तु वह जरा-सा धक्का लगते ही बिखर जाता है। इसी प्रकार जो कर्म-वन्ध थोड़ा-सा प्रयत्न करने से ही निर्जीर्ण हो जाता है अर्थात् जो सुइयो के ढेर के समान है, उसे 'स्पृष्ट कर्म बन्ध' कहते हैं।

यदि उस सुइयों के पुञ्ज को किसी धागे से बांध दिया जाय, तो वे धक्का लगने से नही बिखरती, किन्तु किसी तरह की क्रिया विशेष से ही खुल सकती हैं, इसी प्रकार जो कर्म थोड़ी क्रिया विशेष से हट जाते है वे 'बद्ध' अवस्था वाले कहलाते हैं।

जैसे उन सुइयो के पुञ्ज को किसी लोहे के तार से खूब कस कर बांध दिया जाय, तो वे सुइया किसी विशिष्टतर क्रिया से ही खुल सकती है, इसी तरह जो कर्म विशिष्टतर क्रिया से निर्जीर्ण हो सके, वे कर्म 'निधत्त' अवस्था वाले कहलाते हैं।

चौथा 'निकाचित बन्ध' है। जैसे–उस सुइयो के पुञ्ज को गर्म करके घन से ठोक दिया जाय, तो वे सुइयाँ एकमेक हो जाती हैं। फिर उनका बिखरना संभव नही है। फिर तो सुई बनाने की क्रिया करने पर ही वे अलग हो सकती हैं। इसी तरह जो कर्म किसी भी क्रिया से न्यूनाधिक नही होते हैं, किन्तु जिस साता असाता आदि रूप मे बांधे है उसी रूप मे भोगने पर छूटते हैं, उनका बन्ध 'निकाचित बन्ध' कहलाता है। 'उवचिणइ' का अभिप्राय 'निकाचित' कर्म वन्ध से है, अर्थात् पहले जो सामान्य कर्म बांधे हैं उन्हे 'निका-चित' करना 'उपचय' करना कहलाता है।

'धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ जाव अणुपरियट्टइ'

यहां पर 'जाव' शब्द से इतने पाठ का अध्याहार करना चाहिए–

'हस्सकालठिइयाओ, दीहकालठिइयाओ पकरेइ। मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसगाओ बहुप्पएसगाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय णो बंधइ अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणइ, अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ'

अर्थ–अल्पकाल की स्थिति वाली प्रकृतियो को दीर्घकाल की स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियो को तीव्र अनुभाग वाली करता है, अल्प प्रदेश वाली

प्रकृतियों को बहुत प्रदेश वाली करता है। आयुकर्म को कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं भी बांधता है। असातावेदनीय कर्म को बारम्बार उपार्जन करता है। तथा अनादि अनन्त दीर्घमार्ग वाले, चतुर्गति संसार रूपी अरण्य में बारबार पर्यटन करता है।

'आउय वज्जाओ' की टीका में कहा है:-

'यस्मादेकत्रभवग्रहणे सकृदेवाऽन्तर्मुहूर्तमात्रकाले एवायुषो बन्धः'।

अर्थात्:-एक भव में एक जीव एक ही बार आयुष्य का बन्ध करता है।

'आधाकर्म' आहारादि भोगने वाला साधु आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बन्ध करता है और यहां तक कि 'निकाचित' बन्ध भी कर लेता है।

भगवान् का यह उत्तर सुनकर गौतमस्वामी ने फिर पूछा कि-हे भगवन् ! आधाकर्म आहारादि भोगने वाला मुनि ऐसा कठिन कर्म क्यों बांधता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! उस मुनि ने जो श्रुतधर्म और चारित्रधर्म अंगीकार किया था वह उस आत्मधर्म का उल्लंघन करता है। उसने पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के छही काय जीवों की रक्षा के लिए संयम स्वीकार किया था, किन्तु आधाकर्म आहारादि सेवन करने वाला उन छही काय के जीवों की अनुकम्पा नहीं करता। वह उनका विघातक होता है। इसलिए वह इस प्रकार के कर्म बांधता है। अतः मुनि को आधाकर्म आहारादि का सेवन नहीं करना चाहिए।

एषणीय आहार का फल

३०५ प्रश्न-फासु-एसणिज्जं भंते ! भुंजमाणे किं बंधइ, जाव-उवचिणाइ ?

३०५ उत्तर-गोयमा ! फासु-एसणिज्जं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्तकम्मपयडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ। जहा संवुडेणं, नवरं-आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ; सेसं तहेव, जाव-वीइवयइ।

३०६ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-वीइवयइ ?

३०६ उत्तर-गोयमा ! फासु-एसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं नो अइक्कमइ, आयाए धम्मं अणइक्कम-माणे पुढविक्काइयं अवकंखइ, जाव-तसकायं अवकंखइ; जेसिं पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारेइ, ते वि जीवे अवकंखइ से तेण-ट्ठेणं जाव-वीइवयइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-फासुएसणिज्जं-प्रासुक और एषणीय-निर्दोष, नवरं-विशेष में।

भावार्थ-३०५ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रासुक और एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ, क्या बांधता है ? और यावत् किसका उपचय करता है ?

३०५ उत्तर-हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ, आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की दृढ़ बन्धन से बंधी हुई प्रकृतियों को ढीली करता है। उसे संवृत अनगार के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि आयु कर्म को कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। शेष उसी प्रकार समझना चाहिए। यावत् संसार को पार कर जाता है।

३०६ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् संसार को पार कर जाता है ?

३०६ उत्तर-हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ, अपनें आत्म-धर्म का उल्लंघन नहीं करता है। अपने आत्मधर्म का उल्लंघन नहीं करता हुआ वह श्रमण निर्ग्रन्थ, पृथ्वीकाय के जीवों का जीवन चाहता है यावत् त्रसकाय के जीवों का जीवन चाहता है और जिन जीवों का शरीर उसके भोग में आता है, उनका भी जीवन चाहता है। इस कारण से हे गौतम ! वह यावत् संसार को पार कर जाता है।

विवेचन-प्रासुक का अर्थ है-अचित्त-निर्जीव। एषणीय का अर्थ है-निर्दोष।

गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन्! जो साधु, बयालीस दोष रहित प्रासुक एषणीय आहार करता है, उसे क्या फल होता है?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम! वह कदाचित् आयु कर्म को बांधता है और कदाचित् नही बांधता अर्थात् या तो वह उसी भव में मोक्ष चला जाता है, या कर्म शेष हों, तो सात कर्मों की गाढ़ी बधी हुई प्रकृतियो को शिथिल करता है। क्योकि वह अपनी ली हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से निभाता है। वह छहकाय के जीवो के जीवन को चाहता है, वह छहकाय जीवों का रक्षक है। इसलिए वह संसार सागर को पार कर जाता है।

स्थिर अस्थिरादि प्रकरण

३०७ प्रश्न-से णूणं भंते! अथिरे पलोट्टइ, नो थिरे पलोट्टइ, अथिरे भज्जइ, नो थिरे भज्जइ; सासए बालए, बालियत्तं असासयं, सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं?

३०७ उत्तर-हंता, गोयमा! अथिरे पलोट्टइ, जाव-पंडियत्तं असासयं।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव-विहरइ।

नवमो उद्देसो सम्मत्तो।

विशेष शब्दों के अर्थ-पलोट्टइ-बदलता है, भज्जइ-नष्ट होता है।

भावार्थ-३०७ प्रश्न-हे भगवन्! क्या अस्थिर पदार्थ बदलता है और स्थिर पदार्थ नहीं बदलता है? क्या अस्थिर पदार्थ भंग होता है और स्थिर पदार्थ भंग नहीं होता है? क्या बालक शाश्वत है और बालकपन अशाश्वत है? क्या पण्डित शाश्वत है और पण्डितपन अशाश्वत है?

३०७ उत्तर-हाँ, गौतम! अस्थिर पदार्थ बदलता है यावत् पण्डितपन अशाश्वत है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन-गौतम स्वामी द्वारा किये हुए 'अथिरे पलोट्टइ' इस प्रश्न के दो अर्थ होते है-व्यावहारिक और पारमार्थिक (आध्यात्मिक) । व्यवहार में भी पलट जाने वाला अस्थिर कहलाता है जैसे-मिट्टी का ढेला आदि। ये अस्थिर द्रव्य बदलते है । अध्यात्म पक्ष में 'कर्म' अस्थिर हैं, क्योकि वे प्रति समय जीव-प्रदेशो से चलित होते है-अलग होते हैं । कर्म अस्थिर होने से बन्ध, उदय और निर्जीर्ण आदि परिणामो द्वारा वे बदलते रहते हैं ।

व्यवहार पक्ष मे पत्थर की शिला आदि स्थिर है, इसलिए बदलती नही है । अध्यात्म पक्ष में जीव स्थिर है, क्योकि कर्मो का क्षय कर देने के बाद भी जीव स्थिर रहता है और जीव का उपयोग स्वभाव कभी बदलता नही है ।

व्यवहार पक्ष मे तृणादि नष्ट होने के स्वभाव वाले हैं, अतएव वे भग्न हो जाते है । अध्यात्म पक्ष मे कर्म अस्थिर है, इसलिए वे भग्न (क्षय) हो जाते है । व्यवहार पक्ष मे लोह की शलाका आदि भग्न नही होती । अध्यात्म पक्ष में जीव शाश्वत है, इसलिए वह कभी भग्न नही होता, नाश को प्राप्त नही होता ।

जीव का प्रकरण होने से शाश्वत् अशाश्वत सम्बन्धी प्रश्न किये गये हैं-व्यवहार पक्ष में छोटे लडके को 'बालक' कहते है और निश्चय नय की अपेक्षा अथवा अध्यात्म पक्ष से 'असयत' जीव को 'बालक' कहते हैं । जीव द्रव्य रूप होने से शाश्वत है । व्यवहार नय की अपेक्षा बचपन को 'बालकत्व' कहते है और निश्चय नय की अपेक्षा एवं अध्यात्म पक्ष मे 'असयतपन' को 'बालकत्व' कहते हैं । यह 'बालकत्व' पर्याय रूप होने से अशाश्वत है । इसी तरह 'पण्डित' सम्बन्धी सूत्र के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए । व्यवहार नय की अपेक्षा या व्यवहार पक्ष में शास्त्रो के ज्ञाता जीव को 'पण्डित' कहते है । निश्चय नय की अपेक्षा या अध्यात्म पक्ष मे सयमी जीव को पण्डित कहते है । यह जीव द्रव्य होने से शाश्वत है । और 'पण्डितपन' जीव की पर्याय होने से अशाश्वत (अस्थिर) है ।

तात्पर्य यह है कि द्रव्य सदैव शाश्वत है, स्थिर है, वह सदा ज्यों का त्यों बना रहता है, किन्तु पर्याय अशाश्वत है, अस्थिर है, वह प्रतिक्षण बदलती रहती है ।

॥ प्रथम शतक का नववां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १ उद्देशक १०

परमाणु के विभाग और भाषा अभाषा

३०८-अन्नउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, जाव-एवं परूवेंति-"एवं खलु चलमाणे अचलिए, जाव-निज्जरिज्जमाणे अणिज्जिन्ने।"

३०९-"दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति। कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति ? दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं नत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति।"

३१०-"तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति। कम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति ? तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति। ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिविहा वि कज्जंति। दुहा कज्जमाणा एगयओ दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवइ, एगयओ वि दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवइ। तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति। एवं जाव-चत्तारि"।

३११-"पंच परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति, साहणित्ता दुक्खत्ताए कज्जंति। दुक्खे वि य णं से सासए सया समियं उवचिज्जइ य, अवचिज्जइ य"।

३१२-"पुव्विं भासा भासा। भासिज्जमाणी भासा अभासा। भासासमयविइक्कंतं च णं भासिया भासा"।

३१३-"जा सा पुव्विं भासा भासा। भासिज्जमाणी भासा अभासा भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा। सा किं भासओ भासा? अभासओ भासा? अभासओ णं सा भासा। नो खलु सा भासओ भासा"।

३१४-"जा सा पुव्वं किरिया दुक्खा। कज्जमाणी किरिया अदुक्खा। किरियासमयवितिक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा"।

३१५-"जा सा पुव्वं किरिया दुक्खा। कज्जमाणी किरिया अदुक्खा। किरियासमयविइक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा। सा किं करणओ दुक्खा? अकरणओ दुक्खा? अकरणओ णं सा दुक्खा। नो खलु सा करणओ दुक्खा, सेवं वत्तव्वं सिया"।

३१६-अकिच्चं दुक्खं, अफुसं दुक्खं, अकज्जमाणकडं दुक्खं अकट्टु अकट्टु पाण-भूय-जीव-सत्ता वेदणं वेदंति इति वत्तव्वं सिया"।

प्रश्न-से कहमेयं भंते! एवं?

विशेष शब्दों के अर्थ-अण्णउत्थिया-अन्यतीर्थिक, साहणंति-चिपटते है, सिणेहकाए-स्नेहकाय=चिकनाहट, भिज्जमाणा-भेद करने पर, दिवड्ढे-डेढ, सासए-शाश्वत, सया-सदा, समियं-अच्छी तरह, भासिज्जमाणी-बोली जाती हुई, भासिया-बोली गई, भासा-समयवितिक्कंतं-भाषा का समय बीत जाने पर, अकिच्चं-अकृत्य, अकज्जमाणकडं-अक्रिय-

माणकृत, एगयओ-एकओर, दुहा-दो प्रकार से, तिहा-तीन प्रकार से, तम्हा-इसलिए, करणओ-करने से।

भावार्थ-३०८-हे भगवन् ! अन्य तीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि-जो चल रहा है वह चला नहीं कहलाता और यावत् जो निर्जरा रहा है वह निर्जीण नहीं कहलाता है।

३०९-दो परमाणु पुद्गल एक साथ नहीं चिपकते हैं। दो परमाणु पुद्गल एक साथ क्यों नहीं चिपकते हैं ? इसका कारण यह है कि दो परमाणु पुद्गलों में चिकनापन नहीं है। इसलिए दो परमाणु पुद्गल एक साथ नहीं चिपकते हैं।

३१०-तीन परमाणु पुद्गल एक दूसरे के साथ चिपकते हैं। तीन परमाणु पुद्गल आपस में क्यों चिपकते हैं ? इसका कारण यह है कि तीन परमाणु पुद्गलों में चिकनापन होता है। इसलिए तीन परमाणु पुद्गल आपस मे चिपकते हैं। यदि तीन परमाणु पुद्गलों के विभाग किये जाय, तो दो भाग भी हो सकते हैं और तीन भाग भी हो सकते हैं। यदि तीन परमाणु पुद्गलों के दो भाग किये जाय, तो एक तरफ डेढ़ परमाणु होता है और दूसरी तरफ भी डेढ़ परमाणु हो जाता है। यदि तीन परमाणु पुद्गलों के तीन भाग किये जाय तो एक एक करके तीन परमाणु अलग अलग हो जाते हैं। इसी तरह यावत् चार परमाणु पुद्गलों के विषय में भी समझना चाहिए।

३११-पांच परमाणु पुद्गल आपस मे चिपक जाते हैं और वे दुःखरूप (कर्म रूप) में परिणत होते हैं। वह दुःख (कर्म) शाश्वत है और सदा भलीभांति उपचय को प्राप्त होता है और अपचय को प्राप्त होता है।

३१२-बोलने से पहले जो भाषा (भाषा के पुद्गल) है, वह भाषा है। बोलते समय की भाषा अभाषा है और बोलने का समय व्यतीत हो जाने के बाद की भाषा भाषा है।

३१३-यह जो बोलने से पहले की भाषा, भाषा है और बोलते समय की भाषा, अभाषा है तथा बोलने के समय के बाद की भाषा, भाषा है, सो क्या

बोलते हुए पुरुष की भाषा है या न बोलते हुए पुरुष की भाषा है ? (उत्तर) -न बोलते हुए पुरुष की वह भाषा है, बोलते हुए पुरुष की वह भाषा नहीं है।

३१४-वह जो पूर्व की क्रिया है वह दुःख रूप है, वर्तमान में जो क्रिया की जाती है वह क्रिया दुःख रूप नहीं है और करने का समय बीत जाने के बाद की 'कृतक्रिया' दुःख रूप है।

३१५-वह जो पूर्व की क्रिया है वह दुःख का कारण है। की जाती हुई क्रिया दुःख का कारण नहीं है और करने के समय के बाद की क्रिया दुःख का कारण है, तो क्या वह करने से दुःख का कारण है ? या नहीं करने से दुःख का कारण है ? (उत्तर) 'नहीं करने से वह दुःख का कारण है, करने से दुःख का कारण नहीं है'-ऐसा कहना चाहिए।

३१६-अकृत्य दुःख है, अस्पृश्य दुःख है और अक्रियमाणकृत दुःख है। उसे न करके प्राण, भूत, जीव, सत्त्व वेदना भोगते है-ऐसा कहना चाहिए।

प्रश्न-गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिकों की उपरोक्त मान्यता किस प्रकार है ?

विवेचन-नववें उद्देशक के अन्त मे कर्मों की अस्थिरता बतलाई गई थी। कर्म परोक्ष है। परोक्ष वस्तु के स्वरूप के विषय में कुतीर्थिक विवाद करते हैं, उसकी असत्यता बतलाने के लिए तथा प्रथम शतक के प्रारम्भ में संग्रह गाथा में 'चलणाओ' यह पद दिया था। अतः उसका प्रतिपादन इस दसवें उद्देशक में किया जाता है।

'चलमाणे अचलिए' से यावत् 'णिज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे' तक का उत्तर तो पहले उद्देशक मे ही आगया है, वह वहाँ से जान लेना चाहिए। इसके बाद गौतम स्वामी ने पूछा कि-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं कि-दो परमाणु पुद्गल आपस मे नही मिल सकते, क्योकि उनमे चिकनापन नही है। हाँ, तीन परमाणु पुद्गल मिल सकते हैं, क्योकि उनमे चिकनापन है। मिले हुए वे तीन परमाणु पुद्गल यदि अलग हों, तो उनके दो विभाग भी हो सकते हैं और तीन विभाग भी हो सकते हैं। यदि दो विभाग हों, तो डेढ डेढ परमाणु अलग अलग हो जाते है और यदि तीन विभाग हों, तो एक एक परमाणु अलग अलग हो जाता है। गौतम स्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! क्या अन्यतीर्थिक का

यह कथन ठीक है ?

मिलना और विखरना जिसका धर्म हो उसे 'पुदगल' कहते है। पुद्गल का वह छोटे से छोटा भाग जिसका कोई भाग न हो सके, उसे 'परमाणु' कहते हैं।

३१७ उत्तर-गोयमा! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति, जाव-वेदणं वेदेंति वत्तव्वं सिया। जे ते एवं आहिंसु, मिच्छा ते एवं आहिंसु। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि-एवं खलु चलमाणे चलिए, जाव-निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे।

३१८-दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति। कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति? दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति। ते भिज्जमाणा दुहा कज्जंति, दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ परमाणुपोग्गले भवंति।

३१९-तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति, कम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति? तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति। ते भिज्जमाणा दुहा वि तिहा वि कज्जंति। दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे भवति। तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति। एवं जाव-चत्तारि।

३२०-पंच परमाणुपोग्गला एगयत्रो साहणंति । एगयत्रो साहणित्ता खंधत्ताए कज्जं । खंधे वि य णं से असासए सया समियं उवचिज्जइ य अवचिज्जइ य ।

विशेष शब्दों के अर्थ-आहिंसु-कहा, अत्थि-विद्यमान, हां, है ।

भावार्थ-३१७ उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् वेदना वेदते हैं-ऐसा कहना चाहिए, इत्यादि बातें जो उन्होंने कही हैं वे मिथ्या हैं । हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि-'चलमाणे चलिए जाव णिज्ज-रिज्ज माणे णिज्जिण्णे' अर्थात् 'जो चल रहा है वह चला' कहलाता है यावत् जो निर्जर रहा है वह निर्जीण कहलाता है ।

३१८-दो परमाणु पुद्गल आपस में चिपकते हैं । दो परमाणु पुद्गल आपस में चिपकते हैं इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि-दो परमाणु पुद्गलों में चिकनापन है, इसलिए दो परमाणु पुद्गल परस्पर चिपट जाते हैं । उन दो परमाणु पुद्गलों के दो भाग हो सकते हैं । यदि दो परमाणु पुद्गलों के दो भाग किये जांय, तो एक तरफ एक परमाणु और एक तरफ एक परमाणु होता है ।

३१९-तीन परमाणु पुद्गल परस्पर चिपट जाते हैं । तीन परमाणु पुद्-गल परस्पर क्यों चिपट जाते हैं ? इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि तीन परमाणु पुद्गलों में चिकनापन है । इस कारण तीन परमाणु पुद्गल परस्पर चिपट जाते हैं । उन तीन परमाणु पुद्गलों में के दो भाग भी हो सकते हैं और तीन भाग भी हो सकते हैं । दो भाग करने पर एक तरफ एक परमाणु और एक तरफ दो प्रदेश वाला एक स्कन्ध होता है । तीन भाग करने पर एक एक करके तीन परमाणु हो जाते हैं । इसी प्रकार यावत् चार परमाणु पुद्गल के विषय में भी समझना चाहिए । परन्तु तीन परमाणु के डेढ़ डेढ़ नहीं हो सकते हैं ।

३२०-पांच परमाणु पुद्गल परस्पर में चिपट जाते हैं और परस्पर चिपट कर एक स्कन्ध रूप बन जाते हैं। वह स्कन्ध अशाश्वत है और हमेशा उपचय तथा अपचय पाता है अर्थात् वह बढ़ता भी है और घटता भी है।

विवेचन-गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों का उपर्युक्त कथन मिथ्या है, क्योंकि एक परमाणु में भी स्नेहकाय (चिकनापन) होता है। तीन परमाणुओं का मिलना और बिखरना तो वे लोग भी मानते हैं। यदि परमाणुओं में स्नेहकाय न होता, तो वे कैसे जुड़ते ? और जब जुड़ते है, तो उनमें स्नेहकाय मानना ही होगा। दो परमाणु पुद्गलों मे यदि स्नेहकाय न हो, तो तीसरे में कहाँ से आजाता है ? उन्होंने तो डेढ़ परमाणु पुद्गल में भी स्नेहकाय माना है, फिर दो परमाणु पुद्गलों में स्नेहकाय मानने में बाधा ही क्या है ? इसके सिवाय उन्होंने तीन परमाणु पुद्गलों के दो विभाग-डेढ़ डेढ़ परमाणुओं के माने हैं, सो परमाणु आधा कैसे हो सकता है ? क्योंकि परमाणु तो उसीको कहते हैं कि जिसके फिर दो विभाग न हो सकें। परमाणु छोटा होता है, फिर भी उसमें जुड़ने की शक्ति होती है। यहाँ स्नेहकाय (चिकनापन) का प्रश्न होने से चिकने परमाणुओं का कथन किया है, किन्तु रूक्ष परमाणु पुद्गल भी जुड़ते हैं।

गौतम स्वामी पूछते है कि-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक कहते हैं कि-पांच परमाणु आपस मे जुड़कर कर्म के स्कन्ध बन जाते हैं, किन्तु वे किसी के बनाने से नही बनते हैं, वे स्वभाव से ही स्कन्ध बन जाते हैं, वे पांच परमाणु मिल कर दुःखरूप में परिणत हो जाते हैं, वह दु.ख भी शाश्वत है और उपचय तथा अपचय को प्राप्त होते हैं। हे भगवन् ! क्या उनका यह कहना सत्य है ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन मिथ्या है, क्योंकि दुःख रूप में परिणत होने वाला स्कन्ध अनन्त प्रदेशी होता है। दुःख स्वतः स्वभाव से ही उत्पन्न नही होता, किन्तु वह उत्पन्न करने से होता है, बिना उत्पन्न किये नही होता है और कर्म अशाश्वत ही होते हैं। किन्तु पांच परमाणु जुड़ने से तो स्कन्ध होता है और वह भी अशाश्वत है।

३२१-"पुव्विं भासा अभासा, भासिज्जमाणी भासा भासा, भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा।"

३२२-"जा सा पुव्विं भासा अभासा। भासिज्जमाणी भासा

भासा, भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा; सा किं भासओ भासा ? अभासओ भासा ? भासओ णं भासा । नो खलु सा अभासओ भासा ।"

३२१-बोलने से पहले की भाषा, अभाषा है, बोलते समय की भाषा भाषा है और बोलने के बाद की भाषा, अभाषा है ।

३२२-वह जो पहले की भाषा, अभाषा है, बोलते समय की भाषा, भाषा है, और बोलने के बाद की भाषा, अभाषा है, सो क्या बोलने वाले पुरुष की भाषा है, या अनबोलते पुरुष की भाषा है ? (उत्तर)-वह बोलने वाले पुरुष की भाषा है, किन्तु अनबोलते पुरुष की भाषा नहीं है ।

विवेचन-अन्यतीर्थी यह भी कहते हैं कि भाषा बोलने से पहले तो भाषा है, लेकिन बोलने के समय भाषा नही है, और बोलने के बाद फिर भाषा है । ऐसा मानने वालों की दलील यह है कि अपने मन के भावो को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग किया जाता है अर्थात् मन के भावो को समझाना ही भाषा का उद्देश्य है । भाषा किसी को लक्ष्य करके ही बोली जाती है । अतएव बोलने से पहले भाषा थी, बोलने के बाद भी भाषा रही, परन्तु बोलते समय भाषा, भाषा नही है । बोलने से पहले वक्ता के मन में भाव थे और जबतक उसके हृदय में भाव है, तभी तक वह भाषा है, किन्तु जब बोलना प्रारम्भ किया, तो वह भाषा नही रही, क्योंकि वर्तमान काल अत्यन्त सूक्ष्म है-एक समय मात्र का है । उसमें कोई क्रिया नही हो सकती । एक समय में पूरे पद का उच्चारण भी नहीं हो सकता और पद का उच्चरण हुए बिना कोई अर्थ समझ मे नही आ सकता । इसलिए बोलते समय निरर्थक होने के कारण भाषा, भाषा नही रही । हां, बोलने के पश्चात् भाषा, भाषा है, क्योकि उससे श्रोता को अर्थ का बोध होता है ।

भगवान् फरमाते है कि-हे गौतम ! अन्यतीर्थिको का यह मन्तव्य मिथ्या है, क्योंकि वास्तव मे भाषा वही है जो बोली जा रही है । बोलने से पहले भाषा, अभाषा है, क्योंकि वह उस समय तक बोली नहीं गई है और इस कारण उसका अस्तित्व ही नहीं है और बोलने के पश्चात् शब्द और अर्थ का वियोग हो जाता है । इसलिए वह भी भाषा नहीं है केवल बोली जाती हुई भाषा ही भाषा है ।

√ ३२३-"पुव्विं किरिया अदुक्खा। जहा भासा तहा भाणियव्वा। किरिया वि जाव-करणओ सा दुक्खा नो खलु सा अकरणओ दुक्खा, सेवं वत्तव्वं सिया"।

√ ३२४-"किच्चं दुक्खं, फुसं दुक्खं, कज्जमाणकडं दुक्खं कट्टु कट्टु पाण-भूय-जीव-सत्ता वेदणं वेदेंति इति वत्तव्वं सिया"।

विशेष शब्दों के अर्थ-कट्टु-करके।

३२३-करने से पहले की क्रिया दुःख का कारण नहीं है, उसे भाषा के समान ही समझना चाहिए। यावत् वह क्रिया करने से दुःख का कारण है, नहीं करने से दुःख का कारण नहीं है। ऐसा कहना चाहिए।

३२४-कृत्य दुःख है, स्पृश्य दुःख है, क्रियमाणकृत दुःख है, उसे कर करके प्राण, भूत, जीव, सत्त्व वेदना भोगते हैं। ऐसा कहना चाहिए।

विवेचन-इसी प्रकार अन्यतीर्थिक लोग, क्रिया के विषय में भी कहते है।

भगवान् फरमाते है कि-हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन मिथ्या है, क्योंकि करने से पहले की क्रिया और क्रिया समय व्यतिक्रान्त कृतक्रिया दु.ख का कारण नही है, किन्तु क्रिया करने से ही दु.ख का कारण है। कृत्य दुःख है, स्पृश्य दुःख है, क्रियमाणकृत दु.ख है। उसे कर करके ही प्राण, भूत, जीव सत्त्व वेदना भोगते है। यह अनुभवसिद्ध भी है।

प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, किसे कहते है ? इस विषय में टीकाकार ने एक श्लोक उद्धृत किया है।

प्राणाः द्वि त्रिचतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्मृताः।
जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः॥

अर्थ-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीव 'प्राण' कहलाते हैं। वनस्पतिकाय को 'भूत' कहते हैं। पञ्चेन्द्रिय को 'जीव' कहते है और शेष चार स्थावरो (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय) को 'सत्त्व' कहते हैं।

प्राण, भूत, जीव, सत्त्व की यह व्याख्या भी की जाती है और दूसरी व्याख्या भी की जाती है कि-ये चारों शब्द एक ही अर्थ के वाचक है अर्थात् प्राण, भूत, जीव, सत्त्व

एक ही है। अथवा प्राण धारण करने वाला 'प्राणी' कहलाता है। जिसका नाश न कभी हुआ हो और न होगा वह 'भूत' कहलाता है। जो भूतकाल मे जीता था, वर्तमान काल मे जीता है और भविष्यकाल मे भी जीता रहेगा वह 'जीव' कहलाता है। जो तीनों काल मे चैतन्य शक्ति से युक्त बना रहता है वह 'सत्त्व' कहलाता है। प्राण, भूत आदि प्रत्येक का यह लक्षण प्रत्येक जीव मे पाया जाता है, अतएव इस प्रकार प्राण, भूत आदि चारो शब्द एकार्थवाची भी हैं।

अन्यतीर्थी कहते है कि-दुःख बिना किये ही होता है। जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि बिना किये दुःख कैसे होता है ? तो इसके उत्तर में वे कहते है कि-हम 'यदृच्छा' तत्त्व मानते है। इस यदृच्छा तत्त्व के अनुसार निष्कारण ही सब कुछ होता रहता है। क्या हो और क्या न हो, इसका कोई नियम नही है। इसी प्रकार कब, कैसे, कहाँ, क्या हो, इस प्रकार का भी कोई नियम नही है। जब, जैसे, जहाँ, जो कुछ हो गया सो हो गया, यही 'यदृच्छावाद' का सिद्धान्त है।

नियतिवाद और यदृच्छावाद मे यह अन्तर है कि नियतिवाद के अनुसार प्रत्येक कार्य का एक भविष्य निश्चित है, जो कुछ भवितव्य है वही होता है, किन्तु यदृच्छावाद के अनुसार कोई नियमितता नही है। अकस्मात् जब जो कुछ हो गया सो होगया। उनके मत के अनुसार सारा जगत् अतर्कित है।

भगवान् फरमाते है कि-हे गौतम ! उनका यह कथन मिथ्या है, क्योकि यदि न करने से ही कर्म सुख, दुःख रूप हों, तो इहलौकिक और पारलौकिक विविध प्रकार के अनुष्ठानो का अभाव हो जायगा। किन्तु यदृच्छावादियो ने भी कुछ पारलौकिक अनुष्ठान माना ही है। इसलिए उनका उपर्युक्त कथन अज्ञानतापूर्ण है। दो पुरुषों को एक समान सामग्री प्राप्त होने पर भी उनके सुख, दुःख में जो अन्तर देखा जाता है वह किसी विशिष्ट कारण से ही होता है। वह विशिष्ट कारण 'कर्म' है। इस प्रकार कर्म की सत्ता प्रमाण से सिद्ध है।

ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी क्रिया

३२५ प्रश्न-अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति, जाव-"एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो करियाओ पकरेइ। तं

जहाः-इरियावहियं च, संपराइयं च। जं समयं इरियावहियं पकरेइ तं समयं संपराइयं पकरेइ, जं समयं संपराइयं पकरेइ, तं समयं इरियावहियं पकरेइ-इरियावहियाए पकरणयाए संपराइयं पकरेइ, संपराइयाए पकरणयाए इरियावहियं पकरेइ। एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो करियाओ पकरेइ। तं जहाः-इरियावहियं च, संपराइयं च।" से कहमेयं भंते! एवं?

३२५ उत्तर-गोयमा! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति, तं चेव जाव-जे ते एवं आहिंसु, मिच्छा ते एवं आहिंसु। अहं पुण गोयमा! एवं आइक्खामि-एवं खलु एगे जीवे एगसमए एक्कं किरियं पकरेइ। परउत्थियवत्तव्वं णेयव्वं। ससमयवत्तव्वयाए णेयव्वं। जाव-इरियावहियं, संपराइयं वा।

विशेष शब्दों के अर्थ-इरियावहियं-ऐर्यापथिकी क्रिया, संपराइयं-साम्परायिकी क्रिया, परउत्थियवत्तव्वं-परतीर्थिकों की वक्तव्यता, ससमयवत्तव्वयाए-स्वसमय=स्वसिद्धान्त की वक्तव्यता।

भावार्थ-३२५ प्रश्न-हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि-एक जीव, एक समय में दो क्रियाएं करता है। वह इस प्रकार-ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी। जिस समय जीव, ऐर्यापथिकी क्रिया करता है, उस समय साम्परायिकी क्रिया करता है और जिस समय साम्परायिकी क्रिया करता है उस समय ईर्यापिथकी क्रिया करता है। साम्परायिकी क्रिया करने से ऐर्यापथिकी क्रिया करता है इत्यादि। इस प्रकार एक जीव, एक समय में दो क्रियाएँ करता है, एक ऐर्यापथिकी और दूसरी साम्परायिकी। हे भगवन्! क्या यह इसी प्रकार है?

३२५ उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं यावत् उन्होंने जो ऐसा कहा है सो मिथ्या कहा है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ कि एक जीव, एक समय में एक क्रिया करता है। यहां परतीर्थिकों का तथा स्वसिद्धान्त का वक्तव्य कहना चाहिए यावत् ऐर्यापथिकी अथवा साम्परायिकी क्रिया करता है।

विवेचन-गमन और आगमन के मार्ग में होने वाली क्रिया ऐर्यापथिकी क्रिया कहलाती है। यह क्रिया केवल योग निमित्त से होती है। जो क्रिया कषाय से लगती है और जिसमे कषाय कारण है, वह साम्परायिकी क्रिया कहलाती है। ऐर्यापथिकी क्रिया कषाय के क्षीण होने पर या उपशान्त होने पर ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे लगती है। साम्परायिकी क्रिया से ससार परिभ्रमण करना पडता है। ऐर्यापथिकी क्रिया मे सिर्फ योग का निमित्त होता है। साम्परायिकी क्रिया में भी योग का निमित्त है, किन्तु उसमें कषाय की प्रधानता है। यह क्रिया दसवें गुणस्थान तक लगती है। ससार परिभ्रमण का कारण कषाय है। ठाणांग सूत्र के दूसरे ठाणे में कहा गया है कि-पचीस क्रियाओ में से चौवीस क्रियाएं साम्परायिकी हैं और एक ऐर्यापथिकी है।

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा कि-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं कि एक जीव, एक समय मे दो क्रियाएं करता है-ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी। क्या उनका यह कथन ठीक है ?

भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन मिथ्या है। एक जीव, एक समय मे दो क्रियाए नही कर सकता, किन्तु एक समय मे एक ही क्रिया कर सकता है, चाहे ऐर्यापथिकी करे, चाहे साम्परायिकी करे।

यहाँ यह आशंका हो सकती है कि-'जो की जाय वह क्रिया कहलाती है। फिर एक साथ दो क्रियाए क्यों नही की जा सकती है ? क्योंकि जिस समय में 'ईर्या' अर्थात् गमन करने की क्रिया की जाती है, उसी समय कषाय भी रहता है और कषाय की क्रिया साम्परायिकी क्रिया कहलाती है। इसलिए ऐर्यापथिकी क्रिया के साथ साम्परायिकी क्रिया भी होनी ही चाहिए। इसी प्रकार जब साम्परायिकी क्रिया होती है तब योग भी रहता है और योग की क्रिया ऐर्यापथिकी है। ऐसी दशा में साम्परायिकी क्रिया के साथ ऐर्यापथिकी क्रिया भी क्यो नही लगती ?

इसका समाधान यह है कि केवल शब्द की व्युत्पत्ति से ही काम नहीं चलता। व्युत्पत्ति के साथ शब्द की प्रवृत्ति भी निमित्त मानी जाती है। भगवान् के कहने का आशय यह है कि जब कषाय है तब ऐर्यापथिकी क्रिया नही हो सकती, क्योंकि ऐर्यापथिकी क्रिया कषाय न होने पर ही होती है। जबतक कषाय है तबतक साम्परायिकी क्रिया ही होती है, ऐर्यापथिकी नही होती। जब कषाय नही होता है तब साम्परायिकी क्रिया नही हो सकती, इस प्रकार एक जीव एक समय में दो क्रिया नही कर सकता, किन्तु एक समय में एक ही क्रिया करता है।

उपपात विरह

३२६ प्रश्न-निरयगई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

३२६ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता। एवं वक्कंतीपयं भाणियव्वं निरवसेसं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव-विहरइ।

दसमो उद्देसो समत्तो।

विशेष शब्दों के अर्थ-विरहिया-रहित उववाएणं उपपात की अपेक्षा।

भावार्थ-३२६ प्रश्न-हे भगवन् ! नरक गति, कितने समय तक उपपात से विरहित रहती है ?

३२६ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक नरक गति उपपात से रहित रहती है। इसी प्रकार यहाँ सारा उत्क्रान्ति पद कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह ऐसा ही है। यह ऐसा ही है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं।

विवेचन-गौतम स्वामी पूछते है कि-हे भगवन् ! ऐसा कितना समय व्यतीत होता

है कि जब कोई जीव, नरक मे उत्पन्न नही हो ?

भगवान् ने इस प्रश्न का संक्षेप में उत्तर दिया कि–हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त ।

इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद में किया गया है । वही विवेचन यहा समझलेना चाहिए । उसका सक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है–पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च गति मे, मनुष्य गति मे और देव मे जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त का उत्पाद विरह काल है । सात नरको में विरह काल इस प्रकार है ।

> चउवीसई मुहुत्ता सत्त अहोरत्त तह य पण्णरस ।
> मासो य दो य चउरो, छम्मासा विरहकालो उ ॥

अर्थात्–पहली नरक में चौबीस मुहूर्त का, दूसरी मे सात अहोरात्र का, तीसरी में पन्द्रह अहोरात्र का, चौथी में एक मास का, पांचवी में दो मास का, छठी में चार मास का, और सातवी नरक में छह मास का विरह काल होता है । इन सब में जघन्य विरह काल एक समय का होता है ।

भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में तथा पहले दूसरे देवलोक में चौबीस मुहूर्त का विरह काल है । तीसरे देवलोक में नौ दिन और बीस मुहूर्त का, चौथे देवलोक में बारह दिन और दस मुहूर्त का, पांचवे देवलोक में साढ़े बाईस दिन का, छठे देवलोक में पैंतालीस दिन का, सातवें देवलोक में अस्सी दिन का, आठवें देवलोक मे सौ दिन का, नववें और दसवे देवलोक मे संख्यात महीनों का (जो एक वर्ष से अधिक न हो), ग्यारहवें और बारहवे देवलोक में संख्यात वर्ष का (जो एक सौ वर्ष से अधिक न हो) विरहकाल होता है । ग्रैवेयक की पहली त्रिक मे सख्यात सैकडों वर्षो का, दूसरी त्रिक में सख्यात हजारो वर्षो का और तीसरी त्रिक मे संख्यात लाखों वर्षो का विरहकाल होता है । जैसा कि गाथाओं में कहा है ।

> भवण-वण-जोई-सोहम्मीसाणे चउवीस मुहुत्ताओ ।
> उक्कोसविरहकालो पंचसु वि जहण्णओ समओ ॥
> णवदिण वीस मुहुत्ता, बारस दस चेव दिणमुहुत्ताओ ।
> बावीसा अद्धं चिय, पणयाल असीइ दिवससयं ॥
> संखेज्जा मासा आणयपाणयएसु तह आरण अच्चुए वासा ।
> संखेज्जा विण्णेया गेवेज्जेसु अओ वोच्छं ॥

हेट्ठिमवाससयाइं मज्झिमसहस्साइं उवरिमे लक्खा।
संखेज्जा विण्णेया जहासंखेणं तु तीसुं पि ॥

इन गाथाओं का अर्थ ऊपर दे दिया गया है। सब में जघन्य विरह काल एक समय का होता है।

चार अनुत्तर विमानों में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार विमानों मे पल्योपम के असंख्यातवें भाग का और सर्वार्थसिद्ध विमान में पल्योपम के संख्यातवें भाग का उत्कृष्ट विरह काल होता है और जघन्य एक समय का। जैसा कि कहा है-

पलियाअसंखभागो उक्कोसो होइ विरहकालो उ।
विजयाइसु णिद्दिट्ठो, सव्वेसु जहण्णओ समओ ॥

इस गाथा का अर्थ ऊपर दे दिया गया है। इन सब में उत्पाद विरह की तरह उद्वर्तनाविरह भी कहना चाहिए।

पांच स्थावरो में कभी भी विरह नही होता। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय में अन्तर्मुहूर्त का विरह होता है। संज्ञी तिर्यञ्च और संज्ञी मनुष्य मे बारह मुहूर्त्त का विरह होता है अर्थात् इतने समय यक कोई उपजता या निकलता नही है। सिद्ध अवस्था में उत्कृष्ट छह मास का विरह होता है, अर्थात् अधिक से अधिक छह मास तक कोई जीव मुक्त नही होता। यह सिद्धों का उपपात विरह काल है। सिद्धों में उद्वर्तन विरह काल नही होता है, क्योंकि सिद्ध बना हुआ कोई भी जीव, वापिस नहीं निकलता अर्थात् वापिस संसार में नही आता।

इस प्रकार पण्णवणा सूत्र में विरह काल का वर्णन किया गया है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! अर्थात् हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। अर्थात् जैसा आप फरमाते है, वह वैसा ही है। यथार्थ एवं सत्य है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

॥ प्रथम शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रथम शतक समाप्त ॥



भगवती सूत्र

शतक २

उद्देशक १

जीवों का श्वासोच्छ्वास

१ गाहा–

ऊसास खंदए वि य समुग्घाय पुढविं-दिय अन्नउत्थि भासा य ।
देवा य चरमचंचा समयक्खित्तऽत्थिकाय बियसए ।

२–ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे णामं नयरे होत्था । वण्णओ । सामीसमोसढे । परिसा णिग्गया । धम्मो कहिओ । परिसा पडिगया ।

२ प्रश्न–ते णं काले णं ते णं समए णं जेट्ठे अंतेवासी जाव–पज्जुवासमाणे एवं वयासी–जे इमे भंते ! बेइंदिया तेइंदिया चउरिं-दिया पंचिंदिया जीवा, एएसि णं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा नीसासं वा जाणामो पासामो । जे इमे पुढविकाइया जाव–

वणप्फइकाइया एगिंदिया जीवा एएसि णं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा नीसासं वा न याणामो न पासामो । एए णं भंते ! जीवा आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ?

३ उत्तर-हंता गोयमा ! एए वि णं जीवा आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ।

४ प्रश्न-किण्णं भंते ! एते जीवा आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ?

४ उत्तर-गोयमा ! दव्वओ णं अणंतपएसियाइं दव्वाइं, खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं, कालओ अन्नयरठिईयाइं, भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ।

५ प्रश्न-जाइं भावओ वण्णमंताइं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ताइं किं एगवण्णाइं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ?

५ उत्तर-आहारगमो णेयव्वो, जाव-पंचदिसं ।

६ प्रश्न-किण्णं भंते ! नेरइया आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ?

६ उत्तर-तं चेव जाव-नियमा छद्दिसिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा ।



७-जीव-एगिंदिया वाघाया य निव्वाघाया य भाणियव्वा। सेसा नियमा छद्दिसिं।

विशेष शब्दों के अर्थ-ऊसास-श्वासोच्छ्वास, खंदए-स्कन्दक, समयक्खित्त-समय-क्षेत्र, बियसए-दूसरा शतक, होत्था-था, समोसढे-पधारे, पज्जुवासमाणे-सेवा करते हुए, आणामं पाणामं-आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास, उस्सासं णिस्सासं-बाह्य श्वासोच्छ्वास, याणामो-जानते हैं, पासामो-देखते है, वाघाय-व्याघात, णिव्वाघाया-निर्व्याघात, णियमा-नियम से, छद्दिसि-छह दिशा।

भावार्थ-१ संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है-दूसरे शतक में दस उद्देशक हैं। उनमें क्रमशः इस प्रकार विषय हैं-(१) श्वासोच्छ्वास और स्कन्दक अनगार (२) समुद्घात (३) पृथ्वी (४) इन्द्रियां (५) अन्यतीर्थिक (६) भाषा (७) देव (८) चमरचंचा राजधानी (९) समय क्षेत्र का स्वरूप (१०) अस्तिकाय का विवेचन।

२-उस काल उस समय में राजगृह नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए परिषद् निकली। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस लौट गई।

३ प्रश्न-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगार भगवान् की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-हे भगवन्! ये जो बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव हैं, वे जो बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं उनको हम जानते और देखते हैं, किन्तु हे भगवन्! पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास को हम नहीं जानते हैं और नहीं देखते हैं। तो क्या भगवन्! ये पृथ्वीकायादि आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते और छोड़ते हैं?

३ उत्तर-हाँ, गौतम! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भी आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते और छोड़ते हैं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव, किस प्रकार के द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा अनन्त प्रदेश वाले द्रव्यों को, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्य प्रदेशों में रहे हुए द्रव्यों को, काल की अपेक्षा किसी भी स्थिति वाले द्रव्यों को और भाव की अपेक्षा-वर्ण वाले, गन्ध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! वे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव, भाव की अपेक्षा वर्ण वाले द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं, तो क्या वे द्रव्य, एक वर्ण वाले हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! जैसा कि-पण्णवणा सूत्र के अट्ठाईसवें आहार-पद में कथन किया है वैसा ही यहां कहना चाहिए। यावत् वे पाँच दिशाओं की ओर से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ?

६ उत्तर-हे गौतम ! इस विषय में पहले कहा, वैसा ही समझना चाहिए यावत् वे नियमा (नियम से-निश्चित रूप से) छह दिशा के पुद्गलों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं।

७-जीव सामान्य और एकेन्द्रियों के सम्बन्ध में ऐसा कहना चाहिए कि यदि व्याघात न हो, तो वे सब दिशाओं से बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के लिए पुद्गलों को लेते हैं। यदि व्याघात हो, तो कदाचित् तीन दिशा से, कदाचित् चार दिशा से और कदाचित् पांच दिशा से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। बाकी सब जीव, नियमा छह दिशा से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को लेते हैं।

विवेचन-पहले शतक का विवेचन पूरा हुआ। अब दूसरे शतक का विवेचन प्रारम्भ किया जाता है। दूसरे शतक के दस उद्देशक हैं। उनमे से पहले उद्देशक का विवेचन प्रारंभ किया जाता है। इसका परस्पर सम्बन्ध इस प्रकार है-प्रथम शतक के दसवे उद्देशक के अन्त में जीवों की उत्पत्ति का विरहकाल बतलाया गया था। अब दूसरे शतक के प्रथम उद्देशक मे जीवों के श्वासोच्छ्वास के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि-हे भगवन् ! पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों का चैतन्य, आगम प्रमाण से सिद्ध है, किन्तु उनमें श्वासोच्छ्वास होता है या नही ? क्योंकि जैसे मनुष्य पशु आदि का श्वासोच्छ्वास प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, उस तरह से पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों का श्वासोच्छ्वास प्रत्यक्ष ज्ञात नही होता।

इस विषय मे यदि कोई यह शंका करे कि-जब पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों का चैतन्य, आगम से सिद्ध है और यह बात आबालगोपाल प्रसिद्ध है कि-जो जीव होता है वह श्वासोच्छ्वास लेता ही है, तब फिर पृथ्वीकायादि स्थावर जीव श्वासोच्छ्वास लेते हैं या नही ? यह गौतम स्वामी का प्रश्न संगत कैसे है ?

इस शंका का समाधान यह है कि-जीव के श्वासोच्छ्वास होता है यह बात यद्यपि जगत् जाहिर है, तथापि मेढ़क आदि कितनेक जीवित जीवों का शरीर कई बार बहुत काल पर्यन्त श्वासोच्छ्वास रहित दिखाई देता है। इसलिए पृथ्वीकायादि के जीव क्या उस प्रकार के हैं या मनुष्यादि की तरह श्वासोच्छ्वास वाले हैं ? इस प्रकार की शंका होना सगत ही है तथा बहुत लम्बे समय मे श्वासोच्छ्वास लेने वाले जीवों को भी किसी काल में श्वासोच्छ्वास लेना ही पड़ता है, वह अपने को प्रत्यक्ष दिखाई देता है, परन्तु पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों का श्वासोच्छ्वास हमे कभी दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिए पृथ्वीकायादि स्थावर जीवो के श्वासोच्छ्वास है या नही ? यह सन्देह होना स्वभाविक है। इसलिए गौतम स्वामी ने जो प्रश्न किया, वह सर्वथा सुसंगत है।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! पृथ्वीकायादि स्थावर जीव भी बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते और छोड़ते हैं।

पृथ्वीकायादि के जीव श्वासोच्छ्वास रूप में जिन पुद्गलो को ग्रहण करते हैं वे किस प्रकार के होते है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए पन्नवणा सूत्र के अट्ठाईसवें आहार पद की साक्षी दी गई है। वहा बतलाया गया है कि-वे पुद्गल दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले यावत् पांच वर्ण वाले होते हैं। वे एक गुण काले यावत् अनन्त गुण काले होते हैं।

जीव सामान्य और एकेन्द्रिय जीवों के लिए यह कथन किया गया है कि-यदि किसी प्रकार का व्याघात न हो, तो वे छहों दिशाओं से श्वासोच्छ्वास के परमाणुओं को ग्रहण करते है और यदि व्याघात हो, तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय जीव, लोक के अन्त भाग में भी होते है, वहाँ उन्हे अलोक द्वारा व्याघात होता है। शेष जीव नैरयिक आदि त्रसनाड़ी के अन्दर ही होते हैं। इसलिए वे छहों दिशाओं से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण कर सकते हैं। उनको व्याघात नही होता है।

वायुकाय का श्वासोच्छ्वास

८ प्रश्न-वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा ?

८ उत्तर-हंता, गोयमा ! वाउयाए णं जाव-नीससंति वा।

९ प्रश्न-वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता, उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाइ ?

९ उत्तर-हंता, गोयमा ! जाव-पच्चायाइ।

१० प्रश्न-से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाइति, अपुट्ठे उद्दाइति ?

१० उत्तर-गोयमा ! पुट्ठे उद्दाइ, नो अपुट्ठे उद्दाइ।

११ प्रश्न-से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ, असरीरी निक्खमइ ?

११ उत्तर-गोयमा ! सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ।

१२ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ' ?

१२ उत्तर-गोयमा ! वाउयायस्स णं चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहाः-ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ओरालियवेउव्वियाइं विप्पजहाय तेयय-कम्मएहिं निक्खमइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'सिय ससरीरी, सिय असरीरी निक्खमइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पुट्ठे-टकराकर, उद्दाइत्ता-मरकर, पच्चायाइ-उत्पन्न होता है, णिक्खमइ-निकलता है, विप्पजहाय-छोड़कर।

भावार्थ ८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है ?

८ उत्तर-हाँ, गौतम ! वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाखों बार मर कर फिर वहीं (वायुकाय में ही) उत्पन्न होता है ?

९ उत्तर-हाँ, गौतम ! वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाखों बार मर कर फिर वहीं उत्पन्न होता है।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, स्वजाति के अथवा परजाति के जीवों के साथ स्पृष्ट होकर मरण पाता है अथवा बिना स्पृष्ट हुए ही मरण पाता है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! वायुकाय, स्वजाति के अथवा परजाति के जीवों के साथ स्पृष्ट होकर मरण को प्राप्त होता है, किन्तु बिना स्पृष्ट हुए मरण को प्राप्त नही होता है।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जब वायुकाय मरता है, तो क्या शरीर सहित



निकलता है या शरीर रहित ?

११ उत्तर-हे गौतम ! वह कथञ्चित् सशरीरी निकलता है और कथञ्चित् अशरीरी निकलता है।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि वायुकाय का जीव जब निकलता है तब वह कथञ्चित् सशरीरी निकलता है और कथञ्चित् अशरीरी निकलता है ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! वायुकाय के चार शरीर होते हैं। वे इस प्रकार हैं-औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। इनमें से औदारिक और वैक्रिय को छोड़कर दूसरे भव में जाता है, इस अपेक्षा से वह अशरीरी जाता है, और तैजस और कार्मण शरीर को वह साथ लेकर जाता है। इस अपेक्षा से वह सशरीरी जाता है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-वायुकाय मरकर दूसरे भव में कथञ्चित् (किसी अपेक्षा से) सशरीरी जाता है और कथञ्चित् अशरीरी जाता है।

विवेचन-एकेन्द्रिय जीवों के भी श्वासोच्छ्वास होता है और वह वायुरूप होता है, तो जिस तरह से पृथ्वीकाय का श्वासोच्छ्वास पृथ्वी से भिन्न वायुरूप होता है, तो क्या इसी तरह वायुकाय का श्वासोच्छ्वास भी वायुकाय से भिन्न होता है, या वायुरूप ही होता है ? इस शंका को दूर करने के लिए गौतम स्वामी ने यह प्रश्न किया है कि-हे भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है ?

इस प्रश्न का उत्तर भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है।

शंका-जैसे पृथ्वी स्वयं पृथ्वी रूप है और उसका श्वासोच्छ्वास वायुरूप है। इसी तरह अप्काय स्वयं अप्काय (पानी) रूप है और उसका श्वासोच्छ्वास वायुरूप है। किन्तु वायुकाय में इससे भिन्नता है कि वायुकाय स्वयं वायु रूप है तो भी उसे श्वासोच्छ्वास के रूप में दूसरी वायु की आवश्यकता रहती है, तो यहाँ यह शंका उपस्थित होती है कि फिर उस दूसरी वायु को तीसरी वायु की आवश्यकता रहेगी और तीसरी वायु को चौथी वायु की। इस तरह अनवस्था दोष आ जायगा। इसका क्या समाधान है ?

इस शंका का समाधान यह है कि जीव को श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता रहती है, निर्जीव को श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता नही रहती। वायुकाय जीव है, इसलिए उसे श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता रहती है। किन्तु जो वायु श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण होती है, वह वायु निर्जीव है। इसलिए उसको श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता नही रहती। इसलिए अनवस्था दोष नही आ सकता। दूसरी बात यह है कि वायुकाय, जिस वायु को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करती है वह इसके औदारिक वैक्रिय रूप नहीं है, किन्तु वे श्वासोच्छ्वास के पुद्गल वायुकाय के औदारिक और वैक्रिय शरीर के पुद्गलों की अपेक्षा अनन्त गुण प्रदेश वाले होने से सूक्ष्म है। इसलिए श्वासोच्छ्वास रूप वायु,इस चैतन्य वायु के शरीर रूप नही है। तात्पर्य यह है कि श्वासोच्छ्वास रूप वायु जड़ है, इसलिए उसको श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता नही है। इसलिए अनवस्था दोष नही आता है।

यहां वायुकाय का प्रकरण चल रहा है इसलिए गौतम स्वामी ने वायुकाय की कायस्थिति के विषय में प्रश्न किया है, अन्यथा यह प्रश्न तो पृथ्वीकायादि में भी लागू पड़ता है। जैसा कि कहा है-

असंखोसप्पिणीओस्सप्पिणीउ, एगिंदियाण चउण्हं।
ता चेव उ अणंता, वणस्सईए उ बोद्धव्वा॥

अर्थ-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, इन चार की कायस्थिति असंख्य अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक है। और वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पर्यन्त है।

वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाखों बार मरकर वायुकाय में ही उत्पन्न हो जाता है। वायुकाय, स्वकाय शस्त्र के साथ मे अथवा परकाय शस्त्र के साथ स्पृष्ट होकर मरण को प्राप्त होता है, विना स्पृष्ट हुए मरण को प्राप्त नहीं होता है। यह सूत्र सोपक्रम आयुवाले जीवों की अपेक्षा है। वायुकाय के चार शरीर हैं, जिनमें से औदारिक और वैक्रिय शरीर की अपेक्षा तो वह अशरीरी होकर परलोक में जाता है और तैजस कार्मण शरीर की अपेक्षा सशरीरी परलोक में जाता है।

मृतादी अनगार

१३ प्रश्न-मडाई णं भंते! नियंठे नो निरुद्धभवे, नो निरुद्ध-

भवपवंचे, णो पहीणसंसारे, णो पहीणसंसारवेयणिज्जे, णो वोच्छिन्न-संसारे, णो वोच्छिन्नसंसारवेयणिज्जे, नो निट्ठियट्ठे, नो निट्ठियट्ठ-करणिज्जे पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ ?

१३ उत्तर-हंता, गोयमा ! मडाई णं नियंठे, जाव-पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ।

१४ प्रश्न-से णं भंते ! किं ति वत्तव्वं सिया ?

१४ उत्तर-गोयमा ! 'पाणे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'भूए' त्ति वत्त-व्वं सिया, 'जीवे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'सत्ते' त्ति वत्तव्वं सिया, 'विण्णु' त्ति वत्तव्वं सिया, 'वेए' त्ति वत्तव्वं सिया; पाणे, भूए, जीवे, सत्ते, विण्णू, वेदे त्ति वत्तव्वं सिया।

१५ प्रश्न-से केणट्ठेणं 'पाणे' त्ति वत्तव्वं सिया, जाव-'वेए' त्ति वत्तव्वं सिया ?

१५ उत्तर-गोयमा ! जम्हा आणमइ वा, पाणमइ वा, उस्ससइ वा, णीससइ वा तम्हा 'पाणे' त्ति वत्तव्वं सिया। जम्हा भूते, भवति, भविस्सति य तम्हा 'भूए' त्ति वत्तव्वं सिया। जम्हा जीवे जीवइ, जीवत्तं, आउयं च कम्मं उवजीवइ तम्हा 'जीवे' त्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा सत्ते सुभाऽसुभेहिं कम्मेहिं तम्हा 'सत्ते' त्ति वत्तव्वं सिया। जम्हा तित्त-कडु-कसायं-ऽबिल-महुरे रसे जाणइ तम्हा 'विन्नु' त्ति वत्तव्वं सिया। वेदेइ य सुह-दुक्खं तम्हा 'वेए' त्ति वत्तव्वं सिया,

से तेणट्ठेणं पाणे त्ति वत्तव्वं सिया, जाव-वेए त्ति वत्तव्वं सिया।

विशेष शब्दों के अर्थ-मडाई-मृतादी अर्थात् प्रासुक-भोजी, णिट्ठियट्ठे-निष्ठितार्थ, इत्थत्थं-यहाँ, मनुष्यभवादि रूप, विण्णू-विज्ञ, निरुद्धभवे-भव का अवरोध करने वाला, निरुद्धभवपवंचे-भव-प्रपञ्च का निरोध करना, पहीणसंसारे-ससार क्षीणकरना, वोच्छिन्नसंसार-ससार का छेदन करना।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसने संसार का निरोध नहीं किया है, संसार के प्रपञ्चों का निरोध नहीं किया है, जिसका संसार क्षीण नहीं हुआ है, जिसका संसार वेदनीय कर्म क्षीण नहीं हुआ है, जिसका संसार व्युच्छिन्न नहीं हुआ है, जिसका संसार वेदनीय व्युच्छिन्न नहीं हुआ है, जो निष्ठितार्थ-प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है, जिसका कार्य समाप्त नहीं हुआ है, ऐसा मृतादी अनगार क्या फिर मनुष्यभव आदि भावों को प्राप्त होता है ?

३१३ उत्तर-हे गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला निर्ग्रन्थ, फिर मनुष्यभव आदि भावों को प्राप्त होता है।

१४ प्रश्न-पूर्वोक्त निर्ग्रन्थ के जीव को किस शब्द से कहना चाहिए ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! उसे कदाचित् 'प्राण' कहना चाहिए, कदाचित् 'भूत' कहना चाहिए, कदाचित् 'जीव' कहना चाहिए, कदाचित् 'सत्त्व' कहना चाहिए, कदाचित् 'विज्ञ' कहना चाहिए, कदाचित् 'वेद' कहना चाहिए और कदाचित् 'प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, विज्ञ और वेद' कहना चाहिए।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! उसे 'प्राण' कहना चाहिए यावत् 'वेद' कहना चाहिए, इसका क्या कारण है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! पूर्वोक्त निर्ग्रन्थ का जीव, बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेता है और छोड़ता है, इसलिए उसे 'प्राण' कहना चाहिए। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य काल में रहेगा, इसलिए उसे 'भूत' कहना चाहिए। वह जीता है, जीवत्व और आयुष्य कर्म का अनुभव करता है, इसलिए उसे 'जीव' कहना चाहिए। वह शुभ और अशुभ कर्मों से संबद्ध है,

इसलिए उसे 'सत्त्व' कहना चाहिए। वह तिक्त (तीखा), कडुआ, कषैला, खट्टा और मीठा इन रसों को जानता है, इसलिए उसे 'विज्ञ' कहना चाहिए। वह सुख दुःख को वेदता है-अनुभव करता है, इसलिए उसे 'वेद' कहना चाहिए। इसलिए हे गौतम ! पूर्वोक्त निर्ग्रन्थ का जीव 'प्राण यावत् वेद' कहलाता है।

विवेचन-पहले के प्रकरण में यह कहा गया है कि वायुकाय बारबार वायुकाय में उत्पन्न होती है। इसी प्रकार क्या किसी मुनि की भी संसार चक्र की अपेक्षा बारबार वही उत्पत्ति होती है ? इस बात को बतलाते हुए कहा गया है-

'मडाई' शब्द की संस्कृत छाया 'मृतादी' होती है जिसका अर्थ है-'मृत' अर्थात् निर्जीव। 'अदी' अर्थात् 'खाने वाला'। तात्पर्य यह है कि-प्रासुक और एषणीय पदार्थ को खाने वाला निर्ग्रन्थ-साधु 'मडाई' कहलाता है। इसके विशेषण दिये गये हैं-'णो णिरुद्ध-भवे' अर्थात् जिसने आगामी जन्म को रोका नहीं है-जो चरम शरीरी नहीं है। 'णो णिरुद्धभवपवंचे' अर्थात् जिसने संसार के विस्तार को रोका नहीं है, अपितु जिसको संसार में अभी अनेक जन्म करने बाकी हैं। 'णो पहीणसंसारे' जिसका चार गति में भ्रमण रूप संसार क्षीण नहीं हुआ है। 'णो पहीणसंसार वेयणिज्जे'-जिसका संसार वेदनीय कर्म क्षीण नहीं हुआ है। 'णो वोच्छिण्ण संसारे' जिसको चार गति रूप संसार में अनेक बार परिभ्रमण करना है। 'णो वोच्छिण्ण संसार वेयणिज्जे'-चार गतिरूप ससार में अनेक बार परिभ्रमण करने रूप कर्म क्षीण नहीं हुआ है। 'णो णिट्ठियट्ठे'-जिसका प्रयोजन समाप्त नहीं हुआ है अर्थात् जिसका प्रयोजन अधूरा है। 'णो णिट्ठियट्ठकरणिज्जे' अर्थात् जिसके कार्य निष्ठितार्थ (पूरे) नहीं हुए हैं, ऐसे मुनि को पहले अनेक बार मनुष्य भव आदि प्राप्त हुए थे, परन्तु इस भव में शुद्ध चारित्र की प्राप्ति होने से मुक्त होने का अवसर है, फिर भी वह अनेक बार नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति रूप चतुर्गति संसार में परिभ्रमण करता है।

'इत्यत्थं' के स्थान पर 'इत्यत्तं' ऐसा पाठान्तर भी है। जिसका तात्पर्य यह है कि क्रोधादि कषाय के उदय से चारित्र से पतित हुए साधु को संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है। जैसा कि कहा है-

जइ उवसंतकसाओ लहइ अणंतं पुणो वि पडिवायं।
ण हु भे विससियव्वं, थेवे वि कसायसेसम्मि॥

अर्थात्-जिसके क्रोधादि कषाय उपशान्त हो गये हैं, ऐसा जीव फिर भी अनन्त प्रतिपात को प्राप्त होता है। इसलिए कषाय की मात्रा थोड़ी सी भी बाकी रहे, तो मोक्षा-

भिलाषी प्राणी को विश्वस्त नही हो जाना चाहिए अर्थात् उसे प्रमादी नही बन जाना चाहिए।

ससार चक्र में परिभ्रमण करता हुआ मुनि का जीव, भिन्न भिन्न विवक्षा से 'प्राण', भूत, जीव और सत्त्व आदि शब्दो से कहा जाता है। जब इनमें से एक एक धर्म की विवक्षा की जाती है तब एक समय मे एक शब्द द्वारा कहा जाता है और जब एक साथ सब धर्मों की विवक्षा की जाती है तब एक साथ 'प्राण, भूत, जीव, सत्त्व आदि सभी शब्दों द्वारा कहा जाता है।

१६ प्रश्न-मडाई णं भंते! नियंठे निरुद्धभवे, निरुद्धभवपवंचे, जाव-निट्ठियट्ठकरणिज्जे णो पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ?

१६ उत्तर-हंता गोयमा! मडाई णं नियंठे जाव-नो पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ।

१७ प्रश्न-से णं भंते! किं वत्तव्वं सिया?

१७ उत्तर-गोयमा! 'सिद्धे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'बुद्धे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'मुत्ते' त्ति वत्तव्वं सिया, 'पारगए' त्ति वत्तव्वं सिया, 'परंपरगए' त्ति वत्तव्वं सिया; 'सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिनिव्वुडे, अंतकडे, सव्वदुक्खप्पहीणे' त्ति वत्तव्वं सिया।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

विशेष शब्दो के अर्थ-सिद्धे-सिद्ध, बुद्धे-सर्वज्ञ, मुत्ते-मुक्त=छुटा हुआ, पारगए-संसार पारंगत, परंपरगए-अनुक्रम से अर्थात् एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, इस तरह अनुक्रम से संसार के पार पहुँचे हुए। परिनिव्वुडे-सताप से रहित होकर, निर्वाण प्राप्त, अंतकडे-दु.खों का अन्त करने वाला।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन्! जिसने संसार का निरोध किया है, जिसने

संसार के प्रपञ्च का निरोध किया है यावत् जिसका कार्य समाप्त हुआ है, ऐसा मृतादी (प्रासुक भोजी) अनगार क्या फिर मनुष्यभव आदि भावों को प्राप्त नहीं होता है ?

१६ उत्तर-हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला मृतादी अनगार फिर मनुष्यभव आदि भावों को प्राप्त नहीं होता है ।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रन्थ के जीव को किस शब्द से कहना चाहिए ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रन्थ का जीव, 'सिद्ध' कहलाता है, 'बुद्ध' कहलाता है, 'मुक्त' कहलाता है, 'पारगत-संसार के पार पहुंचा हुआ' कहलाता है, 'परंपरागत-अनुक्रम से संसार के पार पहुंचा हुआ' कहलाता है। वह 'सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत, अन्तकृत, सर्वदुःखप्रहीण' कहलाता है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर भगवान् गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करते हैं और वन्दना नमस्कार करके तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।

विवेचन-पूर्वोक्त विशेषणों से विपरीत विशेषणो वाला अर्थात् जिसने आगामी भव को रोक दिया है और अन्य भवों के विस्तार को रोक दिया है ऐसा चरमशरीरी निर्ग्रन्थ 'सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, पारगत, परम्परागत, परिनिर्वृत्त, अन्तकृत, सर्वदुःखप्रहीण आदि शब्दो से कहा जाता है ।

आर्य स्कन्दक

१८-तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ, गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ; पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ । तेणं कालेणं तेणं

समए णं कयंगला नामं नगरी होत्था । वण्णओ । तीसे णं कयं-गलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए छत्तपलासए णामं चेइए होत्था । वण्णओ । तए णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाण-दंसणधरे जाव-समोसरणं । परिसा निग्गच्छइ । तीसे णं कयंगलाए नयरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था । वण्णओ । तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अन्तेवासी खंदए णामं कच्चाय-णस्सगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ । रिउव्वेद-जजुव्वेद-सामवेद-अह-व्वणवेद, इतिहासपंचमाणं, निघंटुछट्ठाणं, चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं-सरहस्साणं, सारए, वारए, धारए, पारए, सडंगवी, सट्ठितंतविसारए, संखाणे, सिक्खाकप्पे, वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे, अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिव्वायएसु नयेसु सुपरिनिट्ठिए या वि होत्था ।

विशेष शब्दों के अर्थ-अंतेवासी-शिष्य, कच्चायणस्सगोत्ते-कात्यायन गोत्री, परि-व्वायगे-परिव्राजक, परिवसइ-रहता था, निघंटु-कोश का नाम, संगोवंगाणं-अंग उपांग सहित, सरहस्साणं-रहस्य वाले, सारए-स्मरण कराने वाला, वारए-रोकने वाला, मोड़ने वाला, धारए-याद रखने वाला, पारए-पारंगत, सडंगवी-छह अंगों का ज्ञाता, सट्ठितंत-विसारए-षष्ठितन्त्र विशारद, संखाणे-गणित शास्त्र में, सिक्खाकप्पे-शिक्षाकल्प, वागरणे -व्याकरण मे, सुपरिनिट्ठिए-निपुण ।

भावार्थ-१८-एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने राजगृह नगर के गुणशील चैत्य (बगीचे) से विहार किया । वहाँ से विहार कर, वे जनपद में विचरने लगे ।

उस काल उस समय में कृतगंला नाम की नगरी थी । उसका वर्णन

करना चाहिए। उस कृतंगला नगरी के बाहर उत्तर और पूर्व दिशा के बीच में अर्थात् ईशान कोण में 'छत्रपलाशक' नाम का चैत्य था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहां किसी समय उत्पन्न हुए केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। यावत् भगवान् का समवसरण हुआ। परिषद् (जनता) धर्मोपदेश सुनने के लिए गई।

उस कृतंगला नगरी के पास में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उस श्रावस्ती नगरी का वर्णन करना चाहिए। उस श्रावस्ती नगरी में कात्यायन गोत्री, गर्दभाल नामक परिव्राजक का शिष्य 'स्कन्दक' नामका परिव्राजक (तापस) रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, इन चार वेदों, पांचवां इतिहास, छठा निघण्टु नाम का कोश, इन सब का अंगोपांग सहित रहस्य का जानकार था। वह इनका 'सारक' (स्मारक) अर्थात् इनको पढ़ाने वाला था, इसलिए इनका प्रवर्त्तक था अथवा जो कोई वेदादि को भूल जाता था उसको वापिस याद कराता था, इसलिए वह उनका 'स्मारक' था। वह 'वारक' था अर्थात् जो कोई दूसरे लोग वेदादि का अशुद्ध उच्चारण करते थे, तो उनको रोकता था, इसलिए वह 'वारक' था। वह 'धारक' था अर्थात् पढ़े हुए वेदादि को नहीं भूलने वाला था अपितु उनका अच्छी तरह धारण करने वाला था। वह वेदादि का 'पारक'—पारंगत था। छह अंगों का ज्ञाता था। षष्ठितन्त्र (कापिलीय शास्त्र) में विशारद (पण्डित) था। वह गणित शास्त्र, शिक्षा शास्त्र, आचार शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, इन सब शास्त्रों में तथा दूसरे बहुत से ब्राह्मण और परिव्राजक सम्बन्धी नीति शास्त्रों में और दर्शन शास्त्रों में बड़ा चतुर था।

विवेचन—पहले के प्रकरण में संयमी साधु की संसार हानि वृद्धि तथा सिद्धत्व आदि का वर्णन किया गया है। अब पूर्वोक्त बात तथा दूसरी बातों को बताने के लिये स्कन्दक मुनि के चरित्र का वर्णन किया गया है।

स्कन्दक मुनि पहले गर्दभाल नामक परिव्राजक के शिष्य थे। वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेद, इन चार वेदो का तथा इतिहास (पुराण) और निघण्टु नामक कोश,

इनके ज्ञाता थे। वेद के छह अंग होते हैं, यथा–शिक्षा,कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र। जो ग्रन्थ वेदों के अर्थ को विस्तारपूर्वक बतलाते हैं, वे वेद के 'उपाग' कहलाते हैं। स्कन्दक परिव्राजक अंग और उपांग सहित वेदों के जानकार थे। इतना ही नही, किंतु वे सारक, वारक, धारक और पारक थे अर्थात् सारक–शिष्यों को पढाने वाला अथवा स्मारक यानी भूले हुए पाठ को याद कराने वाले। वारक अर्थात्–यदि कोई शिष्य अशुद्ध पाठ बोलता हो, तो उसे रोकने वाले। धारक अर्थात् पढी हुई विद्या को सम्यक् प्रकार से धारण करने वाले अथवा अपने पढाये हुए शिष्यों को संयम में सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति कराने वाले। पारक अर्थात् उनके शास्त्रो के पारगामी–शास्त्रों में निपुण। अक्षरों के स्वरूप को बताने वाले शास्त्र को 'शिक्षा' कहते है। परिव्राजकों के आचार को बतलाने वाले शास्त्र को 'कल्प' कहते हैं। शब्द शास्त्र को 'व्याकरण' कहते हैं। कविता के स्वरूप को बतलाने वाले पिंगल आदि ग्रन्थों को 'छन्द' कहते हैं। शब्द की व्युत्पत्ति बतलाने वाले शास्त्र को 'निरुक्त' कहते हैं और निमित्त बतलाने वाले एवं ग्रह आदि बतलाने वाले ग्रन्थ को 'ज्योतिष' कहते है। स्कन्दक परिव्राजक इन सब में तथा ब्राह्मण सम्बन्धी और परिव्राजक सम्बन्धी दर्शन शास्त्रो मे निपुण थे।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिंगलए णामं नियंठे वेसालियसावए परिवसइ। तए णं से पिंगलए णामं नियंठे वेसालियसावए अन्नया कयाइं जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदगं कच्चायणस्सगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे–मागहा! किं सअंते लोए, अणंते लोए? सअंते जीवे, अणंते जीवे? सअंता सिद्धी, अणंता सिद्धी? सअंते सिद्धे, अणंते सिद्धे? केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा? एतावं ताव आयक्खाहि। वुच्चमाणे एवं।

विशेष शब्दों के अर्थ–वेसालियसावए–वैशालिक श्रावक अर्थात् भगवान् महावीर के

वचनों को सुनने वाला, मागहा-हे मागध !, आयक्खाहि-कह=बतला ।

भावार्थ-उसी श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक अर्थात् भगवान् महावीर स्वामी के वचनों को सुनने में रसिक पिंगल नाम का निर्ग्रन्थ था । एक समय वह वैशालिक श्रावक पिंगल नाम का निर्ग्रन्थ (साधु) कात्यायन गोत्री स्कन्दक तापस के पास आया और उसने आक्षेप पूर्वक स्कन्दक परिव्राजक से इस प्रकार पूछा कि-हे मागध ! (मगध देश में जन्मे हुए) १ क्या लोक सान्त (अन्त वाला) है ? या अनन्त (अन्त रहित) है ? २ क्या जीव सान्त है ? या अनन्त है ? ३ क्या सिद्धि सान्त है ? या अनन्त है ? ४ क्या सिद्ध सान्त है ? या अनन्त हैं ? ५ किस मरण से मरता हुआ जीव, संसार बढ़ाता है और किस मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है ?

विवेचन-उस स्कन्दक परिव्राज के समीप भ० महावीर की वाणी सुनने के रसिक पिंगल नाम के निर्ग्रन्थ आये । पिंगल निर्ग्रन्थ के मन में निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रति गाढ़ श्रद्धा थी । वे सोचते थे कि निर्ग्रन्थ प्रवचन के समान अन्यतीर्थियों के प्रवचन है ही नही । निर्ग्रन्थ प्रवचन की अपूर्वता का परिचय देने के लिए वे परिव्राजक सम्प्रदाय के उद्भट विद्वान् स्कन्दकजी के पास आये और उपरोक्त पांच प्रश्न पूछे । इन प्रश्नों के अन्तर में कल्याणकारी तत्त्वज्ञान समाया हुआ था ।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं, वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए, कंखिए, वितिगिच्छिए, भेदसमावन्ने, कलुससमावन्ने णो संचाएइ पिंगलयस्स नियंठस्स, वेसालियसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ । तए णं से पिंगलए नियंठे, वेसालीसावए खंदयं कच्चायणसगोत्तं दोच्चं पि, तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छे-मागहा ! किं सअंते लोए, जाव-केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा, हायइ वा ?

एतावं ताव आइक्खाहि। वुच्चमाणे एवं, तए णं से खंदए कच्चा-यणसगोत्ते पिंगलएणं णियंठेणं वेसालीसावएणं दोच्चं पि, तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए, कंखिए, वितिगच्छिए, भेदस-मावन्ने कलुससमावन्ने णो संचाएइ पिंगलस्स णियंठस्स, वेसालि-यसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइतुं, तुसिणीए संचिट्ठइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-मक्खेवं-आक्षेप पूर्वक, भेदसमावन्ने-मतिभ्रंश हुआ, कलुस-समावन्ने-क्लेशित हुआ, णो संचाएइ-शक्ति नही, पमोक्खमक्खाइ-उत्तर देकर प्रश्न से मुक्त होना, तुसिणिए-चुप रहना, संचिट्ठइ-स्तब्ध होना।

भावार्थ-वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने ये प्रश्न स्कन्दक परिव्रा-जक से एक बार, दो बार, तीन बार पूछे, किन्तु स्कन्दक परिव्राजक इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दे सका और मौन रहा। उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि-इन प्रश्नों का उत्तर यह है अथवा दूसरा है? उसके मन में कांक्षा उत्पन्न हुई कि-मैं इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दूं? मुझे इन प्रश्नों का उत्तर कैसे आवे? उसके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई कि-मैं जो उत्तर दूं उससे प्रश्न करने वाले को संतोष होगा या नहीं? उसकी बुद्धि में भेद उत्पन्न हुआ कि-अब मैं क्या करूं? उसके मन में क्लेश (खिन्नता) उत्पन्न हुआ कि-इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। जब स्कन्दक परिव्राजक कुछ भी उत्तर नहीं दे सका तब पिंगलक निर्ग्रन्थ वहाँ से चला गया।

विवेचन-प्रश्नों को सुनते ही स्कन्दकजी स्तम्भित रह गये। उनके सामने ये प्रश्न नये ही थे। इस विषय में उन्होने पहले कभी निर्णय किया ही नही था। अतएव उनसे उत्तर नही दिये जा सके। वे स्वय सन्देहशील बनगये। वे पहले निर्णय पर पहुँचना चाहते थे। विना निर्णय किये उत्तर देने के लिए वे तय्यार नही थे। इसलिए वे चुप रह गये।

तए णं सावत्थीए नयरीए सिंघाडग, जाव-पहेसु महया जण-

संमद्दे इ वा, जणवूहे इ वा, परिसा निग्गच्छइ । तए णं तस्स खंदयस्सकच्चायणस्सगोत्तस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे कयंगलाए नयरीए बहिया छत्तपलासए चेइए संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तं गच्छामि णं, समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि । सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता, नमंसित्ता, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता, कल्लाणं, मंगलं देवयं, चेइयं पज्जुवासित्ता, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिदंडं च कुंडियं च कंचणियं च करोडियं च भिसियं च केसरियं च छण्णालयं च अंकुसयं च पवित्तयं च गणेत्तियं च छत्तयं च वाहणाओ य पाउयाओ य धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गण्हित्ता परिव्वायावसहाओ पडिनिक्खमइ । पडिनिक्खमित्ता तिदंड-कुंडिय-कंचणिय-करोडिय-भिसिय-केसरिय-छण्णालय-अंकुसय-पवित्तय-गणेत्तियहत्थगए, छत्तोवाणहसंजुत्ते, धाउरत्तवत्थपरिहिए सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ । निग्गच्छित्ता जेणेव कयंगला नयरी, जेणेव छत्तपलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

सिंघाडग-सिंघाड़े के आकार वाला, जहाँ तीन मार्ग मिलते हों, जणसंमद्दे-जनसम्मर्द =मनुष्यों का झुण्ड, जणवूहे-जनव्यूह=मनुष्यों का व्यूह रूप मे एकत्रित होना, अंतिए-समीप सोच्चा-सुनकर, निसम्म-सुनकर, एयारूवे-इस प्रकार, अज्झत्थिए-आध्यामिक, चिंतिए-स्मरण हुआ, पत्थिए-अभिलाषा हुई, मणोगए-मन मे हुआ, संकप्पे-संकल्प, समुप्पज्जित्था -उत्पन्न हुआ, सेयं-श्रेय=कल्याणरूप, तिदंडं-त्रिदण्ड, कुंडियं-कुण्डी, कंचणियं-काञ्चनिका =रुद्राक्ष की माला, करोडियं-करोटिका=एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन, भिसियं-भृशिका =एक प्रकार का आसन, केसरियं-केशरिका=बर्तनो को पोछने के लिए वस्त्र का टुकड़ा, छण्णालयं-षट्नालक=त्रिकाष्ठिका-त्रिगडी, अंकुसयं-अकुश=वृक्षो पर से पत्ते गिराने का एक प्रकार का साधन, पवित्तयं-पवित्रक=अंगुठी, गणेत्तियं-गणेत्रिका=हाथ की कलाई पर बाँधने का एक आभरण विशेष, छत्तयं-छत्र, वाहणाउ-वाहन, पाउयाओ-पादुका=खड़ाऊँ, धाउरत्ताओ-धातुरक्त=शाटिका, दच्छसि-देखेगा, पहारेत्थ गमणाए-आने का विचार किया है, हव्वं-शीघ्र।

भावार्थ-उस समय श्रावस्ती नगरी में जहाँ तीन मार्ग, चार मार्ग और बहुत मार्ग मिलते हैं, वहाँ लोग परस्पर इस प्रकार बातें करते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कृतांगला नगरी के बाहर छत्रपलाश उद्यान में पधारे हैं। लोग, भगवान् को वन्दना करने के लिए जाने लगे।

बहुत-से लोगों के मुंह से भगवान् महावीर स्वामी के आगमन की बात सुन कर कात्यायन गोत्री उस स्कन्दक तापस के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कृतांगला नगरी के बाहर छत्रपलाशक नामक उद्यान में तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं। इसलिए मैं उनके पास जाऊँ, उन्हें वन्दना नमस्कार करूँ, सत्कार सन्मान दूं, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, और चैत्यरूप भगवान् महावीर स्वामी की पर्युपासना करूँ, यह सब करके मैं उनसे अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, व्याकरण आदि पूछूं ? यह मेरे लिए कल्याणकारी है। ऐसा विचार कर स्कन्दक तापस जहाँ परिव्राजकों का मठ है वहाँ आया। वहाँ आकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्ष की माला, करोटिका (एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन), आसन, केशरिका (बर्तनों को साफ करने के लिए कपड़ा), त्रिगड़ी, अंकुशक, अंगूठी, गणेत्रिका, छत्र,

पगरखी, पादुका (खड़ाऊँ), इन तापस के उपकरणों को लेकर परिव्राजकों के मठ से निकला। निकल कर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्ष की माला, करोटिका भृशिका (आसन विशेष) केशरिका, त्रिगडी, अंकुश अंगूठी और गणेत्रिका इनको हाथ में लेकर छत्र और पगरखी से युक्त होकर तथा गेरुए वस्त्र पहन कर श्रावस्ती नगरी के मध्य में होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जाने के लिए कृतांगला नगरी के छत्रपलाशक उद्यान की तरफ रवाना हुआ।

विवेचन-स्कन्दकजी के मन मे उन प्रश्नो के उत्तर जानने की जिज्ञासा बस रही थी। जब उन्होने सुना कि भ० महावीर स्वामी कृतगला नगरी के बाहर विराज रहे है, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। जनता के मुह से भगवान् की प्रशंसा सुनकर उनके मन मे भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न हुई। उन्हे विश्वास होगया कि मेरी जिज्ञासा की तृप्ति भगवान् महावीर से ही होगी। वे भगवान् के समीप पहुंचने के लिए कृतसकल्प हुए और अपने आश्रम मे आये। वहा से अपने उपकरण लेकर भगवान् के निकट पहुंचने के लिए रवाना हुए।

'गोयमा'! इति समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासीः-दच्छसि णं गोयमा! पुव्वसंगयं। कं णं भंते? खंदयं नाम। से काहे वा, कहं वा, केवच्चिरेण वा? एवं खलु गोयमा! ते णं काले णं, ते णं समये णं सावत्थी नामं नगरी होत्था। वण्णओ। तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणस्सगोत्ते परिव्वायए परिवसइ। तं चेव, जाव-जेणेव ममं अंतिए, तेणेव पहारेत्थ गमणाए। से अदूरागते, बहुसंपत्ते, अद्धाणपडिवन्ने, अंतरा पहे वट्टइ। अज्जेव णं दच्छसि गोयमा! 'भंते?' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ,

वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी:-पहू णं भंते ! खंदए कच्चायणसगोत्ते देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता णं, अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ? हंता, पभू । जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेइ, तावं च णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तं देसं हव्वं आगए ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पुव्वसंगयं-पूर्व का सम्बन्धी, केवच्चिरेण-कुछ काल के बाद, अदूरागते-निकट आया, बहुसंपत्ते-अति निकट आया, अद्धाणपडिवन्ने-मार्ग पर चलता हुआ, अंतरापहे-अन्तर पथ, वट्टइ-वर्त्त रहा है ।

भावार्थ-इधर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री इन्द्रभूति अणगार से इस प्रकार कहा कि-हे गौतम ! आज तू अपने पूर्व के साथी को देखेगा । तब गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् ! मैं आज अपने किस पूर्व साथी को देखूंगा ? तब भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! तू आज अपने 'स्कन्दक परिव्राजक' को देखेगा । तब गौतम स्वामी ने पूछा-हे भगवन् ! मैं उसे कब, किस तरह से और कितने समय बाद देखूँगा ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! उस काल उस समय में श्रावस्ती नगरी थी । वहां गर्दभाली का शिष्य कात्यायन गोत्री स्कन्दक नाम का परिव्राजक रहता था । इसका पूरा विवरण पहले के अनुसार जान लेना चाहिये । यावत् वह अपने स्थान से रवाना होकर मेरे पास आ रहा है । बहुत-सा मार्ग पार कर निकट पहुंच गया है । मार्ग में चल रहा है । हे गौतम ! तू आज ही उसे देखेगा ।

गौतम स्वामी ने पूछा-हे भगवन् ! वह किस लिए आता है ? भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! पिंगलक निर्ग्रन्थ ने उससे पांच प्रश्न पूछे थे । वह उनका उत्तर नहीं दे सका । उसके मन में शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुई । इसलिये उन प्रश्नों का उत्तर पूछने के लिये वह मेरे पास आ रहा है ।

फिर गौतम स्वामी ने वन्दना नमस्कार करके पूछा कि-हे भगवन् ! क्या स्कन्दक आपके पास दीक्षा लेगा ? भगवान् ने फरमाया कि हाँ, गौतम ! वह मेरे पास दीक्षा लेगा।

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गौतम स्वामी से इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतने में कात्यायन गौत्री स्कन्दक परिव्राजक उस प्रदेश में आया।

विवेचन-भगवान् ने स्कन्दक परिव्राजक के आने की बात गौतम स्वामी से कही। गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने उसके आने का कारण बताया और यह भी बताया कि स्कन्दक मुण्डित होकर प्रव्रजित होगा। यह बात चल ही रही थी कि इतने में स्कन्दक परिव्राजक उस स्थान के निकट पहुंच गये।

तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं अदूरागयं जाणित्ता खिप्पामेव अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता खिप्पामेव पच्चुवगच्छइ। जेणेव खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं एवं वयासी-हे खंदया ! सागयं खंदया ! सुसागयं खंदया ! अणुरागयं खंदया ! सागयमणुरागयं खंदया ! से णूणं तुमं खंदया सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं णामं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए-मागहा ! किं सअंते लोए, अणंते लोए ? तं चेव जेणेव इहं, तेणेव हव्वमागए, से णूणं खंदया। अट्ठे समट्ठे ? हंता, अत्थि। तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी-से केस णं गोयमा ! तहारूवे णाणी वा, तवस्सी वा ? जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वं अक्खाए, जओ णं तुमं जाणसि ? तए णं से भगवं गोयमे खंदयं कच्चाय-

णस्सगोत्तं एवं वयासी–एवं खलु खंदया ! मम धम्मायरिए, धम्मोवएसए, समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाण-दंसणधरे, अरहा जिणे केवली तीय-पच्चुप्पन्न-मणागयवियाणए, सव्वण्णू, सव्वदरिसी, जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं अहं जाणामि खंदया ! तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी–गच्छामो णं गोयमा ! तव धम्मायरियं, धम्मोवएसयं, समणं भगवं महावीरं वंदामो, नमंसामो, जाव–पज्जुवासामो। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं।

विशेष शब्दों का अर्थ–पच्चुवगच्छइ–सामने जाता है, सागयं–स्वागत, सुसागयं–सुस्वागत, अणुरागयं–अन्वागत, सागयमणुरागयं–स्वागत अन्वागत, तीयपच्चुप्पण्णमणागयवियाणए–भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता, अब्भुट्ठेइ–खड़ेहुए, खिप्पामेव–शीघ्रही, णूणं–अवश्यही, रहस्सकडे–छुपाईहुई, अक्खाए–कहदिया, धम्मायरिए–धर्माचार्य, धम्मोवएसए–धर्मोपदेशक।

भावार्थ–इसके बाद कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजक को पास आया हुआ देख कर गौतम स्वामी अपने आसन से उठे और स्कन्दक परिव्राजक के सामने गये। फिर स्कन्दक परिव्राजक से कहा कि–हे स्कन्दक ! स्वागत है, सुस्वागत है, तुम्हारा आना अच्छा हुआ, तुम्हारा आना भला हुआ।

फिर गौतम स्वामी ने कहा कि–हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने तुमसे पांच प्रश्न पूछे। तुम उनका उत्तर नहीं दे सके। तुम्हारे मन में शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुए। तुम उन प्रश्नों के उत्तर पूछने के लिए यहाँ भगवान् के पास आये हो। हे स्कन्दक ! क्या यह बात सत्य है ? स्कन्दक ने कहा–हाँ, गौतम ! यह बात सत्य है। परन्तु हे गौतम ! मुझे यह बतलाओ कि–कौन ऐसा ज्ञानी या तपस्वी पुरुष है जिसने मेरे मन की

गुप्त बात तुमसे कह दी ? और तुम मेरे मन की गुप्त बात जान गए।

तब गौतम स्वामी ने कहा कि-हे स्कन्दक ! धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक हैं, अरिहन्त हैं, जिन हैं, केवली हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। उन्होंने तुम्हारे मन में रही हुई गुप्त बात मुझ से कही है। इसलिए हे स्कन्दक ! मैं तुम्हारे मन की गुप्त बात जानता हूँ।

इसके बाद कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजक ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा कि-हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास चलें, उन्हें वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें ?

तब गौतम स्वामी ने कहा कि-हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु इस कार्य में विलम्ब मत करो।

विवेचन-स्कन्दक परिव्राजक को आते हुए देख कर गौतम स्वामी अपने आसन से खड़े हुए और सामने गये। इसका कारण यह है कि यद्यपि उस समय स्कन्दक परिव्राजक असयत था, तथापि भविष्यत् में वह साधु होने वाला है, इसलिए गौतम स्वामी को उसके प्रति राग भाव उत्पन्न हुआ। अतः वे अपने आसन से खड़े हुए और सामने गये। दूसरी बात यह है कि भगवान् ने स्कन्दक सम्बन्धी जो बात गौतम स्वामी से कही थी उस बात को कहने से भगवान् का ज्ञानातिशय प्रकट होगा और स्कन्दक के मन में भगवान् के प्रति बहुमान प्रकट होगा। इसलिए गौतम स्वामी अपने आसन से खड़े हुए और सामने गये तथा स्कन्दक के आगमन का स्वागत किया।

ज्ञानी अपने ज्ञान बल से और तपस्वी अपने तपोबल से अथवा तपस्वी की देव सेवा करते है, अत. देव की सहायता से परोक्ष बात को एवं दूसरे के मन में रही हुई गुप्त बात को जान लेते है। इसीलिए स्कन्दक परिव्राजक ने गौतम स्वामी से यह पूछा था कि-हे गौतम ! आपके यहाँ कौन ऐसा ज्ञानी या तपस्वी है जिसने मेरे मन की गुप्त बात जानली है ? इसके उत्तर में गौतम स्वामी ने कहा कि-मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। इसलिए हे स्कन्दक ! उन्होने तुम्हारे मन की गुप्त बात को जान ली।

तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणस्सगोत्तेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए। ते णं काले णं, ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे वियट्टभोई या वि होत्था। तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं, सिंगारं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं अणलंकियविभूसियं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणं चिट्ठइ। तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्ट-भोइस्स सरीरयं ओरालं जाव-अईव अईव उवसोभेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणसिए हरि-सवसविसप्पमाणहियए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ जाव-पज्जुवासइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-वियट्टभोई-व्यावृत्तभोजी=प्रतिदिन आहार करने वाले, ओराणं-उदार, सिगारं-शृंगारित हो वैसा, कल्लाणं-कल्याणरूप, श्रेयस्कर, सिवं-शिवरूप, अणलंकियविभूसियं-बिना अलंकार के भी विभूषित, लक्खण-लक्षण, वंजण-तिल मस आदि व्यजन, गुणोववेअं-गुणयुक्त, सिरीए-शोभारूप लक्ष्मी, अईव-अत्यन्त, उवसोभेमाणे-शोभायमान, हट्ठतुट्ठ-विष्मयपूर्वक=अत्यन्त सतुप्ट, चित्तमाणंदिए-आनन्दित मनवाला, णंदिए-हर्षित, पीईमणे-प्रीतियुवत मनवाला, परमसोमणसिए-परम सोमनस्ययुक्त, हरिसवसविप्प-माणहियए-हर्षातिरेक से विशाल बने हुए हृदय वाला।

भावार्थ-इसके बाद गौतम स्वामी स्कन्दक परिव्राजक के साथ जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहाँ जाने लगे। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी व्यावृत्तभोजी (प्रतिदिन भोजन करने वाले) थे। इसलिए

उनका शरीर उदार (प्रधान) कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, बिना अलंकार के ही शोभित, उत्तम लक्षण व्यञ्जन और गुणों से युक्त था और अत्यन्त शोभित हो रहा था। अतः उन्हें देखकर स्कन्दक परिव्राजक को अत्यन्त हर्ष हुआ, संतोष हुआ, आनन्द हुआ। इस प्रकार संतुष्ट, आनन्दित और हर्षित होता हुआ स्कन्दक परिव्राजक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार वन्दना नमस्कार कर-पर्युपासना करने लगा।

विवेचन-भगवान् का एक विशेषण 'वियट्टभोई' दिया है। जिसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार दिया है;-

"वियट्टभोइ-व्यावृत्ते व्यावृत्ते सूर्ये भुङ्क्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी-प्रतिदिन भोजी इत्यर्थः", अर्थात् सूर्य के वापिस लौटने पर आहार लेने वाले अर्थात् प्रतिदिन आहार करने वाले। जिस समय स्कन्दक परिव्राजक ने भगवान् को देखा, उन दिनों भगवान् उपवास आदि तपस्या नहीं करते थे, किन्तु प्रतिदिन आहार करते थे।

भगवान् के शरीर के लिए उदार, कल्याण, शिव आदि विशेषण देते हुए शास्त्रकार ने 'लक्खण वंजण गुणोववेयं' विशेषण भी दिया है। जिसका अर्थ इस प्रकार किया गया है-

जलदोणं अद्धभारं समुहाई समूसिओ उ जो णवओ।
माणुम्माणपमाणं तिविहं खलु लक्खणं एयं॥

अर्थ-एक द्रोण पानी निकले तो मान, आधा भार वजन हो, तो उन्मान और जो पुरुष, मुख की ऊंचाई से नव गुणा ऊंचा हो वह प्रमाण युक्त माना गया है। इस तरह लक्षण तीन प्रकार का है। जैसे जल से भरी हुई एक कुण्डी हो, उसमें समाने योग्य पुरुष को उसमे बिठावे, तो उस कुण्डी में से एक द्रोण (बत्तीस सेर) पानी बाहर निकल जाय तो वह पुरुष 'मानोपेत' कहलाता है। किसी एक पुरुष को एक बड़े तराजू पर तोला जाय और उसका वजन अर्द्धभार (चार हजार तोला) जितना हो, तो वह पुरुष उन्मानोपेत कहलाता है। जिस पुरुष की ऊंचाई अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल प्रमाण हो, तो वह प्रमाणोपेत कहलाता है। इस तरह मान, उन्मान और प्रमाण, यह तीन प्रकार का लक्षण है। शरीर मे जो तिल मस आदि होते हैं वे 'व्यंजन' कहलाते हैं। अथवा जो जन्म से ही स्वाभाविक हो वह 'लक्षण' कहलाता है और पीछे से होने वाले व्यंजन कहलाते हैं। सौभाग्य आदि 'गुण' कहलाते हैं। अथवा लक्षण और व्यंजन रूप गुणों से जो युक्त हो उसे

'लक्षण व्यंजनगुणोपतेत' कहते हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणो से युक्त भगवान् का शरीर था। भगवान् को देखकर स्कन्दक परिव्राजक को अत्यन्त आनन्द हर्ष और संतोष हुआ। भगवान् को विधियुक्त वन्दना करके वह उनकी पर्युपासना करने लगा।

'खंदया !' त्ति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं एवं वयासी-से णूणं तुमं खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं, वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए-मागहा ! किं सअंते लोए, अणंते लोए ? एवं तं चेव जाव-जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वं आगए। से णूणं खंदया ! अयमट्ठे समट्ठे ? हंता, अत्थि।

विशेष शब्दों के अर्थ-वयासी-बोले, लोए-लोक।

भावार्थ-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने स्कन्दक परिव्राजक से कहा कि-हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगलक नाम के निर्ग्रन्थ ने तुम से पांच प्रश्न (लोक सान्त है ? या अनन्त है ? आदि) पूछे। तुम उनका उत्तर नहीं दे सके। इसलिए उन प्रश्नों का उत्तर पूछने के लिए तुम मेरे पास आये हो। हे स्कन्दक ! क्या यह बात सत्य है ?

स्कन्दक ने कहा-हाँ, भगवन् ! यह बात सत्य है।

विवेचन-भगवान् ने आर्य स्कन्दक को सम्बोधकर उनके आनेका कारण बतलाया।

जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-किं सअंते लोए, अणंते लोए०। तस्स वि य णं अयमट्ठे-एवं मए खंदया ! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, तं जहा:-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ। १ दव्वओ णं एगे

लोए सअंते, २ खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पण्णत्ता, अत्थि पुण से अंते। ३ कालओ णं लोए ण कयाइ न आसी न कयाइ न भवइ न कयाइ न भविस्सइ, भविंसु य भवति य भविस्सइ य। धुवे णियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, नत्थि पुण से अंते। ४ भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा गंध-रस-फासपज्जवा अणंता संठाणपज्जवा अणंता गरुयलहुय-पज्जवा अणंता अगरुय लहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते। सेत्तं खंदगा! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते, भावओ लोए अणंते।

विशेष शब्दों के अर्थ-आयामविक्खंभेणं-लम्बाई चौड़ाई, परिक्खेवेणं-परिधि घेरा, धुवे-ध्रुव, णियए-नियत, सासए-शाश्वत, अक्खए-अक्षय, अव्वए-अव्यय, अवट्ठिए-अवस्थित, णिच्चे-नित्य।

भावार्थ-तब भगवान् ने फरमाया कि-हे स्कन्दक! लोक के विषय में तुम्हारे मन में जो यह संकल्प था कि क्या लोक अन्त सहित है? या अंत रहित है? इस विषय में मैंने चार प्रकार का लोक बतलाया है-१ द्रव्यलोक, २ क्षेत्रलोक, ३ काललोक और ४ भावलोक।

१ द्रव्य से लोक एक है, अन्त सहित है। २ क्षेत्र से लोक असंख्यात कोडाकोडी योजन का लम्बा चौड़ा है। असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन की परिधि है। अन्त सहित है। ३ काल से लोक भूतकाल में था, वर्त्तमान काल में है, और भविष्यत् काल में रहेगा। ऐसा कोई काल न था, न है और न होगा, जिसमें लोक न हो। लोक था, है, और रहेगा। लोक ध्रुव है, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय

अवस्थित और नित्य है, अन्त रहित है। ४ भाव से लोक अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त संस्थान पर्यव रूप है, अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप है, अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है। इस प्रकार हे स्कन्दक! द्रव्य लोक अन्त सहित है, क्षेत्रलोक अन्त सहित है, काललोक अन्त रहित है और भावलोक अन्त रहित है। इस प्रकार लोक अंत सहित भी है और अंत रहित भी है।

विवेचन-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय, इन पांच काय रूप लोक है। वह द्रव्य की अपेक्षा एक है और सान्त (अन्त-सहित) है। क्षेत्र की अपेक्षा इस लोक की लम्बाई (आयाम) और चौड़ाई एवं विष्कम्भ (मोटाई) और परिधि असख्यात कोडाकोडी योजन है। काल की अपेक्षा-लोक भूतकाल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य में रहेगा। वह अचल होने से 'ध्रुव' है, वह एक स्वरूप वाला होने से 'नियत' है, सर्वदा होने के कारण वह 'शाश्वत' है, अविनाशी होने के कारण वह 'अक्षत' है। उसके प्रदेश अव्यय होने के कारण 'अव्यय' है। वह अनन्त पर्यायों वाला होने के कारण 'अवस्थित' है। तात्पर्य यह है कि वह नित्य है। भाव से लोक अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त गुरुलघु-स्थूल स्कन्ध (आठ स्पर्शवाले शरीरादि) पर्यायरूप है और अनन्त अगुरुलघु-धर्मास्तिकायादि अरूपी तथा चौफरसी सूक्ष्म स्कन्धादि पर्यायरूप है।

जे वि य ते खंदया! जाव-सअंते जीवे अणंते जीवे तस्स वि य णं अयमट्ठे-एवं खलु जाव-१ दव्वओ णं एगे जीवे सअंते, २ खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण से अंते, ३ कालओ णं जीवे न कयाइ न आसी, जाव-निच्चे, नत्थि पुण से अंते। ४ भावओ णं जीवे अणंता णाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, अणंता चारित्तपज्जवा, अणंता अगुरुलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते, सेत्तं दव्वओ जीवे सअंते, खेत्तओ जीवे सअंते,



कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते।

भावार्थ-हे स्कन्दक ! जीव के विषय में तुम्हारे मन में यह विकल्प हुआ था कि जीव सान्त है, या अनन्त है ? हे स्कन्दक ! मैने जीव के चार भेद कहे हैं -१ द्रव्य जीव, २ क्षेत्र जीव, ३ काल जीव, और ४ भाव जीव। १ द्रव्य से-जीव एक है, अन्त सहित है। २ क्षेत्र से-जीव असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किये है। अन्त सहित है। ३ काल से-जीव नित्य है अर्थात् ऐसा कोई समय नहीं था, न है और न होगा कि जब जीव न रहा हो, यावत् जीव नित्य है, अन्त रहित है। ४ भाव से-जीव के अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय है, अनन्त चारित्र पर्याय हैं, अनन्त अगुरुलघु पर्याय है, अन्त रहित है। इस प्रकार द्रव्य-जीव और क्षेत्र-जीव अन्त सहित है तथा काल-जीव और भाव-जीव अन्त रहित है। इसलिए हे स्कन्दक ! जीव अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।

विवेचन-जीव अनन्त होते हुए भी प्रत्येक जीव अपने अपने द्रव्य की अपेक्षा सान्त, सभी समान रूप से असख्य प्रदेश वाले एवं असंख्य प्रदेशावगाढ है। इस प्रकार जीव अन्त सहित है। कालापेक्षा वह अनादि अनन्त है, सदा सर्वदा रहनेवाला है। और भाव की अपेक्षा ज्ञानादि अनन्त पर्याय युक्त है। अतएव अनन्त है।

जे वि य ते खंदया ! (पुच्छा) इमेयारूवे चिंतिए जाव-किं सअंता सिद्धी, अणंता सिद्धी, तस्स वि य णं अयमट्ठे-मए खंदया ! एवं खलु चउव्विहा सिद्धी पण्णत्ता, तं जहा:-दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। १ दव्वओ णं एगा सिद्धी सअंता, २ खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयण-सहस्साइं दोण्णि य अउणापन्नजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खे-

वेणं, अत्थि पुण से अंते। ३ कालओ णं सिद्धी न कयाइ न आसी, ४ भावओ य जहा लोयस्स तहा भाणियव्वा। तत्थ दव्वओ सिद्धी सअंता, खेत्तओ सिद्धि सअंता, कालओ सिद्धी अणंता, भावओ सिद्धी अणंता।

विशेष शब्दों के अर्थ-सिद्धि-सिद्धशिला, जिसके कुछ ऊपर सिद्ध भगवान् हैं।

भावार्थ-हे स्कन्दक ! सिद्धि (सिद्धशिला) के विषय में तुम्हारे मन में जो विकल्प था उसका समाधान इस प्रकार है-हे स्कन्दक ! मैंने सिद्धि के चार भेद कहे हैं-द्रव्यसिद्धि, क्षेत्रसिद्धि, कालसिद्धि और भावसिद्धि। १ द्रव्य से सिद्धि एक है और अन्त सहित है। २ क्षेत्र से सिद्धि ४५ लाख योजन की लम्बी चौड़ी है। १४२-३०२४९ योजन झाझेरी परिधि है, यह भी अन्त सहित है। ३ काल से सिद्धि नित्य है, अन्त रहित है। भाव से सिद्धि अनन्त वर्ण पर्यायवाली है, अनन्त गन्ध, रस और स्पर्श पर्याय वाली है। अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप है, और अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है। द्रव्य-सिद्धि और क्षेत्र-सिद्धि अन्त वाली है तथा काल-सिद्धि और भाव-सिद्धि अन्त रहित है। इसलिए हे स्कन्दक ! सिद्धि अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।

विवेचन-सिद्धि-वह स्थान जहाँ मुक्तात्माएँ सादि अनन्त काल परमानन्द में लीन रहती है। वह परमसुख का स्थान है। लोक के अग्रभाग के निकट यह स्थान है। अधोलोक के अंतिम छोर पर अशुभ पुद्गलो की अधिकता है, वहा से जितना ऊपर उठा जाय, उतनी ही अशुभ परिणाम मे कमी होती जाती है और शुभ पुद्गलों में वृद्धि होती जाती है। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवो मे क्रमशः शुभ शुभतर हैं। कल्पोत्पन्न से कल्पातीत अधिक प्रशस्त होते है। देवों में सबसे अधिक उत्तम सर्वार्थसिद्ध के देवों के स्थान हैं। अनुत्तर विमान, सभी देवलोको से ऊँचे है। वहाँ का वातावरण बड़ा शान्त, शुभ एवं प्रशस्त है। उससे भी ऊपर सिद्ध स्थान है। उसकी पौद्गलिक उत्तमता-वर्णादि की प्रशस्तता का तो कहना ही क्या ? इससे बढकर प्रशस्त स्थान अन्य कोई भी नही है। इसके कुछ ऊपर सिद्ध भगवान् हैं। इसका वर्णन औपपातिकसूत्र आदि से समझना चाहिए।

जे वि य ते खंदया ! जाव-किं अणंते सिद्धे तं चेव, जाव-१ दव्वओ णं एगे सिद्धे सअंते,२ खेत्तओ णं सिद्धे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे अत्थि पुण से अंते, ३ कालओ णं सिद्धे सादीए अपज्जवसिए, नत्थि पुण से अंते, ४ भावओ णं सिद्धे अणंता णाणपज्जवा अणंता दंसणपज्जवा जाव-अणंता अगुरुलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते; सेत्तं दव्वओ णं सिद्धे सअंते, खेत्तओ णं सिद्धे सअंते, कालओ णं सिद्धे अणंते, भावओ णं सिद्धे अणंते।

विशेष शब्दों के अर्थ-सिद्धे-मुक्तात्मा।

भावार्थ-हे स्कन्दक ! सिद्ध विषयक शंका का समाधान इस प्रकार है-हे स्कन्दक ! मैंने सिद्ध के चार भेद कहे हैं-१ द्रव्यसिद्ध, २ क्षेत्रसिद्ध, ३ कालसिद्ध और ४ भावसिद्ध । १ द्रव्य से-सिद्ध एक है, अन्त सहित है। २ क्षेत्र से-सिद्ध असंख्यात प्रदेश वाले हैं, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किये हैं, अंत सहित है। ३ काल से सिद्ध आदि सहित हैं और अंत रहित हैं। ४ भाव से सिद्ध-अनंत ज्ञान पर्याय रूप हैं, अनंत दर्शन पर्याय रूप हैं, यावत् अनंत अगुरुलघु पर्याय रूप हैं, अंत रहित हैं । अर्थात् द्रव्य से और क्षेत्र से सिद्ध अंत वाले हैं तथा काल से और भाव से सिद्ध अंत रहित हैं । इसलिए हे स्कंदक ! सिद्ध अंत सहित भी हैं और अंत रहित भी हैं।

सिद्ध-मुक्तात्मा, परम विशुद्ध परमात्मा। ये सभी निज आत्म द्रव्य की अपेक्षा एक एवं सान्त है, किन्तु समूहापेक्षा अनन्त है। एक वनस्पतिकाय के अतिरिक्त शेष त्रस और स्थावर जीवों से भी अनन्तगुण। इतने सिद्ध भगवान् हैं।

√ जे वि य ते खंदया ! इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए जाव-समुप्पज्जित्था-केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति

वा, तस्स वि य णं अयमट्ठे-एवं खलु खंदया! मए दुविहे मरणे पन्नत्ते। तं जहाः-बालमरणे य, पंडियमरणे य। से किं तं बाल-मरणे? बालमरणे दुवालसविहे पन्नत्ते। तं जहाः-बलयमरणे, वस-ट्टमरणे, अन्तोसल्लमरणे, तब्भवमरणे, गिरिपडणे, तरुपडणे, जल-प्पवेसे, जलणप्पवेसे, विसभक्खणे, सत्थोवाडणे, वेहाणसे, गिद्धपट्ठे। इच्चेतेणं खंदया! दुवालसविहेणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणं-तेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, तिरिय-मणुय-देव-अणाइयं च णं अणवदग्गं, दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणु-परियट्टइ, सेत्तं मरमाणे वड्ढइ, सेत्तं बालमरणे।

विशेष शब्दों के अर्थ-वड्ढइ-बढ़ता है, हायइ-घटता है, बलयमरणे-बलन्मरण, वसट्टमरणे-वशार्तमरण-तड़पते हुए मरना-विषयवश मरना, अंतोसल्लमरणे-हृदय में शल्य लेकर मरना, तब्भवमरणे-मरकर उसी भव मे उत्पन्न होना, गिरिपडणे-पर्वत से गिरकर मरना, तरुपडणे-वृक्ष से गिरकर मरना, जलप्पवेसे-पानी मे डूबकर मरना, जलणप्पवेसे-अग्नि मे जलकर मरना, विसभक्खणे-विष खाकर मरना, सत्थोवाडणे-शस्त्राघात से मरना, वेहाणसे-फाँसी पर लटक कर मरना, गिद्धपट्ठे-गिद्धादि के खाने से मरना, संजोएइ-सम्बन्ध-जोड़ता है। अणाइय-अनादि, अणवदग्गं-आदि अंत रहित, अणुपरियट्टइ-भ्रमण करता है,

भावार्थ-हे स्कन्दक! तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ था कि कौनसे मरण से मरता हुआ जीव, संसार को बढ़ाता है और कौनसे मरण से मरता हुआ जीव, संसार को घटाता है।

हे स्कन्दक! इसका उत्तर यह है कि-मरण दो प्रकार का बतलाया गया है- १ बालमरण और २ पण्डितमरण। इनमें से बालमरण बारह प्रकार का कहा गया है-१ बलन्मरण, २ वसट्टमरण-वशार्त मरण, ३ अन्तःशल्य मरण,

४ तद्भव मरण, ५ गिरि-पतन मरण, ६ तरु-पतन मरण, ७ जल-प्रवेश मरण, ८ ज्वलन प्रवेश मरण, ९ विष भक्षण मरण, १० सत्थोवाडण (शस्त्रावपाटन) मरण, ११ वेहानस मरण, १२ गिद्धपिट्ठ (गृध्रपृष्ठ) मरण। इन बारह प्रकार के मरण से मरता हुआ जीव, नरक के अनन्त भव बढ़ाता है, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के अनन्त भव बढ़ाता है। वह नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चार गति रूप अनादि अनन्त संसार रूप कान्तार (वन) में बारम्बार परिभ्रमण करता है। अर्थात् इन बारह प्रकार के बालमरण द्वारा मरता हुआ जीव, अपने संसार भ्रमण को बढ़ाता है।

विवेचन-बालमरण के बारह भेद बतलाये गये है। इनका अर्थ इस प्रकार है;-

१ बलन्मरण-तीव्र भूख और प्यास से छटपटाते हुए प्राणी का मरण 'बलन्मरण' कहलाता है। अथवा संयम से भ्रष्ट प्राणी का मरण 'बलन्मरण' कहलाता है।

२ वसट्टमरण (वशार्त्तमरण) -इन्द्रियों के वशीभूत होकर मरने वाले प्राणी का मरण 'वसट्टमरण' कहलाता है। जैसे दीप की शिखा पर गिर कर प्राण देने वाले पतंगिये का मरण।

३ अंतोसल्लमरण (अन्तःशल्य मरण)-इसके द्रव्य और भाव से दो भेद हैं। शरीर मे बाण या तोमर (एक प्रकार का शस्त्र) आदि के घुस जाने से और उसके वापिस न निकलने से जो मरण होता है, वह द्रव्य से 'अन्तःशल्य मरण' है। अतिचारों की शुद्धि किये बिना ही जो मरण होता है वह भाव से 'अन्तःशल्य मरण' है, क्योंकि अतिचार आन्तरिक शल्य है।

४ तद्भवमरण-मनुष्य के शरीर को छोड़ कर फिर मनुष्य होना और तिर्यञ्च के शरीर को छोड़ कर फिर तिर्यञ्च होना 'तद्भवमरण' है। यह मरण मनुष्य और तिर्यञ्चो में ही हो सकता है, किन्तु देव और नैरयिक जीवों मे नहीं, क्योंकि मनुष्य मर कर मनुष्य और तिर्यञ्च मर कर तिर्यञ्च हो सकता है, किन्तु देव मर कर फिर दूसरे भव में देव और नैरयिक मर कर फिर दूसरे भव में नैरयिक नही हो सकता है।

५ गिरिपडण (गिरिपतन) मरण-पर्वत आदि से गिर कर मरना 'गिरिपडण मरण' कहलाता है।

६ तरुपडण (तरुपतन) मरण-वृक्ष आदि से गिर कर मरना।

७ जलप्पवेस (जल प्रवेश) मरण-जल मे डूब कर मरना।

८ जलणप्पवेस (ज्वलन प्रवेश) मरण-अग्नि मे गिर कर मरना।

९ विसभक्खण (विष भक्षण) मरण-जहर आदि प्राण घातक पदार्थ खाकर मरना।

१० सत्थोवाडणे (शस्त्रावपाटन)-छुरी, तलवार आदि शस्त्र द्वारा होने वाला मरण।

११ विहाणस (वैहानस) मरण-गले में फासी लगाकर वृक्ष आदि की डाल पर लटकने से होने वाला मरण।

१२ गिद्धपिट्ठे (गृध्र पृष्ठ) मरण-हाथी, ऊँट या गधे आदि के भव में गिद्ध पक्षियों द्वारा या मांसलोलुप शृगाल आदि जंगली जानवरों द्वारा शरीर के विदारण (चीरने) से होने वाला मरण गृध्रस्पृष्ट या गृद्ध स्पृष्ट मरण कहलाता है। अथवा पीठ आदि शरीर के अवयवो का मास गिद्ध आदि पक्षियो द्वारा खाया जाने पर होने वाला मरण 'गृध्रपृष्ठ मरण' कहलाता है। उपरोक्त दोनो व्याख्याएँ क्रमशः तिर्यञ्च और मनुष्य के मरण की अपेक्षा से है।

उपरोक्त बारह प्रकार के बालमरणो मे से किसी मरण से मरने वाले प्राणी का ससार बढता है और वह बहुत काल तक ससार मे परिभ्रमण करता है।

से किं तं पंडियमरणे ? पंडियमरणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहाः- पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य। से किं तं पाओवगमणे ? पाओवगमणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहाः-नीहारिमे य, अनिहारिमे य नियमा अप्पडिकम्मे। सेत्तं पाओवगमणे। से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ? भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहाः-नीहारिमे य, अनीहारिमे य नियमा सपडिकम्मे, सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे। इच्चेतेणं खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ, जाव-वीईवयइ। सेत्तं मरमाणे हायइ। सेत्तं

पंडियमरणे । इच्चेएणं खंदया! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा, हायइ वा ।

एत्थ णं खंदए कच्चायणसगोत्ते संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासीः-इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए केवलीपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए । अहासुहं देवाणु-प्पिया ! मा पडिबंधं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पाओवगमणे-पादपोपगमन, णीहारिमे-निर्हारिम, अणीहारिमे-अनिर्हारिम वीयीवयइ-भ्रमण करता है, संबुद्धे-बोधपाये, निसामित्तए-सुनना चाहता हूं, पडिबधं-विलम्ब ।

भावार्थ-हे स्कन्दक ! पण्डितमरण के दो भेद हैं-१ पादपोपगमन और २ भक्तप्रत्याख्यान । पादपोपगमन के दो भेद हैं-निर्हारिम और अनिर्हारिम । यह दोनों प्रकार का पादपोपगमन मरण, नियमा (नियम से-निश्चित रूप से) अप्रतिकर्म होता है । भक्तप्रत्याख्यान मरण के भी दो भेद हैं-निर्हारिम और अनिर्हारिम । यह दोनों प्रकार का भक्तप्रत्याख्यान मरण सप्रतिकर्म होता है । हे स्कन्दक ! इन दोनों प्रकार के पण्डितमरण से मरता हुआ जीव, नरकादि के अनन्त भवों को प्राप्त नहीं करता है, यावत् संसार रूपी अटवी को उल्लं-घन कर जाता है । इन दोनों प्रकार के पण्डितमरण से मरते हुए जीव का संसार घटता है ।

भगवान् के उपर्युक्त वचनों को सुन कर स्कन्दक परिव्राजक को बोध हो गया । उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके कहा कि-'हे भगवन् ! मैं आपके पास केवलि प्ररूपित धर्म सुनना चाहता हूं' । भगवान् ने कहा कि-'हे देवानुप्रिय ! तुम्हें सुख हो वैसा करो, किंतु धर्म कार्य में विलम्ब मत करो ।'

विवेचन-पण्डितमरण के दो भेद है-१ पादपोपगमन मरण और २ भक्तप्रत्याख्यान मरण।

१ संथारा करके वृक्ष के समान जिस स्थान पर जिस रूप में एक बार लेट जाय, फिर उसी जगह उसी रूप मे लेटे रहना और इस प्रकार मृत्यु हो जाना 'पादपोपगमन मरण' है। इसके दो भेद है-निर्हारिम और अनिर्हारिम।

निर्हारिम-जो सथारा ग्राम नगर आदि बस्ती में किया जाय, जिससे मृत-कलेवर को ग्रामादि से बाहर ले जाकर अग्निदाहादि संस्कार करना पड़े उसे 'निर्हारिम' कहते हैं।

अनिर्हारिम-जो सथारा ग्राम नगर आदि बस्ती से बाहर जंगल आदि एकान्त स्थान मे किया जाय, जिससे मृत-कलेवर को वहाँ से ले जाने की आवश्यकता न रहे, उसे 'अनिर्हारिम' कहते है। यह दोनो प्रकार का पादपोपगमन मरण नियमा (नियम पूर्वक) अप्रतिकर्म (शरीर की सेवा शुश्रूषा और हलन चलन से रहित) होता है।

२ भक्तप्रत्याख्यान मरण-यावज्जीवन तीन या चारो आहारों का त्याग करने के बाद जो मृत्यु होती है, उसे 'भक्तप्रत्याख्यान मरण' कहा जाता है। उसके भी निर्हारिम और अनिर्हारिम ये दो भेद है। यह मरण सप्रतिकर्म है।

किसी किसी प्रति में यहाँ 'इगितमरण' का कथन किया है। वह 'इगितमरण' भक्तप्रत्याख्यान मरण का ही एक विशेष भेद है। इसीलिए उसकी यहाँ अलग व्याख्या नही की है।

तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयस्स कच्चायणस्सगोत्तस्स, तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ। धम्मकहा भाणियव्वा। तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, णिसम्म हट्ठतुट्ठे जाव-हियहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता एवं वयासीः-सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं; एवमेयं भंते! तह-

मेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता, नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडं च कुंडियं च जाव-धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता जाव-नमंसित्ता एवं वयासीः-

विशेष शब्दों के अर्थ-महइमहालियाए-बहुत बड़ी, परिसाए-परिषद् को, हियहियए-विकसित हृदय वाला, सद्दहामि-श्रद्धा करता हूं, पतियामि-प्रतीति करता हूं, रोएमि-रुचि करता हूं, अब्भुट्ठेमि-अभ्युद्यत होता हूं, एवमेयं-इसी प्रकार है, तहमेयं-वैसा ही है, अवितहमेयं-विशेषरूप से सत्य है, असंदिद्धमेयं-सन्देह रहित है, इच्छियमेयं-इष्ट है, पडिच्छिय-विशेष रूप से इष्ट है, जहेयं-जैसा, वदह-कहा है, अवक्कमइ-जाता है, एडेइ-छोड़ता है।

भावार्थ-इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कात्यायन गोत्री स्कन्दक परिव्राजक को और उस बहुत बड़ी परिषद् को धर्मकथा कही। (यहाँ धर्मकथा का वर्णन करना चाहिए)। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई हुई धर्मकथा को सुनकर एवं हृदय में धारण करके स्कन्दक परिव्राजक को बड़ा हर्ष-सन्तोष हुआ एवं उसका हृदय हर्ष से विकसित होगया। तदनन्तर खड़े होकर और भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके स्कन्दक परिव्राजक ने इस प्रकार कहा कि-"हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता हूँ एवं निर्ग्रन्थ प्रवचनों को मैं स्वीकार करता हूँ। हे भगवन्! ये निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार है, सत्य हैं, सन्देह रहित हैं, इष्ट है,

प्रतीष्ट है, इष्टप्रतीष्ट है, हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वैसा ही है।" ऐसा कह कर स्कन्दक परिव्राजक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिशा के भाग (ईशान कोण) में जाकर त्रिदण्ड कुण्डिका यावत् गेरुए वस्त्र आदि परिव्राजक के भण्डोपकरणों को एकान्त में छोड़ दिया। फिर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बिराजते थे वहाँ आकर भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोले।

विवेचन-भगवान् ने स्कन्दक परिव्राजक और उस विशाल परिषद् को धर्मकथा कही। अर्थात् यह बतलाया कि जीव किस प्रकार कर्मों को बांधते हैं ? और उनसे किस प्रकार छुटकारा पाते है ? आर्त्तध्यानादि के द्वारा जीव किस प्रकार कर्मों को बांध कर ससारसागर मे परिभ्रमण करते हैं और किस प्रकार वैराग्य को प्राप्त कर कर्मों के बन्धन को तोड़ कर मुक्ति प्राप्त करते हैं ?

भगवान् द्वारा फरमाई हुई धर्मकथा को सुन कर स्कन्दक परिव्राजक को निर्ग्रन्थ प्रवचनो पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि उत्पन्न हुई। उन्होने परिव्राजक के भण्डोपकरणों को एकान्त मे डाल कर भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार करने की इच्छा प्रकट की और निवेदन किया।

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य। से जहाणामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि, जे से तत्थ भंडे भवइ, अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइ। एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुराए हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए संमए अणु-मए बहुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं मा णं उण्हं मा णं खुहा

मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खेमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणय-वेणयिय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खिउं।

विशेष शब्दों के अर्थ-आलित्ते-सुलगा हुआ, पलित्ते-विशेष जलता हुआ, गाहावई-गृहपति, अगारंसि-घर में से, झियायमाणंसि-जलते हुए, मोल्लगुरुए-बहुमूल्य, णित्थारिए-निकाला हुआ, पुराए-पहले, हियाए-हितकारी, सुहाए-सुखकारी, खेमाए-क्षेम करने वाला, निस्सेयसाए-कल्याणकारी, आणुगामियत्ताए-साथ चलनेवाला, वेस्सासिए-विश्वास योग्य, संमए-सम्मत, खुहा-क्षुधा, वाला-सर्प आदि, वाइय-वात, पित्तिय-पित्त, सेंभिय-श्लेष्म, सन्निवाइय-सन्निपात, आयार गोयरं-आचार गोचर, वेणयिय-विनयोत्पन्न चारित्र, जाया मायावत्तियं-संयममात्रा और आहार की मात्रादि वृत्ति।

भावार्थ-हे भगवन्! जरा (बुढ़ापा) और मरण रूपी अग्नि से यह लोक आदीप्त प्रदीप्त है (जल रहा है)। जैसे किसी गृहस्थ के घर में आग लग गई हो, तो वह उसमें से बहुमूल्य और अल्प वजन वाले सामान को सबसे पहले बाहर निकाल कर एकान्त में जाता है और यह सोचता है कि अग्नि में से बचा कर बाहर निकाला हुआ यह सामान भविष्य में आगे पीछे मेरे लिए हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, और कल्याणरूप होगा। इसी तरह हे भगवन्! मेरी आत्मा भी एक भाण्ड (बर्तन) रूप है। यह मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, सुन्दर, मनोज्ञ, विश्वस्त, सम्मत, अनुमत, बहुमत और रत्नों के करंडिये (पिटारे) समान है, इसीलिए ठण्ड, गर्मी, भूख, प्यास, चोर, सिंह, सर्प, डांस, मच्छर,

वात, पित्त, कफ और सन्निपात आदि अनेक प्रकार के रोग और आतङ्क (तत्काल प्राण हरण करने वाले रोग) एवं परीषह उपसर्गो से मैं इसकी बराबर रक्षा करता हूँ। रक्षित किया हुआ यह आत्मा मुझे परलोक में हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप एवं परम्परा से कल्याणरूप होगा। इसलिए हे भगवन् ! मैं आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। आप स्वयं मुझे प्रव्रजित करें, मुण्डित करें, आप स्वयं मुझे प्रतिलेखनादि क्रियाएँ सिखावें, सूत्र और अर्थो को पढ़ावें। हे भगवन् ! मैं चाहता हूँ कि-आप मुझे ज्ञानादि, आचार, गोचर (भिक्षाटन) विनय, विनय का फल, चरण करण अर्थात् चारित्र (व्रतादि) और पिण्ड विशुद्धि संयमयात्रा और संयमयात्रा के निर्वाहार्थ आहारादि ग्रहण रूप धर्म कहें।

विवेचन-हे भगवन् ! आप स्वयं मुझे रजोहरणादि वेश देकर प्रव्रजित कीजिये, शिर का लोच करके मुण्डित कीजिये। साधु का आचार गोचर विधि, संयम और संयम यात्रा के निर्वाहार्थ आहारादि की मात्रा, और विनय आदि की शिक्षा दीजिये।

तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं सयमेव पव्वावेइ, जाव-धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीइयव्वं, एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइयव्वं। तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ, तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमेइ, अस्सिं च

णं अट्ठे णो पमायइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-गंतव्वं-जाना चाहिये, चिट्ठियव्व-रहना चाहिये, णिसीइ-यव्वं-बैठना चाहिए, तुयट्टियव्वं-सोना चाहिये, भुंजियव्वं-खाना चाहिए, भासियव्वं-बोलना चाहिए, उट्ठाए-उठना, संजमियव्वं-संयमित रहना, संपडिवज्जइ-स्वीकार किया, तमाणाए-तदनुसार, पमाइयव्वं-प्रमाद करना ।

भावार्थ-इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने स्वयमेव कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजक को प्रव्रजित किया यावत् स्वयमेव धर्म की शिक्षा दी कि-हे देवानुप्रिय ! इस तरह से चलना चाहिए, इस तरह से खड़ा रहना चाहिए, इस तरह से बैठना चाहिए, इस तरह से सोना चाहिए, इस तरह से खाना चाहिए, इस तरह से बोलना चाहिए । इस तरह सावधानतापूर्वक प्राण, भूत, जीव, सत्त्व के विषय में संयम पूर्वक बर्ताव करना चाहिए । इस विषय में जरासा भी प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

कात्यायनगोत्री स्कन्दक मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के इस धार्मिक उपदेश को अच्छी तरह से स्वीकार किया और भगवान् की आज्ञा के अनुसार ही स्कन्दक मुनि चलना, खड़े रहना, बैठना, सोना, खाना, बोलना आदि क्रिया करने लगे तथा प्राण, भूत,जीव, सत्त्व के प्रति दयापूर्वक बर्ताव करने लगे और इन विषयों में जरासा भी प्रमाद नहीं करने लगे।

विवेचन-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने स्कन्दक मुनि को शिक्षा दी कि-हे देवानुप्रिय ! धूंसरा प्रमाण अर्थात् चार हाथ भूमि को आगे देखते हुए चलना चाहिए । हे देवानुप्रिय ! जहाँ बहुत लोगों का आवागमन न हो, ऐसे स्थान पर सयम, आत्मा और प्रवचन को किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे, इस तरह से खड़ा रहना चाहिए । स्थान को अच्छी तरह पूंज कर बैठना चाहिए, सामायिकादि के उच्चारण पूर्वक शयन करना चाहिए । बयालीस दोषों से रहित आहार को 'धूम' 'अंगार' आदि दोषों को टाल कर खाना चाहिए । भाषासमिति पूर्वक हित और मित बोलना चाहिए । सर्वथा प्रकार से प्रमाद का त्याग करके प्राणियों की रक्षा में सावधान रहना चाहिए । इत्यादि रूप से भगवान् ने शिक्षा दी ।

तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते, अणगारे जाए, इरिया-समिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए, उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी, चाई लज्जू धन्ने खंतिखमे जिइंदिए सोहिए अणि-याणे अप्पुस्सुए अबहिल्लेसे सुसामण्णरए दंते, इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-चाई-त्यागी, लज्जू-लज्जावान्=सरल, खंतिखमे-क्षमापूर्वक सहने वाले, सोहिए-शोधक, अणियाणे-निदान रहित, अप्पुस्सुए-उत्सुकता रहित, अबहिल्ले-स्से-अवहिर्लेश्य=संयम से बाहर चित्त नहीं रखने वाला, सुसामण्णरए-सयम में लीन, दंते-इन्द्रियों का दमन करने वाले, पुरओकाउं-आगे करके।

भावार्थ-अब वे कात्यायनगोत्री स्कन्दकजी, अनगार बन गये। वे ईर्या-समिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभण्डमात्रनिक्षेपणासमिति और उच्चारप्रश्रवणखेलजल्लसिंघाण-परिस्थापनिकासमिति, एवं मनःसमिति, वचन समिति, कायासमिति, इन आठों समितियों का सावधानतापूर्वक पालन करने लगे। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से गुप्त रहने लगे अर्थात् मन, वचन, काया को वश में रखने लगे। वे सबको वश रखने वाले, इन्द्रियों को वश रखने वाले, गुप्तब्रह्मचारी, त्यागी, लज्जावान् (संयमवान्-सरल) धन्य (धर्म-धनवान्) क्षमावान्, जितेन्द्रिय, व्रतों के शोधक, किसी प्रकार का निदान (नियाणा) न करने वाले, आकांक्षा रहित, उतावल रहित, संयम से बाहर चित्त को न रखने वाले, श्रेष्ठ साधु व्रतों में लीन और दान्त ऐसे स्कन्दक मुनि, इन निर्ग्रन्थ प्रवचनों को आगे (सामने) रख कर विचरण करने लगे अर्थात् वे इन निर्ग्रन्थ प्रवचनों को सन्मुख रखते हुए इन्हीं के अनुसार सब क्रियाएँ करने लगे।

विवेचन-स्कन्दक मुनि भगवान् की शिक्षा के अनुसार पांच समिति, तीन गुप्ति में सावधानता पूर्वक प्रवृत्ति करने लगे। वे इन्द्रियों को वश में रखनेवाले, गुप्तब्रह्मचारी अर्थात् गुप्तिपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले त्यागी, लज्जावान्, (संयमवान्-सरल), धर्मस्वरूप अथवा धन्य, (धर्म रूप धनवाले) शक्ति होते हुए भी क्षमा करने वाले, इन्द्रियों के विकार से रहित अतएव जितेन्द्रिय, व्रतो का निर्दोष पालन करनेवाले अथवा सौहृद अर्थात् सब प्राणियों मे मित्रता की बुद्धि रखनेवाले, इहलोक और परलोक सम्बन्धी किसी प्रकार का निदान (नियाणा) न करनेवाले, धीर, संयम से बाहर चित्तवृत्ति न रखनेवाले, साधुवृत्ति मे तल्लीन, दान्त अर्थात् क्रोधादि शत्रुओं का दमन करनेवाले अथवा रागद्वेष का अन्त करने के लिए प्रवृत्ति करनेवाले बने। जिस प्रकार मार्ग का अनजान पुरुष, मार्ग के जानकार पुरुष को आगे रखकर उसके पीछे पीछे चलता है, उसी प्रकार स्कन्दक मुनि, निर्ग्रन्थ प्रवचनो को आगे रखकर अर्थात् भगवान् की आज्ञा के अनुसार संयम की समस्त क्रियाएं करने लगे।

तए णं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ, छत्तपलासयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासीः-इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठे, जाव-नमं-

सित्ता मासियं भिक्खुपडिमं उपसंपज्जित्ता णं विहरइ । तए णं से खंदए अणगारे मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं अहासम्मं काएण फासेइ पालेइ सोभेइ तीरेइ पूरेइ किट्टेइ अणुपालेइ, आणाए आराहेइ, सम्मं काएण फासित्ता जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं जाव-नमंसित्ता एवं वयासीः-इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं, तं चेव । एवं तेमासियं, चाउम्मासियं, पंचमासियं, छम्मासियं, सत्तमासियं, पढमं सत्तराइंदियं, दोच्चं सत्तराइंदियं, तच्चं सत्तराइंदियं, अहोराइंदियं, एगराइयं । तए णं से खंदए अणगारे एगराइयं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं, जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं जाव-नमंसित्ता एवं वयासीः-इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ।

विशेष शब्दों के अर्थ-पडिनिक्खमइ-बाहर निकले, अब्भणुण्णाए-आज्ञा होने पर, उवसंपज्जित्ताणं-स्वीकार करके, अहासुत्तं-सूत्र के अनुसार, अहाकप्पं-कल्प अर्थात् आचार के अनुसार, अहामग्गं-मार्ग के अनुसार, अहातच्चं-यथा तत्त्व, अहासम्मं-समभाव पूर्वक, सोभेइ-सुशोभित करते हैं, तीरेइ-पार लगाते है, पूरेइ-पूर्ण करते है, किट्टेइ-कीर्तन करते

हैं, गुणरयणं संवच्छरं तवोकम्मं-गुणरत्न संवत्सर नामक तप ।

भावार्थ-इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कृतंगला नगरी के छत्रपलाशक उद्यान से निकले और बाहर जनपद(देश)में विचरण करने लगे। इसके बाद स्कन्दक अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तथा रूप के स्थविरों के पास सामायिकादि ग्यारह अंगों को सीखा, सीख कर भगवान् के पास आकर वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि-यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं मासिकी भिक्षुप्रतिमा को धारण करना चाहता हूँ। भगवान् ने फरमाया कि-'हे देवानुप्रिय ! जिस तरह तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो'। भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर स्कन्दक मुनि बड़े हर्षित हुए यावत् भगवान् को वन्दना नमस्कार करके मासिकी भिक्षुप्रतिमा को अंगीकार की। इसके पश्चात् स्कन्दक मुनि ने मासिकी भिक्षुप्रतिमा को सूत्र के अनुसार, आचार के अनुसार, मार्ग के अनुसार, यथा तत्त्व और अच्छी तरह काया से स्पर्श किया, पालन किया, शोभित किया ,समाप्त किया, पूर्ण किया, कीर्तन किया, अनुपालन किया, आज्ञापूर्वक आराधन किया, यावत् काया से सम्यक् प्रकार से स्पर्श करके यावत् आराधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि-'हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, तो मैं द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ'। भगवान् ने फरमाया कि-हे देवानुप्रिय !' जैसे सुख हो वैसे करो, किन्तु विलम्ब मत करो'। फिर स्कन्दक मुनि ने द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा को अंगीकार कर यावत् पूर्ण किया। इसी तरह त्रिमासिकी, चतुर्मासिकी, पंचमासिकी, छहमासिकी, सप्तमासिकी, प्रथम सात दिन रात, द्वितीय सात दिन रात, तृतीय सात दित रात, अहोरात्रिकी, एक रात्रि की इस प्रकार बारह भिक्षुप्रतिमाओं का यथाविधि पालन किया। इनका यथाविधि पालन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि-हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, तो मैं 'गुणरत्नसंवत्सर' नामक तप करना चाहता हूँ। भगवान् ने फरमाया कि-हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।

विवेचन-यहाँ यह कहा गया है कि स्कन्दक मुनि ने ग्यारह अंग पढ़े। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि स्कन्दकजी के मुनि होने के पहले ही ग्यारह अगों की रचना हो चुकी थी, तभी तो उन्होने इनको पढ़ा। यहां यह शका होती है कि भगवती सूत्र पाचवां अंग सूत्र है, फिर इसमें स्कन्दक मुनि का वर्णन कैसे आया ?

इस शका का समाधान यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीर्थ में नौ वाचनाएँ हुई थीं, इसलिए उन वाचनाओं मे स्कन्दक मुनि के तुल्य अन्य किसी का वर्णन था और जब स्कन्दक मुनि बने, तब सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जम्बूस्वामी के प्रति स्कन्दक मुनि के चरित्र का वर्णन किया। इसलिए इसमें विरोध की कोई बात नहीं है। अथवा गणधर अतिशय ज्ञानी होते हैं, इसलिए भविष्यत्काल की बात का वर्णन यदि वे अपनी वाचना में करदे, तो कोई बाधा जैसी बात नही है और इस चरित्र में जो भूतकाल का निर्देश किया है, वह आगामी शिष्य समूह की अपेक्षा से है, इसलिए वह भी निर्दोष है।

स्कन्दक मुनि ने भिक्षु की बारह प्रतिमा अगीकार की। भिक्षुप्रतिमाओ का स्वरूप इस प्रकार है,-

साधु के अभिग्रह विशेष को 'भिक्खुपडिमा'-भिक्षुप्रतिमा कहते हैं। वे बारह हैं। एक मास से लेकर सात मास तक सात पडिमाएँ हैं। आठवी, नववी और दसवी पडिमाओं मे प्रत्येक सात दिनरात्रि की होती है। ग्यारहवी एक अहोरात्रि की और बारहवी एक रात्रि की होती है।

पडिमाधारी मुनि, अपने शारीरिक संस्कारो को तथा शरीर के ममत्व-भाव को छोड़ देता है और दैन्यभाव न दिखाते हुए देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करता है। वह अज्ञात कुल से और थोड़े परिमाण मे गोचरी लेता है। गृहस्थ के घर पर मनुष्य, पशु, श्रमण, ब्राह्मण, भिखारी आदि भिक्षार्थ खड़े हों, तो उसके घर नही जाता, क्योंकि उनके दान मे अन्तराय पड़ती है। अतः उनके भिक्षादि से निवृत्त होने पर जाता है।

(१) पहली पडिमाधारी साधु को एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेना कल्पता है। साधु के पात्र मे दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी की जबतक धारा अखण्ड बनी रहे उसका नाम 'दत्ति' है। धारा खण्डित होने पर दत्ति की समाप्ति हो जाती है। उनके आहार प्राप्त करने मे यह नियम है कि एक व्यक्ति के भोजन मे से भिक्षा लेनी चाहिए, किन्तु जहाँ दो, तीन, चार, पाँच या अधिक व्यक्तियो का भोजन हो,



उसमे से भिक्षा नही लेनी चाहिए। इसी प्रकार गर्भवती और छोटे बच्चे वाली स्त्री के लिए बना हुआ भोजन अथवा जो स्त्री, बच्चे को दूध पिला रही हो वह बच्चे को अलग रख कर भिक्षा दे, या गर्भवती स्त्री अपने आसन से उठ कर भिक्षा दे, तो वह भोजन, मुनि को नही कल्पता। उनका कल्प है कि जिस दाता के दोनो पैर देहली के भीतर हो, या बाहर हो, तो उससे भी भिक्षा नही लेनी चाहिए, किन्तु जिसका एक पैर देहली के भीतर हो और एक पैर बाहर हो उसी से भिक्षा लेना कल्पता है।

पडिमाधारी मुनि के लिए गोचरी जाने के तीन समय बतलाये गये है-दिन का आदिभाग, मध्यभाग और अन्तिमभाग। यदि कोई साधु, दिन के आदिभाग (प्रथम भाग) मे गोचरी जाय, तो मध्यभाग और अन्तिमभाग में न जाय। इसी तरह यदि मध्य-भाग मे जाय, तो प्रथमभाग और अन्तिमभाग में न जाय। यदि अन्तिमभाग मे जाय, तो प्रथमभाग और मध्यभाग में नही जाय। अर्थात् उसे दिन के किसी एक भाग में ही गोचरी जाना चाहिए, शेष दो भागो मे नही।

पडिमाधारी साधु को छह प्रकार की गोचरी करनी चाहिए। यथा-१ पेटा, २ अर्द्धपेटा, ३ गोमूत्रिका, ४ पतगवीथिका, ५ शंखावर्ता और ६ गतप्रत्यागता। इनका स्वरूप इस प्रकार है;-

१ पेटा-भिक्षा स्थान (ग्राम या मुहल्ले) की कल्पना एक पेटी के समान चार कोने वाला करके बीच के घरो को छोड़कर चारो कोनो के घरो में भिक्षार्थ जावे।

२ अर्द्धपेटा-उपरोक्त चार कोनों मे से दो कोने के घरो मे ही भिक्षा के लिए जावे।

३ गोमूत्रिका-जिस प्रकार चलता हुआ बैल पेशाब करता है और वह वक्राकार (टेढ़ामेढा) पड़ता है, उसी प्रकार साधु भी घरो की आमने सामने की दोनो पक्तियों में से प्रथम एक पंक्ति (लाइन) के एक घर से आहार लेवे, फिर दूसरी सामने वाली पक्ति मे के घर से आहार लेवे। इसके बाद फिर प्रथम पक्ति के गोचरी किये हुए घर को छोड-कर आहार लेवे। इस क्रम को 'गोमूत्रिका' कहते है।

४ पतंगवीथिका-पतगे के उड़ने की तरह एक घर से आहार लेकर फिर कुछ घर छोड़ कर आहार लेना।

५ शंखावर्त्ता-शंख के चक्र की तरह गोलाकार घूमकर गोचरी लेना। यह गोचरी दो प्रकार की होती है-१ आभ्यन्तर शखावर्त्ता-बाहर से गोलाकार गोचरी करते हुए भीतर की ओर आना और २ 'बाह्य शखावर्ता'-भीतर के मुहल्ले से प्रारंभ करके बाहर जाना।

६ गतप्रत्यागता—एक पंक्ति के अंतिम घर में भिक्षा के लिए जाकर वहाँ से वापिस लौटकर भिक्षा ग्रहण करना।

जहाँ उसे कोई जानता हो वहाँ एक रात रह सकता है और जहाँ उसे कोई नही जानता हो वहाँ एक या दो रात रह सकता है, किन्तु इससे अधिक नही। इससे अधिक जो साधु जितने दिन रहे, उसे उतने ही दिनो के छेद का या तप का प्रायश्चित्त आता है। प्रतिमाधारी मुनि को चार प्रकार की भाषा बोलनी कल्पती है—

१ याचनी—आहार आदि के लिए याचना करने की।

२ पृच्छनी—मार्ग आदि पूछने के लिए।

३ अनुज्ञापनी—स्थान आदि के लिए आज्ञा लेने की।

४ पुट्ठवागरणी (पृष्ट व्याकरणी)—प्रश्नो का उत्तर देने के लिए।

स्वामी की आज्ञा लेकर पडिमाधारी मुनि को तीन प्रकार के स्थानों मे ठहरना चाहिए। वे स्थान ये है।

१ अध आरामगृह—ऐसा स्थान जिसके चारों ओर बाग हो।

२ अधो विकट गृह—ऐसा स्थान जो चारो ओर से खुला हो, सिर्फ ऊपर से ढका हुआ हो।

३ अधोवृक्षमूलगृह—वृक्ष के नीचे बना हुआ स्थान या वृक्ष का मूल।

उपरोक्त उपाश्रय मे ठहर कर मुनि को तीन प्रकार के संस्तारक—आज्ञा लेकर ग्रहण करना चाहिए १ पृथ्वी शिला, २ काष्ठ शिला, और ३ उपाश्रय मे पहले से बिछा हुआ संस्तारक।

शुद्ध उपाश्रय देख कर मुनि के वहाँ ठहर जाने पर यदि कोई स्त्री या पुरुष वहाँ आजाय, तो उन्हे देख कर मुनि को उपाश्रय से बाहर जाना या अन्दर आना उचित नही, अर्थात् मुनि यदि उपाश्रय के बाहर हो, तो बाहर ही रहना चाहिये और यदि उपाश्रय के अन्दर हो, तो अन्दर ही रहना चाहिये। आये हुए उन स्त्री पुरुषो की तरफ ध्यान न देते हुए अपने स्वाध्याय ध्यान आदि में लीन रहना चाहिए। ध्यान में तल्लीन रहे हुए मुनि के उस उपाश्रय को यदि कोई व्यक्ति आग लगा कर जलावे, तो मुनि को न तो उस ओर ध्यान ही देना चाहिये और न भीतर से बाहर या बाहर से भीतर जाना चाहिये, बल्कि निर्भीकता पूर्वक अपने ध्यान मे ही तल्लीन रहना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति मुनि का वध करने के लिए—मारने के लिए आवे, तो मुनि उसे एक बार या बारबार पकड़े नही, किन्तु वह अपनी मुनि मर्यादा मे ही रहे, यही उसका

कल्प है।

विहार करते हुए मार्ग में मुनि के पैर में यदि कंकर, पत्थर या कांटा आदि लग जाय, तो उसे नहीं निकलना चाहिए। इसी प्रकार आंखो में कोई मच्छर आदि जीव, बीज, कंकर या धूल आदि पड़ जाय, तो भी नहीं निकालना चाहिए, किन्तु किसी प्राणी की मृत्यु हो जाने का भय हो, तो उसे निकाल देना चाहिए।

विहार करते हुए जहां सूर्य अस्त हो जाय वहीं ठहर जाना चाहिए, चाहे वहाँ जल हो (जल का किनारा हो या सूखा हुआ जलाशय हो या ऊपर से अनाच्छादित हो), स्थल हो, दुर्गम स्थान हो, निम्न (नीचा) स्थान हो, पर्वत हो, विषम स्थान हो, खड्डा हो, या गुफा हो, सारी रात वहीं व्यतीत करनी चाहिए। सूर्यास्त के बाद एक कदम भी आगे नहीं बढ़ना चाहिए। रात्रि समाप्त होने पर सूर्योदय के पश्चात् अपनी इच्छानुसार किसी भी दिशा की ओर ईर्यासमितिपूर्वक विहार कर दे। सचित्त पृथ्वी पर निद्रा न लेनी चाहिए। सचित पृथ्वी का स्पर्श करने से हिंसा होगी जो कि कर्मबन्ध का कारण है। यदि रात्रि में लघुनीति की शंका उत्पन्न हो जाय, तो पहले से देखी हुई भूमि में जाकर उनकी निवृत्ति करे और वापिस अपने स्थान पर आकर कायोत्सर्ग आदि क्रिया करे।

किसी कारण से शरीर पर सचित्त रज लग जाय, तो जबतक प्रस्वेद (पसीना) आदि से वह ध्वस्त-अचित न हो जाय, तबतक मुनि को पानी आदि लाने के लिए गृहस्थ के घर न जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रासुक जल से हाथ, पैर, दांत, आंख, मुख आदि नहीं धोना चाहिए, किन्तु यदि किसी अशुद्ध वस्तु से शरीर का कोई अंग लिप्त हो गया हो, तो उसको प्रासुक पानी से शुद्ध कर सकता है, अर्थात् मलादि से शरीर लिप्त हो गया हो और स्वाध्यायादि में बाधा पड़ती हो, तो प्रासुक पानी से अशुचि को दूर कर देना चाहिए।

विहार करते समय मुनि के सामने यदि कोई मदोन्मत्त हाथी, घोड़ा, बैल, महिष (भैंसा), सूअर, कुत्ता, सिंह आदि आजाय, तो उनसे डर कर मुनि को एक कदम भी पीछे नहीं हटना चाहिए, किन्तु कोई हरिण आदि जीव भद्रता से सामने आते हों, तो मुनि को चार हाथ पीछे हट जाना चाहिए अर्थात् उन प्राणियों को किसी प्रकार का भय उत्पन्न न हो, इस प्रकार प्रवृत्ति करनी चाहिए।

पडिमाधारी मुनि, शीतकाल में किसी ठण्डे स्थान पर बैठा हो, तो शीत निवारण के लिए उसे धूप युक्त गरम स्थान पर न जाना चाहिए। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में गरम स्थान से उठ कर ठण्डे स्थान मे न जाना चाहिये, किन्तु जिस समय जिस स्थान पर बैठा

हो, उसी स्थान पर अपनी मर्यादापूर्वक बैठे रहना चाहिए।

उपरोक्त विधि से भिक्षु की पहली पडिमा यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातथ्य काया द्वारा स्पर्श करके, पालन करके, अतिचारों की शुद्धि कर, पूर्ण कर, कीर्तन कर, आराधन कर के भगवान् की आज्ञानुसार पालन की जाती है। इसका समय एक महीना है।

(२-७) दूसरी पडिमा का समय दो मास है। इसमे उन सब नियमो का पालन किया जाता है जो पहली पडिमा मे बताये गये है। पहली पडिमा में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरी पडिमा में दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी और सातवीं पडिमाओ मे क्रमश. तीन, चार, पाच, छह और सात दत्ति अन्न की और उतनी ही पानी की ग्रहण की जाती है। प्रत्येक पडिमा का समय एक एक मास है, केवल दत्तियो की वृद्धि के कारण ही ये क्रमशः द्विमासिकी, त्रिमासिकी, चातुर्मासिकी पञ्चमासिकी, षण्मासिकी और सप्तमासिकी पडिमाएँ कहलाती है। इन सब पडिमाओ मे पहली पडिमा में बताये गये सब नियमों का पालन किया जाता है ×।

(८) आठवी पडिमा का समय सात दिन रात है। इसमें अपानक उपवास किया जाता है अर्थात् एकान्तर चौविहार उपवास करना चाहिए और ग्राम नगरादि के बाहर जाकर उत्तानासन (आकाश की ओर मुह करके लेटना), पार्श्वासन (एक पसवाड़े से लेटना) अथवा निषद्यासन (पैरो को बराबर रख कर बैठना) से ध्यान लगा कर समय व्यतीत करना चाहिए। ध्यान करते समय देवता, मनुष्य अथवा तिर्यञ्च सम्बन्धी कोई उपसर्ग उत्पन्न हो, तो ध्यान से विचलित नही होना चाहिए, किन्तु अपने स्थान पर निश्चल रूप से बैठे रहकर ध्यान मे दृढ बने रहना चाहिए। यदि मल मूत्र आदि की शका उत्पन्न हो जाय, तो नही रोकना चाहिए, किन्तु पहले से देखे हुए स्थान पर जाकर उनकी निवृत्ति कर लेनी चाहिए। आहार पानी की दत्तियो के अतिरिक्त इस पडिमा में पूर्वोक्त सब नियमों का पालन करना चाहिए। इस पडिमा का नाम 'प्रथम सप्त रात्रिदिवस की भिक्खु पडिमा' है।

९ नवमी का नाम 'द्वितीय सप्त रात्रि दिवस की पडिमा' है। इसकी अवधि सात दिन रात है। इसमे ग्राम नगरादि के बाहर जाकर दण्डासन, लगुडासन और

× टीकाकार इन पडिमाओ का समय भिन्न रूप से मानते है, और इनका साधना काल भी मानते है।

उत्कटुकासन से ध्यान करना चाहिए। शेष सब विधि आठवी प्रतिमा के समान है।

(१०) दसवी का नाम 'तृतीय-सप्तरात्रिदिवस की पडिमा' है। इसका समय सात दिन रात है। इसमें ग्राम नगरादि के बाहर जाकर 'गोदोह् आसन, वीरासन और आम्रकुब्जासन से ध्यान किया जाता है। आठवी, नोवी और दसवी पडिमा में आहार पानी की दत्तियो के अतिरिक्त शेष पूर्वोक्त सभी नियमों का पालन किया जाता है। इन तीनो पडिमाओ का समय इक्कीस दिनरात है।

(११) ग्यारहवी पडिमा का नाम 'अहोरात्रि' है। इसका समय एक दिनरात का है अर्थात् यह पडिमा आठ पहर की होती है। चौविहार बेला करके इस पडिमा का आराधन किया जाता है। ग्राम नगरादि के बाहर जाकर दोनो पैरो को कुछ संकुचित करके हाथों को घुटने तक लम्बा करके कायोत्सर्ग किया जाता है। पूर्वोक्त पडिमाओं के शेष सभी नियमो का पालन किया जाता है।

(१२) बारहवी पडिमा का नाम 'एकरात्रिकी' है। इसका समय केवल एक रात है। इसका आराधन चौविहार तेला करके किया जाता है। इसके आराधक को ग्राम नगरादि से बाहर जाकर शरीर को थोड़ा आगे की ओर झुका कर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमेष नेत्रों से निश्चलता पूर्वक सब इन्द्रियों को गुप्त रख कर, दोनों पैरो को सकुचित कर, हाथो को घुटनो तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना चाहिए। कायोत्सर्ग करते समय देव, मनुष्य या तिर्यञ्च सम्बन्धी कोई उपसर्ग उत्पन्न हो, तो दृढ होकर सम-भावपूर्वक सहन करना चाहिए। यदि मलमूत्रादि की शंका उत्पन्न हो जाय, तो उसे रोकना नही चाहिए, किन्तु पहले से देखे हुए स्थान में उनकी निवृत्ति कर वापिस अपने स्थान पर आकर विधिपूर्वक कायोत्सर्ग में लग जाना चाहिए।

इस पडिमा का सम्यक् पालन न करने से तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षमा, अमोक्ष तथा आगामी काल मे दु ख के लिए होते हैं। यथा-१ देवादि द्वारा किये गये अनुकूल तथा प्रतिकूल परीषह् उपसर्गादि को समभावपूर्वक सहन न करने से उन्माद की प्राप्ति हो जाती है। २ लम्बे समय तक रहने वाले रोगादि की प्राप्ति हो जाती है। और ३ वह केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा से विचलित हो जाने से वह श्रुत चारित्र रूप धर्म से भी पतित हो जाता है।

इस पडिमा का सम्यग् रूप से पालन करने से तीन अमूल्य पदार्थों की प्राप्ति होती है यथा-१ अवधिज्ञान, २ मन.पर्ययज्ञान और ३ केवलज्ञान, इन तीन ज्ञानों में से एक को

अवश्य प्राप्त कर लेता है, क्योकि इस पडिमा मे महान् कर्म समूह का क्षय होता है। यह पडिमा हित के लिए, शुभ के लिए, क्षमा के लिए, ज्ञानादि प्राप्ति के लिए एवं मोक्ष के लिए होती है।

इस पडिमा का यथासूत्र, यथाकल्प, यथातथ्य, सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श कर, पालन कर, अतिचारों की शुद्धि कर, पूर्ण कर, कीर्तन कर, आराधन करते हुए भगवान् की आज्ञा के अनुसार पालन किया जाता है +।

स्कन्दक मुनि ने इन पडिमाओ का यथाविधि पालन किया।

यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है कि स्कन्दक मुनि ने तो ग्यारह अंगों का ज्ञान ही पढ़ा है, किंतु भिक्षुपडिमाओ का पालन, तो विशिष्ट श्रुतवान् ही कर सकते हैं। जैसा कि कहा है-

गच्छे च्चिय णिम्माओ जा पुव्वा दस भवे असंपुण्णा।
णवमस्स तईयवत्थू होइ जहण्णओ सुयाहिगमो॥

अर्थ-जिसने गच्छ में रह कर पडिमाओ को स्वीकार करने के लिए अच्छी तरह अभ्यास किया है, तथा जिसको दस पूर्व से कुछ कम ज्ञान है अथवा जघन्य नववे पूर्व की तीसरी आचारवस्तु (अध्ययन विशेष) तक ज्ञान है, वही पडिमाओं को अगीकार कर सकता है, तब स्कन्दक मुनि को तो एक भी पूर्व का ज्ञान नही था, फिर उन्होने पडिमाएँ कैसे अगीकार की ?

इस शंका का समाधान यह है कि-यह नियम सूत्र-व्यवहारी पुरुषो के लिए है। स्कन्दक मुनि को पडिमा अगीकार करने की आज्ञा देने वाले स्वय तीर्थङ्कर भगवान् थे। इसलिए यह नियम उनके लिए लागू नही पडता। स्कन्दक मुनि ने भगवान् की आज्ञा से पडिमाएँ अगीकार की थी। अतएव इसमे किसी प्रकार की बाधा नही है। *

'अहासुत्त' आदि शब्दो का सामान्य अर्थ पहले दिया गया है। टीकाकार ने जो विशेष अर्थ दिया है वह इस प्रकार है-'अहासुत्तं' अर्थात् सामान्य सूत्र मे कहे अनुसार।

+ भिक्षुपडिमाओ का यह वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध अ० ७ के अनुसार दिया गया है।

* स्कन्दक मुनिराज तो फिर भी ग्यारह अग के पाठी थे, किंतु गजसुकुमाल मुनिने तो दीक्षा लेने के दिन ही भिक्षुकी बारहवी प्रतिमा को धारण करलिया था। उन्हें आज्ञा देनेवाले सर्वज्ञ भगवान् रिष्टनेमिजी थे। सर्वज्ञ भगवान् ऐसी आज्ञा प्रदान करें, तो हो सकता है। सामान्य आचार्यादि को तो विधान का पालन करना उचित है।

'अहाकप्प' पडिमा के कल्प के अनुसार अथवा जिस तरह से कल्प की वस्तु है उस तरह से। 'अहामग्गं' ज्ञानादि रूप मोक्ष मार्ग की मर्यादापूर्वक अथवा क्षायोपशमिक भाव के अनुसार। 'अहातच्चं' अर्थात् तत्त्व के अनुसार यानी 'मासिकी भिक्षुप्रतिमा' इत्यादि उन उन शब्दों के अनुसार। 'अहासम्म' अर्थात् समभावपूर्वक। 'काएणफासेइ' अर्थात् केवल मनोरथ मात्र से नही, किन्तु उचित समय में विधिपूर्वक शरीर द्वारा प्रवृत्ति करके ग्रहण करते है। 'पालेइ' अर्थात् बारम्बार उपयोगपूर्वक सावधानतापूर्वक पालन करते हैं। 'सोहेइ' अर्थात् पारणे के दिन गुरु महाराज आदि द्वारा दिये हुए आहार को खाकर व्रत को शोभित करते है अथवा व्रत में दूषण रूप कचरा न आने देने से व्रत को शोधित करते है। 'तीरेइ' व्रत की मर्यादा पूरी हो जाने पर भी थोड़े समय तक ठहरते है। 'पूरेइ' अर्थात् उस व्रत की मर्यादा पूर्ण हो जाने पर भी उस व्रत सम्बन्धी कार्यों के परिमाण को पूरा करते हैं। 'किट्टेइ' अर्थात् 'व्रत सम्बन्धी अमुक अमुक कार्य हैं उनको मैंने पूरा कर लिया है, इस प्रकार पारणा के दिन व्रत का कीर्तन (महिमा) करते है। 'अणुपालेइ' अर्थात् व्रत पूर्ण हो जाने पर उसकी अनुमोदना-प्रशंसा करते है, एवं आज्ञापूर्वक व्रत की आराधना करते है।

तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे जाव-णमंसित्ता गुणरयणसंवच्छरतवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तं जहाः-पढमं मासं चउत्थंचउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य। एवं दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य। एवं तच्चं मासं अट्ठमंअट्ठमेणं, चउत्थं मासं दसमंदसमेणं, पञ्चमं मासं बारसमंबारसमेणं, छट्ठं मासं चउद्दसमंचउद्दसमेणं, सत्तमं मासं सोलसमंसोलसमेणं,

अट्ठमं मासं अट्ठारसमंअट्ठारसमेणं, नवमं मासं वीसइमंवीसइमेणं, दसमं मासं बावीसइमंबावीसइमेणं, एक्कारसमं मासं चउवीसइमं-चउवीसइमेणं, बारसमं मासं छव्वीसइमंछव्वीसइमेणं, तेरसमं मासं अट्ठावीसइमंअट्ठावीसइमेणं, चउद्दसमं मासं तीसइमंतीसइमेणं, पण्णरसमं मासं बत्तीसइमंबत्तीसइमेणं, सोलसं मासं चोत्तीसइमंचोत्तीसइमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावण-भूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेणं। तए णं से खंदए अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं अहाकप्पं जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-अट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-अणिक्खित्तेणं-निरन्तर, ठाणुक्कुडुए-उत्कटुक आसन से बैठना, सूराभिमूहे-सूर्य के सामने मुह करके, आयावणभूमिए-आतापन भूमि में, रत्ति=रात को, अवाउडेणं-अप्रावृत्त=वस्त्ररहित, अहासुत्तं-सूत्रानुसार, अहाकप्पं-कल्पानुसार, विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं-विविध प्रकार के तप से।

भावार्थ-इसके बाद स्कन्दक अनगार भगवान् की आज्ञा लेकर यावत् उन्हें वन्दना नमस्कार करके गुणरत्न संवत्सर तप करनें लगे। गुणरत्नसंवत्सर तप की विधि इस प्रकार है-पहले महीने में निरन्तर उपवास करना, दिन के समय उत्कटुक आसन से बैठ कर सूर्य के सामने मुख करके आतापना भूमि में सूर्य की आतापना लेना और रात्रि के समय वीरासन से बैठ कर अप्रावृत्त

(वस्त्र रहित) होकर शीत सहन करना। इसी तरह दूसरे मास में निरन्तर बेले बेले पारणा करना, दिन में उत्कटुक आसन से बैठ कर सूर्य के सामने मुख करके आतापना भूमि में सूर्य की आतापना लेना, रात्रि मे अप्रावृत होकर वीरासन से बैठ कर शीत सहन करना। इसी प्रकार तीसरे मास में उपर्युक्त विधि के अनुसार निरन्तर तेले तेले पारणा करना। इसी विधि के अनुसार चौथे मास में निरन्तर चौले चौले (चार चार उपवास से) पारणा करना। पांचवें मास में पचौले पचौले (पांच पांच उपवास से) पारना करना। छठे मास में निरन्तर छह छह उपवास करना। सातवें मास में निरन्तर सात सात उपवास करना, आठवें मास में निरन्तर आठ आठ उपवास करना। नौवें मास में निरन्तर नौ नौ उपवास करना। दसवें मास में निरन्तर दस दस उपवास करना। ग्यारहवें मास में निरन्तर ग्यारह ग्यारह उपवास करना। बारहवें मास में निरन्तर बारह बारह उपवास करना। तेरहवें मास में निरन्तर तेरह तेरह उपवास करना। चौदहवें मास में निरन्तर चौदह चौदह उपवास करना। पन्द्रहवें मास में पन्द्रह पन्द्रह उपवास करना और सोलहवें मास में निरन्तर सोलह सोलह उपवास करना। इन सभी में दिन में उत्कटुक आसन से बैठ कर सूर्य के सामने मुंह करके आतापना भूमि में आतापना लेना, रात्रि के समय अप्रावृत (वस्त्र रहित) होकर वीरासन से बैठ कर शीत सहन करना।

स्कन्दक मुनि ने उपर्युक्त विधि के अनुसार गुणरत्न संवत्सर नामक तप की सूत्रानुसार कल्पानुसार यावत् आराधना की। इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और फिर अनेक उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, मासखमण, अर्द्धमासखमण आदि विविध प्रकार के तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन-'गुणरयणसंवच्छर' इस शब्द की संस्कृत छाया दो तरह से बनती है; -गुणरचनसंवत्सर, अथवा गुणरत्नसंवत्सर, इनका अर्थ क्रमश. इस प्रकार किया गया है-

"गुणानां निर्जराविशेषाणां रचनं संवत्सरेण सत्रिभागवर्षेण यस्मिंतपसि तद् गुणरचनं संवत्सरम्।" 'गुणा एव वा रत्नानि यत्र स तथा गुणरत्नः,गुणरत्नः संवत्सरो यत्र तद्

गुणरत्न संवत्सरं तपः" ।

अर्थात्-जिस तप को करने मे सोलह मास तक एक ही प्रकार की निर्जरा रूप गुणों की रचना-उत्पत्ति हो वह तप गुणरयण सवच्छर'-गुणरचन संवत्सर कहलाता है ? अथवा-जिस तप मे गुण रूप रत्नो वाला सम्पूर्ण वर्ष विताया जाय वह तप 'गुणरत्न सवत्सर' तप कहलाता है। इस तप मे सोलह महीने लगते है। जिसमे से ४०७ दिन तयस्या के और ७३ दिन पारणे के होते है। यथा-

पण्णरस वीस चउव्वीस चेव चउव्वीस पण्णवीसा य।
चउव्वीस एक्कवीसा, चउवीसा सत्तवीसा य ॥१॥
तीसा तेत्तीसा वि य चउव्वीस छव्वीस अट्ठवीसा य।
तीसा बत्तीसा वि य सोलसमासेसु तव दिवसा ॥२॥
पण्णरस दसट्ठ छ पंच चउर पंचसु य तिण्णि तिण्णि त्ति।
पंचसु दो दो य तहा सोलसमासेसु पारणगा ॥३॥

गुणरत्न-संवत्सर तप

तप दिन		पारणा	सर्व दिन
३२	१६ १६	२	३४
३०	१५ १५	२	३२
२८	१४ १४	२	३०
२६	१३ १३	२	२८
२४	१२ १२	२	२६
३३	११ ११ ११	३	३६
३०	१० १० १०	३	३३
२७	९ ९ ९	३	३०
२४	८ ८ ८	३	२७
२१	७ ७ ७	३	२४
२४	६ ६ ६ ६	४	२८
२५	५ ५ ५ ५ ५	५	३०
२४	४ ४ ४ ४ ४ ४	६	३०
२४	३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३	८	३२
२०	२ २ २ २ २ २ २ २ २ २	१०	३०
१५	१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	१५	३०

अर्थ-पहले मास मे पन्द्रह, दूसरे मास में बीस, तीसरे मास में चौबीस, चौथे मास में चौबीस, पाचवें मास में पच्चीस, छठे मास में चौवीस, सातवें मास मे इक्कीस, आठवे मास में चौवीस, नववें मास में सत्ताईस, दसवें मास मे तीस, ग्यारहवे मास मे तेतीस, वारहवे मास मे चौवीस, तेरहवे मास में छव्वीस,

चौदहवे मास में अट्ठाईस पन्द्रहवे मास में तीस और सोलहवे मास में बत्तीस दिन तपस्या के होते हैं। ये सब मिला कर ४०७ दिन तपस्या के होते हैं। पारणे के दिन इस प्रकार है;-

पहले मास में पन्द्रह, दूसरे मास में दस, तीसरे मास में आठ, चौथे मास में छह, पांचवें मास में पांच, छठे मास में चार, सातवे मास में तीन, आठवे मास में तीन, नववें मास मे तीन, दसवे मास मे तीन, ग्यारहवें मास में तीन, बारहवे मास में दो, तेरहवे मास में दो, चौदहवे मास में दो, पन्द्रहवें मास मे दो, सोलहवे मास में दो दिन पारणे के होते हैं। ये सब मिला कर ७३ दिन पारणे के होते हैं। तपस्या के ४०७ और पारणे के ७३-ये दोनों मिला कर ४८० दिन होते है अर्थात् सोलह महीनों मे यह तप पूर्ण होता है। इस तप में, किसी महीने में तपस्या और पारणे के दिन मिला कर तीस से अधिक हो जाते हैं और किसी मास मे तीस से कम से रह जाते है, किन्तु कम और अधिक दिनों की एक दूसरे में पूर्ति कर देने से तीस की पूर्ति हो जाती है। इस तरह से यह तप बराबर सोलह मास में पूर्ण हो जाता है।

'चउत्थभत्त' शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार लिखा है;-

"चउत्थं चउत्थेणं' त्ति चतुर्थभक्तं यावद् भक्तं त्यज्यते, यत्र तच्चतुर्थम् इयं चोपवासस्य संज्ञा, एवं षष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति।"

अर्थ-जिस तप में चार टक का आहार छोड़ा जाय, उसे 'चउत्थभत्त-चतुर्थभक्त' कहते हैं। यह 'चतुर्थभक्त' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) है, किन्तु 'चतुर्थभक्त' यह उपवास का नाम है। उपवास को चतुर्थभक्त कहते हैं। अतः 'चार टंक का आहार छोड़ना, यह अर्थ नही लेना चाहिये। इसी प्रकार षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, आदि शब्द-बेला, तेला आदि की सज्ञा है।

शब्दों का व्युत्पत्त्यर्थ व्यवहार में नही लिया जाता है, किन्तु रुढ़ (संज्ञा) अर्थ ही ग्रहण किया जाता है, जैसे कि.-'पङ्कज' शब्द की व्युत्पत्ति है-'पङ्कात् जातः, 'पङ्कजः'। अर्थात् जो कीचड़ से पैदा हो। कीचड़ से बहुत सी चीजे पैदा होती है। जैसे कि:-काई (शैवाल) मेढ़क आदि। किन्तु 'पङ्कज' शब्द का रूढ़ अर्थ है-कमल। अतः व्यवहार मे 'पङ्कज' शब्द का अर्थ 'कमल' ही लिया जाता है, काई (शैवाल) मेढ़क आदि नही। इसी तरह 'अमर' शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति है.-'नम्रियते इति अमरः' अर्थात् जो मरे नही उसको अमर कहते हैं। यह 'अमर' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है। किन्तु इसका रुढ़ अर्थ है:-देव या 'अमरचन्द्र' नाम का व्यक्ति। अपनी आयु समाप्त होने पर देव भी मरता है और 'अमरचन्द्र' नाम का व्यक्ति भी मरता है। इस अपेक्षा से इन में

'अमर' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ घटित ही नही होता है, किन्तु चूकि:-'अमर' शब्द इन अर्थों मे रूढ़ हो गया है। इसलिए 'देव' तथा 'अमरचन्द्र' नाम के व्यक्ति को 'अमर' कहते है। इसी प्रकार 'चउत्थभत्त' शब्द भी 'उपवास' अर्थ में रूढ है। अतः 'चार टंक आहार छोडना' यह 'चउत्थभत्त' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ व्यवहार एवं प्रवृत्ति में नही लिया जाता है। चार टक आहार छोड़ना ऐसा 'चउत्थभत्त' शब्द का व्यवहार में अर्थ लेना आगमों से विपरीत है। अत. 'चउत्थभत्त' यह उपवास की सज्ञा है-सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन सूर्योदय तक आठ पहर आहार छोड़ना 'उपवास' है। एवं षष्ठभक्त, अष्टमभक्त आदि शब्द-बेला, तेला आदि की सज्ञा है।

तए णं से खंदए अणगारे तेणं उरालेणं, विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था। जीवंजीवेण गच्छइ, जीवंजीवेण चिट्ठइ, भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासिस्सामीति गिलायति। से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्त-तिल-भंडगसगडिया इ वा एरंडकट्ठसगडिया इ वा इंगालसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव खंदए वि अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंस-सोणीएणं, हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं, तव-तेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-उरालेणं-उदार, विउल-विपुल, पयत्तेणं-प्रदत्त, पग्गहिएणं-प्रगृहीत=गृहण किया हुआ, सस्सिरिएणं-श्री शोभायुक्त, उदग्गेणं-उत्तरोत्तर, उदत्तेणं-उदात्त=श्रेष्ठ, सुक्के-शुष्क, लुक्खे-रुक्ष, निम्मंसे-निर्मांस, अट्ठिचम्मावणद्धे-हड्डी और चर्म से वेष्टित, किडिकिडिभूयाए-हड्डियां खड़ खड़ करने लगी, किसे-कृश=दुर्बल, धमणिसंतए-जिनकी नाड़िया ऊपर दिखाई देती है, कट्ठसगडिया-लकड़े की भरी गाड़ी, हुयासणे-हुतासन=अग्नि, भासरासिपडिच्छण्णे-राख के ढेर मे ढकी हुई, तव-तेयसिरिए-तप तेज की शोभा से।

भावार्थ-इस के बाद वे स्कन्दक अनगार पूर्वोक्त प्रकार के उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, शोभायुक्त, उत्तम उदग्र-उत्तरोत्तर वृद्धियुक्त, उदात्त-उज्ज्वल, सुन्दर, उदार और महान् प्रभाव वाले तप से शुष्क हो गये, रुक्ष हो गये, मांस रहित हो गये, उनके शरीर की हड्डियां चमड़े से ढकी हुई रह गईं। चलते समय हड्डियां खड़खड़ करने लगीं। वे कृश-दुबले हो गये। उनकी नाड़ियां सामने दिखाई देने लगीं। अब वे केवल अपने आत्मबल से ही गमन करते थे, खड़े रहते थे, तथा वे इस प्रकार के दुर्बल होगये कि भाषा बोल कर, भाषा बोलते समय और भाषा बोलने के पहले, 'मैं भाषा बोलूंगा' ऐसा विचार करने मात्र से) वे ग्लानि को प्राप्त होते थे, उन्हें कष्ट होता था। जैसे सूखी लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी, पत्तों से भरी हुई गाड़ी, पत्ते, तिल और सूखे सामान से भरी हुई गाड़ी, एरण्ड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी, कोयले से भरी हुई गाड़ी, ये सब गाड़ियाँ धूप में अच्छी तरह सुखाकर जब चलती है, तो खड़ खड़ आवाज करती हुई चलती है और आवाज करती हुई खड़ी रहती हैं। इसी प्रकार जब स्कन्दक अनगार चलते, तो उनकी हड्डियाँ खड़ खड़ आवाज करतीं और खड़े रहते हुए भी खड़ खड़ आवाज करतीं। यद्यपि वे शरीर से दुर्बल हो गये थे, तथापि वे तप से पुष्ट थे। उनका मांस और खून क्षीण हो गये थे। राख के ढेर में दबी हुई अग्नि की तरह वे तप द्वारा, तेज द्वारा और तप तेज की शोभा द्वारा अतीव शोभित हो रहे थे।

विवेचन-स्कन्दक मुनि ने जिस तप का आचरण किया था वह किसी भी प्रकार

की आशा रहित होने के कारण उदार-प्रधान था, बहुत दिनो तक चलनेवाला होने से विपुल (विशाल-विस्तीर्ण) था। गुरु महाराज की अनुमति द्वारा आचरित होने के कारण तथा प्रमाद को छोड़ कर प्रयत्न पूर्वक आचरित होने के कारण वह 'प्रदत्त' था, वह तप बहुमानपूर्वक आचरित होने से 'प्रगृहीत' था। तथा वह कल्याणरूप शिव, धन्य और मगलरूप था एव सश्रीक, उदग्र उत्तरोत्तर वृद्धियुक्त, उदात्त, उत्तम, उदार और महानुभाव (महाप्रभाव वाला) था। इस प्रकार के प्रधान तप से स्कन्दक अनगार का शरीर शुष्क, रुक्ष और निर्मांस हो गया। उनकी हड्डियाँ केवल चमड़े से वेष्ठित रह गईं। इसलिए चलते समय सूखी एरण्ड की लकड़ियो से तथा ढाक आदि के पत्तों से एवं तिल की सूखी लकड़ियो से भरी हुई गाड़ियो से जैसे खड़ खड़ की आवाज होती है, उसी तरह स्कन्दक मुनि के चलते समय उनकी हड्डियो की खड़ खड़ आवाज होती थी। भाषा बोलने के पहले, बोलते समय और बोलने के बाद भी उन्हे ग्लानि-खेद होता था। जिस प्रकार राख मे दबी हुई अग्नि बाहर से तेज रहित दिखाई देती है, किन्तु अन्दर से तो वह जलती ही रहती है, उसी प्रकार स्कन्दक मुनि का शरीर मांस और रुधिर रहित हो गया था। अत. बाहर से तो निस्तेज मालूम होता था, किन्तु अन्दर तो पवित्र तप द्वारा जाज्वल्यमान था। अतएव वे तप-तेज की शोभा से अतीव शोभित हो रहे थे।

ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे नयरे समोसरणं। जाव-परिसा पडिगया। तए णं तस्स खंदयस्स अणगारस्स अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए जाव-समुप्पज्जित्था-एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं जाव-किसे धमणिसंतए जाए, जीवंजीवेण गच्छामि जीवंजीवेण चिट्ठामि, जाव-गिलामि, जाव-एवामेव अहं पि ससद्दं गच्छामि ससद्दं चिट्ठामि, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे तं जाव-ता मे अत्थि उट्ठाणे,

कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे, जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिसिय-म्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोयप्पकासे किंसुयसुयमुह-गुंजद्धरागस-रिसे, कमलागरसंडबोहए, उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता, नमंसित्ता जाव-पज्जुवासित्ता, समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहित्ता मेहघणसंनिगासं, देवसन्निवातं पुढवीसिलापट्टयं पडि-लेहित्ता, दब्भसंथारगं संथरित्ता, दब्भसंथारोवगयस्स, संलेहणा-झोसणाझूसिअस्स, भत्त-पाणपडियाइक्खियस्स, पाओवगयस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव-जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव जाव-पज्जुवासइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि-कोमल कमलों के विक-सित हो जाने पर, अहापंडुरेपभाए-निर्मल प्रभात हो जाने पर, रत्तासोयप्पगासे-लालरंग के अशोक के समान, किंसुय-केसूडे के फूल के समान, सुयमुह-तोते की चोंच, गुंजद्धरा-गसरिसे-चिरमी के अर्ध-लालभाग जैसा, कमलागरसंडबोहए-कमलवनो को विकसित करने वाले, उट्ठियम्मिसूरे-उदय हुआ सूर्य; सहस्सरस्सिम्मि-हजार किरणो वाले, दिणयरे-दिनकर,

कडाई-कृतादि अर्थात् सेवा करने में समर्थ, कृतयोगी, मेहघणसन्निगासं-गहरे=घने मेघ जैसी काली, देवसन्निवातं-देवो के आने के स्थान जैसी, संलेहणा-संलेखणा=कषायादि नष्ट करना, झोसणाझूसियस्स-कर्मों को क्षय करने के लिए क्षिण किया।

भावार्थ-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर में पधारे, समवसरण की रचना हुई यावत् जनता भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर वापिस चली गई। इसके पश्चात् किसी एक दिन रात्रि के पिछले पहर में धर्म जागरणा जागते हुए स्कन्दक अनगार के मन में ऐसा विचार-अध्यवसाय पैदा हुआ कि-मैं पूर्वोक्त प्रकार के उदार तप द्वारा शुष्क, रूक्ष एवं कृश हो गया हूँ। मेरा शारीरिक बल क्षीण हो गया है, केवल मैं आत्म बल से चलता हूँ और खड़ा रहता हूँ। बोलने के बाद, बोलते हुए और बोलने के पूर्व भी मुझे ग्लानि-खेद होता है यावत् पूर्वोक्त गाड़ियों की तरह ही चलते और खड़े रहते हुए मेरी हड्डियों से खड़ खड़ आवाज होती है। अतः जबतक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम है और जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गन्धहस्ती की तरह विचरते हैं, तबतक मेरे लिए यह श्रेय-कल्याणकारी है कि इस रात्रि के व्यतीत हो जाने पर कल प्रातःकाल कमलों को विकसित करने वाले, रक्त अशोक के समान प्रकाश युक्त केसूड़ा के फूल, तोते की चोंच, चिरमी के अर्द्ध भाग जैसा लाल, कमलों के वनों को विकसित करने वाले, हजार किरणों को धारण करने वाले, तेज से जाज्वल्यमान ऐसे सूर्य के उदय हो जाने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जाकर उनको वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करूँगा और भगवान् की आज्ञा लेकर स्वयमेव पांच महाव्रतों को आरोपण करके, साधु साध्वियों को खमा कर तथारूप के कडाई (कृतादि-कृतयोगी अर्थात् सेवा करने में समर्थ) स्थविरों के साथ विपुलगिरि (विपुल पर्वत) पर धीरे धीरे चढ़ कर मेघसमूह के समान वर्ण वाली (काली) देवों के उतरने के स्थान रूप पृथ्वी-शिलापट्ट की प्रतिलेखना करके, उस पर डाभ का संथारा बिछा कर, अपनी आत्मा को संलेखना झोसणा से युक्त करके, आहार पानी का सर्वथा त्याग करके, पादपोपगमन (कटी

हुई वृक्ष की डाली के समान स्थिर रहना) संथारा करके, मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए स्थिर रहना मेरे लिए श्रेष्ठ है।

इस प्रकार विचार करके प्रातःकाल होने पर यावत् सूर्योदय होने पर स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में आकर उन्हें वन्दना नमस्कार करके यावत् पर्युपासना करने लगे।

विवेचन-रात्रि के पिछले भाग मे धर्म-जागरण करते हुए स्कन्दक मुनि को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि यद्यपि इस उदार तप के द्वारा मेरा शरीर कृश हो गया है, तथापि जबतक मेरे शरीर मे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम है और जबतक मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक, जिन (तीर्थङ्कर) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गन्धहस्ती की तरह इस भूतल पर विचर रहे है, तबतक उनकी मौजूदगी मे मुझे अनशन करना श्रेयस्कर है।

स्कन्दक मुनि ने भगवान् की मौजूदगी में ही अनशन करने का जो विचार किया, इसमे दो कारण है। वे इस प्रकार हैं-भगवान् की मौजूदगी मे उनकी साक्षी से जो अनशन किया जायगा उसका महान् फल होगा। अथवा भगवान् का निर्वाण हो जाने पर मुझे शोकजन्य दु.ख न हो, इसलिए भगवान् के निर्वाण पधारने के पहले ही उनकी मौजूदगी में उनके पास जाकर उनकी अनुमति से अनशन कर लू। इसलिए प्रातःकाल सूर्योदय हो जाने पर मैं भगवान् की सेवा में जाकर उन्हे वन्दना नमस्कार कर उनकी आज्ञा प्राप्त करके कडाई (कृतयोगी, प्रतिलेखन आदि क्रिया करने में कुशल, धर्मप्रिय एव धर्म मे दृढ़) स्थविरों के साथ धीरे धीरे विपुल पर्वत पर चढ कर पृथ्वी शिलापट्ट, जो कि वर्षा ऋतु के मेघो के समान काली है, जो अत्यन्त सुन्दर होने के कारण जिस पर देव क्रीड़ा करने के लिए आते है, उस पर आहार पानी का त्याग करके संलेखना करके पादपोपगमन संथारा करूँ। यह मेरे लिए श्रेयस्कर है। ऐसा विचार स्कन्दक मुनि ने किया।

खंदया ! इ समणे भगवं महावीरे खंदयं अणगारं एवं वयासीः-से णूणं तव खंदया ! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव-जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु अहं

इमेणं एयारूवेणं तवेणं ओरालेणं, विउलेणं तं चेव जाव-कालं अण-वकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेति, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए जाव-जलंते जणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए। से णूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ? हंता अत्थि। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं।

विशेष शब्दों के अर्थ-पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि-रात्रि के अन्तिम प्रहर में, संपेहेति-विचार किया, कल्लं-कल, पाउप्पभायाए-प्रात.काल।

भावार्थ-इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने स्कन्दक मुनि से इस प्रकार कहा कि-हे स्कन्दक ! रात्रि के पिछले पहर में धर्म जागरणा करते हुए तुम्हें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि इस उदार तप से मेरा शरीर अब कृश हो गया है यावत् अब मैं संलेखना संथारा करके मृत्यु की वांछा न करते हुए स्थिर रहूँ। ऐसा विचार कर प्रातःकाल सूर्योदय होने पर तुम मेरे पास आये हो। हे स्कन्दक ! क्या यह बात सत्य है ?

स्कन्दक मुनि ने कहा कि-हे भगवन् ! आप फरमाते हैं वह बात सत्य है। तब भगवान् ने फरमाया कि-हे देवानुप्रिय ! जिस तरह तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।

विवेचन-भगवान् ने तपस्वीराज श्रीस्कन्दकजी के मनोगतभावों को प्रकट करके उन्हे अंतिम साधना करने की अनुमति प्रदान करदी।

तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणु-ण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठ० जाव-हयहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणप्पयाहिणं करेइ, जाव-नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता समणा य, समणीओ

य खामेइ। तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहेइ मेहघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुढविसिलावट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारं संथरइ,संथरित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासीः– नमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव–संपत्ताणं। नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव–संपाविउकामस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासीः–पुव्विं पि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, जाव–मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए जावज्जीवाए। इयाणिं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जाव–मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि। एवं सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमेणं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जं पि य इमं सरीरं इट्ठं, कंतं पियं जाव–फुसन्तु त्ति कट्टु एयं पि णं चरिमेहिं उस्सासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु संलेहणा-झूसणाझूसिए, भत्त-पाणपडियाइक्खिए, पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

विशेष शब्दों के अर्थ–दुरुहेइ–चढ़े, पडिलेहेइ–प्रतिलेखना की, उच्चारपासवणभूमि–

बड़ीनीत लघुनीत करने की भूमि, पुरत्थाभिमुहे-पूर्व की तरफ मुख करके, संपलियंकणि-सण्णे-पर्यंक आसन से बैठ कर, करयलसपरिग्गहियं-दोनों हाथ जोड़कर, दसनहं-दसों नख सहित, सिरसावत्तं-मस्तक पर से आवर्तन देकर, इयाणि-इस समय, अणवकंखमाणे-वाञ्छा न करते हुए।

भावार्थ-भगवान् की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर स्कन्दक मुनि को बड़ा हर्ष एवं संतोष हुआ। फिर खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा और वन्दना नमस्कार करके स्वयमेव पांच महाव्रतों का आरोपण किया। फिर साधु साध्वियों को खमा कर तथारूप के योग्य कडाई स्थविरों के साथ धीरे धीरे विपुल पर्वत पर चढ़े। फिर मेघ के समूह सरीखे प्रकाश वाली (काली) और देवों के आगमन के स्थानरूप पृथ्वीशिलापट्ट की प्रतिलेखना करके एवं उच्चार-पासवण भूमि (बड़ीनीत लघुनीत की भूमि) की प्रतिलेखना करके पृथ्वीशिलापट्ट पर डाभ का संथारा बिछा कर, पूर्वदिशा की ओर मुख करके, पर्यंकासन से बैठ कर, दसों नख सहित दोनों हाथों को शिर पर रख कर (दोनों हाथ जोड़ कर) इस प्रकार बोले-अरिहन्त भगवान् यावत् जो मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं, उन्हें नमस्कार हो, तथा अविचल शाश्वत सिद्ध स्थान को प्राप्त करने की इच्छा वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार हो। वहां रहे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को यहां रहा हुआ मैं वन्दना करता हूं। वहां रहे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहां पर रहे हुए मुझे देखें। ऐसा कह कर भगवान् को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले-मैंने पहले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास यावज्जीवन के लिए सर्व प्राणातिपात का त्याग किया था यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह ही पापों का त्याग किया था। इस समय भी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास यावज्जीवन के लिए सर्व-प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह ही पापों का त्याग करता हूं और यावज्जीवन के लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूं तथा यह मेरा शरीर जो कि मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय

है, जिसकी मैंने बाधा-पीड़ा, रोग परीषह उपसर्ग आदि से रक्षा की है, ऐसे शरीर को भी चरम (अन्तिम) श्वासोच्छ्वास तक वोसिराता (त्यागता) हूँ। ऐसे कह कर संलेखना संथारा करके, भक्त पान का सर्वथा त्याग करके, पादपोपगमन संथारा करके, काल (मृत्यु) की आकांक्षा न करते हुए स्थिर रहूँ।

विवेचन-भगवान् की अनुमति लेकर स्कन्दक मुनि विपुल पर्वत पर गये। वहाँ जाकर पृथ्वीशिलापट्ट पर विधिपूर्वक संलेखना करके पादपोपगमन (कटी हुई वृक्ष की डाली की तरह स्थिर रहने रूप) संथारा कर लिया।

तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए। तए णं थेरा भगवंतो खंदयं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउसग्गं करेंति, करित्ता पत्त-चीवराणि गिण्हंति, गेण्हित्ता विपुलाओ पव्वयाओ सणियं सणियं पच्चोसक्कंति, पच्चोसक्कित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे उवागच्छइ, समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासीः-एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए पगइविणीए पगइउवसंते पगईपयणुकोह-माण-माया-लोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे भद्दए विणीए। से णं देवाणुप्पियेहिं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच

महव्वयाणि आरोवित्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, अम्हेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं तं चेव निरवसेसं जाव-आणुपुव्वीए कालगए । इमे य से आयारभंडए ।

विशेष शब्दों के अर्थ-परिनिव्वाणवत्तियं-परिनिर्वाण के निमित्त, पच्चोसक्कंति-नीचे उतरते हैं, पगइभद्दए-प्रकृत्ति के भद्र, मिउमद्दवसम्पन्ने-कोमल एव निरभिमानी, अल्लीणे-गुरु के आश्रय मे रहनेवाले ।

भावार्थ-इसके पश्चात् स्कन्दक अनगार, जिन्होंने कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तथारूप के श्रमणों के पास ग्यारह अंगों का ज्ञान पढ़ा था, वे बराबर बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना से अपनी आत्मा को संलिखित (सेवित-युक्त) करके, साठ भक्त अनशन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त करके वे कालधर्म को प्राप्त हो गये ।

इसके पश्चात् उन स्थविर मुनियों ने स्कन्दक मुनि को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर उनके परिनिर्वाण सम्बन्धी (मृत्यु सम्बन्धी) कायोत्सर्ग किया । फिर उनके वस्त्र और पात्रों को लेकर वे विपुल पर्वत से धीरे धीरे नीचे उतरे, उतर कर जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजे हुए थे वहां आये । भगवान् को वन्दना नमस्कार करके उन स्थविर मुनियों ने इस प्रकार कहा-हे भगवन् ! आपके शिष्य स्कन्दक अनगार जो कि प्रकृत्ति के भद्र, विनयी, शान्त, अल्प क्रोध, मान, माया, लोभवाले, कोमलता और नम्रता के गुणों से युक्त, इन्द्रियों को वश में रखनेवाले, भद्र और विनीत थे । वे आपकी आज्ञा लेकर स्वयमेव पांच महाव्रतों का आरोपण करके, साधु साध्वियों को खमा कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर गये थे यावत् वे संथारा करके कालधर्म को प्राप्त होगये है । ये उनके उपकरण (वस्त्र, पात्र) हैं ।

विवेचन-स्कन्दक मुनि को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर, उनके साथ गये हुए कडाई स्थविरो ने कायोत्सर्ग किया । फिर उनके वस्त्र पात्र लेकर भगवान् के पास आकर

सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया।

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासीः-एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए णामं अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए कहिं उववण्णे ? 'गोयमादि' ! समणे भगवं महावीरं भगवं गोयमं एवं वयासी-एवं खलु गोयमा ! मम अंतेवासी खंदए णामं अणगारे पगइभद्दए, जाव-से णं मए अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाइं आरूहेत्ता, तं चेव सव्वं अवसेसियं नेयव्वं, जाव-आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णे तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, तस्स णं खंदयस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं भंते ! खंदए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, कहिं गच्छिहिइ कहिं उववज्जिहिइ ? त्ति। गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति ॥ खंदओ सम्मत्तो ॥

॥ बिइयसयस्स पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-अच्चुएकप्पे-अच्युतकल्प नामक १२ वां देवलोक, ठिई-स्थिति, अणंतरं-अनन्तर, चयं-मरना।

भावार्थ-इसके बाद गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीरस्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि-हे भगवन् ! आपके शिष्य स्कन्दक अनगार काल के अवसर पर काल करके कहाँ गये और कहाँ उत्पन्न हुए हैं ?

गौतमादि को सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने फरमाया कि-हे गौतम ! मेरा शिष्य स्कन्दक अनगार, मेरी अनुमति लेकर, स्वयमेव पांच महाव्रतों का आरोपण करके यावत् संलेखना संथारा करके, समाधि को प्राप्त होकर काल के समय में काल करके अच्युतकल्प में देव रूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ कितनेक देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की है। तदनुसार स्कन्दक देव की स्थिति भी बाईस सागरोपम की है।

इसके बाद गौतमस्वामी ने पूछा-हे भगवन् ! वहाँ की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर स्कन्दक देव कहाँ जायेंगे और कहाँ उत्पन्न होंगे ?

भगवान् ने फरमाया-हे गौतम ! स्कन्दक देव वहाँ की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त करेंगे और सभी दुःखों का अन्त करेंगे।

विवेचन-गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने फरमाया कि-स्कन्दक अनगार यथासमय काल करके बारहवे देवलोक में गये हैं। वहाँ उनकी बाईस सागरोपम की स्थिति है। वहाँ की स्थिति पूर्ण होने पर वे महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सयम अगीकार करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगे यावत् सभी दु खो का अन्त करेगे।

यहाँ मूल में 'कहिं गए, कहिं उववण्णे' शब्द है। 'कहिं गए' का अर्थ है-कहाँ गये ? अर्थात् किस गति मे गये ? 'कहिं उववण्णे' का अर्थ है-कहाँ उत्पन्न हुए ? अर्थात् किस देवलोक मे उत्पन्न हुए।

'आउक्खएण भवक्खएण ठिइक्खएणं' का अर्थ इस प्रकार है-'आउक्खएणं' अर्थात् आयुष्य कर्म के दलिको की निर्जरा होने से। 'भवक्खएण' देव भव के कारणभूत गत्यादि कर्मों की निर्जरा होने से। 'ठिइक्खएण' अर्थात् आयुष्य कर्म की स्थिति भोग लेने से।

स्कन्दक अनगार ने ग्यारह अगो का ज्ञान पढा। बारह भिक्खुपडिमा और गुणरत्न सवत्सर तप किया। बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया। विपुलगिरि पर संथारा

किया। साठ भक्त अनशन का छेदन किया अर्थात् एक दिन के दो टंक के हिसाब से साठ भक्त का यानी एक मास का संथारा किया। यथासमय काल करके बारहवें देवलोक में बाईस सागरोपम की स्थिति वाले देव हुए। वहां की स्थिति पूर्ण करके (वहाँ से चव कर) महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगे और सयम अगीकार करके, समस्त कर्मों का क्षय करके, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगे यावत् सब दु खो का अन्त करेगे।

॥ दूसरे शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक २

समुद्घात वर्णन

१९ प्रश्न–कइ णं भंते ! समुग्घाया पण्णत्ता ?

१९ उत्तर–गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहाः–वेदणा-समुग्घाए एवं समुग्घायपदं, छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं भाणियव्वं जाव–वेमाणियाणं, कसायसमुग्घाया अप्पाबहुयं।

२० प्रश्न–अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो केवलीसमुग्घाए जाव–सासयमणागयद्धं चिट्ठंति ?

२० उत्तर–समुग्घायपदं णेयव्वं।

॥ बिइयसए बिइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ–समुग्घाया–समुद्घात, अप्पाबहुयं–अल्पबहुत, भावियप्पणो–भावितात्मा, णेयव्वं–जानना चाहिए।

भावार्थ–१९ प्रश्न–हे भगवन् ! समुद्घात कितनी कही गई हैं ?

उत्तर-१९ हे गौतम ! समुद्घात सात कही गई हैं। यथा-वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस् समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवलि समुद्घात। यहाँ पर प्रज्ञापना सूत्र का छत्तीसवां समुद्घात पद कहना चाहिए, किन्तु उसमें आया हुआ छद्मस्थ समुद्घात का वर्णन यहाँ नहीं कहना चाहिए। इस तरह वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। कषाय समुद्घात और अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

प्रश्न-२० हे भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार के केवलि समुद्घात यावत् शाश्वत अनागतकाल पर्यन्त रहती है ?

उत्तर-२० हे गौतम ! यहाँ पर भी ऊपर कहे अनुसार समुद्घात पद जान लेना चाहिए।

विवेचन-प्रथम उद्देशक में 'मरण' का कथन किया गया है। मरण दो प्रकार से होता है-मारणान्तिक समुद्घात पूर्वक और मारणान्तिक समुद्घात विना। इसलिए इस दूसरे उद्देशक मे 'समुद्घात' का वर्णन किया जाता है।

समुद्घात-वेदना आदि के साथ एकाकार हुए आत्मा का कालान्तर में उदय में आने वाले वेदनीय आदि कर्म-प्रदेशों को उदीरणा के द्वारा उदय में लाकर प्रबलता पूर्वक उनकी निर्जरा करना 'समुद्घात' कहलाता है। इसके सात भेद है। यथा;-

१ वेदना समुद्घात-वेदना के कारण से होने वाले समुद्घात को वेदना समुद्घात कहते हैं। यह असाता वेदनीय कर्मों के आश्रित होता है। तात्पर्य यह है कि वेदना से पीड़ित जीव, अनन्तानन्त कर्म स्कन्धो से व्याप्त अपने प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालता है और उनसे मुख उदर आदि छिद्रो को और कान तथा स्कन्धादि अन्तरालों को पूर्ण करके लम्बाई और विस्तार में शरीर परिमाण क्षेत्र मे व्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त तक ठहरता है। उस अन्तर्मुहूर्त में प्रभूत असातावेदनीय कर्मपुद्गलो की निर्जरा करता है।

२ कषाय समुद्घात-क्रोधादि कषाय के कारण से होने वाले समुद्घात को कषाय समुद्घात कहते है। यह समुद्घात मोहनीय के आश्रित है अर्थात् तीव्र कषाय के उदय से व्याकुल जीव, अपने आत्म प्रदेशो को बाहर निकाल कर और उनसे मुख उदर(पेट)आदि के छिद्रों को एवं कान और स्कन्ध आदि के अन्तरालों को पूर्ण करके लम्बाई और चौड़ाई मे शरीर परिमाण क्षेत्र में व्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और प्रभूत कषाय पुद्गलों

की निर्जरा करता है।

३ मारणान्तिक समुद्घात—मरणकाल में होने वाले समुद्घात को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। यह अन्तर्मुहूर्त शेष आयुकर्म के आश्रित है अर्थात् कोई जीव आयुकर्म अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर अपने आत्मप्रदेशो को बाहर निकाल कर उनसे मुख उदर आदि के छिद्रो को और कान एवं स्कन्ध आदि के अन्तरालों को पूर्ण करके विष्कम्भ (घेरा) और मोटाई में शरीर परिमाण तथा लम्बाई में कम से कम अपने शरीर के अंगुल के असंख्यात भाग परिमाण और अधिक से अधिक एक दिशा में असंख्येय योजन क्षेत्र को व्याप्त करता है और प्रभूत आयु कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है।

४ वैक्रिय समुद्घात—वैक्रिय के आरम्भ करने पर जो समुद्घात होता है उसे वैक्रिय समुद्घात कहते है। यह वैक्रिय शरीर नामकर्म के आश्रित होता है अर्थात् वैक्रिय-लब्धि वाला जीव, वैक्रिय करते समय अपने प्रदेशों को अपने शरीर से बाहर निकाल कर विष्कम्भ और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई में संख्येय योजन परिमाण दण्ड निकालता है, और पूर्वबद्ध वैक्रिय शरीर नामकर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है।

५ तैजस् समुद्घात—यह तेजोलेश्या निकालने के समय में रहने वाले तैजस् शरीर नामकर्म के आश्रित है अर्थात् तेजोलेश्या की स्वाभाविक लब्धि वाला कोई साधु आदि सात आठ कदम पीछे हट कर विष्कम्भ और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई में संख्येय योजन परिमाण जीव प्रदेशों के दण्ड को शरीर से बाहर निकाल कर क्रोध के विषयभूत जीवादि को जलाता है और प्रभूत तैजस् शरीर नाम कर्म के पुद्गलो की निर्जरा करता है।

६ आहारक समुद्घात—आहारक शरीर का आरम्भ करने पर होने वाला समुद्घात, आहारक समुदघात कहलाता है। वह आहारक नामकर्म को विषय करता है अर्थात् आहारक शरीर की लब्धि वाला आहारक शरीर की इच्छा करता हुआ विष्कम्भ और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई मे संख्येय योजन परिमाण अपने प्रदेशो के दण्ड को शरीर से बाहर निकाल कर पूर्वबद्ध आहारक नामकर्म के प्रभूत पुद्गलों की निर्जरा करता है।

७ केवलिसमुद्घात—अन्तर्मुहूर्त मे मोक्ष प्राप्त करने वाले केवली भगवान् के समुद्घात को केवलिसमुद्घात कहते है। वह वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म को विषय करता है।

अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्त करने वाले कोई केवली (केवलज्ञानी) भगवान् कर्मो को सम करने के लिए अर्थात् वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन कर्मो की स्थिति को आयुकर्म

की स्थिति के बराबर करने के लिए समुद्घात करते हैं। केवलिसमुद्घात मे आठ समय लगते हैं। प्रथम समय मे केवली आत्मप्रदेशो के दण्ड की रचना करता है। वह मोटाई मे स्वशरीर परिमाण और लम्बाई मे ऊपर और नीचे से लोकान्तपर्यन्त विस्तृत होता है। दूसरे समय मे केवली उसी दण्ड को पूर्व और पश्चिम अथवा उत्तर और दक्षिण मे फैलाता है। जिससे उस दण्ड का लोक पर्यन्त फैला हुआ कपाट बनता है। तीसरे समय मे दक्षिण और उत्तर, अथवा पूर्व और पश्चिम दिशा मे लोकान्त पर्यन्त आत्म प्रदेशों को फैला कर उसी कपाट को मथानी रूप बना देता है। ऐसा करने से लोक का अधिकांश भाग आत्म-प्रदेशों से व्याप्त हो जाता है, किन्तु मथानी की तरह अन्तराल प्रदेश खाली रहते हैं। चौथे समय मे मथानी के अन्तरालों को पूर्ण करता हुआ समस्त लोकाकाश को आत्मप्रदेशो से व्याप्त कर देता है, क्योंकि लोकाकाश और जीव के प्रदेश बराबर हैं। पाचवें, छठे, सातवें और आठवें समय मे विपरीत क्रम से आत्मप्रदेशो का संकोच करता है। इस प्रकार आठवे समय मे सब आत्म-प्रदेश पुन. शरीरस्थ हो जाते हैं।

चार स्थावर, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवो के प्रथम के तीन समुद्घात होते हैं। वायुकाय और नारकी जीवों के चार समुद्घात होते है। देव और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों मे पांच समुद्घात होते हैं और मनुष्यो मे सातो समुद्घात होते हैं। छद्मस्थ मनुष्यो मे पहले के छह समुद्घात होते हैं और केवलज्ञानी मे एक केवलिसमुद्घात होता है।

॥ दूसरे शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥



शतक २ उद्देशक ३

पृथ्वियाँ

२१ प्रश्न-कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

२१ उत्तर-जीवाभिगमे नेरइयाणं जो बितिओ उद्देसो सो णेयव्वो पुढवी ओगाहित्ता निरया संठाणमेव बाहल्लं, जाव-

२२ प्रश्न-किं सव्व पाणा उववन्नपुव्वा ?

२२ उत्तर-हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो । पुढवी उद्देसो ।

॥ बिइएसए तइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-णेयव्वो-जानना चाहिए, संठाणं-संस्थान, बाहल्लं-मोटाई, उववण्णपुव्वा-पहले उत्पन्न हुए, असइं-अनेक बार, अदुवा-अथवा, अणंतक्खुत्तो-अनन्तबार।

२१ भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! जीवाभिगम सूत्र में जो नैरयिकों का दूसरा उद्देशक कहा है, उसमें पृथ्वियों सम्बन्धी जो वर्णन आया है, वह यहाँ जान लेना चाहिए । वहाँ संस्थान, मोटाई आदि का जो वर्णन है, वह सारा यहाँ कहना चाहिये ।

२२ प्रश्न-हे भगवान् ! क्या सब जीव उत्पन्नपूर्व हैं अर्थात् सब जीव पहले नरकों में उत्पन्न हुए हे ?

२२ उत्तर-हाँ, गौतम ! सब जीव रत्नप्रभा आदि नरकों में अनेक बार अथवा अनन्तवार पहले उत्पन्न हो चुके हैं । यहाँ जीवाभिगम सूत्र का पृथ्वी उद्देशक कहना चाहिए ।

विवेचन-दूसरे उद्देशक मे समुद्घात का वर्णन करते हुए मारणान्तिक समुद्घात

का वर्णन किया गया था। मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहृत कोई जीव, पृथ्वियों (नरको) मे भी उत्पन्न होते है, इसलिए इस उद्देशक में पृथ्वियो (नरकों) का वर्णन किया गया है।

पृथ्वियों के वर्णन के लिए जीवाभिगम सूत्र के दूसरे उद्देशक की भलामण दी गई है। वहाँ की संग्रह गाथा यह है-

पुढवी ओगाहित्ता णिरया, संठाणमेव बाहल्लं।
विक्खंभपरिक्खेवो, वण्णो गंधो य फासो य ॥

अर्थ-पृथ्वियाँ सात है। यथा-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा (महातमःप्रभा) 'ओगाहित्ता' का अर्थ है-कितनी दूर जाने पर नरकावास है ? रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। उसमें से एक हजार योजन ऊपर छोड़ कर और एक हजार योजन नीचे छोड कर बीच के एक लाख अठहत्तर हजार योजन में तीस लाख नरकावास हैं। इसी तरह शर्कराप्रभा आदि में उनके अनुसार समझना चाहिए। शर्कराप्रभा की मोटाई (बाहल्य) एक लाख बत्तीस हजार योजन, वालुकाप्रभा की मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन, पङ्कप्रभा की मोटाई एक लाख बीस हजार योजन, धूमप्रभा की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन, तमःप्रभा की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन और तमस्तमःप्रभा की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन है।

'संठाणं अर्थात् नरको का संस्थान। आवलिका प्रविष्ट नरकों का संस्थान गोल, त्रिकोण और चतुष्कोण होता है। शेष नरको का सस्थान अनेक प्रकार का होता है।

'बाहल्लं' का अर्थ है-बाहल्य। सातो पृथ्वियो में प्रत्येक नरकावास का बाहल्य अर्थात् मोटाई तीन हजार योजन है। नीचे का एक हजार योजन निविड़ अर्थात् ठोस है। बीच का एक हजार योजन शुषिर (पोला-खाली) है। ऊपर का एक हजार योजन संकुचित है।

'विक्खभ-परिक्खेवो' विष्कम्भ और परिक्षेप, ये दोनो कहना चाहिए। नरकावासों मे कुछ नरकावास सख्येय विस्तृत हैं और कुछ असख्येय विस्तृत है। जिनका परिमाण संख्यात योजन है वे सख्येय विस्तृत है और जिनका परिमाण असंख्यात योजन है वे असंख्येय विस्तृत है। असंख्येय विस्तृतो की लम्बाई चौड़ाई और परिक्षेप (परिधि) असंख्यात हजार योजन है। सख्येय विस्तृतो की लम्बाई, चौड़ाई और परिधि संख्यात हजार

योजन की है। सातवी नरक में अप्रतिष्ठान नामक नरकेन्द्रक एक लाख योजन विस्तृत है। बाकी चार नरकावास असंख्येय योजन विस्तृत है। अप्रतिष्ठान नामक सख्येय विस्तृत नरकावास का आयाम विष्कम्भ अर्थात् लम्बाई चौड़ाई एक एक लाख योजन है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष तथा कुछ अधिक साढ़े तेरह अगुल उसकी परिधि है। परिधि का यह परिमाण जम्बूद्वीप की परिधि की तरह गणित के हिसाब से निकलता है। बाकी चारो का आयाम विष्कम्भ (लम्बाई चौड़ाई) असंख्यात योजन है। इससे तिगुणी से कुछ अधिक परिधि है।

वर्ण-नारकी जीव भयङ्कर रूप वाले होते है। अत्यन्त काले, काली प्रभा वाले तथा भय के कारण उत्कट रोमाञ्च वाले होते है। प्रत्येक नारकी जीव का रूप एक दूसरे को भय उत्पन्न करता है।

गन्ध-सांप, गाय, घोड़ा भैंस आदि के सड़े हुए मृतकलेवर से भी कई गुनी दुर्गन्ध नैरयिको के शरीर से निकलती है। उनमें कोई भी वस्तु रमणीय और प्रिय नही होती।

स्पर्श-खड्ग की धार, क्षुरधार, कदम्बचीरिका (एक तरह का घास जो डाभ से भी बहुत तीखा होता है) शक्ति, सूइयों का समूह, बिच्छू का डंक, कपिकच्छू (खुजली पैदा करने वाली बेल), अंगार, ज्वाला, छाणो की आग आदि से भी अधिक कष्ट देने वाला नरको का स्पर्श होता है।

प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय, इन सभी कायो के जीव, जो व्यवहार राशि में आ चुके हैं, नरक मे अनेकबार एव अनन्त बार उत्पन्न हुए है।

॥ दूसरे शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥



शतक २ उद्देशक ४

इन्द्रियाँ

२३ प्रश्न-कइ णं भंते ! इंदिया पण्णत्ता ?

२३ उत्तर-गोयमा ! पंच इंदिया पण्णत्ता, तं जहाः-पढमिल्लो इंदियउद्देसओ नेयव्वो, संठाणं बाहल्लं पोहत्तं, जाव-अलोगो, इंदियउद्देसो ।

॥ बिइयसए चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-पढमिल्लो-प्रथम, पोहत्तं-पृथुत्व=चौड़ाई ।

भावार्थ-प्रश्न-२३ हे भगवन् ! इन्द्रियाँ कितनी कही गई हैं ?

उत्तर-२३ हे गौतम ! इन्द्रियाँ पाँच कही गई हैं । यहाँ पर प्रज्ञापना सूत्र का इन्द्रिय सम्बन्धी पन्द्रहवें पद का प्रथम उद्देशक कहना चाहिए । उसमें इन्द्रियों का संस्थान, बाहल्य (मोटाई), चौड़ाई यावत् अलोक तक का विवेचन वाला सम्पूर्ण इन्द्रिय उद्देशक कहना चाहिए ।

विवेचन-तीसरे उद्देशक मे नैरयिको का वर्णन किया गया है । नैरयिकों के पांच इन्द्रियाँ होती है । इसलिए इस उद्देशक में इन्द्रियों का वर्णन किया जाता है। इन्द्रियों का वर्णन करने के लिए यहा प्रज्ञापनासूत्र के पन्द्रहवे इन्द्रिय पद के प्रथम उद्देशक की भलामण दी गई है । वहाँ द्वार गाथा यह है-

संठाणं बाहल्लं पोहत्त कइपएस ओगाढे ।
अप्पाबहु पुट्ठ-पविट्ठ विसय अणगार आहारे ॥

अर्थ-इन्द्रियों का संस्थान कैसा है ? श्रोतेन्द्रिय का संस्थान कदम्ब के फूल के आकार है। चक्षु इन्द्रिय का संस्थान मसूर की दाल अथवा चन्द्रमा के आकार है । घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक फूल के समान है । रसनेन्द्रिय का संस्थान उस्तरे (क्षुरप्र) के आकार है । स्पर्शनेन्द्रिय का संस्थान नाना प्रकार का है ।

बाहल्लं-(बाहल्य) -पांचों इन्द्रियों की मोटाई अंगुल के असंख्यातवे भाग है ।

पोहत्तं (विस्तार-लम्बाई) श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय की लम्बाई अगुल के असंख्यातवे भाग है। रसनेन्द्रिय की अपने अगुल से पृथक्त्व (दो से नव) अंगुल तक और स्पर्शनेन्द्रिय की लम्बाई अपने अपने शरीर परिमाण है। पांचों इन्द्रियाँ अनन्त प्रदेशों से बनी हुई है और असख्यात प्रदेशावगाढ हैं। चक्षुइन्द्रिय की अवगाहना सब से अल्प है। उससे सख्यातगुणी श्रोत्रेन्द्रिय की अवगाहना है। उससे संख्यातगुणी अवगाहना घ्राणेन्द्रिय की है। उससे असंख्यातगुणी अवगाहना रसनेन्द्रिय की है। उससे संख्यातगुणी अवगाहना स्पर्शनेन्द्रिय की है चक्षुइन्द्रिय को छोड़ कर शेष चार इन्द्रियां स्पृष्ट और प्रविष्ट विषय को ग्रहण करती है अर्थात् चक्षुइन्द्रिय अप्राप्यकारी है और शेष चार इन्द्रियां प्राप्यकारी है।

विषय-पांचों इन्द्रियो का विषय जघन्य अगुल के असंख्यातवें भाग है अर्थात् अंगुल के असख्यात भाग मे रहे हुए विषय को ग्रहण कर सकती हैं। उत्कृष्ट विषय ग्रहण इस प्रकार है-श्रोत्रेन्द्रिय का बारह योजन, चक्षुइन्द्रिय का साधिक एक लाख योजन, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय नव नव योजन है। अर्थात् इतनी दूरी पर रहे हुए अपने अपने विषय को ये इन्द्रियाँ ग्रहण कर लेती है।

इस विषय मे प्रज्ञापना सूत्र के पन्द्रहवे इन्द्रिय पद में बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। वह सब वहाँ से जानलेना चाहिए, यावत् अलोक तक का वर्णन जान लेना चाहिए।

॥ दूसरे शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥



शतक २ उद्देशक ५

परिचारणा

२४ प्रश्न-अन्नउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति भासंति पण्ण-वेंति परूवेंति, तं जहा-एवं खलु नियंठे कालगए समाणे देवब्भूएणं अप्पाणेणं से णं तत्थ णो अन्ने देवे, णो अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ; णो अप्पणिच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय, अभिजुंजिय परियारेइ; अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय विउव्विय परियारेइ। एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो वेदं वेदेइ, तं जहाः-इत्थिवेदं पुरिसवेदं च, एवं परउत्थियवत्तव्वया नेयव्वा, जाव-इत्थिवेदं च पुरिसवेदं च से कहमेयं भंते ! एवं ?

२४ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवं आइक्खंति जाव-इत्थिवेदं च पुरिसवेदं च। जे ते एवं आहिंसु मिच्छं ते एवं आहिंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि भासामि पन्नवेमि परूवेमि एवं खलु णियंठे कालगए समाणे अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, महड्ढिएसु जाव महाणुभावेसु, दूरगतीसु चिरट्ठितीएसु से णं तत्थ देवे भवई महड्ढिए, जाव-दस दिसाओ उज्जो-वेमाणे पभासेमाणे जाव पडिरूवे। से णं तत्थ अन्ने देवे, अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय, अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पणिच्चियाओ

देवीओ अभिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ; नो अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय विउव्विय परियारेई, एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तं जहाः-इत्थिवेयं वा पुरिसवेयं वा, जं समयं इत्थिवेयं वेएइ णो तं समयं पुरिसवेयं वेदेइ, जं समयं पुरिसवेयं वेएइ णो तं समयं इत्थिवेयं वेदेइ, इत्थिवेयस्स उदएणं नो पुरसिवेयं वेएइ, पुरिसवेयस्स उदएणं नो इत्थिवेयं वेएइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तं जहाः-इत्थीवेयं वा पुरिसवेयं वा। इत्थि, इत्थिवेएणं उदिण्णेणं पुरिसं पत्थेइ, पुरिसो, पुरिसवेएणं उदिण्णेणं इत्थिं पत्थेइ, दो वि ते अण्णमण्णं पत्थेंति, तं जहाः-इत्थी वा पुरिसं, पुरिसे वा इत्थिं।

विशेष शब्दों के अर्थ-नियंठे-निग्रंथ, परियारेइ-परिचारणा करता है-विषय सेवन करता है, अप्पणिच्चियाओ-अपनी खुदकी। अभिजुंजिय-वश करके, दूरगतिसु-दूरजाने की शक्ति, उदिण्णेणं-उदय होने पर, पत्थेइ-प्रार्थना करता है-चाहता है।

भावार्थ-२४प्रश्न-हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि कोई भी निर्ग्रन्थ (मुनि) मर कर देव होता है। वह देव दूसरे देवों के साथ और दूसरे देवों की देवियों के साथ परिचारणा (विषयसेवन) नहीं करता है। इसी प्रकार वह अपनी देवियों को भी वश करके उनके साथ भी परिचारणा नहीं करता है, किन्तु वह देव, वैक्रिय से अपने ही दो रूप बनाता है, जिसमें एक रूप देव का बनाता है और एक रूप देवी का बनता है। इस प्रकार दो रूप बना कर वह देव, उस वैक्रिय-कृत (कृत्रिम) देवी के साथ परिचारणा करता है। इस प्रकार एक जीव, एक ही समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दो वेदों का अनुभव करता है। हे भगवन्!

क्या यह अन्यतीर्थिकों का कथन सत्य है ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों का उपर्युक्त कथन (कि एक ही जीव, एक समय में दो वेदों का अनुभव करता है) मिथ्या है।

हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बतलाता हूँ, प्ररूपणा करता हूँ कि कोई एक निर्ग्रन्थ जो मर कर किसी देवलोक में जो कि महा ऋद्धि युक्त यावत् महाप्रभाव युक्त, दूर जाने की शक्ति युक्त और लम्बी आयुष्य युक्त होते हैं, उनमें से किसी एक देवलोक में महा ऋद्धि युक्त, दसों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला, अति रूप सम्पन्न, देव होता है। वह देव, दूसरे देवों के साथ में और दूसरे देवों की देवियों के साथ में, उनको अपने वश में करके परिचारणा (विषय सेवन) करता है और इसी प्रकार अपनी देवियों को भी वश में करके उनके साथ परिचारणा करता है। परन्तु स्वयं दो रूप बना कर परिचारणा नहीं करता है, क्योंकि एक जीव एक समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दोनों वेदों में से किसी एक वेद का ही अनुभव करता है। जिस समय स्त्रीवेद को वेदता (अनुभव करता) है, उस समय पुरुषवेद को नहीं वेदता है और जिस समय पुरुषवेद को वेदता है, उस समय स्त्रीवेद को नहीं वेदता है। क्योंकि स्त्रीवेद के उदय से पुरुषवेद को नहीं वेदता और पुरुषवेद के उदय से स्त्रीवेद को नहीं वेदता है। इसलिए एक जीव, एक समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दोनों वेदों में से किसी एक ही वेद को वेदता है। जब स्त्रीवेद का उदय होता है तब स्त्री, पुरुष की इच्छा करती है और जब पुरुषवेद का उदय होता है, तब पुरुष, स्त्री की इच्छा करता है अर्थात् अपने अपने वेद के उदय से पुरुष और स्त्री परस्पर एक दूसरे की इच्छा करता है। स्त्री, पुरुष की इच्छा करती है और पुरुष, स्त्री की इच्छा करता है।

विवेचन-चौथे उद्देशक मे इन्द्रियो का कथन किया गया है। इन्द्रियो के होने पर परिचारणा (विषय सेवन) हो सकती है। इसलिए इस उद्देशक में परिचारणा का वर्णन किया गया है। पहले अन्यतीर्थिको की मान्यता का वर्णन किया गया है। अन्यतीर्थिको की मान्यता है कि-जो निर्ग्रन्थ आदि मर कर देवलोक मे देवरूप से उत्पन्न होता है वह

वैक्रिय करके दो रूप बनाता है-एक देवी का और एक देव का। फिर वे दोनों रूप परस्पर परिचारणा करते हैं। इस प्रकार एक जीव, एक ही समय में दो वेद का अनुभव करता है।

भगवान् फरमाते है कि-अन्यतीर्थिको की उपर्युक्त मान्यता मिथ्या है, क्योकि एक जीव एक समय में एक ही वेद का अनुभव कर सकता है, दो वेद का अनुभव नही कर सकता है। पुरुषवेद और स्त्रीवेद, ये दोनों एक ही समय मे उदय में नही आ सकते हैं। क्योकि ये दोनो वेद परस्पर विरुद्ध है। जो दो वस्तुएँ परस्पर निरपेक्ष, विरुद्ध होती है, वे एक ही समय में एक स्थान पर नही रह सकती है, जैसे-अन्धेरा और प्रकाश। इसी तरह स्त्रीवेद और पुरुषवेद ये दोनो परस्पर विरुद्ध है। अतः ये दोनों एक समय में, एक साथ नही वेदे जाते है।

गर्भ विचार

२५ प्रश्न-उदगगब्भे णं भंते ! उदगगब्भेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?

२५ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा।

२६ प्रश्न-तिरिक्खजोणियगब्भे णं भंते। तिरिक्खजोणियगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होई ?

२६ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठ संवच्छराइं।

२७ प्रश्न-मणुस्सीगब्भे णं भंते ! मणुस्सीगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?

२७ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं।

२८ प्रश्न-कायभवत्थे णं भंते ! कायभवत्थे त्ति कालओ केव-

च्चिरं होइ ?

२८ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउवीसं संवच्छराइं।

२९ प्रश्न-मणुस्स-पंचेंदियतिरिक्खजोणियबीए णं भंते ! जोणियब्भूए केवतियं कालं संचिट्ठइ ?

२९ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

विशेष शब्दों के अर्थ-उदगगब्भे-पानी का गर्भ, केवच्चिरं-कितने समय तक, संवच्छराइं-वर्ष, कायभवत्थे-कायभवस्थ-माता के गर्भ मे रहे हुए अपने शरीर में ही रहना जोणियब्भूए-योनिभूत।

भावार्थ-२५ प्रश्न-हे भगवन् ! उदकगर्भ (पानी का गर्भ) कितने समय तक उदकगर्भरूप में रहता है ?

२५ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक उदकगर्भ, उदकगर्भरूप में रहता है।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! तिर्यंग्योनि-गर्भ कितने समय तक 'तिर्यग्योनि-गर्भ' रूप में रहता है ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष तक तिर्यग्-योनि-गर्भ, तिर्यग्योनिगर्भरूप में रहता है।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! मानुषी-गर्भ, कितने समय तक मानुषी-गर्भरूप में रहता है ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष तक मानुषीगर्भ, मानुषीगर्भरूप में रहता है।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! कायभवस्थ, कितने समय तक कायभवस्थ रूप में रहता है ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौबीस वर्ष तक कायभवस्थ, कायभवस्थ रूप में रहता है।

२९ प्रश्न-हे भगवन् ! मानुषी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चनी सम्बन्धी योनिगत बीज (वीर्य) कितने समय तक योनिभूत रूप में रहता है ?

२९ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक 'योनिभूत' रूप में रहता है।

विवेचन-पहले परिचारणा का वर्णन किया गया है। परिचारणा से गर्भाधान होता है, इसलिए अब गर्भ के सम्बन्ध में कहा जाता है। कालान्तर में पानी बरसने के कारण रूप पुद्गल परिणाम को 'उदक गर्भ' कहते है। उनकी स्थिति (अवस्थान) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक होती है अर्थात् वह जघन्य एक समय बाद बरस जाता है और उत्कृष्ट छह महीने बाद बरसता है-मार्गशीर्ष और पौष से लेकर वैशाख तक के महीनों में दिखाई देने वाला सन्ध्या का रंग और मेघ का उत्पाद आदि 'उदक-गर्भ' के निशान (चिन्ह) है। जैसा कि कहा-

पौषे समार्गशीर्षे, सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः।
नात्यर्थं मार्गशिरे शीतं पौषेऽतिहिमपातः॥

अर्थ-मार्गशीर्ष (अगहन) और पौष महीने में सन्ध्या का रंग हो और कुण्डाला युक्त मेघ हों, और इस महीने में ठण्ड न पड़े और पौष महीने मे बर्फ बहुत पड़े, ये सब उदकगर्भ के निशान है।

कायभवस्थ-माता के उदर में रहे हुए गर्भ के शरीर को यहाँ 'काय' कहा है। उसमें उत्पन्न होना 'काय भव' कहलाता है। उसी में जो फिर जन्म ले उसको 'काय भवस्थ' कहते है। इसका तात्पर्य यह है कि-माता के पेट में रहे हुए अपने ही शरीर में फिर से उत्पन्न होना 'काय भवस्थ' कहलाता है। जैसे कि-कोई जीव, माता के उदर मे गर्भ रूप से आया। फिर वह जीव, उसी शरीर मे माता के उदर मे बारह वर्ष तक रह कर वहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाय, फिर अपने द्वारा निर्मित उसी शरीर में उत्पन्न होकर फिर बारह वर्ष तक रहे। इस तरह एक जीव उत्कृष्ट चौबीस वर्ष तक 'काय भवस्थ' रूप मे रह सकता है।

किसी का ऐसा मत है कि-माता के उदर में उस शरीर में बारह वर्ष तक रह

कर फिर दूसरे वीर्य द्वारा वही पर उसी शरीर में बारह वर्ष की स्थिति वाला होकर जन्मता है, इस तरह वह चौबीस वर्ष तक रहता है

मनुष्य और तिर्यञ्च का वीर्य बारह मुहूर्त तक योनिभूत गिना जाता है अर्थात् मानुषी या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चणी की योनि मे गया हुआ वीर्य बारह मुहूर्त तक सचित्त रहता है। उस वीर्य मे बारह मुहूर्त तक सन्तानोत्पादक शक्ति रहती है।

३० प्रश्न-एगजीवे णं भंते ! एगभवग्गहणेणं केवइयाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ ?

३० उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं इक्कस्स वा दोण्हं वा तिण्हिं वा उक्कोसेणं सयपुहुत्तस्स जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ।

३१ प्रश्न-एगजीवस्स णं भंते ! एगजीवभवग्गहणेणं केवइया जीवा पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ ?

३१ उत्तर-गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ।

३२ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, जाव-हव्वमागच्छइ?

३२ उत्तर-गोयमा ! इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ। ते दुहओ सिणेहं संचिणंति, संचिणित्ता तत्थ णं जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ, से तेणट्ठेणं जाव-हव्वमागच्छइ।

३३ प्रश्न-मेहुणेणं भंते ! सेवमाणस्स केरिसिए असंजमे कज्जइ ?

३३ उत्तर-गोयमा ! से जहा नामए केई पुरिसे रूयनालियं वा बूरनालियं वा तत्तेणं कणएणं समविद्धंसेज्जा, एरिसएणं गोयमा ! मेहुणं सेवमाणस्स असंजमे कज्जइ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ ।

विशेष शब्दों के अर्थ-सयपुहुत्तस्स-शतपृथक्त्व-दो सौ से लेकर नौ सौ तक, सयसहस्सपुहुत्तं-शतसहस्रपृथक्त्व=दो लाख से लेकर नौ लाख तक, कम्मकडाए-कामोत्तेजित, मेहुणवत्तिए-मैथुनवृत्तिक, संजोए-संयोग, संचिणंति-संबंध करते हैं, रूयणालियं-रूई की नलिका, बूरणालियं-बूर-एक प्रकार की वनस्पति की नलिका, तत्तेणं-गर्म, कणएणं-सोने की सलाई, समविद्धंसेज्जा-विध्वंस हो जाता है।

३० प्रश्न-हे भगवन् ! एक जीव, एक भव में कितने जीवों का पुत्र हो सकता है ?

३० उत्तर-हे गौतम ! एक जीव, एक भव में जघन्य एक जीव का, या दो जीव का, अथवा तीन जीव का और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ तक) जीवों का पुत्र हो सकता है।

३१ प्रश्न-हे भगवन् ! एक भव मे एक जीव के कितने पुत्र हो सकते हैं ?

३१ उत्तर-हे गौतम ! जघन्य एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्ट लक्ष पृथक्त्व (दो लाख से लेकर नौ लाख तक) पुत्र हो सकते हैं।

३२ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

३२ उत्तर-हे गौतम ! स्त्री और पुरुष की कर्मकृत (कामोत्तेजित) योनि में 'मैथुनवृत्तिक' नाम का संयोग उत्पन्न होता है। जिससे पुरुष का वीर्य और स्त्री का रक्त, इन दोनों का सम्बन्ध होता है। उसमें जघन्य एक, या दो या तीन और उत्कृष्ट लक्ष पृथक्त्व (दो लाख से लेकर नौ लाख तक)जीव, पुत्र रूप मे उत्पन्न होते हैं।

३३ प्रश्न-हे भगवन् ! मैथुन सेवन करते हुए जीव के किस प्रकार का असंयम होता है ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार कोई पुरुष, तपी हुई सलाई डाल कर, रुई की नली या बूर नामक वनस्पति की नली को जला डालता है, उस तरह का असंयम मैथुन सेवन करते हुए जीव के होता है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते है।

विवेचन-गाय आदि की योनि मे गया हुआ-शतपृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ तक) बैलो का वीर्य, वही वीर्य गिना जाता है। उस वीर्य के समुदाय मे उत्पन्न हुआ एक जीव, उन सब का (जिनका कि वीर्य योनि मे गया है) पुत्र कहलाता है। इस प्रकार एक जीव, एक ही भव मे उत्कृष्ट नौ सौ जीवो का पुत्र हो सकता है अर्थात् एक ही भव मे एक जीव के उत्कृष्ट नौ सौ पिता हो सकते हैं।

मत्स्य आदि जब मैथुन सेवन करते है, तब उनके एक बार के संयोग में शत-सहस्रपृथक्त्व (दो लाख से लेकर नौ लाख तक) जीव पुत्र रूप से उत्पन्न होते हैं और जन्म लेते है। इस प्रकार एक ही भव मे एक जीव के उत्कृष्ट शतसहस्रपृथक्त्व पुत्र हो सकते है। मनुष्यस्त्री की योनि मे यद्यपि बहुत जीव उत्पन्न होते है, तथापि जितने उत्पन्न होते है वे सब के सब निष्पन्न नही होते हैं अर्थात् जन्म नही लेते हैं।

कर्मकृत योनि मे अर्थात् नामकर्म से बनी हुई योनि मे अथवा जिसमें कामोत्तेजक क्रिया हुई है, उस योनि मे मैथुनवृत्तिक (मैथुन की वृत्ति वाला) अथवा मैथुनप्रत्ययिक (मैथुन का हेतु रूप) संयोग (सम्बन्ध) होता है, तब स्त्री की योनि मे पुरुष का वीर्य और स्त्री का रुधिर. इन दोनो का सम्मिश्रण होता है और उसी मे जीव की उत्पत्ति होती है।

मैथुन मे किस प्रकार का असयम होता है ? इस बात को बतलाते हुए कहा गया है कि-जैसे किसी बास आदि की नली में रूई या बूर (रूई से भी अधिक कोमल एक प्रकार की वनस्पति) भरा हुआ हो, उसमे कोई पुरुष, तपी हुई लोह की सलाई डाले, तो उस नली मे रही हुई रूई या बूर, जल कर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार मैथुन सेवन करते हुए पुरुष के मेहन (लिंग-पुरुष चिन्ह) द्वारा स्त्री की योनि मे रहे हुए जीवों का नाश हो जाता है। वे जीव पञ्चेन्द्रिय होते हैं। उनका विनाश हो जाता है। मैथुन सेवन करने से इस प्रकार का असंयम होता है।

तुङ्गिका के श्रावकों के प्रश्नोत्तर

३४-तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ, गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमइत्ता बहिया जणवयविहारं विहरई। ते णं काले णं, ते णं समए णं, तुंगिया नामं नगरी होत्था, वण्णओ। तीसे णं तुंगियाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे पुप्फवतिए नामं चेइए होत्था, वण्णओ। तत्थ णं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति, अड्ढा दित्ता वित्थिन्नविपुलभवण-सयणाऽसण-जाण-वाहणाइण्णा, बहु-धणबहुजायरूवरयया, आयोग-पयोगसंपउत्ता, विच्छड्डियविपुल-भत्तपाणा, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया, बहुजणस्स अपरिभूया।

विशेष शब्दों के अर्थ-अड्ढा-आढ्य-बहुत धनयुक्त, दित्ता-देदीप्यमान, वित्थिण्ण-विस्तीर्ण, आइण्णा-आकीर्ण युक्त, बहुजायरूवरयया-बहुतसा सोना चांदी, आयोगपयोग-संपउत्ता-आयोग प्रयोग सम्प्रयुक्त अर्थात् व्याज आदि का व्यवसाय करके दुगुना तिगुना धनोपार्जन करने तथा अन्य कला हुनर मे कुशल, विच्छड्डियविपुल-बहुत छोड़ा हुआ, गवेलय-भेड़ बकरी, प्पभूया-बहुत, अपरिभूया-जिसे कोई नही डिगा सके।

भावार्थ-३४ इसके बाद किसी एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशीलक बगीचे से निकल कर बाहर जनपद में विचरने लगे। उस काल उस समय में तुंगिया (तुंगिका)× नाम की नगरी थी।

× बनारस (काशी) से ८० कोस दूर पाटलीपुर (पटना) शहर है। वहाँ से दस कोस दूर तुंगिया नाम की नगरी है। (श्री समेतशिखर रास)

उसका वर्णन करना चाहिए। तुंगिया नगरी के बाहर उत्तर और पूर्व दिशा में अर्थात् ईशानकोण में पुष्पवती नाम का बगीचा था। उसका वर्णन करना चाहिए। उस तुंगिया नगरी में बहुत-से श्रमणोपासक (श्रावक) रहते थे। वे श्रमणोपासक आढ्य (विशाल सम्पत्ति वाले) और दीप्त (देदीप्यमान) थे। उनके रहने के घर विशाल और बहुत ऊंचे थे। उनके पास शयन (पथरणा) आसन, गाड़ी, बैल आदि बहुत थे। उनके पास धन, सोना चांदी आदि बहुत था। वे आयोग प्रयोग द्वारा अर्थात् ब्याज आदि के व्यवसाय द्वारा दुगुना तिगुना धनोपार्जन करने की कला में तथा अन्य कलाओं में कुशल थे। उनके घर अनेक जन भोजन करते थे, इसलिए उनके घर बहुत खानपान तय्यार होता था। उनके घर अनेक दास दासी तथा गाय, भैंस, भेड, बकरियां आदि थे। वे बहुत जन के भी अपरिभूत थे अर्थात् कोई भी उनका पराभव नहीं कर सकता था।

विवेचन–तिर्यञ्च और मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पहले विचार किया गया था। अब देवोत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। जिसमें पहले तुंगिया नगरी के श्रावकों का वर्णन चलता है। तुंगिया नगरी के श्रावकों के लिए मूलपाठ में जो विशेषण दिये गये हैं, उनका विस्तृत अर्थ इस प्रकार है–

'अड्ढे'–आढ्य अर्थात् धन धान्य आदि से परिपूर्ण।

'दित्ते'–दीप्त अर्थात् प्रख्यात अथवा दृप्त अर्थात् गर्वित।

'विच्छिण्ण विपुलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णा'–जिनके विशाल और ऊंचे घर हैं, वे घर, शयन (बिस्तर गादी आदि) आसन, यान–गाड़ी आदि, वाहन–बैल, घोड़े आदि से भरे हुए थे (अथवा जिनके घर विशाल और ऊंचे थे तथा जिनके शयन, आसन, यान और वाहन सुन्दर थे।

'बहुधण बहुजाय रूवरयया'–अर्थात् जिनके पास बहुत धन, बहुत सोना और चांदी थी।

'आओगपओगसंपउत्ता'–आयोग प्रयोग संप्रयुक्त अर्थात् दुगुना तिगुना करने के उद्देश्य से रुपया देना 'आयोग' कहलाता है और किसी प्रकार का कला-हुनर 'प्रयोग' कहलाता है। इन दोनों प्रकार के व्यवसाय में वे चतुर थे।

'विच्छड्डियविपुलभत्तपाणा'–अर्थात् उनके घर बहुत से मनुष्य भोजन करते थे,

इसलिए झूठन बहुत पड़ता था। अथवा उनके घर विविध प्रकार का और बहुत अशन पान तैयार होता था।

'बहुदासीदास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया' अर्थात् उनके यहां बहुतसे दास दासी रहते थे तथा बहुतसी गाये, भैंसे, भेड़ और बकरियाँ आदि पालतू जानवर थे।

'बहुजणस्स अपरिभूया'—बहुजन मिलकर भी उनका पराभव नही कर सकते थे।

अभिगयजीवा-ऽजीवा, उवलद्धपुण्ण-पावा आसव-संवर-निज्जर-किरिया-ऽहिकरण-बंध-मोक्खकुसला, असहेज्जदेवा-ऽसुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख - रक्खस-किन्नर-किंपुरुस-गरुल-गंधव्व-महोर - गाईएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिया निक्कंखिया निव्वितिगिच्छा, लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा, अट्ठिमिंजपेमाणु-रागरत्ता, अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे ऊसियफलिहा, अवंगुयदुवारा, चियत्तंतेउरघरप्पवेसा, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं, चाउद्दस-ट्ठमुद्दिट्ठ -पुण्णमासिणीसु परिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कबंल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

विशेष शब्दों के अर्थ—अभिगयजीवाजीवा—जिन्होने जीव अजीव को समझ लिया,

उवलद्धपुण्णपावा-पुण्य और पाप के स्वरूप को प्राप्त कर लिया, आसव-कर्म आने का मार्ग, संवर-कर्म रोकना, निज्जर-कर्म झाड़ना, किरिया-जो की जाती है, अहिकरण-अधिकरण =क्रिया का साधन, बंध-कर्म का आत्मा के साथ बँधना, मोक्ख-मोक्ष=कर्मों से मुक्त होना, कुसला-निपुण, असहेज्जदेव-देवो की भी सहायता नही चाहने वाले, अणतिक्कमणिज्जा-उल्लघन न करने वाले, निस्संकिया-शका रहित, निक्कंखिया-पर दर्शन की इच्छा रहित, निव्वितिगिच्छा-फल की शंका से रहित, लद्धट्ठा-लब्धार्थ=तत्त्वार्थ को प्राप्त करने वाले, गहियट्ठा-ग्रहितार्थ=सूत्रार्थ को ग्रहण किये हुए, पुच्छियट्ठा-पृष्टार्थ=प्रश्न पूछकर सूत्रार्थ प्राप्त किये हुए, अभिगयट्ठा-विशेष प्रकार से अर्थ ग्रहण किये हुए, विणिच्छियट्ठा-रहस्य प्राप्त करके अर्थ का निश्चय किया, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता-उनकी हड्डियाँ और मज्जा धर्म प्रेम से रंगी हुई, ऊसियफलिहा-जिनके किवाड़ के पोछे का आगल ऊची की हुई है, अवगुयदुवारा-जिनके दरवाजे पर किवाड नही लगे हुए हैं, चियत्ततेउरघरप्पवेसा-अन्तः-पुर और परघर मे प्रवेश करने से जिनके प्रति लोगो को अप्रीति उत्पन्न नही होती, वेरमण-निवृत्त होना, पच्चक्खाण-त्याग की प्रतिज्ञा, फासु-निर्जीव, एसणिज्ज-निर्दोष, चाउद्दस-ट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु-चवदम, अष्टमी, उद्दिट्ठ अर्थात् अमावस्या और पूर्णमासी के दिनो मे, अहापडिग्गहिएहिं-यथाप्रतिगृहीत=ग्रहण किये अनुसार।

भावार्थ-वे जीव और अजीव के स्वरूप को भली प्रकार से जानते थे। पुण्य पाप के विषय में उनका पूरा ध्यान था। आश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध और मोक्ष के विषय में वे कुशल थे अर्थात् इनमें कौन हेय है और कौन उपादेय है, इस बात को वे भली प्रकार जानते थे। वे किसी भी कार्य में दूसरों की सहायता की आशा नहीं रखते थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचनों में ऐसे दृढ़ थे कि देव, असुर, नाग, ज्योतिष्क, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड़ (सुवर्णकुमार), गन्धर्व, महोरग आदि कोई भी देव, दानव उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचन से डिगाने में समर्थ नहीं थे। उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचनों में किसी भी प्रकार की शंका, कांक्षा, विचिकित्सा नहीं थी। उन्होंने निर्ग्रन्थ प्रवचनों का अर्थ भली प्रकार जाना था। शास्त्रों के अर्थ को भली प्रकार ग्रहण किया था। शास्त्रों के अर्थो में जहाँ सन्देह था उनको पूछ कर अच्छी तरह निर्णय किया था। उन्होंने शास्त्रों के अर्थों को और उनके रहस्यों को निर्णयपूर्वक जाना था। निर्ग्रन्थ-



प्रवचनों पर उनका प्रेम हाडोहाड (हड्डी और हड्डी की मज्जा में) व्याप्त हो गया था। इसीलिए वे कहते थे कि-हे आयुष्यमन् बन्धुओं! "यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही अर्थ है। यही परमार्थ है, शेष सब अनर्थ है"। वे इतने उदार थे कि उनके घरों में दरवाजों के पीछे रहने वाली अर्गला (आगल-भोगल) हमेशा ऊंची रहती थी। उनके दरवाजे हरेक याचक के लिए सदा खुले रहते थे। वे शीलव्रत (ब्रह्मचर्यव्रत) में ऐसे दृढ़ थे कि वे पर घर में प्रवेश करते और यहाँ तक कि राजा के अन्तःपुर में भी चले जाते, तो भी किसी को अप्रीति एवं अविश्वास उत्पन्न नहीं होता था। वे शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत और प्रत्याख्यानों का पालन करते थे। चौदस, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा, इस प्रकार एक मास में वे छह पौषधोपवास करते थे। वे श्रमण निर्ग्रन्थों को उनके कल्पानुसार प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज, आदि का दान देते थे। यथा प्रतिगृहीत-अपनी शक्ति अनुसार ग्रहण किये हुए तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

विवेचन-'अभिगयजीवाजीवा, उवलद्धपुण्णपावा, आसव-सवर-णिज्जर-किरिया-अहिकरण-बंध-मोक्ख-कुसला' अर्थात् वे जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, कायिकी आदि क्रिया, अधिकरण अर्थात् गाड़ी यन्त्र आदि, शस्त्र, बन्ध और मोक्ष, इनके स्वरूप को भली प्रकार जानते थे तथा इनमें से कौन हेय (छोड़ने योग्य) और कौन उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है ? इस बात को वे भली प्रकार जानते थे।

'असहेज्ज देवा' इत्यादि, अर्थात् वे स्वयं बलवान् होने से दूसरों की सहायता नही लेते थे। 'स्वय कृतं कर्म स्वयमेव भोक्तव्यम्' अर्थात् स्वयं का किया हुआ कर्म स्वयं को ही भोगना पड़ता है-ऐसी दृढ़ मनोवृत्ति रख कर दु.ख के प्रसग पर भी वे देवादि की सहायता नही लेते थे अथवा वे अपनी प्रतिज्ञा पर ऐसे दृढ़ थे कि देवादि भी उनको अपनी प्रतिज्ञा से चलित नही कर सकते थे। अथवा पाखण्डी लोग उन्हे समकित से चलित करने के लिए उन पर आक्रमण करते थे, किन्तु वे निर्ग्रन्थ प्रवचनों मे अत्यन्त चुस्त होने के कारण वे पाखण्डियों को परास्त करने मे स्वयं समर्थ थे। इस विषय मे वे किसी की सहायता नहीं लेते थे। भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देव भी उनको निर्ग्रन्थ प्रवचनों

से चलित करने में समर्थ नही थे ।

निर्ग्रन्थ प्रवचनों का अर्थ सुनने के कारण वे 'लब्धार्थ' थे । अर्थ का निर्णय करने से वे 'गृहीतार्थ' थे । सन्देह वाले स्थलो को पूछ कर निर्णय कर लेने के कारण वे 'पृष्टार्थ' थे । पूछे हुए अर्थो को सम्यक् प्रकार से धारण करने से वे 'अभिगृहीतार्थ' थे । शास्त्रो के रहस्यो को जानकर वे 'विनिश्चितार्थ' थे । ऐसा होने से उनकी हड्डी और मज्जा सर्वज्ञ के विश्वास रूपी कसुंबा रग से रंगी हुई थी । इसीलिए वे कहते थे कि-"हे आयुष्मन् जीवों ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, यही परमार्थ है । इसके सिवाय शेष सब (धन, धान्य, पुत्र, कलत्र, भाई बन्धु और कुप्रावचन) अनर्थ हैं ।

जिनधर्म की प्राप्ति से उनका मन परितुष्ट था, अतएव उनका मन स्फटिक रत्न के समान उन्नत था । अथवा 'उसियफलिहा' का अर्थ अन्य आचार्य इस प्रकार करते है कि-वे अत्यन्त उदार थे, इसलिए सभी याचकों के लिए उनके द्वार खुले रहते थे । किंवाड़ के पीछे की अर्गला सदा ऊपर की तरफ उठी हुई रहती थी, कभी दरवाजा बन्द नही रहता था । जिनके घर के दरवाजे किंवाड़ो से बन्द नही किये जाते थे । उन्हे सर्वोत्तम जिनधर्म की प्राप्ति हुई थी, इसलिए वे पाखण्डियो से कभी भी घबराते नही थे । वे ब्रह्मचर्य व्रत में इतने दृढ थे कि वे किसी के घर मे जाते या यहां तक कि राजा के अन्तःपुर मे भी चले जाते तो भी अप्रीति उत्पन्न नही होती थी । किसी को अविश्वास उत्पन्न नही होता था । अथवा जिन्होने पर घर मे और राजा के अन्तपुर मे जाने का त्याग कर दिया था । वे श्रावक के बारह व्रतों का भली प्रकार पालन करते थे । एक महीने मे छह पौषधोपवास करते थे । श्रमण निर्ग्रन्थो को उनके कल्पानुसार प्रासुक एषणीय अशन पान आदि बहराते थे । वे जो व्रत नियम और तप स्वीकार करते थे उनमे किसी प्रकार की कमी न करते हुए पूर्ण रूप से पालन करते थे ।

ते णं काले णं ते णं समए णं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाइसम्पन्ना कुलसम्पन्ना बलसम्पन्ना रूवसम्पन्ना विणयसम्पन्ना णाणसम्पन्ना दंसणसम्पन्ना चरित्तसम्पन्ना लज्जासम्पन्ना लाघवसम्पन्ना ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोहा जिय-

निद्दा जिइंदिया जियपरीसहा जीवियासा-मरणभयविप्पमुक्का,जाव-कुत्तियावणभूया, बहुस्सुया बहुपरिवारा, पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवईए चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

विशेष शब्दों के अर्थ-पासावच्चिज्जा-पार्श्वापत्य=भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये, ओयंसी-ओजस्वी, वच्चंसी-वर्चस्वी=प्रतापी, जससी-यशस्वी, जिअ-जीत लिया, दूइज्जमाणा-जाते हुए, उग्गहं उग्गिण्हित्ता-अवग्रह ग्रहण करके।

भावार्थ-उस काल उस समय में भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवान् अनुक्रम से विचरते हुए ग्रामानुग्राम जाते हुए पांच सौ साधुओं के साथ तुंगिया नगरी के बाहर ईशान कोण में स्थित पुष्पवती उद्यान में पधारे और यथाप्रतिरूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। वे स्थविर भगवन्त जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, बलसम्पन्न, रूपसम्पन्न, विनयसम्पन्न, ज्ञानसम्पन्न, दर्शनसम्पन्न, चारित्रसम्पन्न, लज्जासम्पन्न, लाघवसम्पन्न, नम्रतायुक्त, ओजस्वी, तेजस्वी, प्रतापी, और यशस्वी थे। उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ, निद्रा, इन्द्रियाँ और परीषहों को जीत लिया था। वे जीवन की आशा और मरण के भय से रहित थे यावत् वे कुत्रिकापणभूत थे अर्थात् जैसे-कुत्रिकापण में जो चाहिए वह वस्तु मिल सकती है, उसी प्रकार उनसे भी जैसा चाहिए वैसा बोध मिल सकता एवं उनमें सब गुण मिल सकते थे। वे बहुश्रुत और बहु परिवार वाले थे।

विवेचन-यहाँ 'स्थविर' शब्द से श्रुतवृद्ध-ज्ञानवृद्ध का ग्रहण किया गया है। 'रूपसम्पन्न' का मतलब है-उत्तम साधुवेष से युक्त अथवा शरीर की सुन्दरता से युक्त। लज्जा-

सम्पन्न का अर्थ है—लज्जायुक्त अथवा संयम युक्त। लाघवसम्पन्न अर्थात् द्रव्य से थोडी उपधि रखने वाले और भाव से अभिमान का त्याग करने वाले। ओजस्वी-दृढमनोवृत्ति वाले। तेजस्वी—तेज वाले—शरीर की प्रभा वाले। वर्चस्वी—विशिष्ट प्रभाव से युक्त अथवा वचस्वी—प्रभाव युक्त वचन वाले—प्रभावशाली वक्ता। यशस्वी-ख्याति वाले। वे जीवन की आशा से रहित और मरण के भय से रहित थे। वे तपस्वी थे, गुणवन्त—संयम सम्बन्धी गुणो से युक्त थे। वे पिण्डविशुद्धि आदि चरणसत्तरि और श्रमण धर्म आदि करणसत्तरि के गुणो से युक्त थे। वे इन्द्रियो का निग्रह करने वाले और दृढ मनोवृत्ति वाले थे। वे मार्दव—मृदुता (कोमलता) और आर्जव—ऋजुता (सरलता) से युक्त थे। वे उदय में आई हुई कषाय को निष्फल बनाने वाले थे और नवीन कषाय का उदय ही नही होने देते थे। वे क्षमा और त्याग के गुणो से युक्त थे। वे अपनी तप सयमादि क्रिया के फल का निदान नही करने वाले थे। वे धीर और साधुवृत्ति मे लीन थे। उनके प्रश्नोत्तर साधु मर्यादा के अनुसार निर्दूषण होते थे। वे कुत्रिकापणभूत थे। स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक, इन तीनो लोको मे होने वाली वस्तु जिस दूकान मे मिले उसे कुत्रिकापण * कहते हैं। इसी प्रकार वे स्थविर भी सर्व गुण सम्पन्न थे. सब प्रकार का बोध देने मे समर्थ थे, इसीलिए उनको कुत्रिकापण की उपमा दी गई है। इत्यादि अनेक गुणो से युक्त स्थविर भगवन्त वहाँ पधारे।

तए णं तुंगियाए नयरीए सिंघाडग-तिअ-चउक्क-चच्चर महा-पह-पहेसु, जाव—एगदिसाभिमुहा णिज्जायंति। तए णं ते समणो-वासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठ-तुट्ठा, जाव सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासिः—एवं खलु देवाणुप्पिया! पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जाइसम्पन्ना, जाव अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

* कुत्रिकापण—कु—पृथ्वी। त्रिक—तीन। आपण—दुकान। अर्थात् तीन लोक की वस्तुएँ जिस दुकान मे मिले उसे 'कुत्रिकापण' कहते हैं। यह दुकान देवाधिष्ठित होती है।

विशेष शब्दों के अर्थ-णिज्जायंति-निकलते है, लद्धट्ठा-अर्थ प्राप्त कर, सद्दावेंति-बुलाते है।

उन स्थविर भगवन्तों के पधारने की बात तुंगिया नगरी के शृंगाटक (सिंघाड़े के आकार त्रिकोण) मार्ग में, तीन मार्ग मिलते हैं ऐसे रास्तों में, चार मार्ग मिलते है ऐसे रास्तों में और बहुत मार्ग मिलते हैं ऐसे रास्तों में-सब जगह फैल गई। जनता उनको वन्दन करने के लिए जाने लगी। जब यह बात तुंगिया नगरी में रहने वाले उन श्रावकों को मालूम हुई, तो वे बड़े प्रसन्न हुए, हर्षित हुए और परस्पर एक दूसरे को बुला कर इस प्रकार कहने लगे कि-हे देवानुप्रियों ! भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त जो कि जातिसम्पन्न आदि विशेषण विशिष्ट हैं, वे यहाँ पधारे है और संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

विवेचन-स्थविर भगवतो के पधारने की बात तुंगिका नगरी में फैल गई। जनता के मुह से स्थविर भगवतों के पधारने की बात सुनकर श्रावकगण बड़े प्रसन्न हुए और परस्पर मिल कर हर्ष व्यक्त करते हुए यों कहने लगे।

तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नाम-गोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण पज्जुवासणयाए, जाव-गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! थेरे भगवंते वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो, एयं णे इहभवे वा परभवे वा जाव आणुगामियत्ताए भविस्सइ, इति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति। जेणेव सयाइं सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा, कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता, सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर-

परिहिया, अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं तो सएहिंतो गेहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति।

विशेष शब्दों के अर्थ-सवणयाए-सुनने से, किमंग-कहना ही क्या अथवा=क्या कहना, अभिगमण-सामने जाना, पज्जुवासणया-पर्युपासना=सेवा, गहणयाए-ग्रहण करने से, आणुगामियत्ताए-अनुगामी रूप से अर्थात् परम्परा कल्याण रूप से, उवागच्छति-निकट आते हैं, कयबलिकम्मा-तिलक छापा आदि कार्य किया, पवरपरिहिया-अच्छी तरह से पहिने।

भावार्थ-हे देवानुप्रियों ! तथारूप के स्थविर भगवन्तों के नाम गोत्र को सुनने से भी महाफल होता है, तो उनके सामने जाना, वन्दना करना, नमस्कार करना, कुशल समाचार पूछना और उनकी सेवा करना यावत् उनसे प्रश्न पूछकर अर्थों को ग्रहण करना, इत्यादि बातों के फल का तो कहना ही क्या ? इन बातों से कल्याण हो, इसमें कहना ही क्या ? इसलिए हे देवानुप्रियों ! अपन सब स्थविर भगवन्तों के पास चलें और उन्हें वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। यह कार्य अपने लिए इस भव में और परभव में हितरूप होगा यावत् परम्परा से कल्याणरूप होगा। इस प्रकार बातचीत करके वे श्रमणोपासक अपने अपने घर गये। घर जाकर स्नान किया, फिर बलिकर्म किया अर्थात् स्नान से सम्बन्धित तिलक छापा आदि कार्य किया। फिर मंगल और कौतुक रूप प्रायश्चित्त किया। फिर सभा आदि में जाने योग्य मंगल रूप शुद्ध वस्त्रों को सुन्दर ढंग से पहना। फिर अपने अपने घर से निकल कर वे सब एक जगह इकट्ठे हुए।

विवेचन-मूलपाठ में 'कयबलिकम्मा' शब्द दिया है। जिसका अर्थ यह है कि-जहाँ स्नान का पूरे रूप से वर्णन आता है वहाँ 'कयबलिकम्मा' शब्द नहीं आता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्नान के विस्तृत वर्णन का अध्याहार करने के लिए कयबलिकम्मा' शब्द आता है। ज्ञातासूत्र के दूसरे अध्ययन मे भद्रा सार्थवाही के स्नान प्रसग पर तथा ज्ञाता सूत्र के आठवे अध्ययन मे भगवती मल्लिकुमारी तथा सोलहवे अध्ययन मे द्रौपदी के स्नान प्रसंग पर 'कयबलिकम्मा' शब्द आया है। इससे यह स्पष्ट है कि स्नान के विस्तृत अर्थ का अध्याहार करने के लिए ही 'कयबलिकम्मा' शब्द आता है, किन्तु इसका अर्थ-



गृहदेवता का पूजन करना-यह अर्थ सर्वथा असंगत और आगम विरुद्ध है।

'कयकोउयमंगलपायच्छित्ता' शब्द का अर्थ इस प्रकार है-दु स्वप्नादि के दुष्फल के निवारणार्थ जिन्होने कौतुक और मंगल किये थे वे ही प्रायश्चित्त रूप थे। दूसरे आचार्यों का मत है कि 'पायच्छित्त' का अर्थ है-'पादच्छुप्त' अर्थात् नेत्रों के रोग निवारण के लिए उन्होने पैरो पर अमुक प्रकार के तेल का विलेपन किया था और उन्होने मष तिलक रूप कौतुक तथा सरसों दही चावल दूर्वांकुर (दूब नामक घास) रूप मंगल किया था। सभा मे जाने योग्य उत्तम वस्त्रो को उत्तम रीति से पहना था।

मेलायित्ता पायविहारचारेणं तुंगियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फवतीए चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं जहाः-सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए, एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं चक्खुप्फासं अंजलिप्पग्गहेणं, मणसो एगत्तीकरणेणं जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति। तए णं ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं तीसे महइमहालियाए चाउज्जामं धम्मं परिकहंति। जहा केसिसामिस्स, जाव समणोवासियत्ताए आणाए आराहए भवंति जाव-धम्मो कहिओ।

विशेष शब्दों के अर्थ- निगच्छति-चलते हैं, अभिगमेणं-समीप आते हैं, विउसरणयाए-त्यागकर=दूर करके, एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं-एक शाटिक अर्थात् एक वस्त्र का उत्तरासग किया, चक्खुफासं-दृष्टि मे आने पर, अंजलिप्पग्गहेणं-हाथ जोड़ कर।

भावार्थ—फिर एक जगह एकत्रित होकर पैदल चलते हुए वे तुंगिया नगरी के बीचोबीच होकर पुष्पवती उद्यान में आये। स्थविर भगवंतों को देखते ही उन्होंने पाँच प्रकार के अभिगम किये। वे इस प्रकार हैं—१ सचित्त द्रव्य जैसे फूल, ताम्बूल आदि का त्याग करना। २ अचित्त द्रव्य—जैसे वस्त्र आदि को मर्यादित (संकुचित) करना। ३ एक पट के (बिना सीये हुए) दुपट्टे का उत्तरासंग करना। ४ मुनिराज के दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर लगाना। ५ मन को एकाग्र करना।

इस प्रकार पाँच अभिगम करके वे श्रमणोपासक स्थविर भगवन्तों के पास जाकर तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् मन वचन काया रूप तीन प्रकार की पर्युपासना (सेवा) से पर्युपासना करने लगे। इसके बाद उन स्थविर भगवंतों ने उन श्रमणोपासकों को तथा उस बड़ी परिषद् को केशीश्रमण की तरह चार महाव्रत वाले धर्म का उपदेश दिया। यावत् उन श्रमणोपासकों ने अपनी श्रमणोपासकता द्वारा उन स्थविर भगवंतों की आज्ञा का आराधन किया यावत् धर्मकथा पूर्ण हुई।

विवेचन—वे श्रमणोपासक किसी सवारी में बैठ कर नहीं, किन्तु पैदल चल कर उन स्थविर भगवन्तों की सेवा में पहुंचे। स्थविर भगवन्तो को देखते ही पांच प्रकार के अभिगम किये। वहाँ पहुंच कर मन, वचन और काया रूप तीन प्रकार की पर्युपासना से वे उनकी पर्युपासना करने लगे। उन स्थविर भगवन्तो ने उस महती परिषद् को और श्रमणोपासकों को धर्मोपदेश दिया।

तए णं ते समणोवासया थेराणं भगवंताणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ० जाव हयहियया तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति, पज्जुवासित्ता एवं वयासि—

√३५ प्रश्न—संजमे णं भंते! किंफले? तवे णं भंते! किंफले?

३५ उत्तर-तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासिः-संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले। तए णं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वयासीः-जइ णं भंते! संजमे अणण्हयफले तवे वोदाणफले-

३६ प्रश्न-किंपत्तियं णं भंते! देवा देवलोएसु उववज्जंति ?

३६ उत्तर-तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः-पुव्वतवेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति। तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः-पुव्वसंजमेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति। तत्थ णं आणंदरक्खिए नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः-कम्मियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति। तत्थ णं कासवे नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः-संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति। पुव्वतवेणं, पुव्व-संजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति। सच्चे णं एस अट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।

विशेष शब्दों के अर्थ-अणण्हयफले-अनाश्रव होने रूप फल, वोदाणफले-व्यवदान अर्थात् कर्मों को काटना या कर्म रूपी कीचड़ से मलीन आत्मा को शुद्ध करना, जइ-यदि, किंपत्तियं-किंप्रत्यय=किस कारण से, कम्मियाए-कर्मों से अर्थात् बाकी रहे हुए कर्मों के कारण, संगियाए-संगपन अर्थात् सराग संयम से, आयभाववत्तव्वयाए-आत्मभाववक्तव्य अर्थात् अपने अभिमान से।

भावार्थ-स्थविर भगवन्तों के पास धर्मोपदेश सुनकर एवं हृदय में धारण करके वे श्रमणोपासक बड़े हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसित हृदय वाले

हुए। इसके बाद उन श्रमणोपासकों ने स्थविर भगवन्तों की तीन बार प्रदक्षिणा करके मन, वचन और काया रूप तीन प्रकार की पर्युपासना से पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा-

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! संयम का क्या फल है ? तप का क्या फल है ?

३५ उत्तर-उन स्थविर भगवन्तों नें इस प्रकार उत्तर दिया कि-हे आर्यों ! संयम का फल अनाश्रव (आश्रव रहित-संवर) है और तप का फल व्यवदान (कर्मों को काटना एवं कर्म रूपी कीचड़ से मलीन आत्मा को शुद्ध करना) है।

३६ प्रश्न-स्थविर भगवन्तों के उत्तर को सुन कर श्रमणोपासकों नें इस प्रकार पूछा कि-हे भगवन् ! यदि संयम का फल अनाश्रवपन है और तप का फल व्यवदान है, तो देव, देवलोक में किस कारण से उत्पन्न होते हैं ?

३६ उत्तर-श्रमणोपासकों के प्रश्न को सुन कर उन स्थविर भगवन्तों में से कालिकपुत्र नामक स्थविर ने इस प्रकार उत्तर दिया-हे आर्यों ! पूर्व तप के कारण देवता, देवलोक में उत्पन्न होते है।

उनमें से मेहिल (मेधिल) नामक स्थविर ने इस प्रकार कहा कि-हे आर्यो ! पूर्व संयम के कारण देवता देवलोक में उत्पन्न होते है।

उनमें से आनन्दरक्षित नामक स्थविर ने इस प्रकार कहा कि-हे आर्यो ! कर्मिता के कारण अर्थात् पूर्वकर्मों के कारण देवता, देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

उनमें से काश्यप नामक स्थविर ने इस प्रकार कहा कि-हे आर्यो ! संगीपन के कारण अर्थात् द्रव्यादि में रागभाव के कारण देवता, देवलोक में उत्पन्न होते है।

इस प्रकार हे आर्यो ! पूर्व तप से, संयम से, कर्मो से और सराग संयम से देवता, देवलोक में उत्पन्न होते है। हे आर्यो ! यह बात सत्य है, इसलिए कही है, किन्तु अपने अभिमान के कारण हमने यह बात नहीं कही है।

विवेचन-श्रमणोपासको के प्रश्न के उत्तर मे स्थविर भगवन्तों ने सयम का फल

अनाश्रव बतलाया है। अनाश्रव का अर्थ है-नवीन आने वाले कर्मों को रोक देना। संयम का फल 'व्यवदान' है। 'व्यवदान' शब्द में 'वि' और 'अव' ये दो उपसर्ग हैं और 'दान' शब्द 'दाप् लवने' और 'दैप् शोधने' इन दोनों धातुओं से बनता है। जिसका अर्थ है-कर्मों को काटना एवं पूर्वकृत कर्म रूपी कचरे को साफ करना, या कर्म रूपी कीचड़ से मलीन आत्मा को शुद्ध करना।

किस कारण से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में 'पूर्वतप' और 'पूर्व संयम' कहा गया है। जिसका अर्थ है-वीतराग दशा से पूर्व-पहले किया गया तप (सराग तप) और संयम (सराग संयम)। राग का अंश कर्म बन्ध का कारण होता है। इसलिए सराग दशा में सेवित तप और आचरित संयम, ये दोनों देव होने में कारण होते हैं। तीसरा कारण है-कर्मिता या कर्मिका। कर्मिता का अर्थ है-कर्मपना और कर्मिका का अर्थ है-कर्म विकार अर्थात् शेष रहे हुए कर्मों का अंश। इससे भी देवपन की प्राप्ति होती है। चौथा कारण है-संगिता। इसका अर्थ है-द्रव्यादि में राग भाव। यह कर्मबन्ध का कारण होने से देवपन का कारण होता है। जैसा कि कहा है-

पुव्वतव संजमा होंति रागिणो पच्छिमा अरागस्स।
रागो संगो वुत्तो, संगा कम्मं भवो तेणं॥

अर्थ-सरागी जीव के तप और संयम 'पूर्व तप' और 'पूर्व संयम' कहलाते हैं और वीतरागी जीव के तप संयम 'पश्चिम तप' और 'पश्चिम संयम' कहलाते हैं। राग से संग होता है संग से कर्मबन्ध होता है और कर्मबन्ध से संसार परिभ्रमण होता है।

स्थविर भगवन्तों ने जो उत्तर दिया। उसके विषय में उन्होंने कहा कि-यह बात सत्य है, क्योंकि यह बात वस्तु स्वरूप को लक्ष्य में रख कर कही गई है, किन्तु यह बात हम अपना बड़प्पन बतलाने के लिए अभिमानवश नहीं कहते हैं।

तए णं ते समणोवासया थेरेहिं भगवंतेहि इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरिया समाणा हट्ठ-तुट्ठा थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छंति, पसिणाइं पुच्छित्ता अट्ठाइं उवादि-यंति, उवादिएत्ता उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठित्ता थेरे भगवंते तिक्खुत्तो

वंदंति नमंसंति, नमंसित्ता थेराणं भगवंताणं अंतियाओ पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिणिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। तए णं ते थेरा अन्नया कयाइं तुंगियाओ नयरीओ पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिनिगच्छंति, बहिया जणवयविहारं विहरंति

विशेष शब्दों के अर्थ-वागरणाइं-स्पष्टीकरण करने योग्य, पसिणाइं-प्रश्न, उवादियंति-ग्रहण करते हैं, अंतियाओ-समीप से, बहिया-बाहर।

भावार्थ-स्थविर भगवन्तों के द्वारा दिये हुए उत्तरों को सुनकर वे श्रमणोपासक बड़े हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए। फिर स्थविर भगवन्तों को वन्दना नमस्कार करके और दूसरे प्रश्न पूछे एवं उनके अर्थों को ग्रहण किया। फिर तीन बार प्रदक्षिणा करके उन स्थविर भगवन्तों को वन्दना नमस्कार किया। फिर स्थविर भगवन्तों के पास से एवं उस पुष्पवती उद्यान से निकल कर अपने अपने स्थान पर गये।

इधर वे स्थविर भगवन्त भी किसी एक दिन उस तुंगिया नगरी के पुष्पवती उद्यान से निकलकर बाहर जनपद में विचरने लगे।

विवेचन-यह वर्णन तुगिका के श्रावकों की धर्मरुचि एवं तत्त्वरुचि को स्पष्ट करता है। वे सम्पत्तिशाली होते हुए भी धर्मप्रेम उनके रगरग मे भरा हुआ था। उन्होंने स्थविर भगवत का उपदेश सुनकर उसे हृदयंगम करने के लिए प्रश्न पूछे और नि.शंक बने।

वे भौतिक सम्पत्ति मे दूसरे मनुष्यो से अजेय थे, तो धर्म के विषय मे मनुष्यो से ही नही, देवों से भी अजेय थे। उनकी आत्मा पर भौतिक सम्पत्ति का प्रभाव उतना नहीं था, जितना धार्मिक श्रद्धा का था। पूर्व के सूत्र पाठ से उनके गृहस्थ जीवन की भव्यता एवं धार्मिक श्रमणोपासकपन की विशेषता का स्पष्ट बोध होता है।

ते णं काले णं ते णं समए णं रायगिहे नामं नगरे। जाव

परिसा पडिगया। ते णं काले णं ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे, जाव-संखित्त-विउलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव-विहरइ। तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गहेइ उग्गहित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासिः-इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहमाणे सोहमाणे जेणेव रायगिहे णगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहे णगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-संखित्तविउलतेउलेस्से-विपुल तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके रखा है, अतुरियं-शारीरिक त्वरता=शीघ्रता रहित, अचवलं-मानसिक चपलता रहित, असंभंते-असम्भ्रान्त=आकुलता और उत्सुकता रहित, मुहपोत्तियं-मुखवस्त्रिका=आठ परत वाला कपड़ा, जो डोरे से मुख पर बाधा जाता है, जुगंतर-युगान्तर=धूसरा परिमाण, भिक्खायरियं-भिक्षाचर्या के लिए, अडइ-फिरते हैं।

भावार्थ-उस काल उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वन्दना करने के लिए गई और यावत् धर्मोपदेश सुन कर वापिस लौट गई।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार थे। यावत् वे विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में संक्षिप्त करके रखने वाले थे। वे निरन्तर छट्ठछट्ठ का तप करते हुए अर्थात् निरन्तर बेले बेले की तपस्या करते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

इसके बाद बेले के पारणे के दिन इन्द्रभूति अनगार ने अर्थात् भगवान् गौतम स्वामी ने पहली पौरिसी में स्वाध्याय किया, दूसरी पौरिसी में ध्यान ध्याया, तीसरी पौरिसी में शारीरिक शीघ्रता रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता और उत्सुकता रहित होकर मुखवस्त्रिका की पडिलेहना की, फिर पात्रों की और वस्त्रों की पडिलेहना की। फिर पात्रों का परिमार्जन किया, परिमार्जन करके पात्रों को लेकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजे हुए थे वहाँ आये। वहाँ आकर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया कि-हे भगवन्! आज मेरे बेले के पारणे का दिन है सो आपकी आज्ञा होने पर मैं राजगृह नगर में ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिये जाना चाहता हूँ?

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा कि-हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो उस प्रकार करो, विलम्ब न करो।

भगवान् की आज्ञा हो जाने पर गौतम स्वामी भगवान् के पास से गुण-शीलक चैत्य से निकले, निकल कर शारीरिक त्वरता (शीघ्रता) और मानसिक चपलता रहित एवं आकुलता व उत्सुकता रहित गौतम स्वामी युग (धूसरा) प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक राजगृह नगर में आये, वहाँ ऊँच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि अनुसार भिक्षा लेने के लिए फिरने लगे।

विवेचन-मूलपाठ में 'भायणाइं' शब्द दिया है और टीकाकार ने इसकी संस्कृत छाया' 'भाजनानि' दिया है। इस प्रकार यह शब्द बहुवचनान्त है। इसलिये इससे तीन पात्र सिद्ध होते हैं-अर्थात् स्थविरकल्पी मुनियों को आहार पानी के लिये तीन पात्र रखना कल्पता है।

ग्रन्थकार और कोई टीकाकार स्थविरकल्पी मुनियों को सिर्फ एक ही पात्र रखने का कल्प बताते हैं, और मात्रक रूप पात्र भी रखने का विधान आचार्यों ने पीछे से किया है ऐसा कहते हैं, किन्तु उनका यह कथन शास्त्र के इस मूलपाठ से विरुद्ध है।

इसी प्रकरण में आगे 'भत्तपाण पडिदंसेइ' पाठ है, जिसका अर्थ है कि-गौतम स्वामी जो आहार पानी लाये वह उन्होंने भगवान् को दिखलाया। यदि एक ही पात्र में आहार पानी होता, तो आहार से संमृष्ट (खरड़ा हुआ) पात्र और हाथ आदि किससे साफ करते? इससे भी स्पष्ट है कि पात्र एक नहीं था, किन्तु अधिक (तीन) थे। इसलिये एकान्त रूप से एक पात्र रखने का कल्प बताना शास्त्र विरुद्ध है।

दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन के त्रसकाय की यतना में मूलपाठ में 'उडगंसि' शब्द आया है जिसका अर्थ है-मात्रकरूप पात्र। अतः मात्रकरूप पात्र रखने का विधान शास्त्र में स्पष्ट है। अतः मात्रकरूप पात्र रखने विधान आचार्यों ने पीछे से किया-यह कथन भी शास्त्र विरुद्ध है।

तए णं से भगवं गोयमे रायगिहे नगरे जाव अडमाणे बहुजण-सद्दं निसामेइ--एवं खलु देवाणुप्पिया! तुंगियाए नयरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया:-"संजमे णं भंते! किंफले

तवे णं किंफले ? तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासिः-संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले, तं चेव जाव पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए" से कहमेयं मन्ने एवं । तए णं समणे भगवं गोयमे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जायसड्ढे जाव-समुप्पन्नकोउहल्ले अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ, अतुरियं, जाव-सोहेमाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ एसण-मणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, समणं भगवं महावीरं जाव-एवं वयासिः-एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं णिसामेमि, "एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नयरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छियाः-संजमे णं भंते ! किंफले, तवे किंफले ? तं चेव जाव-सच्चे णं एसमट्ठे, णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए" ।

विशेष शब्दों के अर्थ-निसामेइ-सुनकर, जायसड्ढे-श्रद्धा उत्पन्न हुई=जिज्ञासा उत्पन्न हुई, एसणमणेसणं-यतनापूर्वक की हुई गोचरी में लगे दोष का, पडिदंसेइ-दिखाया,

आलोएइ-आलोचना की।

भावार्थ-राजगृह नगर में भिक्षा के लिए फिरते हुए गौतम स्वामी ने बहुत से मनुष्यों के मुख से इस प्रकार सुना-'हे देवानुप्रियों ! तुंगिया नगरी के बाहर पुष्पवती नामक उद्यान में भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे हुए हैं। उनसे तुंगिया नगरी के श्रावकों ने इस प्रकार प्रश्न पूछा कि-हे भगवन् ! संयम का क्या फल है और तप का क्या फल है ? तब उन स्थविर भगवन्तों ने उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार उत्तर दिया कि-हे देवानुप्रियों ! संयम का फल अनाश्रवपन है और तप का फल व्यवदान (कर्मों का विनाश) है। (सारा वर्णन पहले की तरह कहना चाहिए)। यावत् पूर्वतप, पूर्वसंयम, कर्मिपन और संगीपन से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। यह बात सत्य है, इसलिए कही है, किन्तु हमने अपने अभिमान के वश नहीं कही है।" यह बात कैसे मानी जा सकती है ? इस तरह लोगों के मुख से गौतम स्वामी ने सुना। यह बात सुनकर गौतमस्वामी के मन में श्रद्धा-जिज्ञासा उत्पन्न हुई यावत् उस बात के प्रति उन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ।

इसके बाद गौतमस्वामी भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेकर राजगृह नगर से बाहर निकले। ईर्यासमितिपूर्वक चलते हुए गौतमस्वामी गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीरस्वामी की सेवा में उपस्थित हुए। उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, भिक्षा लेने में लगे हुए दोषों का आलोचन किया। फिर लाया हुआ आहार पानी श्रमण भगवान् महावीरस्वामी को दिखलाया। तत्पश्चात् गौतमस्वामी ने भगवान् से इस प्रकार निवेदन किया कि-हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा लेकर राजगृह नगर में ऊंच नीच मध्यम कुलों में भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिए फिर रहा था। उस समय बहुत से मनुष्यों के मुख से इस प्रकार सुना कि-हे देवानुप्रियों ! तुंगिया नगरी के बाहर पुष्पवती उद्यान में भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे हुए हैं। उनसे वहाँ के श्रावकों ने इस

प्रकार प्रश्न पूछा कि-हे भगवन् ! संयम का क्या फल है और तप का क्या फल है ? (यहाँ सारा वर्णन पहले की तरह कहना चाहिए) यावत् यह बात सत्य है इसलिए कही है, किन्तु हमने अपने अभिमान के वश नहीं कही है । इत्यादि ।

विवेचन-राजगृह नगर मे भिक्षा के लिये गये हुए गौतम स्वामी ने बहुत से लोगों के मुख से तुगिका के श्रावको के साथ पार्श्वापत्य स्थविरो के हुए प्रश्नोत्तर की चर्चा सुनी । इससे उनके मन मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन्होने इस विषय में भगवान् से निवेदन किया ।

तं पभू णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अप्पभू ? समिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए ? उदाहु असमिया ? आउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अणाउज्जिया ? पलिउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अपलिउज्जिया ? पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति । पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे, णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए । पभू णं गोयमा ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए, णो चेव णं अप्पभू । तह चेव णेयव्वं अवसेसियं, जाव-पभू-समियं आउज्जिय-पलिउज्जिया,

जाव-सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए, अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि भासेमि पन्नवेमि परूवेमि-पुव्वतवेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वसंजमेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति, कम्मियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, संगियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वतवेणं, पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाव-वत्तव्वयाए।

विशेष शब्दों के अर्थ-पभू-समर्थ, समिया-सम्यक्त्व विषयक कथन करने में समर्थ या अभ्यास वाले, उदाहु-अथवा, आउज्जिया-आयोगिक=उपयोग वाले, पलिउज्जिया-परियोगिक=सर्व प्रकार के ज्ञान युक्त, अप्पभू-असमर्थ।

भावार्थ-गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीरस्वामी से पूछा कि-हे भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में समर्थ हैं, या असमर्थ हैं ? हे भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में अभ्यासी (अभ्यास वाले) हैं, या अनभ्यासी हैं ? हे भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में उपयोग वाले हैं, या उपयोग वाले नहीं हैं ? हे भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में विशेषज्ञानी हैं, या सामान्यज्ञानी हैं ? कि पूर्व तप, पूर्वसंयम, कर्मिपन और संगीपन, इन कारणों से देवता देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा-हे गौतम ! वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में समर्थ हैं, किन्तु असमर्थ नहीं, अभ्यासी हैं अनभ्यासी नहीं, उपयोग वाले हैं, अनपयोग वाले नहीं, विशेषज्ञानी हैं, सामान्य ज्ञानी नहीं। यह बात सच्ची है, इसलिए उन स्थविरों ने कही है, अपने

अभिमान के वश नहीं कही है।

हे गौतम ! मैं भी इस प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बतलाता हूँ, प्ररूपणा करता हूँ कि-पूर्व तप, पूर्व संयम, कर्मिपन, और संगीपन, इन कारणों से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। इसलिए उन स्थविर भगवन्तों ने यथार्थ कहा है। यह बात सत्य है, इसलिए उन्होंने कही है, किन्तु अपने अभिमान के कारण नहीं कही है।

विवेचन-उन स्थविर भगवन्तों ने श्रमणोपासकों को जो उत्तर दिया उसकी पुष्टि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कर दी। भगवान् ने फरमाया कि उन स्थविर भगवन्तों ने जो उत्तर उन श्रमणोपासकों को दिया वह यथार्थ है, सत्य है। सत्य होने के कारण ही उन स्थविरो ने ऐसा कहा है, किन्तु अपनी बड़ाई एवं अभिमान के कारण नहीं कहा है।

३७ प्रश्न-तहारूवं णं भंते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा ?

३७ उत्तर-गोयमा ! सवणफला।

३८ प्रश्न-से णं भंते ! सवणे किंफले ?

३८ उत्तर-णाणफले।

३९ प्रश्न-से णं भंते ! णाणे किंफले ?

३९ उत्तर-विन्नाणफले।

४० प्रश्न-से णं भंते ! विन्नाणे किंफले ?

४० उत्तर-पच्चक्खाणफले।

४१ प्रश्न-से णं भंते ! पच्चक्खाणे किंफले ?

४१ उत्तर-संजमफले।



४२ प्रश्न-से णं भंते ! संजमे किंफले ?

४२ उत्तर-अणण्हयफले ।

४३ प्रश्न-एवं अणण्हये ?

४३ उत्तर-तवफले ?

४४ प्रश्न-तवे ?

४४ उत्तर-वोदाणफले ।

४५ प्रश्न-से णं भंते ! वोदाणे किंफले ?

४५ उत्तर-(वोदाणे) अकिरियाफले ।

४६ प्रश्न-से गं भंते ! अकिरिया किंफला ?

४६ उत्तर-सिद्धिपज्जवसाणफला पण्णत्ता गोयमा !

गहाः-सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे ।
अणण्हये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ।

विशेष शब्दों के अर्थ-तहारूवं-तथारूप=जैसा रूप अर्थात् वेश है, उसी के अनुकूल गुणों वाले, पज्जुवासमाणस्स-सेवा करने वाला, सिद्धिपज्जवसाणफला-जिसका अन्तिम फल सिद्धि=मोक्ष है।

भावार्थ-३७ प्रश्न-गौतमस्वामी पूछते हैं कि-हे भगवन् ! तथारूप के श्रमण या माहण की पर्युपासना करने वाले मनुष्य को उसकी पर्युपासना (सेवा) का क्या फल मिलता है ?

३७ उत्तर-हे गौतम ! तथारूप के श्रमण या माहण की पर्युपासना करने वाले को उसकी पर्युपासना का फल श्रवण है अर्थात् उसको सत्शास्त्र सुनने रूप फल मिलता है ।

३८ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रवण का क्या फल है ?

३८ उत्तर-हे गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान है अर्थात् सुनने से ज्ञान होता है।

३९ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञान का क्या फल है ?

३९ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान है अर्थात् साधारण ज्ञान होने पर विशेषज्ञान होता है।

४० प्रश्न-हे भगवन् ! विज्ञान का क्या फल है ?

४० उत्तर-हे गौतम ! विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है अर्थात् विशेष ज्ञान होने पर हेय पदार्थों का प्रत्याख्यान होता है।

४१ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रत्याख्यान का क्या फल है ?

४१ उत्तर-हे गौतम ! प्रत्याख्यान का फल संयम है अर्थात् प्रत्याख्यान होने पर सर्वसावद्य त्याग रूप संयम प्राप्त होता है।

४२ प्रश्न-हे भगवन् ! संयम का क्या फल है ?

४२ उत्तर-हे गौतम ! संयम का फल अनाश्रवपन है अर्थात् संयम प्राप्त होने पर फिर नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता है।

४३ प्रश्न-हे भगवन् ! अनाश्रवपन का क्या फल है ?

४३ उत्तर-हे गौतम ! अनाश्रवपन का फल तप है

४४ प्रश्न-हे भगवन् ! तप का क्या फल है ?

४४ उत्तर-हे गौतम ! तप का फल व्यवदान है अर्थात् कर्मों को काटना है एवं कर्म मैल को साफ करना है।

४५ प्रश्न-हे भगवन् ! व्यवदान का क्या फल है ?

४५ उत्तर-हे गौतम ! व्यवदान का फल अक्रियपन (निष्क्रियपन) है।

४६ प्रश्न-हे भगवन् ! अक्रियपन (निष्क्रियपन) का क्या फल है ?

४६ उत्तर-हे गौतम ! अक्रियपन का फल सिद्धि है अर्थात् अक्रियपन प्राप्त होने पर अन्त में सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त होता है।

गाथा का अर्थ-१ पर्युपासना (सेवा) का फल श्रवण, २ श्रवण का फल ज्ञान, ३ ज्ञान का फल विज्ञान, ४ विज्ञान का फल प्रत्याख्यान, ५ प्रत्याख्यान का फल संयम, ६ संयम का फल अनाश्रवपन, ७ अनाश्रवपन का फल तप, ८ तप का फल व्यवदान, ९ व्यवदान का फल अक्रियपन, १० अक्रियपन का फल सिद्धि (मोक्ष)।

विवेचन-पहले प्रकरण में साधु सेवा का वर्णन आया है। इसलिए अब साधु सेवा का फल बतलाया जाता है।

'तथारूप' का अर्थ है-जैसा वेश है वैसे गुणों वाला अर्थात् जिसके साधु का वेश है उसमे साधुता के गुण हो वह 'तथारूप' का श्रमण है।

'श्रमण' का अर्थ है-साधु, तपस्वी। 'श्रमण' शब्द 'श्रमु खेदे तपसि च' इस धातु से बना है। जिसका अर्थ है-जो जगत् के जीवों के खेद को जानता है, समस्त संसार के प्राणियो को आत्म-तुल्य समझता है और जो तपस्या करता है वह 'श्रमण' है। उपलक्षण से उत्तर गुण धारण करने वाले को भी यहा श्रमण कहा है।

'माहन' का अर्थ है-स्वयं हनन निवृत्तत्वात् परं प्रति 'मा हन, मा हन वदति इत्येवंशील:' अर्थात् जो स्वयं किसी भी जीव को नहीं मारता और 'मत मारो, मत मारो' ऐसा जो दूसरों को उपदेश देता है, उसे 'माहन' कहते है। उपलक्षण से मूल गुणों वाले को माहन कहा गया है। अथवा 'श्रमण' का अर्थ है-साधु, और 'माहन' का अर्थ है-श्रावक। तात्पर्य यह है कि शुद्ध चारित्र पालन करने वाले श्रमण माहनों की पर्युपासना (सेवा, भक्ति तथा सत्संग) करने से उत्तरोत्तर दस फलों की प्राप्ति होती है। जो इस गाथा मे बतलाया गया है-

सवण णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि॥

अर्थ-१ सवणे (श्रवण)-शुद्ध चारित्र का पालन करने वाले श्रमण माहनों की पर्युपासना करने से श्रवण की प्राप्ति होती है अर्थात् साधु महात्मा धर्मकथा फरमाते हैं और शास्त्रो की स्वाध्याय किया करते है, इसलिए उनकी सेवा करने से शास्त्रो के श्रवण की प्राप्ति होती है।

२ णाणे (ज्ञान)-शास्त्रों के सुनने से श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।

३ विण्णाणे-श्रुतज्ञान से विज्ञान की प्राप्ति होती है अर्थात् हेय (त्यागने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का ज्ञान होता है।

४ पच्चक्खाणे (प्रत्याख्यान)-हेय और उपादेय का ज्ञान हो जाने पर पच्चक्खाण की प्राप्ति होती है अर्थात् जिसे विशेषज्ञान हो जाता है वह पाप का प्रत्याख्यान कर देता है।

५ 'संजमे' (संयम)-प्रत्याख्यान से संयम की प्राप्ति होती है।

६ अणण्हए (अनाश्रव)-संयम से अनाश्रव (संवर) की प्राप्ति होती है अर्थात् संयम वाला जीव नवीन कर्मों के आगमन को रोकता है।

७ तवे (तप)-अनाश्रव के बाद अनशन आदि बारह प्रकार के तप की ओर प्रवृत्ति होती है।

८ वोदाणे (व्यवदान)-तप से पूर्वकृत कर्मों का नाश होता है। आत्मा में रहे हुए पूर्वकृत कर्मरूपी कचरे की शुद्धि हो जाती है।

९ अकिरिय (अक्रिय)-इसके बाद आत्मा अक्रिय हो जाता है और मन, वचन और कायारूप योगों का निरोध होजाता है।

१० सिद्धि-योगों का निरोध कर लेने पर जीव की सिद्धि (मोक्ष) हो जाती है। सिद्धि गति को प्राप्त करना ही जीव का अन्तिम प्रयोजन है।

राजगृह का गर्म पानी का कुंड

४७ प्रश्न-अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति भासंति पन्नवेंति परूवेंति-एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभारस्स पव्वयस्स अहे एत्थ णं महं एगे हरए अप्पे (अघे) पन्नत्ते, अणेगाइं जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, नाणादुमखंडमंडितउद्देसे, सस्सिरीए जाव-पडिरूवे। तत्थ णं बहवे उराला बलाहया संसेयंति संमुच्छंति वासंति तव्वइरित्ते य णं सया समिओ उसिणे उसिणे आउकाए

अभिनिस्सवइ । से कहमेयं भंते ! एवं ?

४७ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति। जाव जे ते एवं परूवेंति मिच्छं ते एवमाइक्खंति, जाव-सव्वं नेयव्वं । अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि भासेमि पन्नवेमि परूवेमि-एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभारपव्वयस्स आदूरसामंते एत्थ णं महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे पन्नत्ते, पंच धणुसयाइं आयामविक्खंभेणं णाणादुमखंडमंडितउद्देसे सस्सिरीए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे, तत्थ णं बहवे उसिण-जोणिया जीवा य, पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उवचिज्जंति । तव्वइरित्ते वि य णं सया समियं उसिणे उसिणे आउयाए अभिनिस्सवइ, एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्प-भवे पासवणे, एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पन्नत्ते।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ ।

॥ पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-हरए-हृद=द्रह, बलाहया-बलाहक=मेघ, संसेयंति-संस्वेदित होते हैं=उत्पन्न होने लगते है, तव्वइरित्ते-कुण्ड भर जाने पर अतिरिक्त, उसिणे-गरम, पास-

वणे-प्रश्रवण=झरना, उसिणजोणिया-उष्णयोनिक, वक्कमंति-उत्पन्न होते है, विउक्कमंति-विनष्ट होते है, चयंति-चवते है, उवचिज्जंति-उत्पन्न होते है, तव्वइरित्ते-तद्व्यतिरिक्त= तदुपरान्त।

भावार्थ-४७ प्रश्न-हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि-राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वत के नीचे एक बड़ा पानी का ह्रद-कुण्ड हैं। उसकी लम्बाई चौड़ाई अनेक योजन है, उसका अगला भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है, सुन्दर है यावत् प्रतिरूप है अर्थात् दर्शकों की आंखों को सन्तुष्ट करने वाला है। उस ह्रद में अनेक उदार मेघ संस्वेदित हैं-उत्पन्न होते है, सम्मूर्च्छित होते हैं-उसमें गिरते है और बरसते हैं। तदुपरान्त अर्थात् कुण्ड भर जाने पर उसमें से सदा परिमित गरम जल झरता रहता है। हे भगवन् ! क्या यह बात ठीक है अर्थात् क्या अन्य-तीर्थिकों का यह कथन सत्य है ?

४७ उत्तर-हे गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं वह मिथ्या है। हे गौतम ! मैं इस तरह से कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बतलाता हूँ, प्ररूपणा करता हूँ कि-राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वत के पास 'महातपोपतीरप्रभव' नाम का एक प्रश्रवण-झरना है। उसकी लम्बाई चौड़ाई पांच सौ धनुष है, उसका अगला भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है, वह सश्रीक-शोभायुक्त है, वह प्रासादीय-प्रसन्नता पैदा करने वाला है, दर्शनीय-देखने योग्य है, अभिरूप-रमणीय है, प्रतिरूप-प्रत्येक दर्शक की आंखों को संतोष देने वाला है। उस झरने में अनेक उष्ण योनि वाले जीव और पुद्गल, अप्काय रूप से उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं, चवते हैं, उपचय को प्राप्त होते है। तदुपरान्त उस झरने में से हमेशा परिमित गरम पानी झरता रहता है। हे गौतम ! वह 'महातपोपतीरप्रभव' नाम का झरना है और यह 'महातपोपतीर' नामक झरने का अर्थ है।

'सेवं भंते ! सेवं भंते !' हे भगवन् ! यह बात इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह बात इसी प्रकार है'-ऐसा कह कर गौतमस्वामी श्रमण भगवान्

को वन्दना नमस्कार करते हैं।

विवेचन-पहले प्रकरण में साधु सेवा का फल बतलाया गया है, किन्तु वह फल जैसे तैसे हर किसी नामधारी साधुओं की सेवा से प्राप्त नही होता है, अपितु तथारूप अर्थात् शुद्ध चारित्र का पालन करनेवाले उत्तम साधुओं की सेवा से ही वह फल प्राप्त होता है, क्योंकि वे सत्यवादी होते हैं बाकी नामधारी साधु असत्यवादी होते है। इस प्रकरण मे कितनेक असत्यवादी अन्यतीर्थिक साधुओं का वर्णन किया गया है।

अन्यतीर्थिको का कथन है कि-राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वत के नीचे अनेक योजन की लम्बाई चौडाई वाला एक द्रह-कुण्ड है। उसमे अनेक मेघ संस्वेदित होते है अर्थात् गिरने की तय्यारी मे होते है, सम्मूर्च्छित होते है अर्थात् गिरते है। वह कुण्ड उदार-बहुत विस्तार वाला है। तदुपरान्त अर्थात् उसके भर जाने पर उसमें से गरम गरम पानी सदा झरता रहता है।

इस बात की सत्यता पूछने पर गौतम स्वामी को श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया कि-हे गौतम ! अन्यतीर्थिको का उपर्युक्त कथन असत्य है, क्योंकि वे विभंग-ज्ञानी होने से उनका वचन सर्वज्ञ के वचन से प्राय. विपरीत होता है। अत: इन कारणों से उनका उपर्युक्त कथन असत्य है। उस झरने का नाम 'महातपोपतीर प्रभव' है अर्थात् महान् आतप-उष्णता वाले प्रदेश के पास जिसका प्रभव-उत्पत्ति हो वह 'महातपोपतीर प्रभव' कहलाता है। वह वैभार पर्वत के नीचे नही है, किन्तु पास मे है। उसमें उष्ण-योनिक जीव और पुद्गल उत्पन्न होते और नष्ट होते रहते है। उस झरने की लम्बाई चौड़ाई पांच सौ धनुष है। उसमे से सदा परिमित गरम पानी झरता रहता है। यह 'महा-तपोपतीर प्रभव' झरना है और यह 'महातपोपतीरप्रभव' झरने का अर्थ है।

भगवान् के वचनो को स्वीकार करते हुए गौतम स्वामी ने कहा-हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह यथार्थ है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी ने भगवान् को वन्दना नमस्कार किया और फिर वे तप सयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

॥ दूसरे शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥



शतक २ उद्देशक ६

भाषा विषयक मान्यता

४८ प्रश्न-से णूणं भंते ! मन्नामि इति ओहारिणी भासा?

४८ उत्तर-एवं भासापदं भाणियव्वं ।

॥ छट्ठो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-मण्णामि-मानता हूं, ओहारिणी-अवधारिणी भाषा, भाणियव्वं-कहना चाहिए।

भावार्थ-४८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या भाषा अवधारिणी है? ऐसा मैं मान लूं ?

४८ उत्तर-हे गौतम ! उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में प्रज्ञापना सूत्र का ग्यारहवें भाषापद का सारा वर्णन करना चाहिए।

विवेचन-पांचवे उद्देशक के अन्त मे यह बतलाया गया है कि-अन्यतीर्थिक मिथ्याभाषी हैं। मिथ्याभाषिपन और सत्यभाषिपन, भाषा के बिना नही हो सकता है। इसलिए इस छठे उद्देशक मे भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध मे विचार किया गया है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछा कि-हे भगवन् ! क्या मैं इस प्रकार मान लूं कि भाषा अवधारिणी है ? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! भाषा के सम्बन्ध में प्रज्ञापना सूत्र का ग्यारहवां भाषापद पूरा कहना चाहिए।

प्रज्ञापना सूत्र के ग्यारहवे भाषापद में अनेक द्वारों से 'भाषा' का वर्णन किया गया है। भाषा के चार भेद है-सत्य भाषा, असत्य भाषा, सत्यमृषा भाषा-मिश्र भाषा, असत्य अमृषा भाषा-व्यवहार भाषा। भाषा का आदि कारण (मूल कारण) जीव है। भाषा की उत्पत्ति शरीर से (औदारिक, वैक्रियक और आहारक शरीर से) होती है। भाषा का संस्थान वज्र के आकार है। भाषा के पुद्गल लोक के अन्त तक जाते हैं। अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध पुद्गल भाषापने गृहीत होते हैं। असंख्यात आकाश प्रदेशों को अवगाहित पुद्गल भाषापने गृहीत होते है। एक समय, दो समय यावत् दस समय, संख्यात और असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल भाषापने गृहीत होते है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाले पुद्गल

भाषापने गृहीत होते है। नियमा छह दिशा के पुद्गल गृहीत होते है, वे निरन्तर भी गृहीत होते है और सान्तर भी गृहीत होते हैं। भाषा की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्त-र्मुहूर्त है। भाषा का अन्तर (व्यवधान) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है, उत्कृष्ट अनन्त काल का है। काय योग से भाषा के पुद्गल गृहीत होते हैं और वचन योग से छोड़े हैं। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम भाव से एवं मोहनीय कर्म के उदय से वचन योग से असत्य भाषा और मिश्र भाषा बोली जाती है। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोप-शम से वचन के योग से सत्य भाषा और व्यवहार भाषा बोली जाती है। सत्य भाषा बोलने वाले सब से थोड़े है। मिश्र भाषा बोलने वाले उनसे असंख्यात गुणा हैं। असत्य भाषा बोलने वाले उनसे असंख्यात गुणा है, व्यवहार भाषा बोलने वाले उनसे असंख्यात गुणा है और अभाषक उनसे अनन्तगुणा हैं, क्योकि अभाषक जीवों मे निम्न लिखित जीवो का समावेश होता है-अपर्याप्त जीव, सिद्ध भगवान्, शैलेशी-प्रतिपन्न जीव और एकेन्द्रिय जीव-ये सब अभाषक हैं *।

सेवं भंते ! सेवं भंते !!

॥ दूसरे शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ७

देवों के प्रकार

४९ प्रश्नः-कतिविहा णं भंते ! देवा पन्नत्ता ?

४९ उत्तरः-गोयमा ! चउव्विहा देवा पन्नता तं जहाः-भव-णवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया ।

५० प्रश्नः-कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता ?

५० उत्तरः-गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जहाः-

---

* भाषा के स्वरूप का विस्तृत विवेचन जानने के लिए जिज्ञासुओ को प्रज्ञापना सूत्र का ग्यारहवां 'भाषा पद' देखना चाहिए।

ठाणपदे देवाणं वत्तव्वया सा भाणियव्वा, णवरं-भवणा पन्नता, उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे एवं सव्वं भाणियव्वं, जाव सिद्ध-गंडिया सम्मत्ता, कप्पाण पइट्ठाणं वाहुल्लुच्चत्तं एव संठाणं, जीवा-भिगमे जाव-वेमाणिउद्देसो भाणियव्वो सव्वो ।

॥ सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-ठाणा-स्थान, वत्तव्वया-वक्तव्यता, णवरं-किन्तु इतनी विशेषता, उववाएणं-उत्पत्ति की अपेक्षा, लोयस्स-लोक के, कप्पाण-कल्पों का=देवलोकों का, पइट्ठाणं-प्रतिष्ठान, वाहुलुच्चत्तं-वाहल्य=मोटाई और ऊँचाई, संठाणं-संस्थान=आकार।

भावार्थ-४९ प्रश्न-हे भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

४९ उत्तर-हे गौतम ! देव चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा-१ भव-नपति २ वाणव्यन्तर ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक ।

५० प्रश्न-हे भगवन् ! भवनवासी देवों के स्थान कहाँ पर कहे गये है ?

५० उत्तर-हे गौतम ! भवनवासी देवों के स्थान रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे है । इत्यादि सारा वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे स्थानपद में कहे अनुसार जान लेना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि-भवनवासियों के भवन कहने चाहिए । उनका उपपात लोक के असंख्यातवें भाग में होता है। यह सारा वर्णन सिद्धगण्डिका पर्यन्त पूरा कहना चाहिए । कल्पों का प्रतिष्ठान, मोटाई, ऊँचाई और संस्थान आदि सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र के वैमानिक उद्देशक की तरह कहना चाहिए ।

विवेचन-पहले के प्रकरण मे भाषा के विषय में कहा गया है। भाषा की विशुद्धि से देवत्व प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए इस सातवें उद्देशक मे देवो का वर्णन किया गया है ।

देवों के विषय में पूछने पर भगवान् ने फरमाया कि-हे गौतम ! प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे 'स्थान पद' में जो वक्तव्यता कही है वह यहां कहनी चाहिए। देव चार प्रकार के

है-भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक।

रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। उसमें से एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड़ कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन में भवनवासी देवो के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन है। भवनवासियों का उपपात लोक के असख्यातवें भाग मे होता है और वे लोक के असंख्यातवें भाग मे ही रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा भी भवनवासी लोक के असंख्येय भाग में ही रहते हैं। वे अपने स्थान की अपेक्षा भी लोक के असंख्येय भाग में ही रहते हैं, क्योंकि उनके सात करोड़ बहत्तर लाख भवन लोक के असख्येय भाग में हो है। इसी तरह असुरकुमार आदि के विषय में तथा यथोचित रूप से वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, सभी देवों के स्थानों का कथन करना चाहिए यावत् सिद्ध भगवान् के स्थानों का वर्णन करने वाले 'सिद्धगंडिका' नामक प्रकरण तक कहना चाहिए।

इस सम्बन्ध मे 'जीवाभिगम' सूत्र के वैमानिक उद्देशक में वर्णित सारा वर्णन यहां कहना चाहिए। यथा-हे भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान की पृथ्वी किस के आधार पर रही हुई है ? हे गौतम ! वह घनोदधि के आधार पर रही हुई है। जैसा कि कहा है-

घणउदहिपइट्ठाणा सुरभवणा हुंति दोसु कप्पेसु।
तिसु वाउपइट्ठाणा तदुभयसुपइट्ठिया तिसु य।
तेण परं उवरिमगा आगासंतरपइट्ठिया सव्वे॥

अर्थात्-पहला व दूसरा देवलोक घनोदधि के आधार पर रहा हुआ है। तीसरा, चौथा और पाँचवां देवलोक घनवायु के आधार पर रहा हुआ है। छठा, सातवाँ और आठवाँ देवलोक घनोदधि और घनवायु के आधार पर रहा हुआ है। इसके बाद ऊपर के सब विमान आकाश के आधार पर रहे हुए है।

बाहल्य अर्थात् मोटाई और उच्चत्व अर्थात् ऊंचाई इस प्रकार है-

सत्तावीससयाइं आइमकप्पेसु पुढविबाहल्लं।
एक्किक्कहाणि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य।
पंचसय उच्चत्तेणं आइमकप्पेसु होंति उ विमाणा।
एक्किक्कवुड्ढि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य॥

अर्थ-सौधर्म और ईशान कल्प मे विमानो की मोटाई सत्ताईस सौ योजन और

ऊचाई पांच सौ योजन की है अर्थात् विमान पांच सौ योजन ऊंचे हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प मे मोटाई छब्बीस सौ योजन और ऊचाई छह सौ योजन की है। ब्रह्मलोक और लान्तक में मोटाई पच्चीस सौ योजन और ऊचाई सात सौ योजन की है। महाशुक्र और सहस्रार कल्प में मोटाई चौबीस सौ योजन और ऊचाई आठ सौ योजन है। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक मे मोटाई तेईस सौ योजन और ऊचाई नौ सौ योजन की है। नवग्रैवेयक के विमानो की मोटाई बाईस सौ योजन और ऊचाई एक हजार योजन की है। पाच अनुत्तर के विमानो की मोटाई इक्कीस सौ योजन और ऊचाइ ग्यारह सौ योजन की है।

सस्थान-सौधर्मादि कल्पो में विमान दो तरह के हैं-आवलिकाप्रविष्ट और आवलिका बाह्य। आवलिकाप्रविष्ट (पक्ति बद्ध) तीन सस्थानों वाले हैं-वृत्त (गोल), त्र्यस (त्रिकोण) और चतुरस्र (चार कोण वाले)। आवलिका बाह्य अनेक संस्थानों वाले हैं।

विमानों का प्रमाण, रंग, कान्ति, गन्ध आदि का वर्णन जीवाभिगमसूत्र से जान लेना चाहिये।

॥ दूसरे शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥



शतक २ उद्देशक ८

चमरचंचा राजधानी

५१ प्रश्न-कहिं णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमार-रण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता ?

उत्तर-गोयमा ! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीइवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसयसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिन्दस्स असुरकुमार-

रण्णो तिगिच्छयकूडे नामं उप्पायपव्वए पन्नत्ते, सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारितीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं, गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेणं नेयव्वं, नवरं-उवरिल्लं पमाणं मज्झे भाणियव्वं जाव (मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं, मज्झे चत्तारि चउवीसे जोयणसए विक्खंभेणं उवरिं सत्ततेवीसे जोयणसए विक्खंभेणं, मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं, दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगुयाले जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं, दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं) मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, मज्झे वरवइरविग्गहिए, महामउंदसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए अच्छे जाव-पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेणं वणसंडेण य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। पउमवरवेइयाए, वणसंडस्स य वण्णओ।

विशेष शब्दों के अर्थ-रण्णो-राजा, वीइवइत्ता-उल्लंघन करके, ओगाहित्ता-अवगाहन करके, विक्खंभेण-विष्कम्भ, परिक्खेवेणं-परिक्षेप=घेरा, उड्ढं उच्चत्तेणं-ऊपर की तरफ की ऊचाई, विसेसूणे-विशेष कम, विसेसाहिए-विशेषाधिक, वित्थडे-विस्तृत, संखित्ते-संक्षिप्त, उप्पिविसाले-ऊपर से विशाल, वरवइरविग्गहिए-उत्तम वज्र जैसे आकारवाला, महामउदसंठाणसंठिए-बड़े मुकुन्द (एक प्रकार का वादिन्त्र) की तरह।

भावार्थ-५१ प्रश्न-हे भगवन् ! असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा चमर की सुधर्मा-सभा कहाँ पर है ?

५१ उत्तर-हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मध्य में रहे हुए मन्दर (मेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा में तिर्च्छे असंख्यात द्वीप और समुद्रों को उल्लंघन करने के बाद अरुणवर नाम का द्वीप आता है। उस द्वीप की वेदिका के बाहरी किनारे से आगे बढ़ने पर अरुणोदय नाम का समुद्र आता है। इस अरुणोदय समुद्र में बयालीस हजार योजन जाने के बाद उस जगह असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा चमर का तिगिच्छ कूट नामक उत्पात पर्वत आता है। उसकी ऊंचाई १७२१ योजन है, उसका उद्वेध (जमीन में गहराई) ४३० योजन और एक कोस है। इस पर्वत का नाप गोस्तुभ नाम के आवास पर्वत के नाप की तरह जानना चाहिए। विशेषता यह है कि गोस्तुभ पर्वत के ऊपर के भाग का जो नाप है वह नाप यहाँ बीच के भाग का समझना चाहिए। अर्थात् तिगिच्छक कूट पर्वत का विष्कम्भ मूल में १०२२ योजन है। बीच का विष्कम्भ ४२४ योजन है और ऊपर का विष्कम्भ ७२३ योजन है। उसका परिक्षेप मूल में ३२३२ योजन और कुछ विशेषोन है। बीच का परिक्षेप १३४१ योजन तथा कुछ विशेषोन है। ऊपर का परिक्षेप २२८६ योजन तथा कुछ विशेषाधिक है। वह मूल में विस्तृत है, बीच में संकड़ा है और ऊपर फिर विस्तृत है। उसके बीच का भाग उत्तम वज्र जैसा है, बड़े मुकुन्द के आकार जैसा है। वह पर्वत सम्पूर्ण रत्नमय है, सुन्दर है यावत् प्रतिरूप है। वह पर्वत पद्मवर वेदिका से और एक वनखण्ड से चारों तरफ से घिरा हुआ है। (यहाँ वेदिका और वनखण्ड का वर्णन करना चाहिए)।

विवेचन-पहले उद्देशक में देवो के स्थानो के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है। इस उद्देशक मे चमरचञ्चा नामक देवस्थान (राजधानी) का वर्णन किया गया है।

सब द्वीपों के बीच मे स्थित जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण की तरफ तिर्च्छा असख्यात द्वीप समुद्रो को उल्लंघन करने के बाद अरुणवर नामक द्वीप आता है। उसकी वेदिका के वाहरी भाग से आगे जाने पर अरुणोदय समुद्र आता है। उस अरुणोदय समुद्र में वयालीस हजार योजन जाने पर असुरेन्द्र असुरराज चमर का तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत आता है।



"तिर्यग्लोकगमनाय यत्रागत्योत्पतति स उत्पातपर्वतः"

तिर्च्छालोक मे जाने के लिए जिस पर्वत पर आकर चमर उत्पतन करता है-उड़ता है उसको उत्पात पर्वत कहते है।

लवण समुद्र के बीच मे पूर्व दिशा में 'गोस्तुभ' नाम का पर्वत नागराज का आवास पर्वत है। उसके आदि भाग का निष्कम्भ १०२२ योजन, मध्य का ७२३ और अन्तिम ४२४ योजन है, किन्तु इस उत्पात पर्वत के आदि भाग का विष्कम्भ १०२२ योजन, बीच भाग का ४२४ और अन्तिम भाग का विष्कम्भ ७२३ योजन है। इसके मूल का परिक्षेप ३२३२ योजन से कुछ कम है। मध्य भाग का परिक्षेप १३४१ योजन से कुछ कम है और ऊपर के भाग का परिक्षेप २२८६ योजन से किञ्चित् विशेषाधिक है। यह पर्वत बीच में पतला है। इसका आकार उत्तम वज्र के आकार समान है। अथवा 'मुकुन्द' नाम के बाजे के समान है। आकाश स्फटिक के समान निर्मल है। यहा मूलपाठ में 'यावत्' शब्द दिया है जिससे इतने विशेषण और लेने चाहिए-'सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे णिरए णिम्मले णिप्पके णिक्ककडच्छाए सप्पभे समिरिईए सउज्जोए पासाईए'। इनका अर्थ इस प्रकार है-'सण्हे-श्लक्ष्ण:' चिकने पुद्गलो से बना हुआ होने के कारण चिकना है। 'लण्हे-मसृण'-सुहाला। 'घट्ठे-घृष्ट'-शाण पर चढ़ा कर घिस कर तैयार किये हुए हीरे आदि के समान। 'मट्ठे-मृष्ट' सुकुमाल शाण पर चढ़ाये हुए जवाहरात के समान चिकना और साफ। 'णिरए' नीरज-रज रहित। 'णिम्मले' निर्मल। 'णिप्पके' निष्पङ्क-कीचड़ रहित। 'णिक्कंकडच्छाए' निरावरण दीप्ति-शुद्ध कान्ति वाला। 'सप्पभे' सत्प्रभाव-अच्छी प्रभा वाला। 'समिरिईए सकिरण-किरणों वाला। 'सउज्जोए' सउद्योत-समीप के पदार्थो को प्रकाशित करने वाला। 'पासाईए' प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला। ऐसा वह उत्पात पर्वत है। वह पद्मवरवेदिका से वेष्टित है। उस वेदिका की ऊंचाई आधा योजन है। उसका विष्कम्भ पांच सौ धनुष है। वह सर्वरत्नमयी है। उसका परिक्षेप तिगिच्छकूट के ऊपर के भाग का जितना परिक्षेप है उतना है। इस प्रकार सक्षेप में उस उत्तम पद्मवर वेदिका का वर्णन है।

तस्स णं तिगिच्छकुडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पन्नत्ते वण्णओ। तस्स णं बहुसमरमणिज्ज-स्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए

पन्नत्ते। अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयण-सयाइं विक्खंभेणं। पासायवण्णओ। उल्लोयभूमिवण्णओ। अट्ठजोयणाइं मणिपेढिया, चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं। तस्स णं तिगिच्छकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए पणवन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पण्णासं च सहस्साइं अरुणोदए समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमर-चंचा नामं रायहाणी पण्णत्ता।

विशेष शब्दों के अर्थ-पासायवडिंसए-प्रासादावतंसक=महल।

उस तिगिच्छकूट नामक उत्पातपर्वत का ऊपरी भाग ऊबड़ खाबड़ रहित बिल्कुल सम है। वह बड़ा ही मनोहर है। (उसका वर्णन भी यहाँ कहना चाहिए)। उसके बहुसम रमणीय ऊपरी भाग के ठीक बीचोबीच एक बड़ा प्रासादावतंसक (महल) है। उस प्रासादावतंसक की ऊंचाई २५० योजन है। उसका विष्कम्भ १२५ योजन है। (यहाँ उस प्रासादावतंसक-महल का वर्णन कहना चाहिए) तथा उस महल के ऊपर के भाग का वर्णन करना चाहिए) आठ योजन की मणिपीठिका है। (यहाँ चमर के सिंहासन का परिवार सहित वर्णन कहना चाहिए)।

तिगिच्छकूट के दक्षिण की तरफ अरुणोदय समुद्र में छह सौ करोड़ पचपन करोड़ पैंतीस लाख और पचास हजार योजन तिर्च्छा जाने के बाद नीचे रत्नप्रभा का चालीस हजार योजन भाग अवगाहन करने के पश्चात् इस जगह असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा चमर की चमरचंचा नाम की राजधानी आती है।

वह वनखण्ड से घिरा हुआ है। उस वनखण्ड का चक्रवाल विष्कम्भ देशोन दो

योजन है। उसका परिक्षेप पद्मवरवेदिका के परिक्षेप जितना है। वह काला है और काली कान्ति वाला है।

उस पर्वत का ऊपर का भाग बहुसम रमणीय है। वह भूमिभाग मुरजमुख के समान है, मृदंग पुष्कर के समान है सरोवर के तल के समान है। आदर्शमण्डल, हाथ का तला (हथेली) और चन्द्रमण्डल के समान है।

उस उत्पात पर्वत के ऊपर बीचोबीच एक प्रासादावतंसक है। वह अत्यन्त सुन्दर और कान्ति से सफेद और प्रभासित है। वह मणि, सुवर्ण और रत्नो की कारीगरी से विचित्र है। उसका ऊपरी भाग भी अत्यन्त सुन्दर है। उस पर हाथी घोड़ा बैल आदि के अनेक चित्र है।

प्रासादावतंसक के बीच मे चमरेन्द्र का सिहासन है। उस सिंहासन के पश्चिमोत्तर में, उत्तर में और उत्तर पूर्व में चमरेन्द्र के चौसठ हजार सामानिक देवों के चौसठ हजार भद्रासन हैं। इसी प्रकार पूर्व मे परिवार सहित पांच पटरानियों के पाँच भद्रासन सपरिवार है। दक्षिण पूर्व में आभ्यन्तर परिषद् के चौबीस हजार देवों के चौबीस हजार भद्रासन हैं। इसी प्रकार दक्षिण मे मध्यम परिषद् के अट्ठाईस हजार देवो के अट्ठाईस हजार भद्रासन है। दक्षिण पश्चिम मे बाह्यपरिषद् के बत्तीस हजार देवों के बत्तीस हजार भद्रासन हैं। पश्चिम में सात सेनाधिपतियो के सात भद्रासन हैं और चारों दिशाओं में आत्मरक्षक देवो के चौसठ हजार, चौसठ हजार भद्रासन हैं। इस प्रकार उस सिंहासन का वर्णन है।

एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जंबूदीवप्पमाणा। पागारो दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरिं अद्धतेरसजोयणाइं विक्खंभेणं। कविसीसगा अद्ध-जोयणा आयामेणं कोसं विक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं उड्ढं उच्च-त्तेणं। एगमेगाए बाहाए पंच पंच दारसया अड्ढाइज्जाइं जोयण-सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धं विक्खंभेणं, उवारियले णं सोलसजोय-णसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, पन्नासं जोयणसहस्साइं पंच य

सत्ताणउ य जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं। सभा सुहम्मा, उत्तरपुरत्थिमेणं जिणघरं, ततोववायसभा, हरओ, अभिसेय, अलंकारो जहा विजयस्स।

उववाओ संकप्पो अभिसेय विभूसणा य ववसाओ,
अच्चणिय सिद्धायण गमो वि य चमर परिवार इड्ढत्तं।

॥ अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-पागारो-प्राकार=किला, कविसीसगा-कंगुरे, हरओ-ह्रद, अभिसेय-अभिषेक करने का स्थान।

भावार्थ-उस राजधानी का आयाम और विष्कम्भ (लम्बाई और चौड़ाई) एक लाख योजन है। वह राजधानी जम्बूद्वीप जितनी है। उसका किला १५० योजन ऊंचा है। उस किले के मूल का विष्कम्भ पचास योजन है। उसके ऊपर के भाग का विष्कम्भ साढ़े तेरह योजन है। उसके कपिशीर्षक (कंगुरों) की लंबाई आधा योजन है और विष्कम्भ एक कोस है। कपिशीर्षक (कंगुरों) की ऊंचाई आधे योजन से कुछ कम है। उसके एक एक बाहु में पांच सौ पांच सौ दरवाजे हैं। उनकी ऊंचाई २५० योजन है। विष्कम्भ ऊंचाई से आधा है अर्थात् १२५ योजन है। उवरियल (घर के पीठबन्ध जैसा भाग) का आयाम और विष्कम्भ (लम्बाई और चौड़ाई) सोलह हजार योजन है। उसका परिक्षेप (घेरा) ५०५९७ योजन से कुछ विशेषोन है। यहाँ सर्व प्रमाण वैमानिक के प्रमाण से आधा समझना चाहिए। सुधर्मा सभा, उत्तर पूर्व में जिनगृह, उसके बाद उपपात सभा, ह्रद, अभिषेक और अलङ्कार, यह सारा वर्णन विजय की तरह कहना

चाहिए।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है--

उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका, और सिद्धायतन सम्बन्धी गम तथा चमर का परिवार और उसकी ऋद्धिसम्पन्नता।

विवेचन--चमरेन्द्र की चमरचञ्चा राजधानी में जो किला, महल और सभा आदि हैं उनकी ऊंचाई आदि का परिमाण सौधर्म देवलोक के किला, महल और सभा आदि के परिमाण से आधा परिमाण है। वह इस प्रकार है;--

सौधर्म देवलोक में रहने वाले देवों के विमानों के आसपास रहे हुए किले की ऊंचाई तीन सौ योजन है। मूल महल पाच सौ योजन ऊंचा है। मूल महल के परिवार रूप दूसरे चार महल हैं, उनकी ऊंचाई ढ़ाई सौ योजन है। उन चार महलो में से प्रत्येक महल के आसपास दूसरे चार चार महल और हैं, उनकी ऊचाई सवा सौ योजन है। उन चार महलों में से प्रत्येक महल के आसपास फिर चार चार महल है, उनकी ऊंचाई ६२॥ योजन है। इसी प्रकार उन चार महलो में से प्रत्येक महल के आसपास फिर चार चार महल है, उनकी ऊचाई ३१। योजन है।

यहाँ चमरचञ्चा राजधानी में किले की ऊंचाई १५० योजन है। मूल महल की ऊंचाई २५० योजन है और क्रमशः उनके आसपास रहे हुए महलों की ऊंचाई क्रमशः आधी आधी होती गई है। इस प्रकार अन्तिम महल की ऊचाई पन्द्रह योजन और एक योजन का पाँच अष्टांग है। चार परिपाटियों में कुल ३४१ प्रासाद हैं। इन प्रासादो से उत्तरपूर्व--ईशान कोण मे सुधर्मा सभा, सिद्धायतन, उपपात सभा, ह्रद, अभिषेक सभा, अलङ्कार सभा और व्यवसाय सभा है। इन सब का परिमाण सौधर्म देवलोक के देवों की सभा आदि के परिमाण से आधा है। अत. इनकी ऊचाई ३६ योजन है, लम्बाई पचास योजन है और चौडाई पचीस योजन है।

जीवाभिगम सूत्र मे विजयदेव की सभा आदि का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ चमरेन्द्र के लिए उपपात सभा पर्यन्त वर्णन कहना चाहिए। उपपात सभा मे तत्काल उत्पन्न हुए इन्द्र को ऐसा विचार होता है कि--मुझ क्या कार्य करना है। मेरा क्या जीताचार है ? फिर सामानिक देवो द्वारा बड़ी ऋद्धि से अभिषेक सभा मे उसका अभिषेक किया जाता है। अलङ्कार सभा मे वस्त्राभूषणो से अलङ्कार किया जाता है। व्यवसाय सभा मे पुस्तक का वांचन किया जाता है। सिद्धायतन में मूर्ति का पूजन किया जाता है।

फिर सामानिक देव आदि परिवार सहित चमरेन्द्र सुधर्मा सभा मे आते हैं। उनका सामानिक परिवार आदि सारा वर्णन कहना चाहिए।

॥ दूसरे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ९

समय क्षेत्र

५२ प्रश्न-किमिदं भंते ! समयखेत्ते त्ति पवुच्चइ ?

५२ उत्तर-गोयमा ! अड्ढाइज्जा दीवा दो य समुद्दा एस णं एवइए समयखेत्तेत्ति पवुच्चइ, तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे दीवे सव्व-दीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतरे, एवं जीवाभिगमवत्तव्वया नेयव्वा, जाव-अब्भिंतरं पुक्खरद्धं जोइसविहूणं।

॥ नवमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-समयखेत्ते-समय क्षेत्र=मनुष्य क्षेत्र, पवुच्चइ-कहलाता है, पुक्खरद्धं-पुष्करार्द्ध, एवइए-इतना, सव्वब्भंतरे-सर्वाभ्यन्तर।

भावार्थ-५२ प्रश्न-हे भगवन् ! समय क्षेत्र किसको कहते हैं ?

५२ उत्तर-हे गौतम ! अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र, यह समयक्षेत्र कहलाता है। इनमें जो यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप है, यह सब द्वीप समुद्रों के बीचोबीच है। इस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में कहा हुआ सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिए यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध तक कहना चाहिए, किन्तु उसमें से ज्योतिषियों का वर्णन यहाँ नहीं कहना चाहिए।

विवेचन-आठवे उद्देशक मे चमरचञ्चा राजधानी का वर्णन किया गया है। वह क्षेत्र सम्बन्धी वर्णन है। इसलिए क्षेत्र का अधिकार होने से इस नौवें उद्देशक मे समय-क्षेत्र सम्बन्धी वर्णन किया गया है।

समय अर्थात् काल से उपलक्षित क्षेत्र 'समय-क्षेत्र' कहलाता है। सूर्य की गति से प्रकट होने वाला दिवस मासादि रूप काल, मनुष्य क्षेत्र मे ही है, इसके आगे नही है। क्योंकि इससे आगे के सूर्य, चर (गति वाले) नही है, किन्तु अचर (स्थिर) हैं।

इस विषय में जीवाभिगम सूत्र में जो वर्णन दिया है, वह यहां भी कहना चाहिए, किन्तु वहाँ जो ज्योतिषी देवों का वर्णन दिया गया है, वह यहाँ नही कहना चाहिए। यावत् मनुष्यलोक किसे कहते है ? इस विषय मे एक संग्रह गाथा दी गई है। वह इस प्रकार है;-

अरिहंत-समय-बायर-विज्जू-थणिया बलाहगा अगणी।
आगर-णिहि-णई-उवराग-णिग्गमे वुड्ढिवयणं च ॥

अर्थ-मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्यलोक कहलाता है। जहाँ तक अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और मनुष्य है, वहाँ तक 'मनुष्य-लोक' कहलाता है। जहाँ तक समय, आवलिका आदि काल है, स्थूल बिजली है, मेघ का स्थूल गड़गड़ाहट है, स्थूल मेघ बरसते है, स्थूल अग्निकाय है, आगर, निधि, नदी, उपराग (चन्द्र सूर्य का ग्रहण) है, चन्द्र, सूर्य, तारा का अतिगमन (उत्तरायण), निर्गमन (दक्षिणायन), दिन रात्रि का बढ़ना और घटना, इत्यादि है, वहाँ तक समय क्षेत्र-मनुष्यक्षेत्र है।

॥ दूसरे शतक का नौवाँ उद्देशक समाप्त ॥



शतक २ उद्देशक १०

पंचास्तिकाय वर्णन

५३ प्रश्न-कइ णं भंते ! अत्थिकाया पण्णत्ता ?

५३ उत्तर-गोयमा ! पंच अत्थिकाया पण्णत्ता तं जहाः-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

५४ प्रश्न-धम्मत्थिकाए णं भंते ! कतिवण्णे, कतिगंधे, कति-

रसे, कतिफासे ?

५४ उत्तर-गोयमा ! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे, अरूवी अजीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे ।

५५-से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहाः-दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ । दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगे दव्वे, खेत्तओ णं लोगप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयावि न आसि न कयावि नत्थि जाव-णिच्चे, भावओ अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे, गुणओ गमणगुणे । अहम्मत्थिकाए वि एवं चेव, नवरं-गुणओ ठाणगुणे । आगासत्थिकाए वि एवं चेव, नवरं-खेत्तओ णं आगासत्थिकाए लोयालोयप्पमाणमेत्ते, अणंते चेव जाव-गुणओ अवगाहणागुणे ।

विशेष शब्दों के अर्थ-समासओ-सक्षेप से, अवगाहणागुणे-अवगाहन गुण वाला ।

भावार्थ-५३ प्रश्न-हे भगवन् ! अस्तिकाय कितनें कहे गये है ?

५३ उत्तर-हे गौतम ! अस्तिकाय पाँच कहे गये हैं, यथा-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

५४ प्रश्न-हे-भगवन् ! धर्मास्तिकाय में कितनें वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ?

५४ उत्तर-हे गौतम ! धर्मास्तिकाय में वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श नहीं है अर्थात् धर्मास्तिकाय अरूपी है, अजीव है, शाश्वत है। यह अवस्थित लोक द्रव्य है ।

५५-संक्षेप से धर्मास्तिकाय पांच प्रकार का कहा गया है-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण से । द्रव्य की अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है ।

क्षेत्र की अपेक्षा धर्मास्तिकाय लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा धर्मास्तिकाय कभी नहीं था-ऐसा नहीं, कभी नहीं है-ऐसा नहीं, कभी नहीं रहेगा-ऐसा भी नहीं, किन्तु वह था, है और रहेगा, यावत् वह नित्य है। भाव की अपेक्षा धर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुण की अपेक्षा गति गुण वाला है।

जिस तरह धर्मास्तिकाय का कथन किया है उसी तरह अधर्मास्तिकाय के विषय में भी कहना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि अधर्मास्तिकाय गुण की अपेक्षा स्थिति गुण वाला है। आकाशास्तिकाय के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि आकाशास्तिकाय क्षेत्र की अपेक्षा लोकालोक प्रमाण (अनन्त) है और गुण की अपेक्षा अवगाहना गुण वाला है।

५६ प्रश्न-जीवत्थिकाए णं भंते ! कतिवण्णे, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे ?

५६ उत्तर-गोयमा ! अवण्णे, जाव-अरूवी, जीवे सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तं जहा:-दव्वओ, जाव-गुणओ। दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं जीवदव्वाइं, खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयाइ न आसी, जाव-निच्चे, भावओ पुण अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे, गुणओ उवओगगुणे।

विशेष शब्दों के अर्थ-कति-कितने, समासओ-संक्षेप से, अवट्ठिए-अवस्थित।

भावार्थ-५६ प्रश्न-हे भगवन् ! जीवास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ?

५६ उत्तर-हे गौतम ! जीवास्तिकाय में वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श नहीं हैं। वह अरूपी है, जीव है, शाश्वत है और अवस्थित लोकद्रव्य है। संक्षेप में

जीवास्तिकाय के पांच भेद कहे गये हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण की अपेक्षा। द्रव्य की अपेक्षा जीवास्तिकाय अनन्त जीव द्रव्यरूप है। क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा वह कभी नहीं था-ऐसा नहीं, यावत् वह नित्य है। भाव की अपेक्षा जीवास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं और स्पर्श नहीं है। गुण की अपेक्षा उपयोग गुण वाला है।

५७ प्रश्न-पोग्गलत्थिकाए णं भंते ! कतिवण्णे, कतिगंध-रस-फ़ासे ?

५७ उत्तर-गोयमा ! पंचवण्णे, पंचरसे, दुगंधे, अट्ठफासे, रूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए, लोगदव्वे। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तं जहा:-दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ। दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोयप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयाइ न आसी जाव-णिच्चे, भावओ वण्णमंते गंध-रस-फास-मंते। गुणओ गहणगुणे।

विशेष शब्दों के अर्थ-गहणगुणे-ग्रहण गुण।

भावार्थ-५७ प्रश्न-हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ?

५७ उत्तर-हे गौतम ! पुद्गलास्तिकाय में पांच वर्ण हैं, पांच रस हैं, दो गन्ध हैं, आठ स्पर्श हैं। वह रूपी है, अजीव है, शाश्वत है और अवस्थित लोक द्रव्य है। संक्षेप से उसके पांच भेद कहे गये हैं-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण की अपेक्षा। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्यरूप है। क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा वह कभी नहीं था-ऐसा नहीं यावत् नित्य है। भाव की अपेक्षा वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला है। गुण

की अपेक्षा ग्रहण गुणवाला है।

५८ प्रश्न-एगे भंते ! धम्मत्थिकायपदेसे धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

५८ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। एवं दोण्णि वि तिण्णि वि चत्तारि वि पंच छ सत्त अट्ठ नव दस संखेज्जा।

५९ प्रश्न-असंखेज्जा भंते ! धम्मत्थिकायपएसा 'धम्मत्थिकाए' त्ति वत्तव्वं सिया ?

५९ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

६० प्रश्न-एगपएसूणे वि य णं भंते ! धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

६० उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे।

६१ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ एगे धम्मत्थिकायस्स पएसे नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया, जाव एगपएसूणे वि य णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

६१ उत्तर-से णूणं गोयमा ! खंडे चक्के ? सकले चक्के ? भगवं ! नो खंडे चक्के, सकले चक्के, एवं छत्ते, चम्मे, दंडे, दूसे, आउहे, मोयए; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ, एगे धम्मत्थिकाय पएसे णो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया, जाव-एगपएसूणे वि य

णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया।

६२ प्रश्न-से किं खाइए णं भंते ! धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

६२ उत्तर-गोयमा ! असंखेज्जा धम्मत्थिकाए पएसा, ते सव्वे कसिणा पडिपुण्णा निरवसेसा एगगहणगहिया एस णं गोयमा ! धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया, एवं अहम्मत्थिकाए वि, आगासत्थिकाए वि, जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाए वि एवं चेव, नवरं-तिण्णं पि पदेसा अणंता भाणियव्वा, सेसं तं चेव।

विशेष शब्दों के अर्थ-दूसे-दूष्य=वस्त्र, आउहे-आयुध=शस्त्र, मोयए-मोदक=लड्डू, कसिणा-सब=सम्पूर्ण, पडिपुण्णा-सम्पूर्ण, निरवसेसा-निरवशेष, एगगहणगहिया-एक के ग्रहण करने पर सब का ग्रहण होना।

भावार्थ-५८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय कहलाता है ?

५८ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय नहीं कहलाता है। इसी तरह से दो प्रदेश, तीन प्रदेश, चार प्रदेश, पांच प्रदेश, छह प्रदेश, सात प्रदेश, आठ प्रदेश, नौ प्रदेश, दस प्रदेश और संख्यात प्रदेश भी धर्मास्तिकाय नहीं कहलाते हैं।

५९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश, धर्मास्तिकाय कहलाते हैं ?

५९ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश, धर्मास्तिकाय नहीं कहलाते हैं।

६० प्रश्न-हे भगवन् ! एक प्रदेश से कम धर्मास्तिकाय को क्या धर्मास्तिकाय कहते हैं ?

६० उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् एक प्रदेशोन धर्मास्तिकाय को धर्मास्तिकाय नहीं कहते हैं।

६१ प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को यावत् जहाँ तक एक भी प्रदेश कम हो वहाँ तक धर्मास्तिकाय नहीं कहना चाहिए ?

६१ उत्तर-हे गौतम ! यह बतलाओ कि चक्र का खण्ड (भाग-टुकड़ा) 'चक्र' कहलाता है, या सम्पूर्ण चक्र, चक्र कहलाता है ? हे भगवन् ! चक्र का खण्ड, चक्र नहीं कहलाता है, किन्तु सम्पूर्ण चक्र, चक्र कहलाता है। इसी प्रकार छत्र, चर्म, दण्ड, वस्त्र, शस्त्र और मोदक के विषय में भी जानना चाहिए अर्थात् ये सब छत्रादि सम्पूर्ण हों, तो छत्रादि कहलाते हैं, किन्तु इनका खण्ड छत्रादि नहीं कहलाते हैं, इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश यावत् जबतक एक प्रदेश भी कम हो तबतक उसे धर्मास्तिकाय नहीं कहते हैं।

६२ प्रश्न-तो फिर हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

६२ उत्तर-हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, वे सब कृत्स्न (पूरे), प्रतिपूर्ण, निरवशेष (जिन में से एक भी बाकी नहीं बचा हो), एकग्रहण-गृहीत अर्थात् एक शब्द से कहने योग्य हों तब उन असंख्यात प्रदेशों को 'धर्मास्तिकाय' कहते हैं। इसी तरह अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के विषय में भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय, इन तीन द्रव्यों के अनन्त प्रदेश कहने चाहिए। बाकी सारा वर्णन पहले की तरह समझना चाहिये।

विवेचन-नौवें उद्देशक में क्षेत्र के विषय में कथन किया गया है। वह क्षेत्र अस्तिकाय के एक देश रूप है, इसलिए दसवें उद्देशक में 'अस्तिकाय' का वर्णन किया गया है।

अस्तिकाय-'अस्ति' का अर्थ है 'प्रदेश' और 'काय' का अर्थ है-'समूह'। अर्थात् अस्तिकाय का अर्थ है-प्रदेशों का समूह। अथवा 'अस्ति' यह तीन काल को सूचित करने

वाला अव्यय (निपात) है। इसलिए 'अस्तिकाय' का यह अर्थ हुआ कि-जो प्रदेशों का समूह भूतकाल मे था, वर्तमानकाल में है और भविष्यत्काल मे रहेगा उसे 'अस्तिकाय' कहते है।

अस्तिकाय पांच है-१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय और ५ पुद्गलास्तिकाय।

यहाँ पर यह शका हो सकती है कि इन पाँच अस्तिकायों का यही क्रम क्यो रखा गया है?

इसका समाधान इस प्रकार है-'धर्मास्तिकाय' के प्रारम्भ में 'धर्म' शब्द आया है। 'धर्म' शब्द मगल सूचक है, इसलिए सब तत्त्वो मे पहले 'धर्मास्तिकाय' कहा गया है। 'धर्मास्तिकाय' का विपरीत 'अधर्मास्तिकाय' है। इसलिए 'धर्मास्तिकाय' के बाद 'अधर्मास्तिकाय' कहा गया है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, इन दोनों के लिए 'आकाशास्तिकाय' आधार रूप है, इसलिए इन दोनो के बाद 'आकाशास्तिकाय' कहा गया है। आकाश, अनन्त और अमूर्त्त है तथा जीव भी अनन्त और अमूर्त्त है। इस प्रकार इन दोनों तत्त्वो की समानता होने से आकाशास्तिकाय के बाद चौथा तत्त्व 'जीवास्तिकाय' कहा गया है। जीव तत्त्व के उपयोग में 'पुद्गल तत्त्व' आता है। इसलिए 'जीवास्तिकाय' के बाद 'पुद्गलास्तिकाय' कहा गया है।

धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्य वर्णादि रहित हैं, इसीलिए वे अरूपी, अमूर्त्त हैं। किंतु वे नि:स्वभाव नही है। धर्मास्तिकायादि द्रव्यतः शाश्वत हैं, प्रदेशों की अपेक्षा अवस्थित है। धर्मास्तिकाय आदि प्रत्येक 'लोक-द्रव्य' हैं अर्थात् पञ्चास्तिकाय रूप लोक के अंश रूप द्रव्य हैं। गुण (कार्य) की अपेक्षा धर्मास्तिकाय गति (गमन) गुण वाला है। तात्पर्य यह है कि जैसे पानी, मछली को चलने मे सहायता देता है, उसी प्रकार गति क्रिया मे परिणत हुए जीव और पुद्गलों को धर्मास्तिकाय सहायता देता है। अधर्मास्तिकाय स्थिति गुण वाला है अर्थात् स्थिति परिणाम वाले जीव और पुद्गलो की स्थिति में सहायक होता है। जैसे-विश्राम चाहने वाले थके हुए पथिक के ठहरने में छायादार वृक्ष सहायक होता है। आकाशास्तिकाय अवगाहन गुण वाला है अर्थात् जीवादि द्रव्यो को रहने के लिए अवकाश देता है। जैसे-बदरीफलों (बेर) को रखने के लिए कुण्डा आधारभूत है, इसी तरह आकाश तत्त्व, जीवादि को अवकाश देता है। इसलिए वह अवगाहना गुण वाला है। जीव तत्त्व, उपयोग गुण वाला है। पुद्गलास्तिकाय, ग्रहणगुण वाला है, क्योंकि

औदारिकादि अनेक पुद्गलों के साथ जीव का सम्बन्ध होता है, अथवा प्राणधारी जीव, औदारिक आदि अनेक प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण किया करता है।

जैसे-चक्र का खण्ड (चक्र का एक भाग) चक्र नही कहलाता है। किन्तु वह चक्रखण्ड कहलाता है। सम्पूर्ण चक्र को ही-'चक्र'कहते है। इसी तरह से जबतक एक प्रदेश की भी कमी हो वहाँ तक उसे धर्मास्तिकाय नही कहते हैं परन्तु जब सभी-पूरे प्रदेश हों, तभी उसे धर्मास्तिकाय कहते है. जब वस्तु पूरी हो तभी वह वस्तु कहलाती है, किन्तु अधूरी वस्तु, वस्तु नही कहलाती है। यह निश्चय नय का मत है। व्यवहार नय की दृष्टि से तो थोड़ी सी अधूरी वस्तु को भी पूरी वस्तु कहा जा सकता है। व्यवहार नय घड़े के टुकड़े को भी घड़ा कहता है। जिस कुत्ते के कान कट गये हो अर्थात् जो कुत्ता बुच्चा हो उसको 'कुत्ता' ही कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जिस वस्तु का एक भाग विकृत हो गया हो, वह वस्तु, अन्य वस्तु नही हो जाती, किन्तु वह वही मूलवस्तु कहलाती है, क्योकि उसमे उत्पन्न विकार मूल वस्तु की पहचान मे बाधक नही होता है। इस प्रकार व्यवहार नय का मन्तव्य है।

धर्मास्तिकाय के प्रदेश सब हो, कृत्स्न (पूरे के पूरे) हों, प्रतिपूर्ण हों अर्थात् अपने अपने स्वभाव मे प्रतिपूर्ण हो, निरवशेष हो अर्थात् प्रदेशान्तर मे भी अपने स्वभाव से कम न हों और धर्मास्तिकायरूप एक शब्द से कहे जा सकते हों, उसे धर्मास्तिकाय कहते है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय के विषय मे भी समझना चाहिए। धर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्यात है और अधर्मास्तिकाय के प्रदेश भी असंख्यात है। आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय, इन तीनों के प्रदेश अनन्त अनन्त हैं। धर्मास्तिकाय की तरह इन तीनो के भी अपने अपने अनन्त प्रदेशों के समूह को क्रमशः आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय कहते है।

जीव का स्वरूप

६३ प्रश्न-जीवे णं भंते ! सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कारपरक्कमे आयभावेणं जीवभावं उवदंसेतीतिवत्तव्वं सिया ?

६३ उत्तर-हंता गोयमा ! जीवे णं जाव उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया।

६४ प्रश्न-से केणट्ठेणं जाव-वत्तव्वं सिया ?

६४ उत्तर-गोयमा ! जीवे णं अणंताणं आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं एवं सुयणाणपज्जवाणं ओहिनाणपज्जवाणं मणपज्जवणाणपज्जवाणं केवलणाणपज्जवाणं मइअण्णाणपज्जवाणं सुयअण्णाणपज्जवाणं विभंगण्णाणपज्जवाणं चक्खुदंसणपज्जवाणं अचक्खुदंसणपज्जवाणं ओहिदंसणपज्जवाणं केवलदंसणपज्जवाणं उवओगं गच्छइ, उवओगलक्खणे णं जीवे, से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ गोयमा ! जीवे णं सउट्ठाणे, जाव वत्तव्वं सिया।

विशेष शब्दों के अर्थ-उवदंसेति-दिखलाता है, आयभावेणं-आत्मभाव से।

भावार्थ-६३ प्रश्न-हे भगवन् ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम वाला जीव, आत्मभाव से जीवत्व को दिखलाता है, क्या ऐसा कहना चाहिए?

६३ उत्तर-हाँ, गौतम ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम वाला जीव, आत्मभाव से जीवत्व को दिखलाता है, प्रकाशित करता है, ऐसा कहना चाहिए।

६४ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

६४ उत्तर-हे गौतम ! जीव, आभिनिबोधिक ज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुतज्ञान के अनन्त पर्याय, अवधिज्ञान के अनन्त पर्याय, मनःपर्यय ज्ञान के अनन्त पर्याय, केवलज्ञान के अनन्त पर्याय, मतिअज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुतअज्ञान के अनन्त पर्याय, विभंगज्ञान (अवधिअज्ञान) के अनन्त पर्याय, चक्षुदर्शन के अनन्त

अचक्षुदर्शन के अनन्त पर्याय, अवधिदर्शन के अनन्त पर्याय और केवलदर्शन के अनन्त पर्याय, इन सब के उपयोग को प्राप्त करता है, क्योंकि जीव का उपयोग लक्षण है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम वाला जीव, आत्मभाव से जीवत्व को दिखलाता है-प्रकाशित करता है।

विवेचन-'जीवास्तिकाय उपयोग गुण वाला है'। यह बात पहले के प्रकरण में कही गई है। अब जीवास्तिकाय का एक देशरूप एक जीव उत्थानादि वाला है, यह बात बतलाई गई है। यहाँ मूलपाठ में 'सउट्ठाणे, सकम्मे' इत्यादि जीव के विशेषण दिये गये है, इससे मुक्त (सिद्ध) जीव का यहाँ ग्रहण नही किया गया है, क्योकि मुक्त जीव में उत्थानादि नही होते है। यहाँ ससारी जीव ग्रहण किया गया है।

'आत्मभाव' का अर्थ है-उत्थान (उठना), शयन, गमन, भोजन आदि रूप आत्म-परिणाम। इस प्रकार के आत्मपरिणाम द्वारा जीव, जीवत्व (चैतन्य) को दिखलाता है, क्योकि जब विशिष्ट चेतना शक्ति होती है तभी विशिष्ट उत्थानादि होते है।

बुद्धिकृत विभाग को पर्यंव (पर्यय-पर्याय) कहते है। आभिनिबोधिक ज्ञान के ऐसे पर्यंव अनन्त है। इसलिए उत्थानादि भाव में वर्तता हुआ आत्मा, आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) सम्बन्धी अनन्त पर्यवों के उपयोग को आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यव रूप एक प्रकार के चैतन्य को प्राप्त करता है।

शका-उत्थानादि आत्मभाव में वर्तता हुआ जीव, आभिनिबोधिक ज्ञान के उपयोग को प्राप्त करता है, तो क्या उसने अपने चैतन्य को प्रकाशित किया-ऐसा कहना चाहिए ?

समाधान-इसके लिए मूलपाठ में ही कहा है-'उवओगलक्खणे जीवे' अर्थात् जीव का उपयोग लक्षण है। इसीलिए उत्थानादिरूप आत्मभाव द्वारा उपयोगरूप जीवत्व को दिखलाता है। ऐसा कहना चाहिए।

आकाश के भेद

६५ प्रश्न-कतिविहे णं भंते ! आगासे पण्णत्ते ?

६५ उत्तर-गोयमा ! दुविहे आगासे पण्णत्ते, तं जहाः-लोया-

गासे य अलोयागासे य।

६६ प्रश्न-लोयागासे णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवप्पएसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवप्पएसा ?

६६ उत्तर-गोयमा ! जीवा वि जीवदेसा वि जीवप्पएसा वि, अजीवा वि अजीवदेसा वि अजीवप्पएसा वि। जे जीवा ते नियमा एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया अणिंदिया, जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा, जाव-अणिंदियदेसा, जे जीवपएसा ते नियमा एगिंदियपएसा, जाव-अणिंदियपएसा, जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहाः-रूवी य अरूवीय, जे रूवी तें चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहाः-खंधा, खंधदेसा, खंधपएसा, परमाणुपोग्गला। जे अरूवी ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहाः-धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पएसा, अधम्मत्थिकाए नो अधम्मत्थिकायस्स देसे, अधम्मत्थिकायस्स पएसा, अद्धासमये।

६७ प्रश्न-अलोगागासे णं भंते ! किं जीवा, पुच्छा तह चेव ?

६७ उत्तर-गोयमा ! नो जीवा, जाव-नो अजीवप्पएसा, एगे अजीवदव्वदेसे, अगुरुयलहुए, अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे।

विशेष शब्दों के अर्थ-लोयागासे-लोकाकाश, अलोयागासे-अलोकाकाश, अद्धासमये-

काल, पुच्छा-पूछना=प्रश्न, तह चेव-वैसे ही, संजुत्ते-संयुक्त ।

भावार्थ-६५ प्रश्न-हे भगवन् ! आकाश कितने प्रकार का कहा गया है ?

६५ उत्तर-हे गौतम ! आकाश के दो भेद हैं । यथा-लोकाकाश और अलोकाकाश ।

६६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या लोकाकाश में जीव हैं ? जीव के देश हैं ? जीव के प्रदेश हैं ? क्या अजीव है ? अजीव के देश है ? अजीव के प्रदेश हैं ?

६६ उत्तर-हे गौतम ! लोकाकाश में जीव भी हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं । अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं । जो जीव है, वे नियमा (निश्चित रूप से) एकेन्द्रिय हैं, बेइन्द्रिय हैं, तेइन्द्रिय हैं, चौइन्द्रिय है, पञ्चेन्द्रिय है और अनिन्द्रिय हैं । जो जीव के देश हैं, वे नियमा एकेन्द्रिय के देश है यावत् अनिन्द्रिय के देश हैं । जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं यावत् अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं । जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-रूपी और अरूपी । जो रूपी है, उसके चार भेद कहे गये हैं । यथा-स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु-पुद्गल । जो अरूपी है, उसके पाँच भेद कहे गये हैं । यथा-धर्मास्तिकाय है, धर्मास्तिकाय का देश नहीं, धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं । अधर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय का देश नहीं, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय है ।

६७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अलोकाकाश में जीव है ? इत्यादि पहले की तरह प्रश्न ?

६७ उत्तर-हे गौतम ! अलोकाकाश में जीव नहीं हैं यावत् अजीव के प्रदेश भी नहीं हैं । वह एक अजीव द्रव्य देश है, अगुरुलघु है, तथा अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है और अनन्त भाग कम सर्व आकाश रूप है ।

विवेचन-पहले के प्रकरण मे जीव के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया था । जीव का आधार आकाश है । इसलिए अब आकाश के सम्बन्ध में वर्णन किया जाता है।

आकाश के दो भेद है-लोकाकाश और अलोकाकाश । जिस क्षेत्र में धर्मास्तिकाय

आदि द्रव्य है वह क्षेत्र लोकाकाश कहलाता है और जिस क्षेत्र में धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य नहीं हैं, वह क्षेत्र अलोकाकाश कहलाता है।

लोकाकाश रूप अधिकरण में सब जीव, जीवों के देश अर्थात् बुद्धिकल्पित जीव के दो तीन आदि विभाग और जीव के प्रदेश अर्थात् जीवदेश के बुद्धिकल्पित ऐसे सूक्ष्म विभाग जिनके फिर दो विभाग न हो सके वे विभाग, तथा अजीव, अजीवों के देश और अजीवों के प्रदेश रहते है।

शंका-'लोकाकाश में जीव और अजीव रहते हैं'-ऐसा कहने से ही जीव के देश और प्रदेश तथा अजीव के देश और प्रदेश, लोकाकाश में रहते है-यह बात जानी जा सकती है, क्योकि जीव के देश और प्रदेश, जीव से भिन्न नहीं हैं, तथा अजीव के देश और प्रदेश, अजीव से भिन्न नही है, अपितु जीव, जीव के देश और प्रदेश, ये सब एक ही है। इसी तरह अजीव, अजीव के देश और प्रदेश ये सब एक ही हैं, तो फिर यहाँ जीव के प्रदेश तथा अजीव के देश और प्रदेश अलग क्यो कहे ? इसका क्या कारण है ?

समाधान-यद्यपि जीव कहने से ही जीव के देश और प्रदेशो का ग्रहण हो जाता है। इसी तरह अजीव कहने से ही अजीव के देश और प्रदेशो का ग्रहण हो जाता है, तथापि यहां जीव के देश और प्रदेशों का अलग कथन किया गया है, इसका कारण है और वह यह है कि कितनेक मतावलम्बियों की यह मान्यता है कि-जीवादि पदार्थ अवयव रहित है। उनकी इस मान्यता का खण्डन करने के लिए तथा 'जीवादि पदार्थ सावयव हैं'-इस बात को सूचित करने के लिए 'जीव के देश, जीव के प्रदेश' इत्यादि पृथक् रूप से कथन किया गया है।

अजीव के दो भेद है-रूपी और अरूपी। पुद्गल रूपी-मूर्त्त है और धर्मास्तिकायादि अरूपी-अमूर्त्त है। रूपी के चार भेद है-स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु पुद्गल। परमाणुओ के समूह को स्कन्ध कहते है। स्कन्ध के दो तीन आदि भागों को 'स्कन्धदेश' कहते है। स्कन्धदेश के ऐसे सूक्ष्म अश जिनके फिर विभाग न हो सके उनको 'स्कन्ध प्रदेश' कहते हैं। जो स्कन्धभाव को प्राप्त नहीं हुए है, ऐसे सूक्ष्म अंशो को 'परमाणु' कहते हैं। लोकाकाश मे रूपी द्रव्य की अपेक्षा से अजीव, अजीवदेश और अजीवप्रदेश भी है, यह बात अर्थतः समझी जा सकती है, क्योकि अजीव का ग्रहण करने से अणु और स्कन्ध का ग्रहण भी हो जाता है।

दूसरी जगह अरूपी अजीव के दस भेद कहे गये हैं। जैसे कि-धर्मास्तिकाय, धर्मा-

स्तिकाय के देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय के देश अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय।

शंका-जब कि दूसरी जगह अरूपी अजीव के दस भेद कहे हैं, तो यहां पांच ही भेद कहने का क्या कारण है ?

समाधान-यहां तीन भेद वाले आकाश को आधार रूप माना है, इसलिए उसके तीन भेद यहा नही गिने गये है। आकाश के तीन भेदो को निकाल देने पर सात भेद रहते है। सम्पूर्ण लोक की पृच्छा होने से यहाँ धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के स्कन्धरूप से पूर्ण का ग्रहण कर लिया गया है, इसलिए देश का ग्रहण नहीं किया गया है, अतः ये दो भेद निकाल देने पर बाकी पांच भेद रहते हैं।

जीव और पुद्गल बहुत है, इसलिए ऐसा कहना ठीक ही है-"बहुत जीव, जीवों के बहुत देश, जीवों के बहुत प्रदेश। बहुत पुद्गल, पुद्गलो के बहुत देश, पुद्गलो के बहुत प्रदेश"। अथवा जीव मे और पुद्गल में सकोच विस्तार की शक्ति है। इसलिए जिस जगह मे एक जीव या पुद्गल समा सकता है, उतनी ही जगह मे अनेक जीव और अनेक पुद्गल समा सकते है। इसलिए बहुत जीव और बहुत पुद्गल हो सकते हैं। इसलिए भी ऐसा कहना उचित है कि-बहुत जीव, जीवों के बहुत देश, जीवों के बहुत प्रदेश। बहुत पुद्गल, पुद्गलो के बहुत देश और पुद्गलो के बहुत प्रदेश। रूपी द्रव्य की अपेक्षा बहुत अजीव, अजीवों के बहुत देश और अजीवो के बहुत प्रदेश-ऐसा कहना भी सुसगत है, क्योंकि एक ही वस्तु के अन्दर भी पृथक् पृथक् तीन वस्तुओं की विद्यमानता है। धर्मास्तिकाय आदि मे तो दो वस्तुए संभवित हैं। यथा-धर्मास्तिकाय और धर्मास्तिकाय प्रदेश इत्यादि। जब सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को कहने की इच्छा होती है, तब 'धर्मास्तिकाय' इत्यादि रूप से निर्देश होता है और जब धर्मास्तिकाय आदि के अंशो को कहने की इच्छा होती है, तब 'धर्मास्तिकाय प्रदेश' इत्यादि रूप से कहा जाता है, क्योकि प्रदेश अवस्थित रूप वाले हैं। धर्मास्तिकाय में उसके देशो की कल्पना करना अयुक्त है, क्योकि उसके देश अवस्थित रूप वाले नही हैं। यद्यपि जीवादिदेश भी अनवस्थित रूप है, तथापि वे एक ही आश्रय मे भिन्न भिन्न संभवित हैं, इसलिए उनकी भिन्न भिन्न प्ररूपणा की गई है। धर्मास्तिकायादि में इस प्रकार नहीं है, क्योकि वह एक है और सकोचादि धर्म रहित है। इसलिए धर्मास्तिकायादि के देश का निषेध करने के लिए मूल पाठ में 'नो धम्मत्थिकायस्स देसे, णो अधम्मत्थिकायस्स देसे'

ऐसा कहा है।

इस विषय में चूर्णिकार भी कहते है कि-सब अरूपी द्रव्यों का व्यवहार 'समुदय' शब्द से होता है अथवा सब अरूपी द्रव्यों का व्यवहार 'प्रदेश' शब्द से होता है किन्तु, 'देश' शब्द से उनका व्यवहार नही होता है, क्योंकि उनके देशो का अनवस्थित प्रमाण है। इसलिए उनका 'देश' शब्द से व्यपदेश करना ठीक नही है। इन द्रव्यों में जो 'देश' शब्द का निर्देश किया गया है वह धर्मास्तिकायादि सम्बन्धी व्यवहार के लिए तथा ऊर्ध्व लोकाकाशादि सम्बन्धी स्पर्शनादि विषयक व्यवहार के लिए किया गया है। जैसे कि-धर्मास्तिकाय अपने देश द्वारा ऊर्ध्व लोकाकाश को व्याप्त करता है। इस तरह धर्मास्तिकाय सबंधी व्यवहार है। तथा ऊर्ध्व लोकाकाश द्वारा धर्मास्तिकाय का अमुक देश स्पृष्ट है। इस तरह द्रव्य सम्बन्धी स्पर्शनादि विषयक व्यवहार होता है। इन दोनों व्यवहारो को करने के लिए अरूपी द्रव्यों मे भी 'देश' शब्द का व्यवहार किया गया है।

'अद्धासमय'-अद्धा अर्थात् काल, तद्रूप जो समय, वह अद्धासमय कहलाता है। वर्तमान काल रूप 'अद्धासमय' एक ही है, क्योकि भूतकाल और भविष्यत्काल असद् रूप है।

इस प्रकार 'लोकाकाश' सम्बन्धी छह प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इसके बाद अलोकाकाश के सम्बन्ध मे इसी तरह छह प्रश्न किये गये है। यथा-हे भगवन् ! अलोकाकाश मे क्या जीव है ? जीव देश है ? जीवप्रदेश हैं ? अजीव हैं ? अजीव देश हैं ? या अजीव प्रदेश हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-अलोकाकाश में जीव नहीं, जीव देश नहीं, जीव प्रदेश नही, अजीव नही, अजीव देश नही और अजीव प्रदेश भी नही, किन्तु वह अजीव द्रव्य का एक भाग रूप है, क्योकि आकाश के दो भेद है-लोकाकाश और अलोकाकाश। इसलिए अलोकाकाश, आकाश का एक भाग है। अलोकाकाश अगुरुलघु है, स्वपर्याय और परपर्याय रूप अगुरुलघु स्वभाव वाले अनन्तगुणो से युक्त है, क्योकि अलोकाकाश की अपेक्षा लोकाकाश अनन्त भाग रूप है। अतः अलोकाकाश अनन्तवां भाग कम सर्व आकाश रूप है।

धर्मास्तिकाय आदि की स्पर्शना

६८ प्रश्न-धम्मत्थिकाए णं भंते ! केमहालए पण्णत्ते ।

६८ उत्तर-गोयमा ! लोए, लोयमेत्ते, लोयप्पमाणे, लोयफुडे,

लोयं चेव फुसित्ता णं चिट्ठइ, एवं अहम्मत्थिकाए, लोयागासे, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए पंच वि एक्काभिलावा।

६९ प्रश्न-अहोलोए णं भंते! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसइ?

६९ उत्तर-गोयमा! साइरेगं अद्धं फुसइ।

७० प्रश्न-तिरियलोए णं भंते! पुच्छा?

७० उत्तर-गोयमा! असंखेज्जइभागं फुसइ।

७१ प्रश्न-उड्ढलोए णं भंते! पुच्छा?

७१ उत्तर-गोयमा! देसूणं अद्धं फुसइ।

विशेष शब्दों के अर्थ-महालए-बड़ा, फुडे-स्पर्श किया हुआ, साइरेगं-कुछ अधिक, देसूणं-कुछ कम, फुसइ-स्पर्श करता है।

भावार्थ-६८ प्रश्न-हे भगवन्! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा कहा गया है?

६८ उत्तर-हे गौतम! धर्मास्तिकाय लोक रूप है, लोक मात्र है, लोक प्रमाण है, लोक स्पृष्ट है और लोक को स्पर्श करके रहा हुआ है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के विषय में भी जानना चाहिए। इन पाँचों के विषय में एक समान अभिलाप (पाठ) है।

६९ प्रश्न-हे भगवन्! अधोलोक, धर्मास्तिकाय के कितने भाग को स्पर्श करता है?

६९ उत्तर-हे गौतम! अधोलोक, धर्मास्तिकाय के आधे से कुछ अधिक भाग को स्पर्श करता है।

७० प्रश्न-हे भगवन्! तिर्यग्लोक, धर्मास्तिकाय के कितने भाग को स्पर्श करता है?

७० उत्तर-हे गौतम! तिर्यग्लोक, धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को

स्पर्श करता है।

७१ प्रश्न-हे भगवन् ! ऊर्ध्वलोक, धर्मास्तिकाय के कितने भाग को स्पर्श करता है ?

७१ उत्तर-हे गौतम ! ऊर्ध्वलोक, धर्मास्तिकाय के देशोन अर्ध भाग को स्पर्श करता है।

विवेचन-धर्मास्तिकाय के परिमाण का निरूपण करते हुए कहा गया है कि-धर्मास्तिकाय, लोक जितना बड़ा है अर्थात् लोकपरिमाण है। लोक के जितने प्रदेश है उतने ही धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। वे सब प्रदेश लोकाकाश के साथ स्पृष्ट है, तथा धर्मास्तिकायादि अपने समस्त प्रदेशो द्वारा लोक को स्पर्श करके रहे हुए हैं।

धर्मास्तिकाय, सम्पूर्ण लोकव्यापी है और अधोलोक का परिमाण सात रज्जु से कुछ अधिक है। इसलिए अधोलोक धर्मास्तिकाय के आधे से कुछ अधिक भाग को स्पर्श करता है। तिर्यग्लोक का परिमाण अठारह सौ योजन है और धर्मास्तिकाय का परिमाण असख्यात योजन का है। इसलिए तिर्यग् लोक, धर्मास्तिकाय के असंख्यात भाग को स्पर्श करता है। ऊर्ध्वलोक, देशोन सात रज्जु परिमाण है और धर्मास्तिकाय चौदह रज्जु परिमाण है। इसलिए ऊर्ध्वलोक, धर्मास्तिकाय के देशोन आधे भाग को स्पर्श करता है।

७२ प्रश्न-इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ, असंखेज्जइभागं फुसइ, संखेज्जे भागे फुसइ, असंखेज्जे भागे फुसइ, सव्वं फुसइ ?

७२ उत्तर-गोयमा ! णो संखेज्जइभागं फुसइ, असंखेज्जइभागं फुसइ, णो संखेज्जे, णो असंखेज्जे, नो सव्वं फुसइ।

७३ प्रश्न-इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही धम्मत्थिकायस्स पुच्छा-किं संखेज्जइभागं फुसइ ?

७३ उत्तर-जहा रयणप्पभा तहा घणोदही, घणवाय-तणु-

वाया वि ।

७४ प्रश्न--इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवासंतरे धम्म-त्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ, असंखेज्जइभागं फुसइ, जाव-सव्वं फुसइ ?

७४ उत्तर--गोयमा ! संखेज्जइभागं फुसइ, णो असंखेज्जइभागं फुसइ, णो संखेज्जे, णो असंखेज्जे, णो सव्वं फुसइ । उवासंतराइं--सव्वाइं । जहा रयणप्पभाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया, एवं जाव--अहेसत्तमाए, जंबूदीवाइया दीवा, लवणसमुद्दाइया समुद्दा, एवं सोहम्मे कप्पे जाव ईसीपब्भारा पुढवी एए सव्वे वि असंखेज्जइ-भागं फुसइ, सेसा पडिसेहियव्वा, एवं अधम्मत्थिकाए, एवं लोया-गासे वि । गाहा--

पुढवोदही घण-तणू कप्पा गेवेज्जणुत्तरा सिद्धी,
संखेज्जइभागं अंतरेसु सेसा असंखेज्जा ।



॥ बिइयसए दसमो उद्देसो सम्मत्तो ॥



॥ बिइयं सयं सम्मत्तं ॥

विशेष शब्दों के अर्थ-घणोदही-घनोदधि, उवासंतरे-अवकाशान्तर, पडिसेहियव्वा-निषेध करना चाहिए।

भावार्थ-७२ प्रश्न-हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी, क्या धर्मास्तिकाय के संख्यात भाग को स्पर्श करती है, या असंख्यात भाग को स्पर्श करती है, या संख्यात भागों को स्पर्श करती है, या असंख्यात भागों को स्पर्श करती है, या सम्पूर्ण को स्पर्श करती है ?

७२ उत्तर-हे गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी, धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श नहीं करती है, किन्तु असंख्येय भाग को स्पर्श करती है। संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श नहीं करती है।

७३ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधि, धर्मास्तिकाय के कितने भाग को स्पर्श करता है ? क्या संख्येय भाग को स्पर्श करता है ? इत्यादि प्रश्न ?

७३ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के लिए कहा है, उसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि के विषय में भी कहना चाहिए और उसी तरह घनवात और तनुवात के विषय में भी कहना चाहिए।

७४ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अवकाशान्तर क्या धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है, या असंख्येय भाग को स्पर्श करता है, यावत् सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श करता है ?

७४ उत्तर-हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अवकाशान्तर, धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है, किन्तु असंख्येय भाग को, संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श नहीं करता है। इसी तरह सब अवकाशान्तरों के विषय में कहना चाहिए। जिस तरह रत्नप्रभा के विषय में कहा, उसी तरह सातवीं पृथ्वी तक कहना चाहिए। जम्बूद्वीपादि द्वीप और लवणसमुद्रादिक समुद्र, सौधर्मकल्प यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, ये सब धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं। बाकी भागों की स्पर्शना

का निषेध करना चाहिए। जिस तरह धर्मास्तिकाय की स्पर्शना कही, उसी तरह अधर्मास्तिकाय और लोकाकाशास्तिकाय की स्पर्शना का भी कहना चाहिए।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है-पृथ्वी, घनोदधि, घनवात, तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर और सिद्धि तथा सात अवकाशान्तर, इनमें से अवकाशान्तर तो धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करते हैं और शेष सब धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं।

विवेचन-रत्नप्रभा पृथ्वी, उसका घनोदधि, घनवात और तनुवात और अवकाशान्तर। इस तरह रत्नप्रभा के पाँच सूत्र होते है। इस प्रकार प्रत्येक पृथ्वी के पाँच पाँच सूत्र कहने से, सात पृथ्वियो के पैंतीस सूत्र होते हैं, बारह देवलोको के बारह सूत्र, नवग्रैवेयक की तीन त्रिक के तीन सूत्र, पांच अनुत्तर विमानों का एक सूत्र और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का एक सूत्र, ये सब मिल कर ५२ सूत्र होते है। इन सभी सूत्रो मे 'क्या धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है'-इस प्रकार अभिलाप कहना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-अवकाशान्तर, सख्येय भाग को स्पर्श करते है और शेष सब असख्येय भाग को स्पर्श करते हैं।

अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश के विषय में भी इसी तरह सूत्र कहने चाहिए।

॥ दूसरे शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ द्वितीय शतक समाप्त ॥

॥ प्रथम भाग



सम्पूर्ण ॥